ब्रह्मपुराण

(द्वितीय खण्ड)

(मूल व सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

—※—

सम्पादक:

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चार वेद, १०८ उपनिषद, षट्दर्शन, २० स्मृतियाँ,

१८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार और लगभग

१५० हिन्दी ग्रन्थों के रचियता

—※—

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली (उ०प्र०)

भूमिका

"ब्रह्म पुराण" का यह दूसरा खण्ड विशेष रूप से तीर्थों के वर्णन और माहात्म्य से युक्त है और विशेषता यह है कि ये सभी तीर्थ गौतमी-गङ्गा (गोदावरी) से संबन्धित हैं। तीर्थों के नाम भी एक खास तरह के हैं जैसे मातृतीर्थ, आत्मतीर्थ, यमतीर्थ, सोमतीर्थ, आपस्तम्बतीर्थ मन्यु-तीर्थ, चक्षुतीर्थ आदि, ये सब तीर्थ आज कल लोगों को ज्ञात हैं या नहीं यह कह सकना तो कठिन है, पर इनके उपलक्ष्य में पुराणकार ने जो कथाएँ लिखी हैं, वे सब आकर्षक और धर्म-शिक्षासे युक्त हैं।

कथाओं के पढ़ने से प्रतीत होता है कि उन्हें जानबूझ कर इसी उद्देश्य से लिखा गया है कि लोगों का झुकाव धार्मिक प्रवृत्तियों की तरफ हो और साथ ही गोदावरी नदी का माहात्म भी लोक में अधिकाधिक प्रसिद्ध हो। इन्हीं कथाओं को देख कर हमने प्रथम खण्ड की भूमिका में लिखा था कि संभवतः इस पुराण का लेखक गोदावरी के निकटवर्ती भूभाग का निवासी है, और उसने अपने प्रदेश के महत्त्व को बढ़ाने के लिये ऐसी कथाएँ रची हैं। कुछ भी हो गोदावरी भारत की एक महत्त्व-पूर्ण नदी है, और भगवान राम के सम्पर्क के कारण उसकी महिमा और भी बढ़ गई है। इसलिए इस प्रकार कथाओं द्वारा जन-साधारण में उसका प्रचार किया गया हो तो इसमें कोई दोष की बात नहीं।

इस सम्बन्ध में आवश्यकता यही है कि हम पौराणिक कथा-नकों को यह समझ कर न पढ़ें कि उनका एक-एक-शब्द पुराण और यथार्थ घटनाओं को देख कर ही लिखा गया है। अगर

ऐसी यथार्थ घटनाएं लिखी भी जायें तो वे न बहुत आकर्षक होंगी और न शिक्षाप्रद। यथार्थ घटनाओं से अभीष्ट उपदेश दे सकना व आदर्श उपस्थित कर सकना शायद ही कभी सम्भव होता है। इस लिये कथाकार उन घटनाओं को आवश्यकता अनुसार घटा-बढ़ा कर अथवा काल्पनिक कहानी रच कर इस उद्देश्य की पूर्ति करते है।

"ब्रह्म पुराण" मे गोदावरी की जो महिमा बतलाई है वह ठीक ही है। अब तक करोड़ो व्यक्ति उसके प्रति श्रद्धा-भक्ति रख कर सुफल प्राप्त कर चुके हैं। इस दृष्टि से जो स्थिति गङ्गा और नर्मदा की है, वही आन्ध्र और महाराष्ट्र के एक बड़े भाग मे गोदावरी की है। और किसी भी बड़ी नदी से जनता का जो उपकार होता है, जीवन रक्षा के लिये खाद्य-सामग्री उत्पन्न करने मे जो सहयोग मिलता है, उसके कारण उसके प्रति पूज्य भाव रखना उचित ही है। विदेशो के निवासी भी जो देवी-देवताओ मे हमारी तरह विश्वास नही रखते अपनी प्रमुख सरिताओ के प्रति ऐसी ही पूज्य भावना रखते है, जर्मनी के निवासी अपनी राइन नदी को अत्यन्त पूज्य दृष्टि से देखते हैं और अपने राष्ट्रीय गीत मे बड़े उत्साह से गाते हैं "हे राइन, हे पावन राइन तू जर्मन राइन मेरी।" रोम के निवासी भी "टाइबर" नदी को माता टाइबर ही कहते थे जैसे हम "गङ्गा-मैया" की जय जयकार करते हैं।

इसलिये यदि 'ब्रह्म पुराण" के लेखक ने अपनी पूज्य "गोदावरी" की महिमा को बढ़ाने के लिये उसके चमत्कारो की कथाएं रच डाली तो इसमे हानि की क्या बात हुई? आवश्यकता इतनी ही है कि हम कुछ समझदारी से काम लें और कथाओ के सम्बन्ध मे बाल की खाल निकालने के बजाय उनसे

सत्य-रक्षा, धर्म-प्रेम, परोपकार, पतिव्रत, सेवा-भाव आदि के जो उपदेश मिलते हों उनको ग्रहण करें। जब मनुष्य आज कल के काल्पानिक उपन्यासों से सत् शिक्षाएँ ग्रहण करने की बात कहते हैं, तो पुराणों की धर्म-कथाओं से लाभ क्यों नहीं उठाया जा स.त ा ?

इतना हम मानते हैं कि अनेक कथाओं में बड़ी अतिशयोक्ति से काम लिया गया है। आज कल के पाठक जब पढ़ते हैं कि अमुक नदी में एक बार स्नान करने से समस्त जन्म के बड़े-बड़े पाप तुरन्त नष्ट होगये और स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ का दर्जा प्राप्त हो गया तो उसके लिये "गपोड़ा" का शब्द अनायास ही मुँह से निकल पड़ता है। पर इसका रहस्य यही है कि लेखक अनपढ़ और मूढ़ जनता को नदी का भक्त बना कर उससे लाभ उठाने की प्रेरणा देना चाहता है। वह जानता है कि इस श्रेणी के लोग ऐसी बढ़ा-चढ़ा कर कही हुई चमत्कारी बातों को ही चाव से सुनते और उस तरफ ध्यान देते हैं। यह कोई बड़ी बात नहीं कि उस पुण्य के फल से हम दस वर्ष स्वर्ग में रहेंगे या दस लाख वर्ष तक ! अथवा इसके फल से हमारे कितने सौ पूर्वजों का उद्धार हो जायगा।

जब वे चार पाँच पीढ़ी से ज्यादा का नाम भी नहीं जानते तब उनके वैकुण्ठ प्राप्त होने से उनको क्या लाभ हानि हो सकती है।'

पुराणों में अद्वैत ज्ञान से लेकर वृक्षों और नदी-नालों तक अनेक जड़ पदार्थों को पूजने का विधान पाया जाता है। उनका कहना है कि सतयुग से लेकर कलियुग तक चारों युगों में 'धर्म' रूपी वृषभ का एक-एक पैर टूटता जाता है. इसलिये धर्म के

स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहता है, कलियुग में लोगों को धर्म की तरफ आकर्षित करने और जितना भी सभव हो उतने अशों में धार्मिक-कृत्यो, सत्कर्मों का पालन करने के लिये प्रेरित किया जाय, वह ठीक ही है। यद्यपि आजकल शिक्षित लोगों के विचार इस सम्बन्ध में निरन्तर बदलते जाते हैं, पर यहाँ की ८० प्रतिशत अशिक्षित जनता ऐसी ही धर्म कथाओं को सुन कर ईश्वर और धर्म पर थोड़ा बहुत विश्वास बनाये रखती है। मनुष्य के भीतर श्रद्धा और विश्वास एक ऐसा आवश्यक तथ्य है जिसकी उपयोगिता से कोई इनकार नहीं कर सकता। इसी दृष्टि से हम पुराणों के उपयोगी विषयों का सकलन करके प्रकाशित कर रहे हैं, जिससे अध श्रद्धा के स्थान पर लोगों में धर्म श्रद्धा की वृद्धि होती रहे।

—प्रकाशक

ब्रह्मपुराण द्वितीयखण्ड की

विषय सूची

—:*:—

ब्रह्मपुराण

(द्वितीय खण्ड)

—※—

नागतीर्थवर्णन

नागतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं शुभम् ।
यत्र नागेश्वरो देवः शृणु तस्यापि विस्तरम् ॥१
प्रतिष्ठानपुरे राजा शूरसेन इति श्रुतः ।
सोमवंशभवः श्रीमान्मतिमान्गुणसागरः ॥२
पुत्रार्थं म महायत्नमकरोत्प्रियया सह ।
तस्य पुत्रश्चिरादासीत्सर्पो वै भीषणाकृतिः ॥३
पुत्रं तं गोपयामास शूरसेनो महीपतिः ।
राज्ञः पुत्रः सर्प इति न कश्चिद्विन्दते जनः ॥४
अन्तर्वर्ती परो वापि मातरं पितरं विना ।
धात्रेय्यपि न जानाति नामात्यो न पुरोहितः ॥५
तं दृष्ट्वा भीषणं सर्पं सभार्यो नृपसत्तमः ।
संतापं नित्यमाप्नोति सर्पाद्वरमपुत्रता ॥६
एतदस्ति महासर्पो वक्ति नित्यं मनुष्यवत् ।
स सर्पः पितरं प्राह कुरु चूडामपि क्रियाम् ॥७
तथोपनयनं चापि वेदाध्ययनमेव च ।
यावद्वेदं न चाधीते तावच्छूद्रसमो द्विजः ॥८

श्री ब्रह्माजी से कहा—एक नागतीर्थ नाम से विख्यात तीर्थ है जो सब कामनाओं का प्रदान करने वाला परम शुभ है जहाँ पर नागेश्वर देव

विराजमान रहा करते हैं। अब आप उसका भी विस्तार पूर्वक श्रवण करिए ॥१॥ प्रतिष्ठितपुर मे एक राजा शूरसेन विश्रुत हुआ था। वह राजा सोमवश म समुत्पन्न होने वाला थी सम्पन्न मतिमान् और गुणो का सागर था ॥२॥ उस राजा ने अपनी प्रिया के साथ पुत्र की प्राप्ति के लिये बडा भारी प्रयत्न किया था। उसके जो पुत्र बहुत अधिक सयम के पश्चात् हुआ था वह परम भीषण आकृति वाला सर्प था ॥३॥ शूरसेन राजा ने उस पुत्र को छिपा लिया था जिससे कोई भी मनुष्य यह न जान सके कि राजा का पुत्र सर्प है ॥४॥ अन्दर रहने वाला अथवा कोई दूसरा माता-पिता के बिना और आग्नेयी भी नही जानती थी। इस तथ्य को अमात्य एव पुरोहित कोई भी नही जान पाया था ॥५॥ उस महान् भीषण सर्प को भार्या के सहित उस श्रेष्ठ नृप ने देखकर बहुत ही अधिक अपने हृदय म नित्य सन्ताप प्राप्त किया था और यह विचार किया करता था कि इससे अच्छा तो पुत्र का न होना ही कहीं अच्छा था क्योकि ऐसे सर्प से क्या लाभ है ॥६॥ यह महान् सर्प की आकृति वाला तो था किन्तु वह नित्य ही मनुष्य के ही समान भाषण किया करता था। उस सर्प ने अपने पिता से कहा था कि मेरी चूडा क्रिया करो अर्थात् चूडा सस्कार करिए ॥७॥ तथा मेरा उपनयन सस्कार और वेदाध्ययन सस्कार भी करिए क्योकि जिस समय तक द्विज वेदो का अध्ययन नही करता है वह एक शूद्र के ही तुल्य हुआ करता है ॥८॥

एतच्छ्रुत्वा पुत्रवच शूरसेनोऽतिदु खित ।
ब्राह्मण कवनाऽऽनीय सस्कारादि तदाऽकरोत् ॥
अधीतवेद. सर्पोऽपि पितर चाब्रवीदिदम् ॥६

विवाह कुरु मे राजन्स्त्रीकामोह नृपोत्तम ।
अन्यथाऽपि च कृत्य ते न सिध्येदिति मे मति ॥१०

जनयित्वाऽऽत्मजान्वेदविधिनाऽखिलसस्कृती ।
न कुर्याद्य पिता तस्य नरकान्नास्ति निष्कृति ॥११
विस्मित. स पिता प्राह सुत तमुरगाकृतिम् ॥१२

यस्य शब्दादपि त्रासं यान्ति शूराश्च पूरुषाः ।
तस्मै कन्यां तु को दद्याद्वद पुत्र करोमि किम् ।।१३
तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा सर्पः प्राह विचक्षणः ।।१४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने उस सर्पाकृति पुत्र का यह वचन सुनकर राजा शूरसेन अत्यन्त दुःखित हुआ था और उसी समय में किसी ब्राह्मण को बुलाकर सब संस्कार आदि उस राजा ने करा दिया था जब उस सर्प ने वेदों का अध्ययन कर लिया था तो फिर वह अपने पूज्य पिता से यह वचन बोला ।।९।। सर्प ने कहा—हे नृपश्रेष्ठ ! हे राजन् ! मेरी कामना अब स्त्री के प्राप्त करने की है अतएव अब आप मेरा विवाह कर दीजिए । अन्यथा अर्थात् मेरा विवाह आदि न करने पर आपका कृत्य सिद्ध नहीं होगा—ऐसा मेरा विचार है ।।१०।। जो पिता अपने पुत्रों को समुत्पन्न करके वेदों में बनाये हुए विधान से सब संस्कार नहीं किया करता है उसका कभी भी नरकों से विस्तार नहीं होता है अर्थात् वह सदा ही नरकों में ही पड़ा रहता है ।।११।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—पिता उसका यह कथन सुनकर बहुत ही विस्मित हो गया था और फिर उस सर्प की आकृति वाले पुत्र से वह कहने लगा ।।१२।। राजा शूरसेन ने कहा—बड़े २ शूर और सभी पुरुष जिसके शब्द से भी त्रास (भय) प्राप्त किया करते हैं उसको कौन व्यक्ति अपनी कन्या दे देगा ? हे पुत्र ! तुम ही यह मुझे बतलादो कि मैं क्या करूँ ? ।।१३।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने पिता के उस वचन का श्रवण करके वह परम विचक्षण सर्प बोला था ।।१४।।

विवाहा बहवो राजन्राज्ञां सन्ति जनेश्वर ।
प्रसह्याऽऽहरणं चापि शस्त्रैर्वैवाह एव च ।।१५
जाते विवाहे पुत्रस्य पिताऽसौ कृतकृद्भवेत् ।
नो चेदत्रैव गङ्गायां मरिष्ये नात्र संशयः ।।१६
तत्पुत्रनिश्चयं ज्ञात्वा अपुत्रो नृपसत्तमः ।
विवाहार्थममात्यास्तानाहूयेदं वचोऽब्रवीत् ।।१७

नागेश्वरो मम सुतो युवराजो गुणाकर ।
गुणवान्मतिमाञ्शूरो दुर्जय शत्रुतापन ॥१८
रथे नागे स धनुपि पृथिव्या नोपमीयते ।
विवाहस्तस्य कर्तव्यो ह्यह वृद्धस्तथैव च ॥१९
राज्यभार सुते न्यस्य निश्चिन्तोऽह भवाम्यत ।
न दारसग्रहो यावत्तावत्पुत्रो मम प्रिय ॥२०
वालभाव नो जहाति तस्मात्सर्वेऽनुमन्य च ।
विवाहायाथ कुर्वन्तु यत्न मम हिते रता ॥२१

सर्प न कहा—हे जनेश्वर ! ह राजन् ! राजाओं के तो वहुत प्रकार के विवाह हुआ करते हैं । वलात् किसी कन्या का आहरण कर लेना तथा शस्त्रों के द्वारा भी विवाह राजा किया करते हैं । अपने पुत्र का विवाह हो जाने पर ही पिता कृतकृत्य अर्थात् सफल होता है अभिप्राय यही है कि पुत्र का विवाह कर देने पर ही पिता के सब कृत्य समाप्त होते हैं । यदि ऐसा नही किया गया तो मैं यही पर गङ्गा मे डूव कर मर जाऊँगा—इसको निश्चित ही समझिये और कुछ भी सशय नही है ॥१५-१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस पुत्र का ऐसा निश्चय जान कर पुत्रहीन वह श्रेष्ठ नृप वहुत चिन्तित हो गया और फिर उसने उसके विवाह के कराने के लिये मन्त्रियो को बुलाकर यह वचन उनसे वोला ॥१७॥ शूरसेन नृप न कहा—मेरा यह पुत्र नागेश्वर है और यह युवराज गुणगणो का सागर है । यह परमाधिक गुणो वाला है—वुद्धिमान् शूर-दुर्जय और अपने शत्रुओ को सताप देने वाला है ॥१८॥ रथ मे-नाग में और धनुर्विद्या मे यह अनुपम है तथा इस पृथिवी मे इसकी समानता रखने वाला अन्य कोई भी नहीं है । इसका अव विवाह करना ही चाहिए क्योंकि मैं तो अव वृद्ध हो गया हूँ ॥१९॥ इसीलिये मैं सम्पूण अपने राज्य का भार इस पुत्र को सौंपकर निश्चित होना चाहता हूँ । जिस समय तक मेरा प्रिय पुत्र है तव तक दाराओ का सग्रह नही करना है । यह वालभाव को नही त्यागता है अतएव आप सव अपनी सम्मति देकर मेरे ही हित मे रति रखते हुई इसके विवाह के लिये यत्न करिए ॥२०-२१॥

न मे काचित्तदा चिन्ता कृतोद्वाहो यदाऽऽत्मजः ।
सुते न्यस्तभरा यान्ति कृतिनस्तपसे वनम् ॥२२
अमात्या राजवचनं श्रुत्वा सर्वे विनीतवत् ।
ऊचुः प्राञ्जलयो हर्षाद्राजानं भूरितेजसम् ॥२३
तव पुत्रो गुणज्येष्ठस्त्वं च सर्वत्र विश्रुतः ।
विवाहे तव पुत्रस्य किं मन्त्र्यं किंतु चिन्त्यते ॥२४
अमात्येषु तथोक्तेष गम्भीरो नृपसत्तमः ।
पुत्रं सर्पं त्वमात्यानां च चाऽऽख्याति न ते विदुः ॥२५
राजा पुनस्तानुवाच का स्यात्कन्या गुणाधिका ।
महावंशभवः श्रीमान्को राजा स्याद्गुणाश्रया ॥२६
संबन्धयोग्यः शूरश्च यत्संबन्धः प्रशस्यते ।
तद्राजवचनं श्रत्वा अमात्यानां महामतिः ॥२७
कुलीनः साधुरत्यन्तं राजकार्यहिते रतः ।
राज्ञो मतिं विदित्वा तु इङ्गितज्ञोऽब्रवीदिदम् ॥२८

फिर उस समय में मुझे अन्य कोई भी चिन्ता नहीं रहेगी जब मेरा यह पुत्र विवाह करने वाला हो जायगा अर्थात् विवाहित हो जायगा कृती पुरुष अपने पुत्र पर सब भार डाल कर ही वन में तपस्या करने के लिये जाया करते हैं ॥२२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन राजा के समस्त अमात्यों ने राजा के ये वचन सुनकर सबने परम विनम्र होकर हाथ जोड़कर बहुत ही हर्ष के साथ अत्यधिक तेजस्वी राजा से प्रार्थना की थी ॥२३॥ मन्त्रिगण ने कहा—हे राजन् ! आपका पुत्र तो गुणों में बहुत ही बढ़ा-चढ़ा हैं और आप सर्वत्र प्रसिद्ध है आपके पुत्र के विवाह के विषय में क्या मन्त्रणा करने की आवश्यकता है और इसकी आपके द्वारा क्यों चिन्ता की जा रही है ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उन मन्त्रियों के इस प्रकार से कहने पर वह श्रेष्ठ नृप बहुत गम्भीर हो गया था । और वह अपने पुत्र को सर्प बतलाता है क्योंकि वे इस बात को नहीं जानते थे ॥२५॥ फिर उस राजा ने उनसे कहा था कि कौन सी कन्या गुणों में अधिक है ? गुणों का आश्रय-महान् वंश में समुत्पन्न और

श्री सम्पन्न कौन सा राजा है जो सम्बन्ध को करने के योग्य हो और शूर हो तथा जिसके साथ सम्बन्ध करना प्रशस्त माना जावे ? राजा के इस वचन का श्रवण करके अमात्यों में जो महान् मतिमान् था—परम कुलीन-अत्यन्त साधु और राजा के हितप्रद कार्यों में रति रखने वाला था उसने जो इङ्गित को जानने वाला था राजा के उस विचार को समझ कर यह कहा था ॥२६-२८॥

पूर्वदेशे महाराज विजयो नाम भूपति. ।
वाजिवारणरत्नाना यस्य सख्या न विद्यते ॥२९
अष्टौ पुत्रा महेष्वासा महाराजस्य धीमत. ।
तेषा स्वसा भोगवती साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा ॥
तव पुत्रस्य योग्या सा भार्या राजन्मयोदिता ॥३०
वृद्धामात्यवच श्रुत्वा राजा त प्रत्यभाषत ॥३१
सुता तस्य कथ मेऽस्य स्याद्वदस्व तद् ॥३२
लक्षितोऽसि महाराज यदो मनसि वर्तते ।
यच्छूरसेन कृत्य स्यादनुजानीहि मा तत ॥३३
वृद्धामात्यवच श्रुत्वा भूषणाच्छादनोक्तिभि ।
सपूज्य प्रेषयामास महत्या सेनया सह ॥३४
स पूर्वदेशमागत्य महाराज समेत्य च ।
सपूज्य विविधैर्वाक्यैरुपायैर्नीतिसभवै ॥३५

अमात्य ने कहा—पूर्वदेश में हे महाराज ! एक विजय नामधारी भूपति है जिसके पास इतने अश्व हाथी और रत्नों का समुदाय है कि जिनकी सख्या ही नहीं की जा सकती है ॥२९॥ उस राजा के आठ तो पुत्र हैं जो बड़े भारी धनुर्धारी हैं उस महान् धीमान् महाराज के ये सभी पुत्र बड़े बलवान् हैं। उन सब भाइयों की एक भोगवती बहिन हैं और वह साक्षात् दूसरी लक्ष्मी के ही समान है। हे राजन् ! वह आपके पुत्र की भार्या होने के योग्य है। हे राजन् ! मैंने आपको यह बतला दिया है ॥३०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस अपने वृद्ध मन्त्री के इस

वचन को सुनकर राजा ने उससे कहा था ॥३१॥ राजा ने कहा—उस राज की पुत्री मेरे पुत्र की भार्या कैसे होगी—यह मुझे बतलाइए ॥३२॥ उस वृद्ध मन्त्री ने कहा—हे महाराज ! जो आपके मन में वर्त्तमान है उसको मैं ने जान लिया है। हे शूरसेन ! मेरा जो भी कर्तव्य हो उसके लिये मुझे आप आज्ञा प्रदान कीजिए ॥३३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस राजा ने अपने वृद्ध मन्त्री का निवेदन सुनकर उसका भूषण-वस्त्र और मनोज्ञ मधुर वचनों के द्वारा बड़ा सत्कार करके उसको बड़ी भारी सेना के साथ वहाँ पर भेज दिया था ॥३४॥ वह मन्त्री पूर्व देश में आ गया और महाराज के समीप में पहुँच गया था। उस मन्त्री ने अनेक वचनों के द्वारा तथा नीतियुक्त उपायों के द्वारा राजा का अभ्यर्चन एवं सत्कार समादर किया था ॥३५॥

महाराजसुतायाश्च भोगवत्या महामतिः ।
शूरसेनस्य नृपतेः सूनोर्नागस्यधीमतः ॥३६
विवाहायाकरोत्संधिं मिथ्यामिथ्यावचोक्तिभिः ।
पूजयामास नृपतिं भूषणाच्छादनादिभिः ॥३७
अवाप्य पूजां नृपतिर्ददामीत्यब्रवदत्तदा ।
तत आगत्य राज्ञेऽसौ वृद्धामात्यो महामतिः ॥३८
शूरसेनाय तद्वृत्त वैवाहिकमवेदयत् ।
ततो बहुतिथे काले वृद्धामात्यो महामतिः ॥३९
पुनर्बलेन महता वस्त्रालंकारभूषितः ।
जगाम तरसा सर्वैरन्यैश्च सचिवैर्वृतः ॥४०
विवाहाय महामात्यो महाराजाय बुद्धिमान् ।
सर्वं प्रोवाच वृद्धोऽसावमात्यः सचिवैर्वृतः ॥४१

फिर उस महान् मतिमान मन्त्री ने राजा की पुत्री भोगवती का राजा शूरसेन के पुत्र परम बुद्धिमान नाग के साथ विवाह कर देने के लिये मिथ्या और सत्य वचनों की उक्तियों के द्वारा राजा से समझौता कर लिया था। उस राजा का भूषणाच्छादनों के द्वारा बड़ाभारी सत्कार किया था। वह राजा भी उस मन्त्री के द्वारा किये गये सत्कार को प्राप्त कर

उस मन्त्री से उस समय में यही बोला था कि मैं अपनी पुत्री को दे दूगा। फिर इसके अनन्तर उस महान् मतिमान वृद्ध मन्त्री ने अपने स्वामी राजा से यहा आकर शूरसेन के लिये वह विवाह सम्बन्धी सब समाचार निवेदन कर दिया था। फिर बहुत अधिक समय व्यतीत हो जाने पर वही वृद्ध अमात्य वहा पर गमन करने को समुद्यत हो गया था ॥३८-३९॥ फिर वह पहली सेना के बल के साथ सज्जित होकर तथा वस्त्र अलङ्कारो से विभूषित होकर अन्य सभी मन्त्रियों को साथ में लेकर बड़ी शीघ्रता से वहाँ गया था ॥४०॥ उस परम बुद्धिमान महामात्य ने विवाह कर देने के लिये महाराज से सभी कुछ निवेदन कर दिया। यह महामात्य वृद्ध था और अन्य सचिवो से भी समावृत था ॥४१॥

अत्राऽऽगन्तु न चाऽऽया(चेच्छ)ति शूरसेनस्य भूपते.।
पुत्रो नाग इति ख्यातो बुद्धिमान्गुणसागरः ॥४२
क्षत्रियाणा विवाहाश्च भवेयुर्बहुधा नृप।
तस्माच्छस्त्रैरलकारैर्विवाह स्यान्महामते ॥४३
क्षत्रिया ब्राह्मणाश्चैव सत्या वाच वदन्ति हि।
तस्माच्छस्त्रैरलकारैर्विवाहस्त्वनुमन्यताम् ॥४४
वृद्धामात्यवच श्रुत्वा विजयो राजसत्तमः।
मेने वाच तथा सत्यममात्य भूपति तदा ॥४५
विवाहमकरोद्राजा भोगवत्या. सविस्तरम्।
शस्त्रेण च यथाशास्त्र प्रेषयामास ता पुनः ॥४६
स्वानमात्यास्तथा गाश्च हिरण्यतुरगादिकम्।
बहु दत्त्वाऽस्य विजयो हर्षेण महता युत. ॥४७
तामादायाथ सचिवा वृद्धामात्यपुरोगमा.।
प्रतिष्ठानमथाभ्येत्य शूरसेनाय ता स्नुषाम् ॥४८
न्यवेदयस्तथोचुस्ते विजयस्य वचो बहु।
भूषणानि विचित्राणि दास्यो वस्त्रादिक च यत् ॥४९

उस वृद्ध अमात्य ने कहा—भूपति शूरसेन का पुत्र नाग नाम से विख्यात है और महान बुद्धिमान तथा गुणा का सागर है वह स्वय यहा

पर आना ही नहीं चाहता है। हे नृप ! प्रायः क्षत्रियों के विवाह इस प्रकार से हुआ भी करते हैं। अतएव हे महामते ! वस्त्रों के तथा अलङ्कारों के साथ विवाह हो सकता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय सदा सत्य वाणी ही बोला करते हैं इसी कारण से वस्त्रों तथा उनके अलङ्कारों के साथ विवाह कर देने की आप अनुमति प्रदान कर दीजिए ।। ४२-४४।। श्री ब्रह्माजी ने कहा— राजाओं में श्रेष्ठ विजय ने उस वृद्ध मन्त्री के वचन का श्रवण कर उसने उस वचन को उस समय में सत्य मान लिया था क्यों कि राजा और अमात्य दोनों ही सत्य थे ।।४५।। राजा ने उस अपनी प्रिय पुत्री भोगवती का विस्तार पूर्वक शास्त्र के साथ विवाह कर दिया था और शास्त्र में लिखत विधान के ही अनुसार सब कृत्य सम्पन्न करके उस पुत्री को भेज भी दिया अर्थात् अपने गृह से विदा कर दिया था ।।४६।। उस राजा विजय ने बहुत हर्ष के साथ संयुक्त होकर अपने अमात्यों को उसके साथ में भेजा था और बहुत-सा सुवर्ण घोड़े गौएँ आदि का दहेज दिया था ।।४७।। वृद्ध अमात्य जिनमें प्रमुख था वे सब सचिव उस भोगवती कोलेकर उस प्रतिष्ठान में समागत हुए थे तथा राजा शूरसेन को उस स्नुषा (पुत्र वधू) को निवेदित कर दिया। उन्होंने राजा विजय के बहुत से वचन भी उन्होने कहे थे। राजा विजय के प्रेषित किये हुये अमात्मों ने जो कुछ भी विचित्र भूषण-दासियाँ और वस्त्र आदिक दिया था वे सभी राजा शूरसेन को समर्पित कर कृत कृत्य हो गये थे ।।४८-४९।।

निवेद्य शूरसेनाय कृतकृत्या बभूविरे ।
विजयस्य तु येऽमात्या भोगवत्या सहाऽऽगताः ।।५०
तान्पूजयित्वा राजाऽसौ बहुमानपुरःसरम् ।
विजयाय यथा प्रीतिस्तथा कृत्वा व्यसर्जयत् ।।५१
विजयस्य सुता बाला रूपयौवनशालिनी ।
श्वश्रूश्वशुरयोर्नित्यं शुश्रूषन्ती सुमध्यमा ।।५२
भोगवत्याश्च यो भर्ता महासर्पोऽतिभीषणः ।
एकान्तदेशे विजने गृहे रत्नसुशोभिते ।।५३

सुगन्धकुसुमाकीर्णे तत्राऽऽन्ते सुखशीतले ।
स सर्पो मातरं प्राह पितरं च पुनः पुनः ॥५४
मम भार्या राजपुत्री किं मां नैवोपसर्पति ।
तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा सर्पमातेत्मब्रवीत् ॥५५

राजा विजय ने जो अमात्य (मन्त्रीगण) उस भोगवती के साथ में समागत हुए थे। राजा शूरसेन ने उसका बहुत स्वागत-सत्कार किया था और प्रीति पूर्वक बड़े समादर के साथ उनको राजा विजय के समीप मे विदा करके भेज दिया था ॥५०-५१॥ राजा विजय की पुत्री बाला थी और रूप एवं यौवन से सुसम्पन्न थी। वह सुमध्यमा अर्थात् सुन्दर मध्य भाग वाली नित्य ही अपने सास श्वशुर की शुश्रषा किया करती थी ॥५२॥ भोगवती का जो भर्ता था वह महान भीषण सर्प था वह किसी एकान्त देश मे जहा पर कोई भी मनुष्य नहीं रहा करता था रत्नों से सुशोभित सुगन्धित कुसमों मे समाकीर्ण-सुखशीतल छाह मे रहा करता था। उस सर्प ने अपनी माता से तथा पिता से बारम्बार कहा था कि वह राजा की पुत्री मेरी भार्या क्या मेरे समीप मे नहीं आयेगी ? उस अपने पुत्र के वचन को सुनकर सर्प की माता ने दासी से यह वचन कहा था ॥५३-५५॥

धात्रिके गच्छ सुभगे शीघ्रं भोगवतीं वद ।
तव भर्ता सर्प इति ततः सा किं वदिष्यति ॥५६
धात्रिका च तथेत्युक्त्वा गत्वा भोगवतीं तदा ।
रहोगता उवाचेदं विनीतवदपूर्ववत् ॥५७
जानेऽहं सुभगे भद्रे भर्तारं तव दैवतम् ।
न चाऽऽख्येयं त्वया क्वापि सर्पो न पुरुषो ध्रुवम् ॥५८
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भोगवत्यब्रवीदिदम् ॥५९
मानुषीणां मनुष्यो हि भर्ता सामान्यतो भवेद् ।
किं पुनर्देवजातिस्तु भर्ता पुण्येन लभ्यते ॥६०
भोगवत्यास्तु तद्वाक्यं सा च सर्वं न्यवेदयत् ।
सर्पाय सर्पमात्रे च राज्ञे चैव यथाक्रमम् ॥६१

रुरोद राजा तद्वाक्यात्स्मृत्वा तां कर्मणो गतिम् ।
भोगवत्यपि तां प्राह उक्तपूर्वां पुनः सखीम् ॥६२
कान्तं दर्शय भद्रं ते वृथा याति वयो मम ॥६३

राज पत्नी ने कहा—हे धात्रिके ! हे सुभगे ! तुम शीघ्र जाकर भोगवती से कह दो कि तुम्हारा स्वामी सर्प है और यह देखो कि वह इस वचन को सुनकर क्या कहेगी ॥५६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस धात्री ने ऐसा ही करती हूँ—यह कह कर उसी समय भोगवती से एकान्त देखकर अपूर्व जैसे विनय पूर्वक यह वचन कहे थे ॥५७॥ धात्रिका ने कहा— हे सुभगे ! हे भद्रे ! मैं तो आपके स्वामी को एक देवता ही समझती हूँ । किन्तु आपको यह कहीं पर भी कभी नहीं कहना चाहिए अर्थात् इसको परम गुप्त ही रखना कि वह सर्प ही है और निश्चित रूप से पुरुष नहीं है ॥५८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस धात्री के ये वचन श्रवण कर उस भोगवती ने यह वचन उत्तर में कहा था । 'भोगवती बोली—मानुषी स्त्रियों का साधारणतया भर्त्ता मनुष्य ही हुआ करता है यदि कोई देव जाति का स्वामी है तो फिर क्या कहने की बात है । ऐसा स्वामी तो बहुत अधिक पुण्य से ही प्राप्त हुआ करता है ॥५९-६०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— भोगवती के द्वारा कथित इस वाक्य को उस धात्री ने आकर ज्यों का त्यों सब सर्प से-सर्प की माता से और राजा से यथा क्रम कह दिया था ॥६१॥ राजा ने जब उसका वचन सुना तो वह रुदन करने लगे थे और उन्होंने कर्मों की उस अद्भुत गति का स्मरण किया था कि यह क्या मेरे भाग्य में बदा था । भोगवती ने भी पुनः उसी पहिले आकर कहने वाली सखी को बुलाकर फिर उससे कहा था ॥६२॥ भोगवती ने कहा— हे भद्रे ! मेरे कान्त का दर्शन तो मुझे करा दो, आपका भला होगा, मेरा यह यौवन व्यर्थ ही व्यतीत हो रहा है ॥६३॥

ततः सा दर्शयामास सर्पं तमतिभीषणम् ।
सुगन्धकुसुमाकीर्णे शयने सा रहोगता ॥६४
तं दृष्ट्वा भीषणं सर्पं भर्तारं रत्नभूषितम् ।
कृताञ्जलिपुटा वाक्यमवदत्कान्तमञ्जसा ॥६५

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि यस्या मे दैवत पतिः ॥६६
इत्युक्त्वा शयने स्थित्वा त सर्प सर्पभावनैः।
खेलयामास तन्वङ्गी गीतैश्चाङ्गसगमैः ॥६७
सुगन्धकुसुमैः पानैस्तोषयामास त पतिम् ।
तस्याश्चैव प्रसादेन सर्पस्याभूत्स्मृतिर्मुने ॥
स्मृत्वा सर्वं दैवकृत रात्रौ सर्पोऽब्रवीत्प्रियाम् ॥६८
राजकन्याऽपि मा दृष्ट्वा न भीताऽसि कथ प्रिये।
सोवाच दैवविहित कोऽतिक्रमितुमीश्वर ॥
पतिरेव गतिः स्त्रीणा सर्वदैव विशेषतः ॥६९
श्रुत्वेति हृष्टस्तामाह नाग प्रहसिताननः ॥७०

श्री ब्रह्माजी ने कहा— इसके अनन्तर उस धात्री ने उस अत्यन्त भीषण सर्प को उसे दिखा दिया था। वह भोगवती उस परम सुगन्धित पुष्पो से समाकीर्ण गृह मे शय्या पर एकान्त मे गयी थी ॥६४॥ उस भोगवती ने अपने भर्त्ता को देखा जो कि रत्नो से भूषित एक महान् भीषण सर्प था। उस भोगवती ने अपने दोनो हाथो को जोडकर तुरन्त ही अपने कान्त से यह वाक्य कहा था ॥६५॥ भोगवती ने कहा—मैं परम धन्य एव अनुग्रहीत हूँ कि जिस मेरा देवता है ॥६६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— इतना कहकर वह शय्या पर बैठ गयी थी और उस तन्वगी ने सर्प की भावना से उस सर्प को गीतो के द्वारा एव अङ्गो के सगमो के द्वारा खिलाया था ॥६७॥ सुगन्धित पुष्पो से-पानो से उस अपने पति को परम सन्तुष्ट किया था। हे मुने! उसके ही प्रसाद एव सानन्द सगम से उस सर्प को स्मृति उत्पन्न हो गयी थी। उस सर्प ने सब दैव के द्वारा किये हुए का स्मरण करके रात्रि मे अपनी प्रिया से कहा था ॥६८॥ सर्प ने कहा— हे प्रिये! आप तो राजा की कन्या है फिर भी आप मुझे देखकर भयभीत क्यो नहीं हुई? उस भोगवती ने कहा कि जो दैव के द्वारा विहित है उसका अतिक्रमण करने मे कौन समर्थ हो सकता है? स्त्रियो का जो सर्वदा एक पति ही गति हुआ करता है और वह ही उसका विशेष रूप से उद्धारक है ॥६९॥ श्री ब्रह्माजी ने नारद से कहा—

यह श्रवण करके वह नाग बहुत ही हर्षित हुआ था और प्रहसित मुख वाले ने उससे कहा ॥७०॥

तुष्टोऽस्मि तव भक्त्याऽहं किं ददामि तवेप्सितम् ।
तव प्रसादाच्चार्वङ्गि सर्वस्मृतिरभूदियम् ॥७१
शप्तोऽहं देवदेवेन कुपितेन पिनाकिना ।
महेश्वरकरे नागः शेषपुत्रो महाबलः ॥७२
सोऽहं पतिस्त्वं च भार्या नाम्ना भोगवती पुरा ।
उमावाक्याज्जहासोच्चैः शंभुः प्रीतो रहोगतः ॥७३
ममापि चाऽऽगतं भद्रे हास्यं तद्देवसंनिधौ ।
ततस्तु कुपितः शंभुः प्रादाच्छापं ममेदृशम् ॥७४
मनुष्ययोनौ त्वं सर्पो भविता ज्ञानवानिति ॥७५
ततः प्रसादितः शंभुस्त्वया भद्रे मया सह ।
ततश्चोक्तं तेन भद्रे गौतम्यां मम पूजनम् ॥७६
कुर्वतो ज्ञानमाधास्ये यदा सर्पाकृतेस्तव ।
तदा विशापो भविता भोगवत्याः प्रसादतः ॥७७

सर्प ने कहा—मैं तुम्हारी भक्ति की भावना से परम सन्तुष्ट हो गया हूं । बतलाओ, तुम्हारा मनो अभीप्सित तुमको मैं क्या दूँ ? हे सुन्दर अङ्गों वाली प्रिये ! तुम्हारे ही प्रसाद से मुझे यह सम्पूर्ण स्मृति जागृत हो आई है ॥७१॥ परम कुपित देवों के भी देव श्री शिव ने मुझे शाप दे दिया था । मैं शेष का पुत्र महान् बलवान् नाग महेश्वर प्रभु के कर में रहा करता था ॥७२॥ वही मैं अब तुम्हारा पति हूं और तुम पहिले मेरी भोगवती नाम वाली भार्या हो । भगवान् शम्भु एकान्त में स्थित होकर परम प्रसन्न होते हुए उमादेवी के वाक्य से ऊँचे स्वर से हँस उठे थे ॥७३॥ उस समय में हे भद्रे ! उन देव की सन्निधि में मुझ को भी हँसी आगई थी । तब तो भगवान् शम्भु मुझ पर परम क्रोधित हो गये थे और उन्होंने मुझ को इस प्रकार से शाप दे दिया था ॥७४॥ भगवान् शिव ने कहा था—तू मनुष्य की योनि में सर्प होगा किन्तु ज्ञानवान् रहेगा ॥७५॥ सर्प ने कहा—उस समय में

हे भद्रे ! मेरे साथ मे ही तुमने भगवान् शम्भु को प्रसन्न किया था। हे भद्रे ! तब उन्होने कहा था कि गौतमी गङ्गा में मेरा पूजन करने पर ज्ञान को प्राप्त करेगा। जब तेरी सर्पाकृति अर्थात् सर्प के समान आकृति होगी। वह उस समय मे भोगवती के प्रसाद से ही शाप रहित होगा ।।७७।।

तस्मादिद ममाऽऽपन्न तव चापि शुभानने ।
तस्मान्नीत्वा गौतमी मा पूजा कुरु मया सह ।।७८
ततो विशापो भविता आवा याव. शिव पुनः ।
सर्वेषा सर्वदाऽऽर्तानां शिव एव परा गति. ।।७९
तच्छ्रुत्वा भर्तृवचन सा भर्त्रा गौतमी ययौ ।
ततः स्नात्वा तु गौतम्या पूजा चक्रे शिवस्य तु ।।८०
तत. प्रसन्नो भगवान्दिव्यरूप ददौ मुने ।
आपृच्छ्य पितरौ सर्पो भार्यया गन्तुमुद्यतः ।।
शिवलोक ततो ज्ञात्वा पिता प्राह महामति. ।।८१
युवराज्यधरो ज्येष्ठः पुत्र एको भवानिति ।
तस्माद्राज्यमशेषेण कृत्वोत्पाद्य सुतान्बहून् ।।
याते मयि पर धाम ततो याहि शिव पुरम् ।।८२
एतच्छ्रुत्वा पितृवचस्तथेत्याह स नागराट् ।
कामरूपमवाप्याथ भार्यया सह सुव्रतः ।।८३
पित्रा मात्रा तथा पुत्रै राज्य कृत्वा सुविस्तरम् ।
याते पितरि स्वर्लोक पुत्रान्स्थाप्य स्वके पदे ।।८४
भार्यामात्यादिसहितस्ततः शिवपुर ययौ ।
तत प्रभृति तत्तीर्थं नागतीर्थमिति श्रुतम् ।।८५
यत्र नागेश्वरो देवो भोगवत्या प्रतिष्ठित. ।
यत्र स्नान च दान च सर्वक्रतुफलप्रदम् ।।८६

हे शुभानने इसी कारण से मुझे यह सब प्राप्त हुआ है और तुम को भी ऐसा ही हुआ है। अतएव अब मुझको गौतमी पर ले जाकर

मेरे ही साथ तुम भी पूजा करो। अब, मैं शाप से रहित हो जाऊँगा और फिर हम दोनों पुनः भगवान् शिव के समीप में चलेंगे। सभी परमाधिक आर्त्तों का एक मात्र शिव ही परम गति होते हैं ॥७८-७९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस भोगवती ने अपने स्वामी के उन वचनों का श्रवण करके वह भर्त्ता के साथ गौतमी पर चली गयी थी। फिर वहीं पर गौतमी में स्नान करके भगवान् शिव की पूजा की थी ॥८०॥ हे मुने ! इसके उपरान्त भगवान् शम्भु प्रसन्न होगये थे और उन्होंने उसको परम दिव्य स्वरूप प्रदान कर दिया था। इसके पश्चात् वह सर्प माता-पिता से पूछ कर अपनी भार्या के साथ ही गमन करने के लिये उद्यत हो गया था। उसको शिव लोक में जाने की बात जान कर महामति पिता ने उससे कहा था। पिता ने कहा—आप तो युवराज को धारण करने वाले मेरे एक ही ज्येष्ठ पुत्र हो। इस कारण से पूर्ण रूप से राज्य के शासन का सुख भोग कर तथा अपने बहुत से पुत्रों को समुत्पादित करके मेरे गमन कर जाने पर फिर पीछे ही शिवलोक को गमन करना ॥८१-८२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने पिताजी के इस आदेश वचन का श्रवण करके उस नागराज ने 'ऐसा ही करूँगा'—यह कहा था। उस सुव्रत ने अपनी भार्या के साथ काम रूप प्राप्त करके अपने पिता-माता और पुत्रों के साथ सुविस्तृत राज्य का सुखोप भोग करके जब पिताजी स्वर्गलोक वासी हो गये थे तब अपने पुत्रों को अपने पद पर संस्थापित करके फिर वह भाया और अमात्यादि के साथ शिव पुर में गमन कर गया था। तभी से लेकर वह तीर्थ नागतीर्थ नाम से लोक में प्रख्यात हो गया था ॥८३-८४॥ जहाँ पर नागेश्वर देव भोगवती के साथ प्रतिष्ठित हैं वहाँ पर स्नान करने, दान-करने से समस्त ऋतुओं के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त हो जाता है ॥८५-८६॥

—:※:—

मातृतीर्थवर्णन

मातृतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धि कर नृणाम् ।
आधिभिर्मुच्यते जन्तुस्तत्तीर्थस्मरणादपि ॥१
देवानामसुराणा च सगरोऽभूत्सुदारुण ।
नाशक्नुवस्तदा जेतु देवा दानवसगरम् ॥२
तदाऽहमगम देवैस्तिष्ठन्त शूलपाणिनम् ।
अस्तव विविधैर्वाक्यैः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥३
समन्त्र्य देवैरसुरैश्च सर्वै-
यदाऽऽहृत समथितु समुद्रम् ।
यत्कालकूट समभून्महेश,
तत्त्वा विना को ग्रसितु समर्थः ॥४
पुष्पप्रहारेण जगन्त्रय य,
स्वाधीनमापादयितु समर्थ ।
मारी हरेऽप्यन्यसुरादिवन्द्यो,
वितायमानो विलय प्रयातः ॥५
विमथ्य वारीशमनङ्गशनो,
यदुत्तम तत्तु दिवौकसेभ्यः ।
दत्त्वा विष सहरन्नीलकण्ठ,
को वा धनु त्वामृते वै समर्थः ॥६
दास्येऽह यदभीष्ट वो ब्रुवन्तु सुरसत्तमा ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक मातृ तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है जो कि मनुष्यों की सम्पूर्ण सिद्धियों के कर देने वाला है। उस तीर्थ की ऐसी अद्भुत महिमा है कि मनुष्य उस तीर्थ के केवल स्मरण से ही सब मानसिक व्यथाओं से छुटकारा पा जाया करता है ॥१॥ एक बार देवों का और असुरों का परम दारुण युद्ध हुआ था। उस समय में देवगण उन दानवों के महान् भीषण युद्ध को जीतने मे असमर्थ हो गये थे ॥२॥

उस समय में देवों के साथ मैं वहाँ पर स्थित भगवान् शूलपाणि के समीप में गया था। अपनी अञ्जलि के पुर को बाँध करके धीरे से मैंने अनेक वाक्यों के द्वारा स्तवन किया था ॥३॥ हे महेश ! समस्त देवों और असुरों ने आपस में भली-भाँति मन्त्रणा करके जिस समय में समुद्र के मन्थन करने आरम्भ किया था और जो कालकूट महाविष उससे समुत्पन्न हुआ था उसको आपके बिना ग्रसित करने में समर्थ था ? अर्थात् आपको छोड़ कर अन्य किसी में भी ग्रसने की सामर्थ्य नहीं थी ॥४॥ जो केवल पुष्पों के प्रहार के द्वारा ही तीनों लोकों को अपने अधीन कर लेने की अद्भुत शक्ति रखता है वह कामदेव दूसरे सुरों के द्वारा वन्दित होकर जब भगवान् हर के विषय में वितायमान हुआ था तो उसी क्षण में वहीं पर विलय को प्राप्त हो गया था अर्थात् भस्मीभूत होकर अपने स्वरूप को ही खो बैठा था ॥५॥ हे कामदेव के संहार करने वाले प्रभो ! समुद्र का मन्थन करके जो सर्वोत्तम पदार्थ अमृत था उसको देवगणों को देकर हे नील कण्ठ ! महाविष का संहार करते हुए कण्ठ में उसको धारण करने में आपके सिवाय अन्य कौन समर्थ था अर्थात् कोई भी अन्य ऐसी शक्ति रखने वाला नहीं था ॥६॥ इस रीति से स्तुति किये जाने पर आदिकर्त्ता भगवान् तीन नेत्रधारी शम्भु सन्तुष्ट हो गये थे ॥७॥

दास्येऽहं यदभीष्टं वो ब्रुवन्तु सुरसत्तमाः ॥८

दानवेभ्यो भयं घोरं तत्रैहि वृषभध्वज ।
जहि शत्रून्सुरान्पाहि नाथवन्तस्त्वया प्रभो ॥९

निष्कारणः सुहृच्छंभो नाभविष्यद्भवान्यदि ।
तदाऽकरिष्यन्किमिव दुःखार्ताः सर्वदेहिनः ॥१०

इत्युक्तस्तत्क्षणात्प्रायाद्यत्र ते देवशत्रवः ।
तत्र तद्युद्धमभवच्छंकरेण सुरद्विषाम् ॥११

ततस्त्रिलोचनः श्रान्तस्तमोरूपधरः शिवः ।
ललाटाद्व्यपतंस्तस्य युध्यतः स्वेदबिन्दवः ॥१२

स संहरन्दैत्यगणास्तामसी मूर्तिमाश्रित. ।
ता मूर्तिमसुरा दृष्ट्वा मेरुपृष्ठाद्भुव ययुः ॥१३
स संहरन्सर्वदैत्यास्तदाऽगच्छद्भुव हरः ।
इतश्चेतश्च भीतास्तेऽधावन्सर्वां महीमिमाम् ॥१४

भगवान् शङ्कर ने कहा—हे सुरश्रेष्ठो मैं परम प्रसन्न हूं और आपका जो भी कुछ मन का अभीप्सित होगा उसे ही मैं दे दूंगा, आप बोलो क्या चाहते हो ! ॥८॥ देवो ने कहा था—हे देवेश्वर ! देवो का इस समय मे दानवो से महान् भय उपस्थित हो गया है सो हे वृषभ-ध्वज ! आप वहाँ पर आइये । हे प्रभो ! हमारे उन शत्रुओ का सहार कीजिए और देवो की रक्षा करिए । आप ही के द्वारा हम नाथ वाले हैं अर्थात् आप के अतिरिक्त अन्य हमारा कोई भी नाथ नहीं है ॥९॥ हे शम्भो ! यदि बिना ही किसी कारण के आप सुहृद न होते तो ये सब देहधारी दुःख से आर्त्त होकर क्या उस समय मे करते ? ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इतना निवेदन करने पर तुरन्त ही शकर भगवान् वहाँ पर समागत हो गये थे जहाँ देवो के शत्रु दानव विद्यमान थे और फिर वहा पर सुरो के शत्रु दानवो का शकर के साथ महान् घोर युद्ध हुआ था ॥११॥ तब तो भगवान् त्रिलोचन श्रान्त (थके हुए) हो गये थे जो कि तम स्वरूप धारी थे । उस समय मे युद्ध करते हुए उनके ललाट से स्वेद (पसीना) की बिन्दु नीचे गिर रहे थे ॥१२॥ उस समय में दैत्यगणो का सहार करते हुए शिव ने तामसी मूर्ति को धारण कर लिया था । उस तामसी मूर्ति को देख करके असुरगण मेरुपर्वत के पृष्ठ भाग से भूलोक को चले गये थे ॥१३॥ उस समय मे भगवान् हर दैत्यो का सहार करते हुए भूलोक मे आगये थे । तब वे असुर इधर-उधर भयभीत होकर इस सम्पूर्ण भूमि पर दौड लगाने लगे थे ॥१४॥

तथव कोपाद्रुद्रोऽपि शत्रूंस्ताननुधावति ।
तथैव युध्यत. शभो. पतिता. स्वेदबिन्दवः ॥१५
यत्र यत्र भुव प्राप्तो बिन्दुर्महेश्वरो मुने ।
तत्र तत्र शिवाकारा मातरो जज्ञिरे ततः ॥१६

प्रोचुर्महेश्वरं सर्वाः खादामस्त्वसुरानिति ।
ततः प्रोवाच भगवान्सर्वैः सुरगणैर्वृतः ॥१७
स्वर्गाद्भुवमनुप्राप्ता राक्षसास्ते रसातलम् ।
अनुप्राप्तास्ततः सर्वाः शृण्वन्तु मम भाषितम् ॥१८
यत्र यत्र द्विषो यान्ति तत्र गच्छन्तु मातरः ।
रसातलमनुप्राप्ता इदानीं मद्भयाद्द्विषः ।
भवत्योऽप्यनुगच्छन्तु रसातलमनु द्विषः ॥१९
ताश्च जग्मुर्भुवं भित्वा यत्र ते दैत्यदानवाः ।
तान्हत्वा मातरः सर्वान्देवारीनतिभीषणान् ॥२०
पुनर्देवानुपाजग्मुः पथा तेनैव मातरः ।
गताश्च मातरो यावद्यावच्च पुनरागताः ॥२१

उसी समय में भगवान् रुद्र देव भी क्रोध से उन शत्रुओं के पीछे२ ही दौड़ रहे थे। उसी भाँति से युद्ध करते हुए शम्भु के पसीने की बूँदें गिरी थीं ॥१५॥ हे मुनि नारद ! जहां-जहाँ पर महेश्वर की पसीने की विन्दु इस भूमि पर गिरी थीं वहीं-वहीं पर शिव के ही आकार वाली मातृगण समुत्पन्न हो गयी थीं ॥१६॥ उन सबने भगवान् महेश्वर से प्रार्थना की थी कि हम इन सब असुरों को भक्षित कर लेवें तब तो सुरगणों से समावृत शम्भु ने कहा था। भगवान् शिव बोले—स्वर्ग से तो ये सब राक्षस भाग कर इस भूमिमण्डल पर आगये हैं और यहाँ से भी वे सब रसातल को अनुप्राप्त होरहे हैं अतएव तुम सब मेरा कथन सुनो ॥१७-१८॥ जहाँ जहाँ पर ये दुष्ट शत्रु गमन करें वहीं पर तुम सब माताओं का समुदाय भी गमन करे। इस समय में मेरे भय से ये शत्रु रसातल को अनुप्राप्त हो गये हैं सो आप सब भी इन शत्रुओं के पीछे२ ही रसातल में अनुगमन करो ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा— वे सब माताएं इस भू का भेदन करके जहाँ पर दैत्य दानव थे वहां पर पहुँच गयी थीं और उन समस्त देवों के महान् भीषण शत्रुओं का उनने हनन कर दिया था ॥२०॥ फिर उसी मार्ग से जिसके द्वारा उन्होंने

गमन किया था वे सब माताऐं जितनी भी थी देवो के समीप मे पुनः समागत हो गयी थी ॥२१॥

तावद्देवा स्थिता आसन्गौतमीतीरमाश्रिता. ।
प्रस्थानात्तत्र मातृणा सुराणा च प्रतिष्ठिते. ॥२२
प्रतिष्ठान तु माक्षेत्र पुण्य विजयवर्धनम् ।
मातृणा यत्र चोत्पत्तिर्मातृतीर्थं पृथक्पृथक् ॥२३
तत्र तत्र बिलान्यासन्रसातलगतानि च ।
सुरास्ताभ्या वरान्प्रोचुर्लोके पूजा यथा शिवः ॥२४
प्राप्नोति तद्वन्मातृभ्य पूजा भवतु सर्वदा ।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधुर्देवा आसस्तत्रैव मातर ॥२५
यत्र यत्र स्थिता देव्यो मातृतीर्थं ततो विदु ।
सुराणामपि सेव्यानि किं पुनर्मानुषादिभि ॥२६
तेषु स्नानमथो दान पितृणा चैव तर्पणम् ।
सर्व तदक्षय ज्ञेय शिवस्य वचन यथा ॥ ७
यस्त्विद शृणुयान्नित्य स्मरेदपि पठेत्तथा ।
आख्यान मातृतीर्थानामायुष्मान्स सुखी भवेत् ॥२८

उस समय तक वे सब देवता गौतमी के तट का आश्रय ग्रहण करके वही पर स्थित हो रहे थे । वहाँ पर मातृगण के प्रस्थान से और सुरों के प्रतिष्ठित होने से वह क्षेत्र परम पुण्यमय एव विजय को बढ़ाने वाला प्रतिष्ठान होगया था । जहाँ पर उन माताओ की उत्पत्ति हुई थी वह पृथक्२ मातृतीर्थ बनगया था और वही-वही पर रसातल को जाने वाले बिल भी थे । सुरगणो ने उन माताओ से वरदानो की याचना की थी कि जिस तरह से भगवान् शिव की पूजा होती है वैसे ही सर्वदा माताओ की पूजा हुआ करे । इतना निवेदन करके देवगण अन्तर्धान को प्राप्त होगये थे और वे माताऐं वही पर स्थित हो गयी थी ॥२२-२५॥ जहाँ जहाँ पर वे देवियाँ स्थित हुई थी उन स्थानो को मातृतीर्थ समझा जाता है । वे सभी क्षेत्र एव तीर्थ सुरो के भी परम सेव्य हैं फिर मनुष्यो के द्वारा सेव्य होने की तो बात ही क्या है ॥२६॥ उन तीर्थों मे स्नान

करना-दान देना और पितृगणों का तर्पण करना आदि जो भी सत्कर्म होता है वह अक्षय हो जाता है ऐसा भगवान् शिव का वचन है ॥२७॥ इस मातृतीर्थ की कथा का जो भी कोई श्रवण किया करता है तथा नित्य इसका पाठ करता है और स्मरण भी कर लेता है वह इस मातृतीर्थ के आख्यान के प्रभाव से परम आयुष्मान् और सुखी हो जाता है ॥२८॥

—:※:—
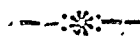
शेषतीर्थवर्णन

शेषतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदायकम् ।
तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यन्मया परिभाषितम् ॥१
शेषे नाम महानागो रसातलपतिः प्रभुः ।
सर्वनागैः परिवृतो रसातलमथाभ्यगात् ॥२
राक्षसा दैत्यदनुजाः प्रतिष्ठा ये रसातलम् ।
तैर्निरस्तो भोगिपतिर्मामुवाचाथ विह्वलः ॥३
रसातलं त्वया दत्तं राक्षसानां ममापि च ।
ते मे स्थानं न दास्यन्ति तस्मात्त्वां शरणं गतः ॥४
ततोऽहमब्रवं नागं गौमतीं याहि पन्नग ।
तत्र स्तुत्वा महादेवं लप्स्यसे त्वं मनोरथम् ॥५
नान्योऽस्ति लोकत्रितये मनोरथसमर्पकः ।
मद्वाक्यप्रेरितो नागो गङ्गामाप्लुत्य यत्नतः ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव त्रिदशेश्वरम् ॥६

श्री ब्रह्मा जी ने कहा—एक "शेष तीर्थ"—इस परम शुभ नाम से लोक में प्रख्यात है और वह तीर्थ समस्त कामनाओं के प्रदान कर देने वाला होता है। अब मैं उस तीर्थ के स्वरूप को बतलाता हूँ जो कि मैंने परिभाषित किया है ॥१॥ शेष नाम धारी एक महा नाग हैं जो रसातल लोक के स्वामी और वहाँ के प्रभु हैं। वह अन्य सभी नागों से सर्वदा

समावृत रहा करते हैं वह रसातल में ही गमन कर गया था ॥२॥ उस रसातल मे राक्षस-दैत्य और दनुज भी प्रविष्ट हो गये थे और उन्होंने उस शेष को वहाँ से निकाल दिया था तब वह बिचारा भोगियो के पतियों के सहित अत्यधिक विह्वल होकर मुझसे आकर बोला था ॥३॥ शेष ने कहा—हे भगवन् आपने मुझको निवास करने के लिये रसातल दिया था और राक्षसो को भी दिया था किन्तु वे मुझको वहाँ पर कोई भी स्थान नही देते है अतएव अब मैं आपकी शरण गति मे समागत हुआ हूँ ॥४॥ यह सुनकर मैंने उससे कहा था कि हे पन्नगे ! तुम गौतमी गङ्गा पर चले जाओ । वहाँ पर महादेव साक्षात् विराजमान हैं उनका स्तवन करने पर वे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण कर देंगे और तुम अपना अभीष्ट प्राप्त कर लोगे ॥५॥ तीनो लोकों मे अन्य कोई भी इस प्रकार से मनोवाञ्छित को प्रदान करने वाला नही है । मेरे वचनो से प्रेरणा प्राप्त करके वह नाग वहाँ पहुँच गया था और गौतमी गङ्गा मे स्नान करके यत्न पूर्वक हाथ जोड़कर उन देवेश्वर प्रभु की उसने स्तुति की थी ॥६॥

नमस्त्रलोक्यनाथाय दक्षयज्ञविभेदिने ।
आदिकर्त्रे नमस्तुभ्य नमस्त्रलोक्यरूपिणे ॥७
नम. सहस्रशिरसे नम. सहारकारणे ।
सोमसूर्याग्निरूपाय जलरूपाय ते नमः ॥८
सर्वदा सर्वरूपाय कालरूपाय ते नम ।
पाहि शङ्कर सर्वेश पाहि सोमेश सर्वग ॥
जगन्नाथ नमस्तुभ्य देहि मे मनसेप्सितम् ॥९
ततो महेश्वर. प्रीत. प्रादान्नागेप्सिताम्वरान् ।
विनाशाय सुरारीणा दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१०
शेषाय प्रददौ शूल जघानेनारिपुगवान् ।
तत प्रोक्त शिवेनासौ शेष. शूलेन भोगिभि. ॥११
रसातलमथो गत्वा निजघान रिपून्रणे ।
निहत्य नाग शूलेन दैत्यदानवराक्षसान् ॥१२

न्यवर्तत पुनर्देवो यत्र शेषेश्वरो हरः।
पथा येन समायातो देवं द्रष्टुं स नागराट् ॥१३
रसातलाद्यत्र देवो बिलं तत्र व्यजायत।
तस्माद्बिलतलाद्यातं गाङ्गं नार्यतिपुण्यदम् ॥१४

शेष ने प्रार्थना की–प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने वालेत्रैलोक्य के नाथ के चरण कमलो में मेरा नमस्कार समर्पित है। जो विश्व के आदि कर्त्ता हैं आपको मेरा नमस्कार है और आप त्रैलोक्य के स्वरूप वाले हैं आपको मेरा प्रणाम है ॥७॥ सहस्र शिरों वाले और जगत् के संहार करने वाले आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है। चन्द्र और सूर्य भी आपके ही स्वरूप हैं जो अग्नि का रूप है वह भी आपका स्वरूप है तथा जल के स्वरूप वाले भी आप ही हैं आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥८॥ सर्वदा आपका ही वह सत्र स्वरूप है तथा आप काल रूप भी हैं आपको मेरा नमस्कार है। हे सबके स्वामिन शंकर ! मेरी रक्षा करो हे सोम के ईश, ? आप सब मे रहने वाले तथा सर्वत्र गमन करने वाले हैं। आप मेरा परित्राण करिए। हे जगत् नाथ ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है। आप मेरे मन का अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करिए ॥९॥ ऐसा स्तवन शेष नाग ने किया था। श्री ब्रह्माजी ने कहा—तब तो भगवान् महेश्वर बहुत प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने नाग शेष के जो भी अभीप्सित वरदान थे वे सब उसको दे दिये थे। सुरों के शत्रु दैत्य-दानव और राक्षस थे उनके विनाश करने के लिये भगवान् शम्भु ने शेष को एक शूल प्रदान कर दिया था और यह कहा था कि इससे शत्रुओं का हनन करो। शिव के द्वारा इस रीति से कहे हुए शेष ने उस शूल को ग्रहण करके भोगियों के साथ वह रसातल को गया था और रण में उसने शत्रुओं का विनाश कर दिया था। उस नाग शेष ने शूल के द्वारा दैत्य-दानव और राक्षसों का निहनन करके वह फिर वापिस लौटकर आ गया था जहाँ पर शेषेश्वर दूर विराजमान थे। जिस मार्ग से वह नागों का राजा देवेश्वर का दर्शन करने के लिये रसातल से वहाँ पर समागत हुआ था वहां पर एक बिल बन गया था इसी बिल के तल से

अत्यन्त पुण्य के प्रदान करने वाला गङ्गा का जल वहा पर गया था ॥१०-१४॥

तद्वारि गङ्गामगमद्गङ्गाया. सगमस्तत ।
देवस्य पुरतश्चापि कुण्ड तत्र सुविस्तरम् ॥१५
नागस्तत्राकरोद्धोम यत्र चाग्नि. सदा स्थित. ।
सोष्ण तदभवद्वारि गङ्गायास्तत्र सगम. ॥१६
देवदेव समाराध्य नाग. प्रीतो महायशा ।
रसातल ततोऽभीष्ट शिवात्प्राप्य तल ययौ ॥१७
तत. प्रभृति तत्तीर्थं नागतीर्थमुदाहृतम् ।
सर्वकामप्रद पुण्य रोगदारिद्र्य्नाशनम् ॥१८
आयुर्लक्ष्मीकर पुण्य स्नानदानाच्च मुक्तिदम् ।
शृणुयाद्वा पठेद्भक्त्या यो वाऽपि स्मरते तु तत् ॥१९
तीर्थं शेषेश्वरो यत्र यत्र शक्तिप्रद शिव. ।
एकविंशतितीर्थानामुभयोस्तत्र तीरयो: ॥
शतानि मुनिशार्दूल सर्वसपत्प्रदायिनाम् ॥२०

वह जल गङ्गा मे गया था और फिर वहा पर गङ्गा का सङ्गम हुआ था तथा देवेश्वर के आगे वहाँ पर एक सुविस्तृत कुण्ड बन गया था ॥१५॥ नाग ने वहाँ पर होम किया था जहा पर अग्नि सदा ही स्थित रहता है। वह जल उष्ण हो गया था। वहा पर गङ्गा का सगम हुआ था ॥१६॥ वह महान् यश वाला परम प्रसन्न नाग दोनो के भी देव श्री शिव की समाराधना मे परायण हो गया था और आराधन करके शिव से अपने अभीष्ट आश्रय रसातल को चला गया था ॥१७॥ तभी से आरम्भ करके वह तीर्थ नाग तीर्थ नाम से कहा गया है। वह तीर्थ सब कामनाओं के प्रदान करने वाला परम पुण्य मय और रोगो तथा दरिद्रता के विनाश करने वाला है। ॥१८॥ आयु तथा लक्ष्मी के देने वाला-पुण्य स्वरूप और स्नान तथा दान करने से यह मोक्ष देने वाला होता है। जो इस नाग तीर्थ के आख्यान का पाठ करता है—श्रवण करता है अथवा स्मरण किया करता है तो भुक्ति-मुक्ति को प्राप्त करता है ॥१९॥ जहा

जहां पर वह तीर्थ है वहाँ पर शेषेश्वर शक्ति प्रद शिव विद्यमान रहते हैं। वहां पर दोनों तटों पर सब सम्पत्तियों के प्रदान करने वाले हे मुनि शार्दूल ! इक्कीस सौ तीर्थ हैं ॥२०॥

--:※:--

आत्मतीर्थवर्णन

आत्मतीर्थमिति ख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ।
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि यत्र ज्ञानेश्वरः शिवः ॥१

दत्त इत्यपि विख्यातः सोऽत्रिपुत्रो हरप्रियः ।
दुर्वाससः प्रियो भ्राता सर्वज्ञानविशारदः ॥
स गत्वा पितरं प्राह विनयेन प्रणम्य च ॥२
ब्रह्मज्ञानं कथं मे स्यात्कं पृच्छामि क यामि च ॥३

तच्छ्रुत्वाऽत्रिः पुत्रवाक्यं ध्यात्वा वचमतब्रवीत् ॥४
गौतमीं पुत्र गच्छ त्वं तत्र स्तुहि महेश्वरम् ।
स तु प्रीतो यदैव स्यात्तदा ज्ञानमवाप्स्यसि ॥५

तथेत्युक्त्वा तदाऽऽत्रेयो गङ्गां गत्वा शुचियतः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्त्या तुष्टाव शङ्करम् ॥६

संसारकूपे पतितोऽस्मि दैवा-
न्मोहेन गुप्तो भवदुःखपङ्के ।
अज्ञाननाम्ना तमसाऽऽवृतोऽहं,
परं न विन्दामि सुराधिनाथ ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा--एक तीर्थ आत्मतीर्थ शुभ नाम से लोक में प्रसिद्ध है जो मनुष्यों को सांसारिक समस्त उत्तमोतम सुखों का उपभोग और जीवन-मरण के आवागमन के भव बन्धन से छुटकारा दोनों के प्रदान करने वाला है। अब मैं उस महान् तीर्थ के प्रभाव का वर्णन

करता हूँ जहाँ पर ज्ञानेश्वर शिव विराजमान रहा करते हैं ।।१।। भगवान् शिव का परम प्रिय वह अत्रि मुनि का पुत्र दत्त इस नाम से भी प्रख्यात हुआ है । वह दुर्वासा मुनि का परमाधिक प्यारा भाई था और सभी प्रकार के ज्ञान का महान् मनीषी था । उसने अपने पिताजी की सेवा मे उपस्थित होकर विनय पूर्वक प्रणाम करके उनसे प्रार्थना की थी ।।२।। दत्त ने कहा—हे भगवन् ! मुझको ब्रह्म का ज्ञान किस प्रकार से हो सकता है ? इस विषय म मैं किस से पूछूँ और कहा पर गमन करूँ ? ।।३।। श्री ब्रह्माजी न कहा—अत्रि मुनि ने अपन पुत्र के इस वचन को सुन कर ध्यान किया और फिर यह वचन बोले ।।४।। अत्रि ने कहा—हे पुत्र ! तुम गौतमी गङ्गा के तट पर चले जाओ और वहाँ महेश्वर प्रभु विराजमान हैं उनका स्तवन करो । वह जिस समय में ही प्रसन्न हो जायग तभी तत्क्षण तुम ज्ञान प्राप्त कर लोग ।।५।। श्री ब्रह्माजी न कहा—ऐसा ही करूँगा—यह कहकर आत्रेयदत्त उसी समय में गङ्गा पर पहुच कर स्नान करके शुचि हो गया था और फिर अपनी अञ्जलियो के पुट को जोड कर परम भक्ति की भावना से भगवान् शकर का स्तवन किया था ।।६।। दत्त ने कहा—देवश से मैं इस ससार रूपी कूप म पडा हुआ हूँ—मोह से गुप्त हो रहा हूँ अर्थात् ससार रूपी दुःख के कीचड मे मोह के कारण छिपा जारहा हू । अज्ञान नामक तम से मैं घिरा हूआ हूँ अतएव हे सुराधिनाथ ! मैं परात्पर ब्रह्म की प्राप्ति नही कर रहा हूँ ।।७।।

भिनस्त्रिशूलेन वलीयसाऽहं,
पापेन चिन्ताक्षुरपाटितश्च ।
तप्तोऽस्मि पञ्चेन्द्रियतीव्रतापै.,
श्रान्तोऽस्मि संतारय सोमनाथ ।।८
वद्धोऽस्मि दारिद्र्यमयश्च वन्धै-
र्हतोऽस्मि रोगानलतीव्रतापै. ।
क्रान्तोऽस्म्यहं मृत्युभुजगमेन,
भीतो भृश किं करवाणि शम्भो ।।९

भवाभवाभ्यामतिपीडितोऽहं,
तृष्णाक्षुधाभ्यां च रजस्तमोभ्याम् ।
ईदृक्षया जरया चाभिभूतः,
पश्यावस्थां कृपया मेऽद्य नाथ ॥१०

कामेन कोपेन च मत्सरेण,
दम्भेन दर्पादिभिरप्यनेकैः ।
एकैकशः कष्टगतोऽस्मि विद्ध-
स्त्वं नाथवद्वारय नाथ शत्रून् ॥११

कस्यापि कश्चित्पतितस्य पुंसो,
दुःखप्रणोदी भवतीति सत्यम् ।
विना भवन्तं मम सोमनाथ,
कुत्रापि कारुण्यवचोऽपि नास्ति ॥१२

तावत्स कोपो भयमोहदुःखा-
न्यज्ञानदारिद्र्य रुजस्तथैव ।
कामादयो मृत्युरपीह याव-
न्नमः शिवायेति न वच्मि वाक्यम् ॥१३

न मेऽस्ति धर्मो न च मेऽस्ति भक्ति-
र्नाहं विवेकी कुतो मे ।
दाताऽसि तेनाऽऽशु शरण्य चित्ते,
निधेहि सोमेति पदं मदीये ॥१४

हे सोम नाथ ! मैं बलवान् त्रिशूल से भिदा हुआ हूं और पाप के कारण से मैं चिन्तारूपी क्षुर (उस्तरा) से पाटित हो रहा हूं। पाँचों इन्द्रियों के तीव्र तापों से संतप्त हूं। मैं बहुत ही श्रान्त हो गया हूं आप मेरा संतारण कीजिए ॥८॥ हे शम्भो ! मैं दारिद्रय पूर्ण बन्धनों से बँधा हुआ हूं और रोग रूपी अग्नि के तीव्र तापों से हत हो रहा हूं। मृत्यु-रूपी भुजङ्ग से मैं क्रान्त होता हूं और अत्यन्त डरा हुआ हूं। हे प्रभो ! मैं अब क्या करूं ? ॥९॥ भव और अभव अर्थात् जन्म तथा मरण से मैं अत्यधिक पीड़ित हो रहा हूं। तृष्णा और क्षुधा से तथा रजोगुण और

तमोगुण से एवं इस प्रकार की जरावस्था से मैं अभिभूत हूँ । हे नाथ ! आप कृपा कर के मेरी इस दयनीय दशा को देखिये ।।१०।। काम-कोप मात्सर्य दम्भ-दर्प आदि अनेक रोगों से विद्ध हुआ मैं एक-एक से कष्ट गत हो रहा हूँ । हे नाथ ! आप नाथ की ही भाँति मेरे इन शत्रुओं को हटाइए ।।११।। कोई किसी पतित पुरुष के दु:खों का प्रणोदन करने वाला होता है—यह बिल्कुल सत्य है । हे सोम नाथ ! बिना आपके मेरा कहीं पर भी करुणा पूर्ण वचन वाला भी नहीं है ।।१२।। तभी तक वह कोप-भय-मोह-दु:ख-अज्ञान दारिद्र्य-रोग हैं तथा काम आदि हैं और मृत्यु भी तभी तक है जब तक मैं "नम: शिवाय"—इस वाक्य को नहीं बोलता हूँ ।।१३।। मेरे अन्दर कोई भी धर्म नहीं है और न मुझ मे भक्ति ही है । मैं विवेकशील भी नहीं हू तथा करुणा का भाव तो मुझ में हो ही कैसे सकता है । अतएव हे शरण्य ! आप शीघ्र देन वाले हैं । अब आप मेरे चित्त 'सोम'—इस पद को रखिए ।।१४।।

याचे न चाहं सुरभूपतित्वं,
हृत्पद्ममध्ये मम सोमनाथ ।
श्रीसोमपादाम्बुजसंनिधानं,
याचे विचार्यैव च तत्कुरुष्व ।।१५

यथा तथाहं विदितोऽस्मि पाप-
स्तथाऽपि विज्ञापनमाशृणुष्व ।
संश्रूयते यत्र वच: शिवेति,
तत्र स्थिति: स्यान्मम सोमनाथ ।।१६

गौरीपते शंकर सोमनाथ,
विश्वेश कारुण्यनिधेऽखिलात्मन् ।
संस्तूयते यत्र सदेति तत्र,
येषामपि स्यात्कृतिना निवास: ।।१७

इत्यात्रेयस्तुतिं श्रुत्वा तुतोष भगवान्हर: ।
वरदोऽस्मीति तं प्राह योगिनं विश्वकृद्भुव: ।।१८

आत्मज्ञानं च मुक्तिं च विपुलाँ त्वयि ।
तीर्थस्यापि च माहात्म्यं वरोऽयं त्रिदशार्चित ॥१९
एवमस्त्विति तं शंभुरुक्त्वा चान्तरधीयत ।
ततः प्रभृति तत्तीर्थमात्मतीर्थं विदुर्बुधाः ॥
तत्र स्नानेन दानेन मुक्तिः स्यादिह नारद ॥२०

हे सोम नाथ ! मैं सुरों के भूपति का पद नहीं चाहता हूँ अर्थात् इन्द्रासन की अभलाषा मुझे विलकुल नहीं है । मैं तो अपने हृदय के पद्म मध्य में जो सोम पादम्बुज का सन्निधान चाहता हूं और उसकी आपसे याचना भी कर रहा हूँ सो आप विचार कर ही यह करिए ॥१५॥ जैसा मैं पापी हूँ वह आपको विदित ही हूं आप से मेरे पाप कुछ भी छिपे नहीं हैं तो भी मेरा विज्ञापन है उसके भ्रमण करने की आष कृपा कीजिए । जहाँ पर 'शिव'—यह वचन सुना जाता है हे सोमनाथ ! वहाँ पर ही मेरी स्थिति हो जानी चाहिए ॥१६॥ हे गौरीपते ! हे शङ्कर ! हे सोमनाथ ! हे अखिलात्मन् ! आप तो करुणा की खान हैं और इस समस्त विश्व के ईश्वर हैं । जहां पर 'सत्'—यह सुना जाता है वहाँ पर कुछ ही पुण्यात्माओं का निवास होता है । श्री ब्रह्माजी ने कहा—आत्रेय की इस स्तुति को सुन कर भगवान् हर बहुत ही सन्तुष्ट हुए थे और फिर विश्व के निर्माण करने वाले भगवान् हर ने उस योगी से कहा था कि मैं तुझे वरदान देने वाला हूँ तू अपना अभीष्ट वरदान मुझसे प्राप्त करले ॥१७-१८॥ आत्रेय ने कहा—हे त्रिदशों (देवों) के द्वारा समर्चित भगवान् ! आत्मज्ञान-मुक्ति और आपके अन्दर विपुल भक्ति तथा इस तीर्थ का भी माहात्म्य ये ही मेरे वरदान हैं जिनको मेरा मन प्राप्त करना चाहता है ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही होगा—यह भगवान् शम्भु कह कर वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे । तभी से आरम्भ करके उस तीर्थ को बुध पुरुष आत्मतीर्थ जानते हैं । हे नारद ! उस तीर्थ में स्नान करने से और दान देने से मुक्ति हो जाया करती है ॥२०॥

सोमतीर्थवर्णन

सोमतीर्थमिति ख्यातं तदप्युक्तं महात्मभिः ।
तत्र स्नानेन दानेन सोमपानफलं लभेत् ॥१
जगतां मातरः पूर्वमोषध्यो जीवसम्मताः ।
ममापि मातरो देव्यः पूर्वासां पूर्वजत्तराः ॥२
आसु प्रतिष्ठितो धर्मः स्वाध्यायो यज्ञकर्म च ।
आभिरेव धृतं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३
अशेषरोगोपशमो भवत्याभिरसंशयम् ।
अन्नमेताभिरेव स्यादशेषप्राणरक्षणम् ॥
अथौषध्यो जगद्वन्द्या मामूचुरनहं कृताः ॥४
अस्माकं त्वं पतिं राजानं सुरसत्तम ॥५
तच्छ्रुत्वा वचनं तासां मयोक्ता ओषधीरिदम् ।
पतिं प्राप्स्यथ सर्वाश्च राजानं प्रीतिवर्धनम् ॥६
राजानमिति तच्छ्रुत्वा ता मामूचुः पुनर्मुने ।
गन्तव्यं क्व पुनश्चोक्ता गौतमीं यान्तु मातरः ॥७
तुष्टायामथ तस्यां वो राजा स्याल्लोकपूजितः ।
ताश्च गत्वा मुनिश्रेष्ठ तुष्टुवुर्गौतमीं नदीम् ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सोम तीर्थ इस शुभ नाम से प्रख्यात है और वह भी महान् आत्मा वालों के द्वारा कहा गया है। वहाँ पर स्नान और दान करने से सोम पान करने का पुण्य-फल प्राप्त हुआ करता है ॥१॥ जगतों की माताएँ पूर्व मे ओषधियाँ जीवो के सम्मत थी मेरी माताएँ भी पूर्व मे होने वालियो के भी पूर्व मे होने वाली देवियाँ थी ॥२॥ इनमे ही धर्म प्रतिष्ठित है और स्वाध्याय और यज्ञ कर्म भी इनमे प्रतिष्ठित रहता है। इनके द्वारा ही यह सम्पूर्ण चराचर त्रैलोक्य धारण किया हुआ है ॥३॥ समस्त रोग का उपशम बिना किसी संशय के इनसे ही होता है और इनके ही द्वारा सबके प्राणों की रक्षा करने वाला अन्न होता है।

यहाँ पर ओषधियाँ जगत् की वन्दना करने के योग्य हैं और उन्होंने निरभिमान होकर मुझसे कहा—॥४॥ ओषधियों ने कहा—हे सुरों में परम श्रेष्ठ ! आप हमारा पति राजा का प्रदान हमको कर दो ॥५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उनके उस वचन का श्रवण करके मेरे द्वारा ओषधियों से यह कहा गया था कि आप सब प्रीति का बढ़ाने वाला अपना पति राजा को प्राप्त कर लोगी ॥६॥ हे मुनिवर ! 'राजा को'—यह सुन कर उन्होंने मुझ से पुनः कहा था कि कहाँ पर जाना होगा तब उनसे कहा गया था कि हे माताओ ! गौतमी को जाओ ॥७॥ उस गौतमी के तुष्ट हो जाने पर आप लोगों का राजा लोक पूजित हो जायगा। हे मुनिश्रेष्ठ ! वे सब वहाँ पर जाकर गौतमी गङ्गा नदी का स्तवन करने लगी थीं ॥८॥

कि वाऽकरिष्यन्भववर्तिनो जाना,
नानाघसंघाभिभवाच्च दुःखिताः ।
न चाऽऽगमिष्यद्भवती भुवं चे-
त्पुण्योदके गौतमि शंभुकान्ते ॥९

को वेत्ति भाग्यं नरदेहभाजां,
महीगतानां सरितामधीशे ।
एषां महापातकसंघहन्त्री,
त्वमम्ब गङ्गे सुलभा सदैव ॥१०

न ते विभूतिं ननु वेत्ति कोऽपि,
त्रैलोक्यवन्द्ये जगदम्ब गङ्गे ।
गौरीसमालिङ्गितविग्रहोऽपि,
धत्ते स्मरारिः शिरसाऽपि यत्त्वाम् ॥११

नमोऽस्तु ते मातरभीष्टदायिनि,
नमोऽस्तु ते ब्रह्ममयेऽघनाशिनि ।
नमोऽस्तु ते विष्णुपदाब्जनिःसृते,
नमोऽस्तु ते शंभुजटाविनिःसृते ॥१२

इत्येव स्तुवतामीशा किं ददामीत्यवोचत ॥१३
पतिं देहि जगन्माता राजानमतितेजसम् ॥१४

ओषधियों ने कहा—हे गौतमि ! हे शम्भुदेव की कान्ते ! यदि आप इस भूलोक मे न आई होती तो इस ससार मे रहने वाले मनुष्य जो अनेक पापो के समुदाय के अभिभव से अत्यन्त दु.खित है क्या कर सकते थे । आप तो परम पुण्यमय जल वाली हैं और आप से ही सबका उद्धार हो जाता है ॥६॥ हे सरिता की अधीश्वरि ! इस भूमि पर रहने वाले मनुष्य देह के धारी पुरुषो के भाग्य को कौन जानता है ? इन मनुष्यो के महान् पातकों के समुदाय का हनन करने वाली हे अम्बे ! आप ही हैं और हे गङ्गे ! आप सदा ही सुलभ हैं ॥१०॥ कोई भी आपके वैभव की महिमा को नहीं जानता है । हे गङ्गे ! हे अम्बे ? आप जगत् की माता हैं और त्रिलोकी के द्वारा वन्दना करने के योग्य हैं । कामदेव के शरीर को भस्म कर देने वाले भगवान् शिव यद्यपि गौरी के द्वारा समालिङ्कित विग्रह वाले हैं तो भी आपको तो अपने शिर के बल से धारण किये रहा करते हैं ॥११॥ हे अभीष्ट मनोरथो के प्रदान करने वाली ! माता आपकी सन्निधि मे प्रणाम है । हे ब्रह्ममये ! आप तो सब अघो के विनाश करने वाली हैं आपको हमारा नमस्कार है । आप साक्षात् भगवान् विष्णु के चरण कमलो से निकल कर समागत हुई हैं और आप फिर भगवान् शम्भु के जटाजूट मे विनि.सृत हुई है आपको हमारा बारम्बार प्रणाम है ॥१२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से स्तवन करने वाली ओषधियों से ईश्वरी गौतमी ने कहा था कि क्या आपको दूँ ? ॥१३॥ ओषधियो ने कहा—हे माताजी ! आप तो समस्त जगतो की माता हैं । यदि आप हम पर परम प्रसन्न है तो अत्यधिक तेज के धारण करने वाले राजा को दीजिए जो कि हमारा पति होवे ॥१४॥

तदोवाच नदी गङ्गा ओषधीस्ता इदं वचः ॥१५
अहं चामृतरूपाऽस्मि:ओषध्यो मातरोऽमृताः ।
वाढ्य चामृतात्मानं पतिं सोमं ददामि वः ॥१६

देवाश्च ऋषयो वाक्यं मेनिरे सोम एव च ।
ओषध्यश्चापि तद्वाक्यं ततो जग्मुः स्वमालयम् ।।१७

यत्र चाऽऽपुर्महौषध्यो राजानममृतात्मकम् ।
सोमं समस्तसंतापपापसंघनिवारकम् ।।१८

सोमतीर्थं तु तत्ख्यातं सोमपानफलप्रदम् ।
तत्र स्नानेन दानेन पितरः स्वर्गमाप्नुयुः ।।१९

य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा भक्तितः स्मरेत् ।
दीर्घमायुरवाप्नोति स पुत्री धनवान्भवेत् ।।२०

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में गङ्गा नदी ने उन औषधियों से यह वचन कहा था ।।१५।। गङ्गादेवी ने कहा— मैं भी अमृत स्वरूप वाली हूँ और आप ओषधियाँ भी अमृत रूपिणी माताएँ हैं । अतएव उसी प्रकार का अमृत आत्मा वाला सोम पति आपको देती हूँ ।।१६।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस वाक्य को सब सुरों ने ऋषियों ने और सोम ने भी स्वीकार कर लिया था । ओषधियों ने भी उस वचन को मान लिया था और फिर वे सब अपने २ आश्रम स्थल को चली गयीं थीं ।।१७।। जिस क्षेत्र में महौषधियों ने अमृतात्मक और सब सन्ताप तथा पापों के संघों का निवारण करने वाले सोम राजा को अपना पति प्राप्त किया था ।।१८।। वही क्षेत्र सोम तीर्थ विख्यात हो गया था जो सोम पान करने के फल का प्रदान करने वाला है । वहाँ पर स्नान करने से और दान करने से पितृगण भी स्वर्ग लोक को प्राप्त कर लिया करते हैं ।।१९।। जो कोई पुरुष इस आख्यान का नित्यप्रति पाठ करता है–श्रवण किया करता है या भक्ति की भावना से स्मरण करता है वह परमाधिक दीर्घ आयु को प्राप्त कर लेता है और वह पुत्रवान् तथा धन से सुसम्पन्न हो जाया करता है ।।२०।।

धान्यतीर्थवर्णन

धान्यतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम् ।
सुभिक्ष क्षेमद पुंसा सर्वापद्विनिवारणम् ॥१
ओषध्यः सोमराजानं पति प्राप्य मुदाऽन्विताः ।
ऊचु सर्वस्य लोकस्य गङ्गायाश्चेप्सित वच ॥२
वैदिकी पुण्यगाथाऽस्ति या वै वेदविदो विदुः ।
भूमि सस्यवती कश्चिन्मातरं मातृसम्मिताम् ॥३
गङ्गासमीपे यो दद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् ।
भूमि सस्यवतीं गाश्च ओषधीश्च मुदाऽन्वित: ॥४
विष्णुब्रह्मेशरूपाय यो दद्याद्भक्तिमान्नर. ।
सर्वं तदक्षय विद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् ॥५
ओषध्यः सोमराजन्या: सोमश्चाप्योषधीपतिः ।
इति ज्ञात्वा ब्रह्मविद ओषधीर्यः प्रदास्यति ॥६
सर्वान्कामानवाप्नोति ब्रह्मलोके महीयते ।
ता एव सोमराजन्या. प्रीताः प्रोचु. पुनः पुन. ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक तीर्थ है जो धान्य तीर्थ—इस नाम से लोकों मे विख्यात है और मनुष्यों को सब कामनाओं के प्रदान करने वाला है यह सुभिक्ष देने वाला-क्षेम का दाता और सभी प्रकार की आपदाओं का निवारण करने वाला होता है ॥१॥ ओषधियाँ सोम राजा को अपना पति प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न हुई थी । उन्होंने सम्पूर्ण लोक का और गङ्गा का अभीप्सित वचन बोला था ॥२॥ ओषधियों ने कहा—एक वैदिकी पुण्यमयी गाथा है जिसको सभी वेदों के वेत्ता लोग जानते हैं । जो कोई पुरुष माता के समान शस्यवती भूमि माता को दान मे देता है और गङ्गा के समीप मे जो दान किया करता है वह पुरुष सभी मनोरथों की प्राप्ति कर लेता है । शस्यवती भूमि-गौएँ और औषधियों को जो बहुत आनन्द के साथ जो दान करता है तथा जो

भक्तिमान् मनुष्य विष्णु-ब्रह्मा और ईश स्वरूप वाले विप्र को दान देता है वह सब अक्षय होता है और सभी कामनाओं को प्राप्त कर लिया करता है ॥५॥ ये ओषधियाँ सोम राजा वाली हैं तथा सोमदेव भी ओषधियों के स्वामी हैं—यह समझ कर ब्रह्म का ज्ञाता पुरुष जो ओषधियों का दान करेगा वह सब उत्तम लोकों की प्राप्ति कर लेता है और अन्त में ब्रह्म-लोक में पहुंच कर प्रतिष्ठित हुआ करता है। वे ही सोम के राजा वाली ओषधियां परम प्रसन्न होकर बारम्बार कहती हैं ॥३-७॥

योऽस्मान्ददाति गङ्गायां तं राजन्पारयामसि ।
त्वमुत्तसश्चौषधीश त्वदधीनं चराचरम् ॥८

ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा ।
योऽस्मान्दाति विप्रेभ्यस्तं राजन्पारयामसि ॥६

वयं च ब्रह्मरूपिण्य प्राणरूपिण्य एव च ।
योऽस्मान्ददाति विप्रेभ्यस्तं राजन्पारयामसि ॥१०

अस्मान्ददाति यो नित्यं ब्राह्मणेभ्यो जितव्रतः ।
उपास्तिरस्ति साऽस्माकं तं राजन्पारयामसि ॥११

स्थावरं जङ्गमं किंचिदस्माभिर्व्यापृतं जगत् ।
योऽस्मान्ददाति विप्रेभ्यस्तं राजान्पारयामसि ॥१२

हव्यं कव्यं यदमृतं यत्किंचिदुपभुज्यते ।
यद्गरीयश्च यो दद्यात्तं राजान्पारयामसि ॥१३

इत्येतां वैदिकीं गाथां यः शृणोति स्मरेत वा ।
पठते भक्तिमापन्नस्तं राजन्पारयामसि ॥१४

ओषधियाँ बोलीं—जो हमको हे राजन् ! गङ्गा में अर्थात् गौतमी तट पर दान दिया करता है उसको हम पार कर देवें क्योंकि आप तो उत्तम ओषधियों के स्वामी हैं और आपके यह चराचर जगत् सब आधीन है ।।८।। ओषधियाँ अपने राजा सोम के साथ कहती हैं हे राजन् ! जो हमको विप्रों के लिये दान करता है उसको पार कर देवें ।।६।। हम तो ब्रह्म रूप वाली और प्राण स्वरूप वाली हैं। हे राजन् जो हमारा दान विप्रों को करे उसको हम पार कर देवें अर्थात् उसका उद्धार कर दिया

करें ॥१०॥ जो जितव्रत पुरुष नित्य ही हमारा दान किया करता है और ब्राह्मणो को देता है वह तो हमारी एक प्रकार की उपासना ही है। हे राजन् ! उसका हम उद्धार कर देवें ॥११॥ इस जगत् मे स्थावर और जङ्गम जो कुछ भी है वह हम से व्यावृत है। हे राजन् ! जो हमको विप्रो के लिये प्रदान करता है उसको हम तार दिया करें ॥१२॥ हव्य-कव्य और जो अमृत कुछ भी उपभोग किया जाता है और जो अधिक गुरु हो उसका जो दान करता है हे राजन् ! उसका उद्धार हम कर देवे ॥१३॥ इस वैदिकी गाथा को जो स्मरण करता है अथवा सुनता है या पढता है और भक्तिभाव मे समापन्न होता है हे राजन् ! उसको हम पार कर देवें ॥१४॥

यत्रैषा पठिता गाथा सोमेन सह राज्ञा ।
गङ्गातीरे चोषधीभिर्धान्यतीर्थं तदुच्यते ॥१५
तत प्रभृति तत्तीर्थमौपम्य सौम्यमेव च ।
अमृत वेदगाथ च मातृतीर्थं तथैव च ॥१६
एषु स्नान जपोहोमो दान च पितृतर्पणम् ।
अन्नदान तु य कुर्यात्तदानन्त्याय कल्पते ॥१७
षट्शताधिकसाहस्र तीर्थाना तीरयोर्द्वयो ।
सर्वपापनिहन्तॄणां सर्वसंपद्विवर्धनम् ॥१८

श्री ब्रह्माजी ने कहा— जहाँ पर राजा सोम के साथ यह गाथा पढी गयी थी और गङ्गा के तट पर ओषधियो के द्वारा इसका पाठ किया गया था वह धान्य तीर्थ कहा जाता है ॥१५॥ तभी से वह तीर्थ औपम्य सौम्य अमृत वेदगाथ और मातृतीर्थ हो गया है ॥१६। इन तीर्थों मे जप दान होम पितृगण का तर्पण अन्न का दान जो कोई किया करता है वह अनन्तता को प्राप्त किया करता है ॥१७॥ गङ्गा के दोनो तीरो पर एक सहस्र छै सौ तीर्थ हैं जो समस्त पापो के निहनन करने वाले हैं और वहाँ पर सभी प्रकार की सम्पदा की वृद्धि होती है ॥१८ ।

यमतीर्थवर्णन

यमतीर्थमिति ख्यातं पितॄणां प्रीतिवर्धनम् ।
दृष्टादृष्टेष्टदं सर्वदेवर्षिगणसेवितम् ॥१
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ।
अनुह्लाद इति ख्यातः कपोतो बलवानभूत् ॥२
तस्य भार्या हेतिनाम्नी पक्षिणी कामरूपिणी ।
मृत्योः पौत्रो ह्यनुह्लादो दौहित्री हेतिरेव च ॥३
कालेनाथ तयोः पुत्राः पौत्राश्चैव बभूविरे ।
तस्य शत्रुश्च बलवानुलूको नाम पक्षिराट् ॥४
तस्य पुत्राश्च पौत्राश्च आग्नेयास्ते बलोत्कटाः ।
तयोश्च वैरमभवद्बहुकालं द्विजन्मनोः ॥५
गङ्गाया उत्तरे तीरे कपोतस्याऽऽश्रमोऽभवत् ।
तस्याश्च दक्षिणे कूल उलूको नाम पक्षिराट् ॥६
वासं चक्रे तत्र पुत्रैः पौत्रैश्च द्विजसत्तम ।
तयोश्च युद्धमभवद्बहुकालं विरुद्धयोः ॥७

यह पितृगण की प्राप्ति और स्नेह को बढ़ाने वाला यमतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। यह तीर्थ दृष्ट और अदृष्ट के प्रदान करने वाला तथा समस्त देवर्षिगणों के द्वारा सेवित है ॥१॥ अब हम उसी का प्रभाव वर्णित करते हैं। वह तीर्थ सब पापों का प्रणाश करने वाला होता है। अनुह्लाद इस नाम से प्रसिद्ध एक बलशाली कपोत हुआ था ॥२॥ उस कपोत की भार्या हेति नाम वाली काम रूपिणी पक्षिणी थी। अनुह्लाद मृत्यु का पौत्र था और हेति धेवती थी ॥३॥ समय उपस्थित होने पर उसके पुत्र तथा पौत्र समुत्पन्न हुए थे। उसका एक महान् बलवान् शत्रु उलूक नामधारी पक्षियों का राजा था ॥४॥ उसके पुत्र और पौत्र बलोत्कट आग्नेय थे। उन दोनों द्विजन्माओं में बहुत समय पर्यन्त वैरभाव हो गया था ॥५॥ गङ्गा के उत्तर तीर पर उस कपोत का

आश्रम था। उस गङ्गा के दक्षिण तट पर उलूक नाम का पक्षिराज रहा करता था ॥६॥ हे द्विजसत्तम ! वहीं पर पुत्रों तथा पौत्रों के साथ वास किया करता था। उन दोनों का जोकि सब दूसरे के आपस में बहुत ही विरोधी थे बहुत समय तक युद्ध हुआ था ॥७॥

पुत्रै. पौत्रैश्च वृतयोर्बलिनोर्बलिभि. सह।
उलूको वा कपोतो वा नैवाऽऽप्नोति जयाजयौ ॥८
कपोतो यममाराध्य मृत्यु पैतामह तथा।
याम्यमस्त्रमवाप्याथ सर्वेभ्योऽप्यधिकोऽभवत् ॥९
तथोलूकोऽग्निमाराध्य बलवानभवद्भृशम्।
वरैरुन्मत्तयोर्युद्धमभवच्चातिभीषणम् ॥१०
तत्राऽऽग्नेयमुलूकोऽस्त्रं कपोतायास्त्रमाक्षिपत्।
कपोतोऽप्यथ पाशान्वै याम्यानाक्षिप्य शत्रवे ॥११
उलूकायाथ दण्ड च मृत्युपाशानवासृजत्।
पुनस्तदभवद्युद्ध पुराऽऽडीबकयोर्यथा ॥१२
हेति. कपोतको दृष्ट्वा ज्वलन्न प्रासमन्तिके।
पतिव्रता महायुद्धे भर्तु. सा दु खविह्वला ॥१३
अग्निना वेष्ट्यमानाश्च पुत्रास्दृष्ट्वा विशेषत।
सा गत्वा ज्वलन हेतिस्तुष्टाव विविधोक्तिभि. ॥१४

ये दोनों बली थे और बलवानों का बलवानों के साथ ही युद्ध होता था। दोनों पुत्रों तथा पौत्रों से भी समावृत थे। इनमें से न तो उलूक ने और न कपोत ने ही जय और पराजय प्राप्त किया, था ॥८॥ उस कपोत ने अपने पैतामह मृत्यु यम की आराधना की थी और उसने याम्य मन्त्र को प्राप्त कर लिया, तथा वह सबसे अधिक बलवान् हो गया ॥९॥ उसी भांति उस उलूक ने अग्निदेव की आराधना की थी और वह भी अत्यधिक बलशाली होगया। दोनों ने वरदानों के द्वारा उन्मत्तता प्राप्त करके फिर उन दोनों का अत्यन्त भीषण घोर युद्ध हुआ ॥१०॥ उस युद्ध में उलूक ने कपोत पर अपने आग्नेय अस्त्र का प्रक्षेप किया। कपोत भी यम के द्वारा प्रदत्त पाशों का अपने शत्रु पर प्रक्षेप

करता था। उस कपोत ने उलूक पर दण्ड तथा मृत्यु पाशों को छोड़ा, फिर उन दोनों का ऐसा भीषण युद्ध हुआ, जैसा कि पहले समय में आडीक और वक का युद्ध हुआ था ॥११-१२॥ हेति कपोतकी ने अपने समीप में प्राप्त अग्नि को देखा। उस महा युद्ध में भर्त्ता की पतिव्रता वह बहुत दुःख से विह्वल हो गयी ॥१३॥ उस अग्नि से वेष्टित अपने पुत्रों को देखकर उस कपोती हेति ने अनेक उक्तियों के द्वारा उस अग्नि का स्तवन किया ॥१४॥

रूपं न दानं न परोक्षमस्ति,
यस्याऽऽत्मभूतं च पदार्थजातम् ।
अश्नन्ति हव्यानि च येन देवाः,
स्वाहापतिं यज्ञभुजं नमस्ये ॥१५
मुखभूतं च देवानां देवानां हव्यवाहनम् ।
होतारं चापि देवानां देवानां दूतमेव च ॥१६
तं देवं शरणं यामि आदिदेवं विभावसुम् ।
अन्तःस्थितः प्राणरूपो बहिश्चान्नप्रदो हि यः ॥
यो यज्ञसाधनं यामि शरणं तं धनंजयम् ॥१७
अमोघमेतदस्त्रं मे न्यस्त युद्धे कपोतकि ।
यत्र विश्रमयेदस्त्रं तन्मे ब्रूहि पतिव्रते ॥१८
मयि विश्रम्यतामस्त्रं न पुत्रे न च भर्तरि ।
सत्यवाग्भव हव्येश जातवेदो नमोऽस्तु ते ॥१९
तुष्टोऽस्मि तव वाक्येन भर्तृभक्त्या पतिव्रते ।
तवापि भर्तृपुत्राणां हेति क्षेमं ददाम्यहम् ॥२०
आग्नेयमेतदस्त्रं मे न भर्तारं सुतानपि ।
न त्वां दहेत्ततो याहि सुखेन त्वं कपोतकि ॥२१

हेति ने कहा—जिसका न कोई स्वरूप है और न दान है—न परोक्ष है और समस्त पदार्थ जिसके आत्म भूत हैं, जिसके द्वारा देवगण हव्यों का अशन किया करते हैं उस स्वाहा के स्वामी यज्ञ को भोक्ता अग्नि को मैं नमस्कार करती हूं ॥१५॥ हे अग्ने ! आप तो देवों के मुख

भूत हैं—देवों के लिये हव्य का वहन करने वाले हैं—देवों के आप होता हैं तथा देवों के आप दूत भी हैं ॥१६॥ उसी देव की शरणागति में,मैं उपस्थित हो रही हूँ जो आदि देव विभावसु हैं जो अन्दर स्थित रहने वाले प्राण स्वरूप और अन्न के प्रदाता वह्नि हैं। जो यज्ञों के साधनरूप हैं उन्हीं धनञ्जय की मैं शरणागति में जाती हूँ ॥१७॥ अग्निदेव ने कहा—हे कपोतकि ! मेरा यह अस्त्र अमोघ है जो युद्ध में न्यस्त किया गया है। हे पतिव्रते ! यह अस्त्र बिना गिरे तो रह नहीं सकता क्योंकि इसमें अमोघता (सफलता) विद्यमान है। अतएव मुझे तुम वह स्थल बतलादो जहाँ पर यह विश्राम प्राप्त करे ॥१८॥ कपोती ने कहा—आपका यह मेरे पति और पुत्र में न जाकर मुझ पर ही विश्राम कर लेवे। हे हव्येश ! आप सत्य वाणी वाले होवें। हे जातवेदा ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है ॥१९॥ जातवेदा ने कहा—हे पतिव्रते ! मैं तो तुम्हारे वाक्य से बहुत प्रसन्न हो गया हूँ और पति की भक्ति से मुझे अधिक प्रसन्नता हुई है। हे दैति ! मैं तेरे स्वामी और पुत्रों को भी क्षेम देता हूँ ॥२०॥ हे कपोतकि ! यह मेरा आग्नेय अस्त्र तेरे भर्त्ता-तेरे पुत्र और तुमको भी दाह नहीं करेगा। अब तू सुख पूर्वक गमन कर ॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र उलूको ददृशे पतिम् ।
वेष्ट्यमानं याम्यपाशैर्यमदण्डेन ताडितम् ॥
उलूकी दुःखिता भूत्वा यमं प्रायाद्भयातुरा ॥२२
त्वद्भीता अनुद्रवन्ते जना-
स्त्वद्भीता ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
त्वद्भीताः साधु चरन्ति धीरा-
स्त्वद्भीताः कर्मनिष्ठा भवन्ति ॥२३
त्वद्भीता अनाशकमाचरन्ति,
ग्रामादरण्यमभि यच्चरन्ति ।
त्वद्भीताः सौम्यतामाश्रयन्ते,
त्वद्भीताः सोमपानं भजन्ते ॥

त्वद्भीताश्चान्नगोदाननिष्ठा-
स्त्वद्भीता ब्रह्मवादं वदन्ति ॥२४
एवं ब्रुवत्यां तस्यां तामाह दक्षिणदिक्पतिः ॥२५
वरं वरय भद्रं ते दास्येऽहं मनसः प्रियम् ॥२६
यमस्येति वचः श्रुत्वा सा तमाह पतिव्रता ॥२७
भर्ता मे वेष्टितः पाशैर्दण्डेनाभिहतस्तव ।
तस्माद्रक्ष सुरश्रेष्ठ पुत्रान्भर्तारमेव च ॥२८

श्री ब्रह्माजी ने कहा--इसी बीच में वहाँ पर उस उलूकी ने पति को देखा जो यम के पाशों से वेष्टित तथा यम के दण्ड से ताड़ित हो रहा था। उलूकी अत्यन्य दुःखित होकर भय से आतुर हो गई और यमराज के समीप में उसने गमन किया ॥२२॥ उस उलूकी ने यम से प्रार्थना की थी—हे यमदेव ! आपसे भीत हुए जन भागते हैं तथा आपके भय से युक्त मनुष्य ब्रह्मचर्य्य का समाचरण किया करते हैं। आपसे डरे हुये ही धीर लोग साधु आचरण किया करते हैं तथा आपके दण्ड के भय से मनुष्य कर्मों में निष्ठा रखते हैं ॥२३॥ आपके ही भय से भीत होकर प्राणी अनाशक का आचरण किया करते हैं और ग्राम से अरण्य की ओर चले जाया करते हैं अर्थात् सांसारिकता का त्याग करके बन-वास करते हुए तपस्या करते हैं। हे यमदेव ! आपका ही ऐसा प्रवल भय होता है कि सब लोग सौम्यता का समाश्रय ग्रहण किया करते हैं। आपके भय से ही सोमरस का पान करते हैं। जो प्राणियों की अन्न दान और जो दान में निष्ठा हुआ करती है वह भी आपके भय के कारण से ही होती है। यह ब्रह्म का वाद जो किया जाता है वह भी आपके ही डर से डर कर ही लोग किया करते हैं ॥२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा--उलूकी के इन स्तवन के वचनों से परम कृपा से युक्त यम-राज वारम्बार उससे बोला--यम ने कहा--हे शुभानने ! तुम वरदान माँग लो। तेरा कल्याण होगा। तेरे मन का अभीष्ट मैं देदूँगा ॥२५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यमराज के इन वचनों को सुन कर वह पति-व्रता उन यमराज से बोली ॥२७॥ उलूकी ने कहा--मेरा स्वामी आपके

पाशा स ०हित हैं और आपके दण्ड से अभिहत हो रहे हैं। अतएव हे सु-श्रेष्ठ ! आप कृपा करके मेरे पुत्रों की और मेरे भर्ता की रक्षा कीजिए ॥२८॥

तद्वाक्यात्कृपया युक्तो यम प्राह पुन पुन ॥२९
पाशाना चापि दण्डस्य स्थान वद शुभानने ॥३०
सा प्रोवाच यम देव मयि पाशास्त्वयेरिता ।
आविशन्तु जगनाथ दण्डो मय्येव सविशेत् ॥
तत प्रोवाच भगवान्यमस्ता कृपया पुन ॥३१
तव भर्ता च पुत्राश्च सर्वे जीवन्तु विज्वरा ॥३२
न्यवारयद्यम पाशानाग्नेयास्त्र तु हव्यवाट् ।
कपात लूकयोश्चापि प्रीति वै चक्रतु सुरौ ॥
आहतुश्च द्विजन्मानौ व्रियता वर ईप्सत. ॥ ३
भवतोर्दर्शन लब्ध वैरव्याजेन दुष्करम् ।
वय च पक्षिण पापा किं वरेण सुरोत्तमौ ॥३४
अय देयो वरोऽस्माक भवद्भ्या प्रीतिपूर्वकम् ।
नाऽऽभाथमनुयाचावो दीयमान वर शुभम् ॥३५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसके वाक्य से यमराज कृपा से युक्त होकर बारम्बार उससे बोला—यमराज न कहा—हे शुभ मुख वाली ! मेरे पाशो का और दण्ड का रखने का स्थान बतलाओ ॥२९ ०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा-उसने देव यम से कहा था कि आपके प्रेरित पाश मुझ मे प्रवेश कर जावें और हे जगन्नाथ ! आपका यह दण्ड भी मुझ मे ही प्रविष्ट हो जावें इसके अनन्तर यमराज ने कृपा करके फिर उससे कहा- ॥३१॥ भगवान् यम ने कहा—तुम्हारे पुत्र और स्वामी सभी दुख रहित होकर जीवित रहे ॥३२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा —यमराज ने पाशो को निवरित कर दिया, और हव्य वाहअग्नि ने आग्नेयास्त्र को हटा दिया। दोनो देवो न कपोत तथा उलूक की भी प्रीति कर दी। फिर वे दोनो देव उन दोनो पक्षियो से बोले थे कि तुम दोनो अपना

अभीप्सित वरदान माँग लो ॥३३॥ दोनों पक्षियों ने कहा—हम दोनों ने पारस्परिक वैर के बहाने से आप लोगों के दुष्कर दर्शन प्राप्त कर लिये हैं। हे सुरोत्तमो ! हम तो महान् पापी पक्षी हैं हमको वरदान से क्या लाभ होगा ॥३४॥ आप दोनों ही यदि प्रीति के साथ हमको वरदान देना चाहते हैं तो हम अपने लिये कुछ भी याचना नहीं करते हैं आपका वरदान जो दिया जायगा वह तो बहुत ही शुभ होगा ॥३५॥

आत्मार्थं यस्तु याचेत स शोच्यो हि सुरेश्वरौ ।
जीवितं सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा ॥३६
अग्निरापो रविः पृथ्वी धान्यानि विविधानि च ।
परार्थं वर्तनं तेषां सतां चापि विशेषतः ॥३७
ब्रह्मादयोऽपि हि यतो युज्यन्ते मृत्युना सह ।
एवं ज्ञात्वा तु देवेशौ वृथा स्वार्थपरिश्रमः ॥३८
जन्मना सह यत्पुंसां विहितं परमेष्ठिना ।
कदाचिन्नान्यथा तद्वै वृथा क्लिश्यन्ति जन्तवः ॥३९
तस्माद्याचावहे किंचिद्धिताय जगतां शुभम् ।
गुणदायि तु सर्वेषां(युवाभ्या)मनुमन्यताम् ॥४०
तावाहतुरुभौ देवौ पक्षिणौ लोकविश्रुतौ ।
धर्मस्य यशसोऽवाप्त्यै लोकानां हितकाम्यया ॥४१

हे सुरेश्वरो ! जो अपने ही लिये याचना करता है वह वास्तव में शोच करने के योग्य होता है। दूसरों की भलाई के लिये सदा समुद्यत रहा करता है उसका ही जीवन सफल हुआ करता है क्योंकि परोपकार का बड़ा महत्व होता है ॥३६॥ अग्नि-जल-सूर्य-पृथ्वी और अनेक प्रकार के धान्य इन सबका कार्य और बरताव सदा दूसरों के ही भलाई के लिये हुआ करता है और विशेष रूप से सत्पुरुषों का भी कर्म पराये हित के सम्पादन के लिये ही होता है ॥३७॥ ब्रह्मा आदि देव भी मृत्यु के साथ युक्त होते हैं अर्थात् बड़े से बड़े देवों का भी एक न एक दिन अन्त हो ही जाता है भले ही बहुत अधिक कल्पों के अन्त में हो किन्तु विनाश होना तो अवश्यम्भावी है। हे देवेशो ! यह समझ कर अपने ही

अर्थं साधन करने की अभिलाषा रखने में व्यर्थं का ही परिश्रम होता है और परिणाम में सबका विनाश हो ही जाया करता है ॥३८॥ परमेष्ठी ने जन्म के साथ ही पुरुषों की मृत्यु का भी विधान बना दिया है यह जन्म एवं मरण का अटल सिद्धान्त है जो जन्म ग्रहण करेगा वह एक न एक दिन निश्चित रूप से मृत्यु के मुख में प्रवेश करेगा। यह कभी भी अन्यथा अर्थात् विपरीत नहीं होता है। अतएव जन्तुगण व्यर्थ ही परिश्रम किया करते हैं और क्लेशित होते हैं। जो अनिवार्य है उसके लिये क्लेश कभी भी नहीं करना चाहिए प्रत्युत स्वागत ही करे ॥३९॥ इस कारण से हम लोग जो कुछ भी आप से याचना करते हैं वह जगत् की ही भलाई के लिए करना चाहते हैं। जो सबके लिये सुख दाता है उसी को आप दोनों अनुमोदित कर दीजिए ॥४०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वे दोनों लोक में प्रसिद्ध पक्षी उन दोनों देवों से बोले और लोकों के हित की कामना से ही धर्म तथा यश की प्राप्ति के लिये उन्होंने कहा था ॥४१॥

आवाभ्यामाश्रमो तीर्थं गङ्गाया उभये तटे।
भवेता जगता नाथावेष एव परो वरः ॥४२
स्नान दान जपो होम पितृणा चापि पूजनम्।
सुकृती दुष्कृती वाऽपि य. करोति यथा तथा॥
सर्वं तदक्षय पुण्य स्यादित्येष परो वर. ॥४३
एवमस्तु तथाचान्यत्सुप्रीतो तु ब्रुवावहे ॥४४
उत्तरे गौतमी तीरे यमस्तोत्र पठन्ति ये।
तेषा सप्तसु वशेषु नाकाले मृत्युमाप्नुयात् ॥४५
पुरुषो भाजन च स्यात्सर्वदा सर्वसपदाम्।
यस्त्विद पठते नित्य मृत्युस्तोत्र जितात्मवान् ॥४६
अष्टाशीतिसहस्रैश्च व्याधिभिर्न स बाध्यते।
अस्मिस्तीर्थे द्विजश्रेष्ठो त्रिमासाद्गुर्विणी सती ॥४७
अर्वाग्वन्ध्या च षण्मासात्सप्ताह स्नानमाचरेत्।
वीरसू. सा भवेन्नारी शतायुः स सुतो भवेत्॥

लक्ष्मीवान्मतिमाञ्शूरः पुत्रपौत्रविवर्धनः।
तत्र पिण्डादिदानेन पितरो मुक्तिमाप्नुयुः ॥४८
मनोवाक्कायजात्पापात्स्नानान्मुक्तो भवेन्नरः ॥४९

दोनों कपोत और और उलूक पक्षियों ने कहा--हम दोनों के दो आश्रम गङ्गा के दोनों तटों पर तीर्थ हो जावे। हे जगतों के नाथ ! यही हमारा सर्वाधिक वर है। हम यही सब से बड़ा वरदान चाहते हैं कि उन तीर्थों में स्नान-दान-जप-होम-पितृगण का पूजन जो भी कोई करता है चाहे वह सुकृती पुण्यात्मा हो अथवा दुष्कृती (महापापी) हो और जैसे-तैसे भी करे वह सब अक्षय पुण्य हो जावे ॥४२-४३॥ दोनों देवों ने कहा—ऐसा ही होगा और वे परम प्रसन्न होते हुए यह अन्य बात बोले ॥४४॥ यमराज ने कहा—गौतमी गङ्गा के उत्तर तट पर जो पुरुष इस यमस्तोत्र का पाठ किया करते हैं उनकी सात पीढ़ियों में कोई भी अकाल में मृत्यु अर्थात् असमय में मौत को प्राप्त नहीं होगा ॥४५॥ वह पुरुष सर्वदा सब प्रकार की सम्पदाओं का पात्र हो जाता है। जो जितात्मा इस मृत्युस्तोत्र का नित्य ही पाठ किया करता है वह अट्ठासी हजार व्याधियो से कभी नहीं सताया जाया करता है। इस तीर्थ में हे द्विज श्रेष्ठो ! तीन मास की गर्भवती सती और छै मास से पूर्व वन्ध्या एक सप्ताह पर्यन्त स्नान करे वह नारी वीर पुत्र के प्रसव करने वाली होती है और उस पुत्र की आयु भी एक सौ वर्ष की हुआ करती है। वह पुत्र लक्ष्मीवान्-मतिमान्-शूरवीर और पुत्रम्पौत्रों के बढ़ाने वाला होता है। वहाँ पर पिण्ड आदि का दान करने से पितर मोक्ष को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥४६-४८॥ मन-वाणी और शरीर से किये गये पापों से भी मनुष्य वहाँ पर स्नान करने से मुक्त हो जाया करता है ॥४९॥

यमवाक्यादनु तथा हव्यवाडाह पक्षिणौ ॥५०
मत्स्तोत्रं दक्षिणे तीरे ये पठन्ति यतव्रताः।
तेषामारोग्यमैश्वर्यं लक्ष्मीं रूपं ददाम्यहम् ॥५१

इदं स्तोत्रं तु य पश्चियत्र क्वापि पठेन्नर ।
नैवाग्नितो भय तस्य लिखितेऽपि गृहे स्थिते ॥५२
स्नान दान च य कुर्यादग्नितीर्थे शुचिर्नर ।
अग्निष्टोमफल तस्य भवेदेव न सशय ॥५३
तत प्रभृति तत्तीर्थं याम्यमाग्नेयमेव च ।
कपोल च तथोलूक हेत्युलूक विदुर्बुधा. ॥५४
तत्र त्रीणि सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ।
पुनर्नवतितीर्थानि प्रत्येक मुक्तिभाजनम् ॥५५
तेषु स्नानेन दानेन प्रेतीभूताश्च ये नराः ।
पूतास्ते पुत्रवित्ताढ्याआक्रमेयुर्दिव शुभाः ॥५६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—जब यमराज के वचन समाप्त हो गये तो उसके पीछे अग्निदेव ने उन दोनो पक्षियो से कहा ॥५०॥ अग्निदेव बोले—मेरे लिये आपके द्वारा कहे हुए स्तोत्र को जो पुरुष यत व्रत होकर गङ्गा के दक्षिण तट पर पढ़ते हैं उनको मैं आरोग्य-ऐश्वर्य लक्ष्मी और रूप लावण्य दिया करता हूँ ॥ ११॥ इस स्तोत्र को कोई भी मनुष्य जहा कही पर भी पढता है उसका लिखित गृह में भी स्थित होने पर अग्नि का भय नही होता है ॥५२॥ कोई शुचि मनुष्य इस अग्नि तीर्थ मे स्नान तथा दान किया करता है उसको अग्निष्टोम यज्ञ के यजन करने का पुण्य फल प्राप्त हो जाता है—इसमे तनिक सा भी सशय नही है ॥५३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय से वह याम्य तथा आग्नेय तीर्थ हो गया है । बुध लोग कपोत-उलूक और हेति उलूक जानते है ॥५४॥ वहाँ पर तीन हजार तीन सौ नब्बे तीर्थ हैं और प्रत्येक तीर्थ मुक्ति प्रदाता है ॥५५॥ जो मनुष्य प्रेत योनि मे प्राप्त हो गये हैं वे उन तीर्थों मे स्नान करने से तथा दान देने से पवित्र होते हुए पुत्रो एव धन से सम्पन्न होकर परम शुभ होते हुए दिवलोक मे चले जाया करते हैं ॥५६॥

—❀—

आपस्तम्बतीर्थवर्णन

आपस्तम्बमिति ख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
स्मरणादप्यशेषाघसंघविध्वंसनक्षमम् ॥१
आपस्तम्बो महाप्राज्ञो मुनिरासीन्महायशाः ।
तस्य भार्याऽक्षसूत्रेति पतिधर्मपरायणा ॥२
तस्य पुत्रो महाप्राज्ञः कर्किनामाऽथ तत्त्ववित् ।
तस्याऽऽश्रममनुप्राप्तो ह्यगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥३
तमगस्त्यं पूजयित्वा आपस्तम्बो मुनीश्वरः ।
शिष्यैरनुगतो धीमांस्तं प्रष्टुमुपचक्रमे ॥४
त्रयाणां को नु पूज्यः स्याद्देवानां मुनिसत्तमः ।
भुक्तिमुक्तिश्च कस्माद्वा स्यादनादिश्च को भवेत् ॥५
अनन्तश्चापि को विप्र देवानामपि दैवतम् ।
यज्ञैः क इज्यते देवः को वेदेष्वनुगीयते ॥
एतं मे संशयं छेत्तुं वदागस्त्य महामुने ॥६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक "आपस्तम्ब"—इस नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है जो तीनों लोकों में विख्यात है। इसका केवल स्मरण कर लेने पर भी यह सब अघों के समुदाय का विध्वंस करने में समर्थ होता है ॥१॥ आपस्तम्ब एक महान् यश वाले तथा बहुत अधिक प्राज्ञ मुनि थे। उनकी भार्या का नाम अक्षसूत्रा था जो पति के धर्म में परायण रहा करती है। उसका पुत्र भी महा मनीषी था जिसका नाम कर्कि था तथा वह तत्वों का पूर्ण ज्ञाता था। उस महामुनि के आश्रम में एक बार महामुनीन्द्र अगस्त्य समागत हुए थे। मुनीश्वर आपस्तम्ब ने अगस्त्य मुनि का अभ्यर्चन किया था। फिर शिष्यों के द्वारा अनुगत उन परम धीमान् आपस्तम्ब ने अगस्त्य मुनि से कुछ पूछने का उपक्रम किया था ॥२-४॥ आपस्तम्ब ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! इन परम प्रसिद्ध तीन देवों में कौन सा देव पूजा के योग्य है ? अथवा किस देव से भोग और मोक्ष दोनों का लाभ होता है तथा इनमें अनादि कौन सा देव है ॥५॥ हे

विप्रवर ! देवों का भी दैवत अनन्त कौन है ? यज्ञों के द्वारा जिस देव का यजन किया जाया करता है और वेदों में जिसका गान किया जाता है ? हे महामुने ! हे अगस्त्य जी ! यह मुझे बहुत अधिक संशय हो जाता है। आप इस संशय को वर्णन करके दूर कीजिए ॥६॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रमाणं शब्द उच्यते ।
तत्रापि वैदिकः शब्दः प्रमाणं परमं मतः ॥७
वेदेन गीयते यस्तु पुरुषः स परात्परः ।
मृतोऽपरः स विज्ञेयो ह्यमृतः पर उच्यते ॥८
योऽमूर्तः स परो ज्ञेयो ह्यपरो मूर्त उच्यते ।
गुणाभिव्याप्तिभेदेन मूर्तोऽसौ त्रिविधो भवेत् ॥९
ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चेति एक एव त्रिधोच्यते ।
त्रयाणामपि देवानां वेद्यमेकं परं हि तत् ॥१०
एकस्य बहुधा व्याप्तिर्गुणकर्मविभेदतः ।
लोकानामुपकारार्थमाकृतित्रितयं भवेत् ॥११
यस्तत्त्वं वेत्ति परमं स च विद्वान्न चेतरः ।
तत्र यो भेदमाचष्टे लिङ्गभेदी स उच्यते ॥१२
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति यश्चैवं व्याहरेद्द्विदम् ।
त्रयाणामपि देवानां मूर्तिभेदः पृथक्पृथक् ॥१३
वेदाः प्रमाणं सर्वत्र साकारेषु पृथक्पृथक् ।
निराकारं च यत्त्वेकं तत्तेभ्यः परमं मतम् ॥१४

अगस्त्य मुनि ने कहा—धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इनका प्रमाण शब्द होता है—यह कहा जाता है। उसमें भी जो वैदिक शब्द होता है वह ही परम प्रमाण माना गया है ॥७॥ वेद के द्वारा जिसका गान किया जाता है वही पुरुष परात्पर है। दूसरा पुरुष तो मृत ही समझना चाहिए जो अमृत होता है वही पर होता है—ऐसा ही कहा जाता है ॥८॥ जो अमूर्त अर्थात् मूर्ति से रहित है वही पर होता है और जो मूर्त्त है वह अपर जानना चाहिए—ऐसा कहा जाता है। गुणों (सत्त्व-रज तम) की अभिव्याप्ति के भेद से यह मूर्त्त तीन प्रकार का होता है

॥९॥ वस्तुतः वह है तो एक ही किन्तु ब्रह्मा विष्णु और शिव इन तीन नामों से तीन प्रकार का होता है ऐसा ही बतलाया जाता है। इन तीनों देवों में जानने के योग्य वह पर एक ही होता है ॥१०॥ गुणों और कर्मों के विभेद होने से उसी एक की बहुत प्रकार से व्याप्ति होती है और लोकों के उपकार के लिये तीन तरह की आकृति हो जाती है ॥११॥ पर परम तत्त्व को जानता है और वह विद्वान् होता है इतर नहीं होता है। वहाँ पर जो भी कोई भेद की चेष्टा करता है वह लिङ्ग भेदी कहा जाता है ॥१२॥ जो इन तीनों स्वरूपों में भेद की भावना रखता है तथा भेद को कहता है एवं भिन्नता का व्यवहार किया करता है उसको इतना महान् घोर पातक होता है कि शास्त्र में उसका कोई भी प्रायश्चित्त ही नहीं है। अतएव इन तीनों (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) मूर्त्तियों में पृथक् २ भाव होना ही नहीं चाहिए ॥१३॥ आकारों से युक्त इनमें सर्वत्र पृथक्-पृथक् होने के वेद ही प्रमाण हैं। जो निराकार है वह तो सर्वव्यापक एक ही होता है और वही सर्वोपरि परम होता है ऐसा ही माना गया है ॥१४॥

नानेन निर्णयः कश्चिन्मयाऽत्र विदितो भवेत् ।
तत्राप्यत्र रहस्यं यत्तद्विमृश्याऽऽशु कीर्त्यताम् ॥
निःसंशयं निर्विकल्पं भाजनं सर्वसंपदाम् ॥१५
एतदाकर्ण्य भगवानगस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥१६
यद्यप्येषां न भेदोऽस्ति देवानां तु परस्परम् ।
यथाऽपि सर्वसिद्धिः स्याच्छिवादेव सुखात्मनः ॥१७
प्रपञ्चस्य निमित्तं यत्तज्ज्योतिश्च परं शिवः ।
तमेव साधय हरं भक्त्या परमया मुने ॥
गौतम्यां सकलाघौघसंहर्ता दण्डके वने ॥१८
एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं परां प्रीतिमुपागतः ।
भुक्तिदो मुक्तिदः पुंसां साकारोऽथ निराकृतिः ॥१९
सृष्ट्याकारस्ततः शक्तः पालनाकार एव च ।
दाता च हन्ति सर्वं यो यस्मादेतत्समाप्यते ॥२०

ब्रह्माकृति. कर्तृ रूपा वैष्णवी पालनी तथा ।
रुद्राकृतिर्निहन्त्री सा सर्ववेदेषु पठ्यते ॥२१

आपस्तम्ब ने कहा—इससे कोई भी निर्णय मेरे द्वारा विदित नहीं होता है तथापि यहाँ पर जो कुछ रहस्य है उसका विमर्श करके शीघ्र ही कीर्तन करो। बिना किसी संशय के जो निर्विकल्पक होता है वह सभी सम्पदाओं का भाजन (पात्र या आधार) होता है ॥१५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इतना श्रवण करके भगवान् अगस्त्य मुनि यह वाक्य बोले ॥१६॥ अगस्त्य मुनि ने कहा—यद्यपि इन तीनों देवों का परस्पर में कोई भी भेद नहीं होता है तो भी सुमहात्मा भगवान् शिव से ही सबकी सिद्धि होती है ॥१७॥ हे मुने ! जो इस प्रपञ्च का निमित्त है और परम ज्योति है वह शिव ही हैं अतएव पराभक्ति के द्वारा उसी की साधना करो। गौतमी गङ्गा पर दण्डक वन म वह समस्त अघों के समुदाय के संहार करने वाले विराजमान हैं ॥१८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस महामुनि के वचन को सुनकर वह परमाधिक प्रीति को प्राप्त हो गये थे। वह भोगों के देने वाले मुक्ति के प्रदाता-आकार से युक्त-बिना आकार वाले सृष्टि के आकार वाले-शक्ति सम्पन्न-पालन करने वाले और दाता जो सबका हनन किया करते हैं जिससे यह सम्पूर्ण चराचर समाप्त किया जाता है ॥१९-२०॥ अगस्त्य जी ने कहा—ब्रह्मा के आकार वाले वे ही इस सृष्टि के करने वाले हैं अत वही कर्तृ रूपा शक्ति है। वैष्णु के रूप में वही पालनी शक्ति है तथा रुद्र के आकार वाली वही संहार करने वाली शक्ति है। ऐसी वह शक्ति समस्त वेदों में पढ़ी जाया करती है ॥२१॥

आपस्तम्बस्तदा गङ्गा गत्वा स्नात्वा यतव्रत. ।
तुष्टाव शंकर देव स्तोत्रेणानेन नारद ॥२२
काष्ठेषु वह्नि कुसुमेषु गन्धो,
बीजेषु वृक्षादि द्रवत्सु हेम ।
भूतेषु सर्वेषु तथाऽस्ति यो वै,
त सोमनाथ शरण व्रजामि ॥२३

यो लीलया विश्वमिदं चकार,
धाता विधाता भुवनत्रयस्य।
यो विश्वरूपः सदसत्परो यः,
सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥२४

यं स्मृत्य-दारिद्य महाभिशाप-
रोगादिभिर्न स्पृश्यते शरीरी।
यमाश्रिताश्चेप्सितमाप्नुवन्ति,
सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥२५

येन त्रयीधर्ममवेक्ष्य पूर्वं,
ब्रह्मादयस्तत्र समीहिताश्च।
एवं द्विधा येन कृतं शरीरं,
सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥२६

यस्मै नमो गच्छति मन्त्रपूतं,
हुतं हविर्या च कृता च पूजा।
दत्तं हविर्येन सुरा भजन्ते,
सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥२७

यस्मात्परं नान्यदस्ति प्रशस्तं,
यस्मात्परं नो सुसूक्ष्ममन्यत्।
यस्मात्परं नो महतां महच्च,
सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥२८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी समय में आपस्तम्ब मुनि यत वृत होकर गङ्गा तट पर गये थे और वहां स्नान करके हे नारद! इस नीचे बताये जाने वाले स्तोत्र से उन्होंने भगवान् शंकर देव का स्तवन किया था ॥२२॥ आपस्तम्ब जी ने कहा—काष्ठों में जो अग्नि के स्वरूप में व्यापक है—पुरुषों में जो गन्ध के रूप में वर्त्तमान है—बीजों में जो विशाल वृक्ष आदि के रूप में विद्यमान है—पाषाणों में जो हेम के रूप में स्थित है तथा समस्त भूतों में जो व्यापक रहते हैं उन्हीं भगवान् सोम नाथ की शरणागति में मैं गमन करता हूं ॥२३॥ जो लीला ही से अर्थात्

बिना किसी आभास के इस विश्व की रचना करने वाले हैं और तीनों भुवनों के धाता एवं विधाता हैं। जो इस विश्व के स्वरूप वाले सत् और असत् से परे हैं उन्हीं सोमेश्वर प्रभु के चरण कमलों की मैं शरणागति में जाता हूँ ॥२४॥ जिसका स्मरण करके शरीर धारी जीव दरिद्रता महाभिशाप और रोगादि के द्वारा स्पर्श नहीं किया जाता है और जिसका समाश्रय ग्रहण करने वाले प्राणी अपना अभीष्ट मनोरथ प्राप्त कर लिया करते हैं उन सोमेश्वर प्रभु के शरण में मैं गमन करता हूं ॥२५॥ जिसने पूर्व में त्रयीधर्म का अवेक्षण करके यहां पर ब्रह्मा आदि को समीहित किया था और इस प्रकार से जिसने दो प्रकार का शरीर बना दिया था उन्हीं सोमेश्वर प्रभु के शरण में मैं जाता हूँ ॥२६॥ जिसके लिये नमस्कार पहुँचता है—मन्त्रों से पूत हुआ हुत हवि पहुँचती है और जो पूजा की गयी है वह प्राप्त होती है तथा दिये हुए हवि को सुरगण भोगते हैं उन्हीं सोमेश्वर प्रभु की मैं शरणागति में जाता हूं ॥२७॥ जिनसे परे कोई भी प्रशस्त नहीं है और जिससे पर कुछ अन्य सूक्ष्म भी नहीं है एवं जिससे पर महानों से भी महान् कोई नहीं है उन्हीं सोमेश्वर स्वामी के चरण कमलों की मैं शरणागति में इस समय में प्राप्त होता हूं ॥२८॥

यस्याऽऽज्ञया विश्वमिदं विचित्र-
मचिन्त्यरूपं विविधं महच्च ।
एकस्थितं यद्वदनुप्रयाति,
सोमेश्वरं शरणं व्रजामि ॥२९॥

यस्मिन्विभूतिः सकलाधिपत्यं,
कर्तृत्वदातृत्वमहत्त्वमेव ।
प्रीतिर्यशः सौख्यमनादिधर्मं,
सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥३०॥

नित्यं शरण्यः सकलस्य पूज्यो,
नित्यं प्रियो यः शरणागतस्य ।

नित्यं शिवो यः सकलस्य रूपं,
सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि ॥३१
ततः प्रसन्नो भगवानाह नारद तं-
मुनि(न्वरं वृण्विति चाऽऽह त)म् ।
आत्मार्थं च परार्थं च आपस्तम्बोऽब्रवीच्छिवम् ॥३२
सर्वान्कामानाप्नुयुस्ते ये स्नात्वा देवमीश्वरम् ।
पश्येयुर्जगतामीशमस्त्वित्याह शिवो मुनिम् ॥३३
ततः प्रभृति तत्तीर्थमापस्तम्बमुदाहृतम् ।
अनाद्यविद्यातिमिरव्रातनिर्मूलनक्षमम् ॥३४

जिसकी आज्ञा से ही यह विश्व परम विचित्र अचिन्तनीय स्वरूप वाला-अनेक प्रकार का और महान् है तथा एक क्रिया से युक्त जिसके समान ही अनुसार प्रयाण किया करता है उन सोमेश्वर प्रभु की मैं शरणागति में जाता हूँ ॥२९॥ जिनमें विभूति सबका आधिपत्य-कर्तृत्व दातृत्व और महत्त्व है । जिनमें प्रीति-यश-सौख्य और अनादि धर्म विद्यमान है उन सोमेश्वर प्रभु की शरण में मैं जाता हूँ ॥३०॥ जो नित्य शरणागति में प्राप्त प्राणियों की रक्षा करने वाले हैं—जो सबके पूजने के योग्य हैं और जो शरण में समागत के नित्य ही परम प्रिय हैं—जो नित्य शिव अर्थात् मङ्गल स्वरूप हैं तथा जो सकल का स्वरूप हैं उन सोमेश्वर स्वामी की मैं शरण में प्राप्त होता हूँ ॥३१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! उसी समय में भगवान् शङ्कर परम प्रसन्न होकर उस मुनिवर आपस्तम्ब से बोले थे कि कोई भी वरदान की याचना कर लो । अपने लिये और दूसरों के लिये । आपस्तम्ब ने भगवान् शिव से कहा था ॥३२॥ जो यहाँ पर स्नान करके ईश्वर देव का दर्शन करें वे सभी मनोरथों को प्राप्त कर लिया करें-यही जगतों के ईश से प्रार्थना की थी । तब तो भगवान् शिव ने उस मुनि से कहा था कि ऐसा ही होगा ॥३३॥ तभी से वह तीर्थ आपस्तम्ब के द्वारा उदाहृत हुआ जो अनादि अविद्या के अन्धकार के समुदाय का निर्मूल करने में समर्थ है ॥३४॥

यक्षिणीसंगममाहात्म्यकथन

यक्षिणीसंगमं नाम तीर्थं सर्वफलप्रदम् ।
तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१॥
यत्र यक्षेश्वरो देवो दर्शनाद्भुक्तिमुक्तिदः ।
तत्र च स्नानमात्रेण सत्रयागफलं लभेत् ॥२॥
विश्वावसो स्वसा नाम्ना पिप्पला गुह्यहासिनी ।
ऋषीणां सत्रमगमद्गौतमीतीरवर्तिनम् ॥३॥
दृष्ट्वा तत्र ऋषीन्क्षामान्सा जहासातिगर्विता ।
या गत्वाऽश्रावय वौषडस्तु श्रौषडिति स्थिरम् ॥४॥
विस्वरेणब्रुवंती ता ते शेपुः स्राविणी भव ।
ततो नद्यभवत्तत्र यक्षिणीति सुविश्रुता ॥५॥
ततो विश्वावसुः पूज्य ऋषीन्देवं त्रिलोचनम् ।
संगम्य चैव गौतम्या तां विशापामथाकरोत् ॥६॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं यक्षिणीसंगमं स्मृतम् ।
तत्र स्नानादिदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥७॥
विश्ववासो प्रसन्नोऽभूद्यत्र शंभुः शिवान्वितः ।
शैवं तत्परमं तीर्थं दुर्गातीर्थं च विश्रुतम् ॥८॥
सर्वपापौघहरणं सर्वदुर्गतिनाशनम् ।
सर्वेषां तीर्थमुख्यानां तद्धि सारं महामुने ॥
तीर्थं मुनिवरैः ख्यातं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥९॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक यक्षिणी सङ्गम नाम वाला तीर्थ है जो सबके फलों का प्रदान करने वाला है। वहाँ पर स्नान तथा दान करने से मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त कर लिया करता है ॥१॥ जहाँ पर यक्षों के ईश्वर देव केवल दर्शन करने ही से भुक्ति और मुक्ति दोनों को दिया करते हैं और केवल स्नान करने से सत्रयाग के यजन करने का फल प्राप्त कर लिया जाता है ॥२॥ एक विश्वावसु की बहिन थी

जिसका नाम पिप्पला गुरु हासिनी था। वह एक बार गौतमी गङ्गा के तट पर निवास करने वाले ऋषियों के सत्र में गयी ॥३॥ वहां पर उसने अत्यन्त दुर्बल पतले-दुबले ऋषियों को देखा था और वह अत्यधिक गर्व वाली उनको देखकर हँस उठी थी। उसने वहां जाकर वौषट् इसको श्रौषत् ऐसा स्थिर करके श्रवण कराया था ॥४॥ उन ऋषियों ने विस्वर बोलने वाली उसको शाप दे दिया था कि स्राविणी हो जा। उसके उपरान्त ही वह नदी हो गयी थी जो यक्षिणी—इस नाम से विख्यात हो गयी थी ॥५॥ उसके पश्चात् विश्वावसु ने वहां पर ऋषियों का अभ्यर्चन किया और भगवान् त्रिलोचन देव की पूजा की थी तथा गौतमी का सङ्गम करके उस अपनी बहिन को विगत शाप वाली कर दिया था ॥६॥ तभी से आरम्भ करके वह तीर्थ यक्षिणी सङ्गम कहा गया है। वहां पर स्नान तथा दान आदि सत्कर्म करने से मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त कर लिया करता है ॥७॥ जहां पर शिव (मङ्गल) से समन्वित भगवान् शम्भु प्रसन्न हुए थे वह शैव तीर्थ और दुर्गा तीर्थ नाम से विख्यात है ॥८॥ सब मुख्य तीर्थों में वह तीर्थ सब पापों के समूह का विनाश करने वाला तथा सब महान् कष्टों को दूर भगा देने वाला है। हे महा-मुने ! वह समस्त मुख्य तीर्थों का सार है। मुनिवरों के द्वारा वह तीर्थ विख्यात किया गया है और मनुष्यों को सब सिद्धियों के प्रदान करने वाला है ॥९॥

—:※:—

शुक्लतीर्थवर्णन

शुक्लतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्।
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वकामानवाप्नुयात् ॥१
भरद्वाज इति ख्यातो मुनिः परमधार्मिकः।
तस्य पैठीनसी नाम भार्या सुकुलभूषणा ॥२

गौतमीतीरमध्यास्ते पतिव्रतपरायणा ।
अग्नीपोमीयमैन्द्राग्न पुरोडाशमकल्पयत् ॥३
पुरोडाशे श्रप्यमाणे धूमात्कश्चिदजायत ।
पुरोडाश भक्षयित्वा लोकत्रितयभीषण ॥४
प्रोवाच सत्वर क्रुद्धो भरद्वाजो द्विजोत्तम ॥५
तद्दपेर्वचन श्रुत्वा राक्षसः प्रत्युवाच तम् ॥
हव्यघ्न इति विख्यात भरद्वाज निबोध माम् ।
सध्यासुतोऽह ज्येष्ठश्च पुन प्राचीनबर्हिप ॥६
ब्रह्मणा मे वरो दत्तो यज्ञान्खाद यथासुखम् ।
ममानुजः कलिश्चापि बलवानतिभीषण. ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक शुक्ल तीर्थ—इस नाम स विख्यात है जो मनुष्यो की समस्त सिद्धियो को देने वाला है । जिस तीर्थ के केवल स्मरण से ही मनुष्य सब मनोरथो को प्राप्त कर लिया करता है ॥१॥ एक भारद्वाज नाम से प्रसिद्ध मुनि थे जो बहुत ही अधिक धार्मिक थे । उन मुनिवर की पैठीनसी नाम वाली भार्या थी जो सुकुल की भूषण स्वरूपा थी ॥२॥ वह पातिव्रत धर्म मे तत्पर रहन वाली गौतमी गङ्गा के तट पर रहा करती थी । उसन अग्नीपोमीय ऐन्द्राग्न पुरोडाश को कल्पित किया था ॥३॥ पुरोडाश के श्रप्यमाण होने पर धूम से कोई समुत्पन्न हो गया था । उसने उस पुरोडाश का भक्षण कर लिया था और वह तीनो लोको मे अत्यन्त भीषण रूप वाला था ॥४॥ उस समय मे द्विजोत्तम भरद्वाज मुनि ने अत्यन्त क्रोध से तू कौन है जो मेरे यज्ञ का यहाँ पर हनन कर रहा है—ऐसा उससे कहा था । ऋषि के इस वचन का श्रवण करके वह राक्षस उन मुनिवर से बोला ॥५॥ राक्षस ने कहा—हे भरद्वाज ! मुझको हवि के हनन करने वाला समझ लो जो कि मैं परम विख्यात हूँ । मैं सन्ध्या का ज्येष्ठ पुत्र हूँ और फिर प्राचीन बर्हिका हूँ ॥६॥ ब्रह्माजी ने मुझे वरदान दिया है कि तू सुख पूर्वक यज्ञों का भक्षण किया कर । मेरा एक भाई कलि भी है जो महान् बलशाली और अत्यन्त भीषण है ॥७॥

अहं कृष्णः पिता कृष्णो माता कृष्णा तथाऽनुजः ।
अहं मखं हनिष्यामि यूपं छेद्मि कृतान्तकः ॥८
रक्ष्यतां मे त्वया यज्ञं प्रियो धर्मः सनातनः ।
जाने त्वां यज्ञहन्तारं सद्द्विजं रक्ष मे क्रतुम् ॥९
भरद्वाज निबोधेदं वाक्यं मम समासतः ।
ब्रह्मणाऽहं पुरा शप्तो देवदानवसंनिधौ ॥१०॥
ततः प्रसादितो मया देवो लोकपितामहः ।
अमृतैः प्रोक्षयिष्यन्ति यदा त्वां मुनिसत्तमाः ॥११
तदा विशापो भविता हव्यघ्न त्वं न चान्यथा ।
एवं करिष्यसि यदा ततः सर्वं भविष्यति ॥
यद्यदाकाङ्क्षितं ब्रह्मन्तन्मिथ्या कदाचन ॥१२
भरद्वाजः पुनः प्राह सखा मेऽसि महामते ।
मखसंरक्षणं येन स्यान्मे वद करोमि तत् ॥१३
संभूय देवा दैतेया ममन्थुः क्षीरसागरम् ।
अलभन्तामृतं कष्टात्तदस्मत्सुलभं कथम् ॥१४

मैं कृष्ण हूं–मेरा पिता भी कृष्ण है–माता कृष्णा है तथा अनुज (छोटा भाई) भी कृष्ण है। मैं मख का हनन करूँगा और कृतान्तक मैं यूप का छेदन किया करता हूँ ॥८॥ भरद्वाज मुनि ने कहा—आपको मेरे इस यज्ञ की सुरक्षा करनी चाहिए। देखो, सनातन धर्म परम प्रिय होता है। हाँ, मैं आपको यज्ञों का हनन करने वाला जानता हूँ। मेरे सद्द्विज यज्ञ की आप रक्षा कीजिए ॥९॥ उस यज्ञों के हन्ता ने कहा—हे भरद्वाज ! मेरे इस वाक्य को आप संक्षेप में समझ लो। प्राचीन काल में पहिले देवों और दानवों की सन्निधि में ब्रह्माजी ने मुझे शाप दिया था ॥१०॥ उसके अनन्तर मैंने पितामह देव को प्रसन्न किया था। तब ब्रह्माजी ने कहा था कि जिस समय में श्रेष्ठ मुनिगण अमृतों के द्वारा तेरा प्रोक्षण करेंगे उस समय में हे हव्यघ्न ! तू शाप से रहित होगा, अन्यथा नहीं होगा। अर्थात् दूसरे किसी भी उपाय से तेरा शाप नहीं जायगा। इस प्रकार से जब करोगे तब ही सब कुछ होगा जो-जो भी

तुम्हारा आकाङ्क्षित है। हे ब्रह्मन् ! यह कभी भी मिथ्या नहीं होगा ॥११-१२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—भरद्वाज मुनि ने कहा था कि हे महती मतिवाले ! आप तो मेरे सखा हो। मेरे मख का संरक्षण जिस रीति से होवे वही मुझे बतलादो, वही मैं करूँ ॥१३॥ देवो और दैत्यों ने परस्पर मे एकत्र मिलकर क्षीर सागर का मन्थन किया था तभी बड़े कष्ट से उस अमृत की प्राप्ति उन्होंने की थी। वह अमृत हमको किस प्रकार से सुलभ हो सकता है ? ॥१४॥

प्रीत्या यदि प्रसन्नोऽसि सुलभं यद्वदस्व तत् ।
तदृषेर्वचनं श्रुत्वा रक्षः प्राह तदा मुदा ॥१५
अमृतं गौतमीवारि अमृतं स्वर्णमुच्यते ।
अमृतं गोभवं चाऽऽज्यममृतं सोम एव च ॥१६
एतैर्मामभिषिञ्चस्व अथ वैतैस्तथा त्रिभिः ।
गङ्गाया वारिणाऽऽज्येन हिरण्येन तथैव च ॥
सर्वेभ्योऽप्यधिकं दिव्यममृतं गौतमीजलम् ॥१७
एतदाकर्ण्य स ऋषिः परं संतोषमागतः ।
पाणावादाय गङ्गायाः सलिलामृतमादरात् ॥१८
तेनाकरोदृषी रक्षो ह्यभिषिक्तं तदा मखे ।
पुनश्च यूपे च पशावृत्विक्षु मखमण्डले ॥१९
सर्वमेवाभवच्छुक्लमभिषेकान्महात्मनः ।
तद्रक्षोऽपि तदा शुक्लो भूत्वोत्पन्नो महाबलः ॥२०
यः पुरा कृष्णरूपोऽभूत्स तु शुक्लोऽभवत्क्षणात् ।
यज्ञं सर्वं समाप्याथ भरद्वाजः प्रतापवान् ॥२१

प्रीति के साथ यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो जो सुलभ हो उसको ही बतलादो। ऋषि के उस वचन का श्रवण कर परमाधिक हर्ष से वह राक्षस उस समय मे बोला ॥१५॥ राक्षस ने कहा—इस गौतमी गङ्गा का जल अमृत है–स्वर्ण भी अमृत होता है ऐसा कहा जाता है। गौ का होने वाला घृत अमृत है और सोम अमृत है ॥१६॥ इनसे मेरा

आप अभिषिञ्चन करिए अथवा इन तीनों से मेरा प्रोक्षण करो । गङ्गा का जल-घृत और हेम से अभिषिञ्चन करो । इन सब में सबसे अधिक दिव्य अमृत गौतमी गङ्गा का जल ही होता है ॥१७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस ऋषि ने जब यह वचन सुना तो उनको विशेष सन्तोष प्राप्त हो गया था । फिर उन ऋषिवर ने बड़े ही समादर के साथ अपने हाथ में गौतमी गङ्गा के जल को ग्रहण किया था ॥१८॥ उसी जल से उसी समय में मख में ऋषि ने उस राक्षस को अभिषिक्त किया था और फिर यूपपर-पशुपर-ऋत्विजों पर और मख मण्डल पर अभिषिंचन किया था उस महात्मा के अभिषेक से सभी कुछ शुक्ल हो गये थे । वह राक्षस भी उस समय में शुक्ल होकर महान् बलवान् उत्पन्न हो गया था ॥१९-२०॥ जो पहिले कृष्ण रूप वाला था वह तुरन्त ही उसी क्षण में शुक्ल रूप वाला हो गया था । प्रताप वाले भरद्वाज ने सम्पूर्ण यज्ञ को समाप्त कर दिया था ॥२१॥

ऋत्विजोऽपि विसृज्याथ पूपं गङ्गोदकेऽक्षिपत् ।
गङ्गामध्ये तद्धि यूपमद्याप्यास्ते महामते ॥२२
अभिषिक्तं चामृतेन अभिज्ञानं नु तन्महत् ।
तत्र तीर्थे पुना रक्षो भरद्वाजमुवाच ह ॥२३
अहं यामि भरद्वाज कृतः शुक्लस्त्वया पुनः ।
तस्मात्तवात्र तीर्थे ये स्नानदानादिपूजनम् ॥२४
कुर्युस्तेषामभीष्टानि भवेयुर्यत्फलं मखे ।
स्मरणादपि पापानि नाशं यान्तु सदा मुने ॥२५
ततः प्रभृति तत्तीर्थं शुक्लतीर्थमिति स्मृतम् ।
गौतम्यां दण्डकारण्ये स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥२६
उभयोस्तीरयाः सप्तसहस्राण्यपराणि च ।
तीर्थानां मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥२७

सब ऋत्विजों को विदा करके यूप को गङ्गाजी के जल में डाल दिया था । हे महामते ! वह यूप गङ्गा के मध्य में आज भी विद्यमान है ॥२२॥ अमृत के द्वारा अभिषिक्त वह बड़ा भारी अभिज्ञान है । उस

तीर्थ मे फिर राक्षस ने भरद्वाज से कहा था ॥२३॥ राक्षस बोला—हे भरद्वाज ! मैं अब जाता हूँ आपने मुझे शुक्ल बना दिया है। इस कारण से इस तीर्थ म जो स्नान-दान-पूजन आदि करते हैं, मख मे जो फल है वह प्राप्त होगा और उनके अभीष्ट मनोरथ भी सफल हो जायगे। हे मुने ! इसके स्मरण से भी सर्वदा पाप नष्ट हो जायगे ॥२४-२५॥ तभी से आरम्भ करके यह तीर्थ शुक्ल तीर्थ कहा गया है। गौतमी में दण्डकारण्य मे स्वर्गलोक का द्वार खुला हुआ है ॥२६॥ हे मुनिशार्दूल ! गौतमी के दोनो तटो पर सर्व सिद्धियो के प्रदान करने वाले सात हजार दूसरे भी तीर्थ विद्यमान हैं ॥२७॥

वाणीसगमतीर्थवर्णन

वाणीसगममाख्यात यत्र वागीश्वरो हर: ।
तत्तीर्थं सर्वपापाना मोचन सर्वकामदम् ॥१
तत्र स्नानेन दानेन ब्रह्महत्यादिनाशनम् ।
ब्रह्मविष्णवोश्च सवादे महत्वे च परस्परम् ॥२
तयोर्मध्ये महादेवो ज्योतिर्मूर्तिरभूत्किल ।
तत्रैव वागुवाचेद देवी पुत्र तयो. शुभा: ॥३
अहमस्मि महास्तत्र अहमस्मीति वंमिथ ।
देवी वाक्तावुभौ प्राह यस्त्वस्यान्त तु पश्यति ॥४
स तु ज्येष्ठो भवेत्तस्मान्मा वाद कर्तुमर्हथ. ।
तद्वाक्याद्विष्णुरगमदधोऽह चोर्ध्वमेव च ॥५
ततो विष्णु: शीघ्रमेत्य ज्योति पार्श्व उपाविशत् ।
अप्राप्यान्तमह प्राया दूराद्दूरतर मुने ॥६
तत: श्रान्तो निवृत्तोऽह द्रष्टुमीश तु त प्रभुम् ।
तदैव मम धीरासीद्दृष्टश्चान्तो मया भृशम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक 'वाणी सङ्गम' नामक तीर्थ प्रख्यात है जहां पर वाणीश्वर हर विराजमान हैं। वह तीर्थ समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाला तथा सब पापों का मोचन करने वाला है ॥१॥ वहां पर स्नान तथा दान करने से ब्रह्महत्या आदि का भी विनाश हो जाता है। ब्रह्मा और विष्णु के सम्वाद में तथा महत्व में परस्पर में वार्त्तालाप हुआ था ॥२॥ उन दोनों के मध्य में महादेव ज्योति मूर्त्ति हुए थे। वहाँ पर ही शुभ वाक् देवी ने कहा था हे पुत्र ! तुम दोनों में कौन क्या है ॥३॥ वहाँ पर 'मैं महान् हूँ-मैं महान् हूँ-यहीं परस्पर में विवाद चल रहा था। दैवी वाणी ने उन दोनों से कहा था जो इसका अन्त देखता है वह ज्येष्ठ है। इस कारण से विवाद करने के लिये आप योग्य नहीं होते हो। उसके वाक्य से विष्णु नीचे की ओर गये थे और मैं ऊर्ध्वभाग में गया था ॥५॥ इसके अनन्तर विष्णु बहुत शीघ्र ही आकर ज्योति के पार्श्व में बैठ गये थे। हे मुने ! मैं उसका अन्त न प्राप्त करके दूर से भी अधिक दूर तक गया था ॥६॥ इसके उपरान्त मैं थक गया था और उस प्रभु को देखने के लिये मैं वापिस लौट आया था। उस समय में मेरी बुद्धि ऐसी होगई थी कि मैंने अन्त देख लिया है ॥७॥

अस्य देवस्य तद्विष्णोर्मम ज्यैष्ठ्यं स्फुटं भवेत् ।
पुनश्चापि मम त्वेवं मतिरासीन्महामते ॥८

सत्यैर्वक्त्रैः कथं वक्ष्ये पीडितोऽप्यनृतं वचः ।
नानाविधेषु पापेषु नानृतात्पातकं परम् ॥९

सत्यैर्वक्त्रैरसत्यां वा वाचं वक्ष्ये कथं त्विति ।
ततोऽहं पञ्चमं वक्त्रं गर्दभाकृतिभीषणम् ॥१०

कृत्वा तेनानृतं वक्ष्य इति ध्यात्वा चिरं तदा ।
अब्रुवं तं हरिं तत्र आसीनं जगतां प्रभुम् ॥११

अस्य चान्तो मया दृष्टस्तेन ज्यैष्ठ्यं जनार्दन ।
ममेति वदतः पार्श्वे उभौ तौ हरिशङ्करौ ॥१२

एकरूपत्वमापन्नौ सूर्याचन्द्रमसाविव ।
तौ दृष्ट्वा विस्मितो भीतश्चास्तव तावुभावपि ॥
ततः क्रुद्धौ जगन्नाथौ वाच तामिदमूचतुः ॥१३
दुष्टे त्वं निम्नगा भूया नानृतादस्ति पातकम् ॥१४

तब तो इस देव विष्णु से मेरी ज्येष्ठता स्पष्ट ही हो जायगी। हे महामते ! फिर मेरी बुद्धि ऐसी हो गई थी कि सत्यमुखों से मैं पीड़ित होता हुआ अनृत वचन कैसे कहूंगा। यों पाप तो अनेक प्रकार के होते हैं किन्तु उनमें मिथ्या भाषण से बड़ा कोई भी पाप नहीं होता है। झूठ बोलना सबसे बड़ा पाप है ॥८-९॥ इन सत्यमुखों से मैं असत्य वचन कैसे कहूंगा। इससे मैं एक पाँचवा मुख गर्दभ की आकृति वाला अत्यन्त भीषण बना कर उसके द्वारा अनृत वचन बोलूँगा— ऐसा चिरकाल तक उस समय मे ख्याल किया था और वहाँ पर समासीन जगतो के प्रभु हरि से मैं बोला था ॥१०-११॥ हे जनार्दन ! इसका अन्त मैंने देखा है इस कारण से मेरी ज्येष्ठता है। मेरी ज्येष्ठता है यह कहने वाले के पार्श्व मे हरि और शंकर दोनो सूर्य चन्द्रमा के समान एक रूपता को प्राप्त होगये थे। उन दोनों को देखकर मैं भीत तथा विस्मित हो गया था और उन दोनो का स्तवन किया था। तब तो जगत् के नाथ वे दोनो क्रुद्ध हो गये थे और वे दोनो यह वाणी से कहने लगे थे ॥१२-१३॥ हरि और हर ने कहा— हे दुष्टे ! तू निम्न अर्थात् नीचे की ओर गमन करने वाली नदी होजा क्यों कि मिथ्या भाषण से अधिक पातक नहीं होता है ॥१४॥

तत सा विह्वला भूत्वा नदीभावमुपागता ।
तद्दृष्ट्वा विस्मितो भीतस्तामब्रवमहं तदा ॥१५
यस्मादसत्यमुक्ताऽसि ब्रह्मवाचि स्थिता सती ।
तस्माददृश्या त्वं भूया. पापरूपाऽस्यसंशयम् ॥१६
एतच्छाप विदित्वा तु तौ देवौ प्रणता तदा ।
विशापत्वं प्रार्थयन्ती तुष्टाव च पुन पुन ॥१७

ततस्तुष्टौ देवदेवौ प्रार्थितौ त्रिदशार्चितौ ।
प्रीत्या हरिहरावेवं वाचं वाचमथोचतुः ॥१८

गङ्गया संगता भद्रे यदा त्वं लोकपावनी ।
तदा पुनर्वपुस्ते स्यात्पवित्रं हि सुशोभने ॥१९
तथेत्युक्त्वा साऽपि देवी गङ्गया संगताऽभवत् ।
भागीरथी गौतमी च ततश्चापि स्वकं वपुः ॥२०

देवी सा व्यगमद्ब्रह्मन्देवानामपि दुर्लभम् ।
गौतम्यां सैव विख्याता नाम्ना वाणीति पुण्यदा ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके पश्चात् वह विह्वल होकर नदी भाव को प्राप्त हो गई थी । यह देख कर आश्चर्य से युक्त और डरा हुआ मैं उस समय में उससे बोला था ॥१५॥ क्योंकि तुमने ब्रह्मा की वाणी में स्थित होकर असत्य कहा है कि बिना किसी संशय के तुम पाप रूप वाली हो गई हो ॥१६॥ इस शाप को जान कर वह वाणी उस समय में उन देवों के आगे प्रणत हो गई थी और शाप रहित होने के लिये प्रार्थना करती हुई ने बारम्बार स्तवन किया था ॥१७॥ इसके उपरान्त वे देवों के द्वारा समर्चित दोनों देव प्रार्थित होने पर सन्तुष्ट हो गये थे और हरि-हर उस वाणी से यह वचन बोले ॥१८॥ हरि और हर दोनों ने कहा—हे भद्रे ! हे सुशोभने ! तुम जब गङ्गा साथ में सङ्गत होगी उस समय में लोकों को पावन करने वाली हो जाओगी और फिर तुम्हारा शरीर पवित्र हो जायगा ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही करूँगी—यह कह कर वह देवी भी गङ्गा के साथ में सङ्गत हो गई थी । भागीरथी गौतमी और उन दोनों से अपना शरीर धारण करने वाली हो गई थी । हे ब्रह्मन् ! वह देवी देवों को भी दुर्लभ हो गई थी ॥२०॥ वाणी-इस नाम से वह पुण्य देने वाली गौतमी में ही विख्यात हो गई थी ॥२१॥

भागीरथ्यां सैव देवी सरस्वत्यभिधीयते ।
उभयत्रापि विख्यातः संगमो लोकपूजितः ॥२२

सरस्वतीसगमश्च वाणीसगम एव च ।
गौतम्या सगता देवी वाणी वाचा सरस्वती ॥२३
सर्वत्र पूजित तीर्थ तत्र वाचा शिव प्रभुम् ।
देवेश्वर पूजयित्वा विशापमगमद्यत: ॥२४
ब्रह्मा विधूय वाग्दोष्टय स्व च धामागमत्पुन: ।
तस्मात्तत्र शुचिर्भूत्वा स्नात्वा तत्र च सगमे ॥२५
वागीश्वर ततो दृष्ट्वा तावता मुक्तिमाप्नुयात् ।
दानहोमादिक किंचिदुपवासादिका क्रियाम् ॥२६
य कुर्यात्सगमे पुण्ये ससारे न भवेत्पुन: ।
एकोनविशतिशत तीर्थाना तीरयोर्द्वयो: ॥
नानाजन्मार्जिताशेषपापक्षयविधायिनाम् ॥२७

वही देवी भागीरथी गङ्गा मे 'सरस्वती' इस नाम से कही जाया करती है। दोनों ही स्थलो पर लोकों के द्वारा वन्दित सङ्गम प्रख्यात हो गया था ॥२२॥ एक सरस्वती का सङ्गम था और दूसरा वाणी सङ्गम था। गौतमी गङ्गा के साथ सङ्गत होने वाली वह वाणी देवी थी तथा भागीरथी के साथ सङ्गत होने वाली सरस्वती थी ॥२३॥ वह तीर्थ सर्वत्र पूजित है। वहाँ पर वाणी के द्वारा भगवान् शिव प्रभु पूजित हुए हैं। वहा पर देवेश्वर का पूजन करके वह शाप से रहित हो गयी थी ॥२४॥ ब्रह्माजी ने वाणी की दुष्टता को दूर करके फिर वे स्वय अपने धाम को चले गये थे। इस कारण से उस सङ्गम मे स्नान करके और परम शुचि होकर भगवान् वागीश्वर देव का दर्शन करे, बस उतने ही सत्कर्म के करने से मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है। दान-होम और उपवास आदि की क्रिया को कुछ करके जो प्राणी उस सगम मे जो कि परम पुण्यमय है अपना उद्धार करता है वह इस ससार मे फिर जन्म ग्रहण नही किया करता है। उसके दोनो तटो पर उन्नीस सौ तीर्थ हैं जो अनेक जन्मो मे सञ्चित किये हुए पापो के समुदाय को समस्त रूप से क्षय कर देने वाले है ॥२५-२७॥

विष्णुतीर्थवर्णन

विष्णुतीर्थमिति ख्यातं तत्र वृत्तमिदं शृणु ।
मौद्गल्य इति विख्यातो मुद्गलस्य सुतो ऋषिः ॥१
तस्य भार्या तु जाबाला नाम्ना ख्याता सुपुत्रिणो ।
पिता ऋषिस्तथा वृद्धो मुद्गलो लोकविश्रुतः ॥२
तस्य भार्या तथा ख्याता नाम्ना भागीरथी शुभा ।
स मौद्गल्यः प्रातरेव गङ्गां स्नाति यतव्रतः ॥३
नित्यमेव त्विदं कर्म तस्याऽऽसीन्मुनिसत्तम ।
गङ्गातीरे कुशैर्मृद्भिः शमोपुष्पैरहर्निशम् ॥४
गुरूदितेन मार्गेण स्वमानससरोरुहे ।
आवाहनं नित्यमेव विष्णोश्चक्रे स मौद्गलिः ॥५
तेनाऽऽहूतस्त्वरन्नेति लक्ष्मीभर्ता जगत्पतिः ।
वैनतेयमथाऽऽरुह्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥६
पूजितस्तेन ऋषिणा स मौद्गल्येन यत्नतः ।
प्रब्रूते च कथाश्चित्रा मौद्गल्याय जगत्प्रभुः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक विष्णु तीर्थ—इस शुभ नाम से विख्यात है। वहां पर जो वृत्त हुआ है उसको अब आप सुनिये। मुद्गल ऋषि का पुत्र मौद्गल्य इस नाम से प्रसिद्ध था ॥१॥ उसकी भार्या जावाला-इस नाम से विख्यात थी जो सुन्दर पुत्र वाली थी। उसका पिता लोकों में प्रसिद्ध तथा वृद्ध मुद्गल ऋषि था ॥२॥ उसकी भार्या परम शुभ भागीरथी नाम से प्रसिद्ध थी। यह मौद्गल्य प्रातःकाल में ही यत वृत होकर नित्य गङ्गा में स्नान किया करता था ॥३॥ हे मुनिसत्तम ! नित्य प्रति उस मुनि का यह कर्म होता था कि मौद्गलि मुनि उस गङ्गा के तट पर कुशाओं से—मृत्तिकाओं से—शमी के पुष्पों से अहर्निश गुरू के द्वारा कथित मार्ग से अपने मन के कमल में नित्य ही भगवान् विष्णु का आवाहन किया करता था ॥४-५॥ उस मुनि के द्वारा आवाहन किये हुए लक्ष्मी के स्वामी

जगत् के पति शङ्ख-चक्र और गदा के धारण करने वाले भगवान् विष्णु गरुड़ पर समारूढ़ होकर शीघ्रता से वहाँ पर समागत हो गये थे ॥६॥ उस मौद्गल्य ऋषि के द्वारा यत्न पूर्वक समर्चित हुए उन जगत् के प्रभु ने मौद्गल्य के लिये अद्भुत कथाएँ बतलाई थी ॥७॥

ततोऽपराह्णसमये विष्णुः प्राह स मौद्गलिम् ।
याहि वत्स स्वभवन श्रान्तोऽसीति पुन. पुन' ॥८
एवमुक्त. स देवेन विष्णुना याति स द्विज. ।
जगत्प्रभुस्ततो याति देवैर्युक्तः स्वमन्दिरम् ॥९
मौद्गल्योऽपि तथाऽभ्येत्य किंचिदादाय नित्यश. ।
स्वमेव भवन विद्वान्भार्यायै स्वार्जित धनम् ॥१०
ददाति स महाविष्णुचरणाब्जपरायण: ।
मौद्गल्यस्य प्रिया साऽपि पतिव्रतपरायणा ॥११
शाक मूल फल वाऽपि भर्त्राऽऽनीत तु यत्नत' ।
सुसस्कृत्याप्यतिथीना वालानां भर्तुरेव च ॥१२
दत्वा तु भोजन तेभ्यः पश्चाद्भुङ्क्ते यतव्रता ।
भुक्तवत्स्वथ सर्वेपु रात्रौ नित्य स मौद्गलिः ॥१३
विष्णो' श्रुता. कथाश्चित्रास्तेभ्यो वक्त्यथ हर्षितः ।
एव वहुतिथे काले व्यतोते चातिविस्मिता ॥
मौद्गल्यस्य रहो भार्या भर्तार वाक्यमब्रवीत् ॥१४

इसके उपरान्त दोपहर के बाद वह भगवान् विष्णु उस मौद्गलि से बोले थे कि हे वत्स ! अब तुम बहुत थान्त हो गये हो अपने घर चले जाओ। ऐसा उन्होंने बारम्बार कहा था ॥८॥ भगवान् विष्णु के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह द्विज गमन करते है। फिर जगत् के प्रभु भी देवो से समन्वित हुए अपने भवन को चले जाते हैं ॥९॥ मौद्गल्य भी उसी भाँति आकर नित्य ही कुछ लाकर वह विद्वान् अपने ही भवन मे अपना अर्जित धन अपनी भार्या को दिया करता था और वह महा विष्णु के चरण कमलो मे तत्पर रहा करता था। मौद्गल्य की जो प्रिय पत्नी थी वह भी पतिव्रत धर्म मे परायण रहने वाली थी ॥१०-११॥ शाक—

मूल अथवा फल जो भी कुछ यत्न पूर्वक अपने भर्ता के द्वारा लाया जाता था उसी का भली भाँति संस्कार करके बालकों को और अपने पति देव को तथा अतिथियों को समर्पित करके अर्थात् उन सबको भोजन कराकर उनसे जो शेष रहता था उसको पीछे यत वृत वाली वह खाया करती थी। सबके भोजन कर लेने पर रात्रि में वह मौद्गलि नित्यही परम हर्षित होकर भगवान् विष्णु से सुनी हुई विचित्र कथाओं को उन सबको कहा करता था। इस रीति से बहुत सा-समय चले जाने पर अत्यन्त विस्मित होती हुई मौद्गल्य की भार्या ने एकान्त में अपने भर्त्ता यह वाक्य कहा था ॥१२-१४॥

यदि ते विष्णुरभ्येति समीपं त्रिदशार्चित ।
तथाऽपि कष्टमस्माकं कस्मादिति जगत्प्रभुम् ॥१५
तत्पृच्छ त्वं महाप्राज्ञ यदाऽसौ विष्णुरेति च ।
यस्मिश्च स्मृतमात्रे तु जराजन्मरुजो मृतिः ॥
नाशं यान्ति कुतो दृष्टे तस्मात्पृच्छ जगत्पतिम् ॥१६
तथेत्युक्त्वा प्रियावाक्यान्मौद्गल्यो नित्यवद्धरिम् ।
पूजयित्वा विनीतश्च पप्रच्छ स कृताञ्जलिः ॥१७
त्वयि स्मृते जगन्नाथ शोकदारिद्र्य दुष्कृतम् ।
नाशं याति विपत्तिर्मे त्वयि दृष्टे कथं स्थिता ॥१८
स्वकृतं भुज्यते भूतैः सर्वैः सर्वत्र सर्वदा ।
न कोऽपि कस्यचित्किंचित्करोत्यत्र हिताहिते ॥१९
यादृशं चोप्यते बीजं फलं भवति तादृशम् ।
रसालः स्यान्न निम्बस्य बीजाज्जात्वपि कुत्रचित् ॥२०
न कृता गौतमीसेवा नार्चितौ हरिशंकरौ ।
न दत्तं यैश्च विप्रेभ्यस्ते कथं भाजनं श्रियः ॥२१

जावाला ने कहा—हे भगवन् ! यदि देवों के द्वारा समर्चित भगवान् विष्णु आपके समीप में नित्य पदार्पण किया करते हैं तो भी हमको किस कारण से ऐसा कष्ट रहा करता है ?—यही बात हे महाप्राज्ञ ! उन जगत् के प्रभु से आप पूछिये जिस समय में भगवान् विष्णु आपके समीप

में पधारा करते हैं। जिनके स्मरण मात्र से ही जरा (वृद्धता)-जन्म-रोग और मृत्यु सभी विनष्टता को प्राप्त हो जाया करते हैं फिर साक्षात् उनके दर्शन प्राप्त कर लेने पर ऐसा क्यों होता है—यह आप उन जगत् के प्रभु से पूछने का कष्ट करिए ।।१५-१६।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—अच्छा, ऐसा ही करूँगा—यह उससे कहकर अपनी प्रिय पत्नी के वचन से मौद्गल्य ने नित्य की भाँति श्री हरि भगवान् का अभ्यर्चन करके परम विनम्र होकर हाथ जोड़ते हुए उसने उनसे पूछा था ।।१७।। मौद्गल्य ने कहा—हे जगन्नाथ ! आपके केवल स्मरण के करने पर ही शोक—दारिद्र्य और दुष्कृत सब नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं फिर साक्षात् आपके दर्शन करने पर भी मेरे ऊपर यह विपत्ति क्या स्थित रहा करती है ? ।।१८।। श्री विष्णु भगवान् ने कहा—सब प्राणी अपने किये हुये कर्मों का फल सर्वत्र एवं सर्वदा भोगा करते है। यहाँ पर हित तथा अहित के विषय में कोई भी किसी का कुछ नहीं किया करता है ।।१९।। जैसा बीज भूमि मे बोया जाया करता है वैसा ही उसका फल भी होता है। कभी भी नीम के बीज से आम का फल कहीं पर भी कभी नहीं होता है ।।२०।। जिन्होंने न तो कभी गौतमी गङ्गा का सेवन किया है और न कभी हरि तथा शङ्कर प्रभु का अभ्यर्चन ही किया है तथा न कभी कुछ विप्रों को दान ही दिया है वे किस प्रकार से श्री के पात्र (अधिकारी) हो सकते हैं ? ।।२१।।

त्वया न दत्तं किंचिद्धि ब्राह्मणेभ्यो ममापि च ।
यद्दीयते तदेवेद परस्मिश्चोपतिष्ठति ।।२२

मृद्भिर्वार्भि कुशैर्मन्त्रै शुचिकर्म सदैव यत् ।
करोति तस्मात्पूतात्मा शरीरस्य च शोषणात् ।।२३

विना दानेन च क्वापि भोगावाप्तिर्नृणां भवेत् ।
सत्कर्माचरणाच्छुद्धो विरक्तः स्यात्ततो नर ।।२४

ततोऽप्रतिहतज्ञानो जीवन्मुक्तस्ततो भवेत् ।
सर्वेषां सुलभा मुक्तिर्गङ्गकया चेह पूतत. ।।२५

भुक्तिर्दानादिका सर्वभूतदु:खनिबर्हणात् ।
अथवा लप्स्यसे मुक्तिं भक्त्या भुक्तिं न लप्स्यसे ।।२६
भक्त्या मुक्तिः कथं भूयाद्भुक्तेर्मुक्तिः सुदुर्लभा ।
जाता चेद्देहिनां मुक्तिः किमन्येन प्रयोजनम् ।।२७
भक्त्या मुक्तिः सर्वपूज्या तामिच्छेयं जगन्मय ।।२८

हे विप्र ! तुमने भी कभी कुछ भी ब्राह्मणों को तथा मुझको भी अर्पित नहीं किया है । जो कुछ यहाँ पर दिया जाता है वही परलोक में उपस्थित होता है अर्थात् मिला करता है ।।२२।। तुम नित्य मृत्तिका से-कुशाओं से और मन्त्रों के द्वारा पवित्र कर्म सदा ही जो किया करते हो सो उस शरीर के शोषण करने से तुम पूतात्मा हो गये हो ।।२३।। किन्तु दान के बिना मनुष्यों को भोगों की प्राप्ति कभी भी कहीं पर नहीं होती है । सत्कर्मों के आचरण से मनुष्य शुद्ध हो जाता है और फिर वह विरक्त भी हो जाता है । इसके अनन्तर उसका ज्ञान अप्रतिहत होता है और वह जीवन्मुक्त हो जाता है अर्थात् जीवित रहते हुए मुक्त के समान रहने वाला हो जाता है । सबको यहाँ पर मेरी भक्ति से मुक्ति की प्राप्ति परम सुलभ हो जाया करती है । और दान आदि से समस्त प्राणियों के दु:खों के निवर्हण से भुक्ति का लाभ होता है अथवा भक्ति के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति की जा सकती है किन्तु भुक्ति का लाभ नहीं करोगे ।।२४-२६।। मौद्गल्य ने कहा—भक्ति से मुक्ति कैसे होती है ? भुक्ति से तो मुक्ति अत्यन्त दुर्लभ है । यदि देहधारियों की मुक्ति हो गई तो फिर अन्य से क्या लाभ है ।।२७।। हे जगन्मय ! भक्ति के द्वारा होने वाली सर्व पूज्या है । मैं उसी को चाहता हूँ ।।२८।।

एतदेवान्तरं ब्रह्मन्दीयते मामनुस्मरन् ।
ब्राह्मणायाथवाऽर्थिभ्यस्तदेवाक्षयतां व्रजेत् ।।२९
सामर्थ्यात्वाऽथ यद्द्यात्तत्तन्मात्रफलप्रदम् ।
तत्पुनर्दत्तमेवेह न भोगायात्र कल्पते ।।३०
तस्माद्देहि महाबुद्धे भोज्यं किंचिन्मम ध्रुवम् ।
अथवा विप्रमुख्याय गौतमीतीरमाश्रितः ।।३१

मौद्गल्यः प्राह तं विष्णुं देयं मम न विद्यते ।
नास्मि किंचन देहादि मत्तस्त्वयि समर्पितम् ॥३२

ततो विष्णुर्गरुत्मन्त प्राह शीघ्रं जगत्पतिः ।
इहाऽऽनयस्व कणिश ममायं चार्पयिष्यति ॥३३

ततो योग्यानय भोगान्प्राप्स्यते मनसः प्रियान् ।
आकर्ण्य स्वामिनाऽऽदिष्टं तथा चक्रे स पक्षिराट् ॥३४

विष्णुहस्ते कणान्प्रादात्स मौद्गल्यो यतव्रतः ।
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्विश्वकर्माणमब्रवीत् ॥३५

भगवान् विष्णु ने कहा—हे ब्रह्मन् ! केवल यही अन्तर है जो कुछ भी दिया जाता है वह मेरा अनुस्मरण करते हुए ही दिया जावे । चाहे वह किसी ब्राह्मण के लिये अथवा किसी अतिथि के लिये दिया जावे । ऐसा दान अक्षय हो जाता है ॥२६॥ मेरा ध्यान न करके जो भी कुछ देवे वह उतना ही फल देने वाला होता है । वह पुनः यहाँ पर दिया हुआ भोग के लिये नहीं होता है ॥३०॥ इस कारण से हे महाबुद्धिवाले ! कुछ भोजन का दान करो वह मेरा होता है यह निश्चित है । अथवा गौतमी के तट पर समाश्रित होकर मुख्य प्रिय के लिये देवे ॥३१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—फिर उस मौद्गल्य ने उन भगवान् विष्णु से कहा था कि देने के योग्य मेरे पास कुछ भी विद्यमान नहीं है । मेरा अपना देहादि कुछ भी नहीं है जो कुछ भी है वह सब आपको समर्पित किया हुआ है ॥३२॥ इसके पश्चात् जगत् के पति भगवान् विष्णु ने गरुड़ से शीघ्र ही कहा था कि यहाँ पर कणिशलाओ । यह मुझे अर्पण करेगा ॥३३॥ इसके अनन्तर यह अपने मन के प्रिय भोगों को प्राप्त कर लेगा । स्वामी के द्वारा आदेश को सुनकर उस पक्षियों के राजा ने उसी प्रकार से किया था ॥३४॥ उस यतव्रत मौद्गल्य ने भगवान् विष्णु के हाथकणों को दे दिया था । इसी बीच में विष्णु भगवान् ने विश्वकर्मा से कहा था ॥३५॥

यावच्चास्य कुले सप्त पुरुषास्तावदेव तु ।
भवितारो महाबुद्धे तावत्कामा मनीषिताः ।।
गावो हिरण्य धान्यानि वस्त्राण्याभरणानि च ।।३६
यच्च किंचिन्मनःप्रीत्यै लोके भवति भूषणम् ।
तत्सर्वमाप मौद्गल्यो विष्णुगङ्गाप्रभावतः ।।३७
गृहं गच्छेति मौद्गल्यो विष्णुनोक्तस्ततो ययौ ।
आश्रमे स्वस्य सर्वधि दृष्ट्वा ऋषिरभाषत् ।।३८
अहो दानप्रभावोऽयमहो विष्णोरनुस्मृतिः ।
अहो गङ्गाप्रभावश्च कैर्विचार्यो महानयम् ।।३९
मौद्गल्यो भार्यया सर्धं पुत्रैः पौत्रैश्च बन्धुभिः ।
पितृभ्यां बुभुजे भोगान्भुक्ति मुक्तिमवाप च ।।४०
ततः प्रभृति तत्तीर्थं मौद्गल्यं वैष्णवं तथा ।
तत्र स्नानं च दानं च भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।।४१
तत्र श्रुतिः स्मृतिर्वाऽपि तोर्थस्य स्यात्कथंचन ।
तस्य विष्णुर्भवेत्प्रीतः पापैर्मुक्तः सुखी भवेत् ।।४२
एकादश सहस्राणि तीर्थानां तीरयोर्द्वयोः ।
सर्वार्थदायिनां तत्र स्नानदानजपादिभिः ।।४३

भगवान् विष्णु बोले—जब तक इसके सात पुरुष हों तभी पर्यन्त हे ! महाबुद्धे ! इसके मनीषित काम जो भी हों वे सब पूर्ण होवें । गौऐं-सुवर्ण धान्य-वस्त्र और आभरण ये सभी हो जावें ।।३६।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—जो भी कुछ मन की प्रीति के लिये लोक में भूषण होता है वह सभी कुछ भगवान् विष्णु और गौतमी गङ्गा के प्रभाव से उस मौद्गल्य ने प्राप्त कर लिया था ।।३७।। फिर भगवान् विष्णु के द्वारा मौद्गल्ल से कहा गया था कि अपने घर पर जाओ और इसके उपरान्त वह वहाँ से चला गया था । फिर अपने आश्रम में पहुँच कर समस्त ऋद्धि को देखकर ऋषि ने कहा था ।।३८।। ऋषि ने कहा—अहो ! यह दान का महान् प्रभाव है और भगवान् विष्णु की अनुस्मृति का कैसा अद्भुत प्रभाव है ! ओहो, बहुत आश्चर्य होता है गङ्गा का ऐसा

प्रभाव है। यह महान् ही है। किनके द्वारा विचार करने के योग्य हो सकता है अर्थात् कोई भी इनके विषय में विचार नहीं कर सकते हैं ॥३६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वह मौद्गल्य ऋषि अपनी भार्या पुत्र-पौत्र-बन्धुगण तथा माता-पिता के साथ विविध भोगों के सुख को भोगकर अन्त में उसने मोक्ष प्राप्त कर ली थी ॥४०॥ तभी से लेकर वह तीर्थ मौद्गल्य एवं वैष्णव के नाम से विख्यात हो गया था। वहाँ पर स्नान करना तथा दान का देना भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करने वाला है ॥४१॥ वहाँ पर उस तीर्थ का किसी भी प्रकार से श्रवण एवं स्मरण किया जावे तो उस व्यक्ति पर भगवान् विष्णु परम प्रसन्न हो जाया करते हैं। वह पापों से मुक्त हो जाता है और सुखी हो जाता है ॥४२॥ दोनों तटों पर स्नान-दान और जप आदि के द्वारा सभी अर्थों के प्रदान करने वाले ग्यारह सहस्र तीर्थ हैं ॥४३॥

लक्ष्मीतीर्थवर्णन

लक्ष्मीतीर्थमिति ख्यातं साक्षाल्लक्ष्मीविवर्धनम्।
अलक्ष्मीनाशनं पुण्यमाख्यानं शृणु नारद ॥१
संवादश्च पुरा ह्यासील्लक्ष्म्या पुत्र दरिद्रया।
परस्परविरोधिन्यावुभे विश्वं समीयतु ॥२
ताभ्यामव्याप्तं न वस्तु तन्नास्ति भुवनत्रये।
मम ज्येष्ठ्यं मम ज्यैष्ठ्यमित्यूचतुरुभे मिथः ॥
अहं पूर्वं समुद्भूता इत्याह श्रियमोजसा ॥३
कुलं शीलं जीवितं वा देहिनामहमेव तु।
मया विना देहभाजो जीवन्तोऽपि मृता इव ॥४
दरिद्रया च सा प्रोक्ता सर्वेभ्यो ह्यधिका ह्यहम्।
मुक्तिर्मदाश्रिता नित्यं दरिद्र वचोऽब्रवीत् ॥५

काम: क्रोधश्च लोभश्च मदो मात्सर्यमेव च ।
यत्राहमस्मि यत्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥६
न भयोद्भूतिरुन्माद ईर्ष्या उद्धतवृत्तिता ।
यत्राहमस्मि तात्रैते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥७
दरिद्राया वच: श्रुत्वा लक्ष्मीस्तां प्रत्यभाषत ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक तीर्थ का शुभ नाम लक्ष्मी तीर्थ विख्यात है और यह तीर्थ साक्षात् लक्ष्मी का वर्धन करने वाला है एवं अलक्ष्मी का विनाश करने वाला है। हे नारद ! इसके परम पुण्यमय आख्यान को सुनो ॥१॥ प्राचीन समय में हे पुत्र ! लक्ष्मी का दरिद्रा का सम्वाद हुआ था । ये दोनों परस्पर में विरोध करने वाली हैं और ये दोनों ही इस विश्व में समागत हुई थीं ॥२॥ तीनों भुवनों में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं थी जो उन दोनों से व्याहृत न हो । ये दोनों परस्पर में मेरी ज्येष्ठता है—ऐसा कह रहीं थीं । मैं सबसे पूर्व में समुत्पन्न हुई हूं—यह ओज के साथ श्री को कहा था ॥३॥ श्री लक्ष्मी ने कहा—देह धारियों का कुल-शील अथवा जीवित मैं ही हूं । मेरे बिना ये देहधारी प्राणी जीवित रहते हुए भी मरे हुए के ही समान होते हैं ॥४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस दरिद्रा ने उस लक्ष्मी से कहा था कि सबसे अधिक मैं ही हूं । दरिद्रा ने इस प्रकार से कहा था कि मुक्ति तो नित्य ही मेरे समाश्रित रहा करती है ॥५॥ जहाँ पर मेरा निवास होता है वहां पर काम-क्रोध-लोभ-मद और मात्सर्य ये दुर्गुण कभी भी नहीं ठहरा करते हैं ॥६॥ वहाँ न तो भय उत्पन्न होता है-न उन्माद है ईर्ष्या भी नहीं रहा करती है और जहां मेरा वास है वहाँ पर उद्धत वृत्ति भी नहीं ठहरा करती है ॥७॥ दरिद्रा के इस वचन को सुनकर लक्ष्मी ने उसको उत्तर में कहा था ॥८॥

अलंकृतो मया जन्तु: सर्वो भवति पूजित: ।
निर्धन: शिवतुल्योऽपि सर्वैरप्यभिभूयते ॥९
देहीति वचनद्वारा देहस्था: पञ्च देवता: ।
सद्यो निर्गत्य गच्छन्ति धीश्रीह्रीशान्तिकीर्तय: ॥१०

तावद्गुणा गुरुत्वं च यावन्नार्थयते परम् ।
अर्थी चेत्पुरुषो जातः क्व गुणाः क्व च गौरवम् ॥११

तावत्सर्वोत्तमो जन्तुस्तावत्सर्वगुणालयः ।
नमस्यः सर्वलोकानां यावन्नाथयते परम् ॥१२

कष्टमेतन्महापापं निर्धनत्वं शरीरिणाम् ।
न मानयति नो वक्ति न स्पृशत्यधनं जनः ॥१३

अहमेव ततः श्रेष्ठा दरिद्रे शृणु मे वचः ॥१४

लक्ष्मी ने कहा—मेरे द्वारा भूषित सभी जन्तु पूजित हो जाया करते हैं अर्थात् समाज मे उनका बडा समादर होता है। जो धन से हीन होता है वह चाहे साक्षात् शिव के समान भी क्यों न हो किन्तु उसका सभी के द्वारा तिरस्कार ही समाज मे किया जाया करता है ॥९॥ कुछ हमको दो-जिस समय मे किसी के मुख से यह वचन निकलता है उसी वचन के साथ देह मे निवास करने वाले पाँच देवता तुरन्त निकल कर चले जाया करते हैं तथा धी-श्री शान्ति और कीर्ति भी चली जाया करती हैं ॥१०॥ तभी तक गुणो की स्थिति और गौरव मनुष्य मे रहता है जब तक वह किसी दूसरे मे याचना नहीं करता है। यदि पुरुष उत्पन्न होकर याचक बन गया तो फिर उसमे गुण और गौरव कहा से रह सकता है ? अर्थात् याचक मे ये रह ही नही सकते हैं ॥११॥ तभी तक मनुष्य उत्तम जन्तु समझा जाया करता है और वह समस्त गुणगण स युक्त हो सकता है एव सब लोकों के द्वारा नमस्कार करने के द्वारा नमस्कार करने के योग्य होता हैं जब तक वह दूसरे से किसी भी वस्तु की याचना नही किया करता है ॥१२॥ देहधारियो की निर्धनता का होना महान् पाप ही समझना चाहिए और यह एक सबसे बडा कष्ट ही होता है। धनरहित पुरुषवान तो कोई भी व्यक्ति मान समादर किया करता है और न उस निर्धन का कोई स्पर्श ही करता है ॥१३॥ हे दरिद्रे ! इसलिये मैं ही तुमसे अधिक श्रेष्ठ हूं—यह मेरा वचन तुम श्रवण करो ॥१४॥

तल्लक्ष्मीवचनं श्रुत्वा दरिद्रा वाक्यमब्रवीत् ।।१५
वक्तुं न लक्ष्मीर्ज्येष्ठाऽहमिति वं लज्जसे मुहुः ।
पापेषु रमसे नित्यं विहाय पुरुषोत्तमम् ।।१६
विश्वस्तवञ्चका नित्यं भवती श्लाघसे कथम् ।
सुखं न तादृक्त्वत्प्राप्तौ पश्चात्तापो यथा गुरुः ।।१७
न तथा जायते पुंसां सुरया दारुणो मदः ।
त्वत्संनिधानमात्रेण यथा वै विदुषामपि ।।१८
सदैव रमसे लक्ष्मीः प्रायस्त्वं पापकारिषु ।
अहं वसामि योग्येषु धर्मशीलेषु सर्वदा ।।१९
शिवविष्णवनुरक्तेषु कृतज्ञेषु महत्सु च ।
सदाचारेषु शान्तेषु गुरुसेवोद्यतेषु च ।।२०
सत्सु विद्वत्सु शूरेषु कृतबुद्धिषु साधुषु ।
निवसामि सदा लक्ष्मीस्तस्माज्ज्यैष्ठ्यं मयि स्थितम् ।।२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—लक्ष्मी के उस वचन को सुन कर दरिद्रा ने यह वाक्य कहे थे ।।१५।। दरिद्रा बोली—हे लक्ष्मी ! तुमको यह कहते हुए लज्जा भी नहीं आ रही है कि तुम बारम्बार यही करती हो कि मैं बड़ी हूं । लक्ष्मीमान् पुरुष ही तो भगवान् पुरुषोत्तम का भजन ध्यान सबका त्याग करके अहर्निश पापों में रमण किया करता है ।।१६।। तुम्हारे प्राप्त होने से तो लोग विश्वस्तों को ही दाग करते हैं अर्थात् जो लक्ष्मीमान् पुरुषों में विश्वास करते हैं उन्हीं का प्रतारण वे करते हैं यह तुम्हारा ही तो प्रभाव है फिर भी तुम अपनी बड़ी भारी श्लाघा कर रही हो कि मैं बड़ी हूं । तुम्हारे प्राप्त होने पर वैसा सुख कभी भी नहीं होता है प्रत्युत मनुष्य को महान् पश्चात्ताप ही होता है ।।१७।। मनुष्यों को सुरापान से भी उस प्रकार का दारुण मद नहीं होता है जैसा कि तुम्हारे समीप में होने ही से विद्वानों को भी यह उत्पन्न हो जाया करता है ।।१८।। हे लक्ष्मी ! तुम तो सदा ही प्रायः पापों के करने वालों में ही रमण किया करती हो । मैं तो जो योग्य और धर्मशील होते हैं उन्हीं पुरुषों में निवास किया करती हूं । मेरे निवास के जो

आश्रय पुरुष हैं वे सदा धर्मशील ही होते हैं ॥१९॥ जो शिव विष्णु मे अनुराग रखने वाले हैं-कृतज्ञ हैं महान् हैं-सदाचारी हैं-विद्वान् शूर-श्रुत बुद्धि एव साधु पुरुष है मैं उन्ही म सवदा निवास किया करती हूँ। हे लक्ष्मी! इस कारण स ज्येष्ठता तो मुझ मे ही स्थित होती है॥२०-२१॥

ब्राह्मणेषु शुचिष्मरसु व्रतचारिषु भिक्षुषु।
निर्भयेषु वसिष्यामिलक्ष्मीस्त्व शृणुते स्थितिम् ॥२२
राजवर्तिषु पापेषु निष्ठुरेषु खलेषु च।
पिशुनेषु च लब्धेषु विकृतेषु शठेषु च ॥२३
अनार्येषु कृतघ्नेषु धमघातिष सवदा।
मित्रद्रोहिष्वनिष्टेषु भग्नचित्तषु वर्तसे ॥२४
एव विवदमाने ते जग्मतुर्मामुभे अपि
तयोर्वाक्यमुपश्रुत्य मयोक्ते ते उभे अपि ॥२५
मत्त पूर्वतरा पृथ्वी आप पूर्वतरास्तत।
क्षीणा विवाद ता एव स्त्रियो जानन्ति नेतरे ॥२६
विशेषत पुनस्ताभ्य कमण्डलुभवाश्च या।
तत्रापि गौतमी देवी निश्चय कथयिष्यति॥२७
सैव सर्वार्तिसहर्त्री सव सदेहकर्तरो।
ते मद्वाक्यादभुव गत्वा भूम्या च सहिते अपि ॥२८

हे लक्ष्मी! मैं ब्राह्मणो मे पवित्रता रखने वालो मे-उत्तम व्रतों का समाचरण करने वालो म भिक्षुओ मे और भय रहित पुरुषो मे रहा करती हूँ। अब आप अपनी स्थिति के विषय म भी श्रवण कर लीजिए॥२२॥ जो राजवर्त्ती पापात्मा निष्ठुर-खल-पिशुन लुब्धक-विकृत-शठ अनार्य-कृतघ्न-सदा धर्म का घात करने वाले मित्र द्रोही-अनिष्ट और भग्न चित्त वाले पुरुष होते हैं उन्ही मे आप रहा करती हैं तात्पर्य यह है कि लक्ष्मीमान् लोगो मे उपयुक्त दुर्गुण निश्चित रूप से विद्यमान रहा करते हैं॥२३-२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसी प्रकार से वे दोनो विवाद करती हुई और अपनी २ श्लाघा करती हुई मेरे समीप मे उपस्थित हुई थी। उन दोनो के वचनो को

सुन कर मैंने उन दोनों ही से कहा था ॥२५॥ देखो, मुझसे भी पूर्व में होने वाली एवं बड़ी पृथ्वी है उस पृथ्वीसे भी पूर्व में होने वाले जल हैं अतएव वे दोनों ही स्त्री जाति हैं । यह है तुम दोनों स्त्रियों का विवाद उसको वे ही स्त्रियां जानती हैं दूसरे कोई भी नहीं जानते हैं ॥२६॥ विशेष रूप से उन दोनों से भी अधिक वे जल हैं जो कमण्डलु से समुत्पन्न हुए हैं । उनमें भी जो गौतमी गङ्गा देवी हैं वह तो निश्चित रूप से कह देंगी अर्थात् आप दोनों के विनाद का निर्णय ठीक २ बता देंगी ॥२७॥ वही देवी ऐसी हैं जो समस्त पीड़ाओं का संहार करने वाली और सन्देहों को काट देने वाली हैं । दोनों मेरे इस वचन से भूमण्डल में चली गयीं थीं और भूमि को भी अपने साथ में उन्होंने ले लिया था ॥२८॥

अद्भिश्च सहिताः सर्वा गौतमीं वयुरापगाम् ।
भूमिरापस्तयोर्वाक्यं गौतम्यं क्रमशः स्फटम् ॥२९
सर्वं निवेदयामासुर्यथावृत्तं प्रणम्य ताम् ।
दरिद्रायाश्च लक्ष्म्याश्च वाक्यं मध्यस्थवत्तदा ॥३०
शृण्वत्सु लोकपालेषु शृण्वत्यां भुवि नारद ।
शृण्वतीष्वप्सु सा गंगा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत् ॥
सप्रशस्य तथा लक्ष्मीं गौतमी वाक्यमब्रवीत् ॥३१
ब्रह्मश्रीश्च तपःश्रीश्च यज्ञश्रीः कीर्तिसंज्ञिता ।
धनश्रीश्च यशश्रीश्च विद्या प्रज्ञा सरस्वती ॥३२
भुक्तिश्रीश्चाथ मुक्तिश्च स्मृतिर्लज्जा धृतिः क्षमा ।
सिद्धिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिः शान्तिरापस्तथा मही ॥३३
अहंशक्तिरथौषध्यः श्रुतिः शुद्धिर्विभावरी ।
द्यौर्ज्योत्स्ना आशिषः स्वस्तिर्व्याप्तिर्माया उषा शिवा ॥३४
यत्किंचिद्विद्यते लोके लक्ष्म्या व्याप्तं चराचरम् ।
ब्राह्मणेष्वथ धीरेषु क्षमावत्स्वथ साधुषु ॥३५
विद्यायुक्तेषु चान्येषु भुक्तिमुक्त्यनुसारिषु ।
यद्यद्रम्यं सुन्दरं वा तत्तल्लक्ष्मीविजृम्भितम् ॥३६

किमत्र बहुनोक्तेन सर्वं लक्ष्मीमयं जगत् ।
यस्मिन्कस्मिंश्च यत्किंचिदुत्कृष्टं परिदृश्यते ॥३७

जलों के भी साथ में लेकर वे सबकी सब गौतमी नदी पर प्राप्त हो गयी थी । भूमि तथा जलों ने उन दोनों लक्ष्मी और दरिद्रता की जो वचनावली थी वह सब स्पष्ट रूप से गौतमी से कह दी थी और क्रम से दोनों के बड़े ही नेक जो प्रमाण दिये गये थे वे भी सब समझा दिये थे ॥२६॥ उन गौतमी देवी को प्रणाम करके इन दोनों का जो उपेष्ठता होने का विवाद था वह सब जैसा घटा था निवेदन कर दिया था । उस समय में दरिद्रता और लक्ष्मी के वाक्यों में कायस्थ होने के समान होकर सब लोकपालों के सुनते हुए और हे नारद ! भूमि के भी श्रवण करते हुए उस गङ्गा ने दरिद्रता से यह वाक्य कहा था तथा लक्ष्मी देवी की भली भाँति प्रशंसा करके गौतमी ने यह वचन कहा था ॥३०-३१॥ गौतमी देवी बोली—ब्रह्म श्री- तप: श्री-यज्ञ श्री-कीर्त्ति सत्ता वाली श्री धन श्री यश श्री विद्या-प्रज्ञा-सरस्वती-भुक्ति श्री-मुक्ति-स्मृति-लज्जा धृति-क्षमा सिद्धि तुष्टि-पुष्टि-शान्ति आप (जल)-मही-अहं-शक्ति-औषधियाँ-श्रुति-शुद्धि-विभावरी यौ ज्योत्स्ना-आशीष स्वास्ति-व्याप्ति माया-उषा-शिवा जो कुछ भी लोक में विद्यमान् हैं वह सम्पूर्ण चरा-चर लक्ष्मी से ही व्याप्त है । ब्राह्मणों में धीरों में-क्षमा वालों में-साधुओं में-विद्या से युक्तों में और भुक्ति तथा मुक्ति के अनुसारी अन्यों में जो-जो भी रम्य है अथवा सुन्दर हैं वह सब जगत् लक्ष्मी से ही परिपूर्ण है जिस किसी में भी जो भी कुछ उत्कृष्ट दिखलाई यहाँ पर दिखलाई दिया करता है वह सभी लक्ष्मी का ही निजृम्भित है ॥३२-३७॥

लक्ष्मीमयं तु तत्सर्वं तया हीनं न किंचन ।
अत्रेमां सुन्दरीं देवीं स्पर्धयन्ती न लज्जसे ॥३८
गच्छ गच्छेति तां गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत् ।
तत प्रभृति गङ्गाम्भो दरिद्रावैरकार्यभूत् ॥३६
तावद्दरिद्राभिभवो गङ्गा यावन्न सेव्यते ।
ततः प्रभृति तत्तीर्थमलक्ष्मीनाशनं शुभम् ॥४०

तत्र स्नानेन दानेन लक्ष्मीवान्पुण्यतान्भवेत् ।
तीर्थानां षट्सहस्राणि तस्मितीर्थे महामते ॥
देवर्षिमुनिजुष्टानां सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥४१

इस जगत् में जो कुछ भी है वह सभी लक्ष्मी से ही परिपूर्ण है और उसके बिना कुछ भी नहीं है। यहां पर इस सुन्दरी देवी के साथ स्पर्धा करती हुई तुमको लज्जा नहीं आती है ? ॥३८॥ गङ्गा ने उस दरिद्रा से जाओ-जाओ-यह वाक्य कहा था। तभी से लेकर गङ्गा का जल दरिद्रा के साथ वैर करने वाला हो गया था ॥३९॥ तभी तक इस दरिद्रा के द्वारा होने वाला तिरस्कार होता है जब तक गङ्गा का सेवन नहीं किया जाता है। तभी से आरम्भ करके वह तीर्थ लक्ष्मी का विनाश कर देने वाला परम शुभ हो गया है ॥४०॥ वहां पर स्नान करने से तथा दान करने से मनुष्य पुण्य वाला और लक्ष्मी वाला हो जाया करता है। हे महामते ! वहां पर उस तीर्थ में छै हजार तीर्थ हैं जो देवर्षियों के द्वारा सेवित हैं और समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं ॥४१॥

—:*:—

भान्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णन

भानुतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ।
तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये महापातकनाशनम् ॥१
शर्यातिरिति विख्यातो राजापरमधार्मिकः ।
शर्यातिरिति विख्यातो राजापरमधार्मिकः ।
तस्य भार्या स्थविष्ठेति रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥२
मधुच्छन्दा इति ख्यातो वैश्वमित्रो द्विजोत्तमः ।
पुरोधास्तस्य नृपतेर्ब्रह्मर्षिः शमिनां प्रभुः ॥३
दिशो विजेतुं स जगाम राजा,
पुरोधसा तेन नृपप्रवोरः ।

पुरोधस प्राह महानुभाव,
जित्वा दिशश्चाध्वनि सन्निविष्टः ॥४
पप्रच्छेदं केन खेदं गतोऽसि,
हेतुं वदस्वेति महानुभाव ।
त्वमेव राज्ये मम सवमान्य:,
समस्तविद्यानिरवद्यबोधः ॥५
विधूतपाप परितापशून्यः,
किमन्यचेता इव लक्ष्यसे त्वम् ।
जितेयमुर्वी विजिता नरेन्द्रा,
हर्षस्य हेतौ महतीह जाते ॥६
किं त्व कृशो मे वद सत्यमेव,
द्विजातिवर्यातिमहानुभाव ।
सबोध्य शर्यातिमुवाच विप्र-
श्छन्दोमधु प्रेममयी प्रियोक्तिम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—एक महान् तीर्थ का नाम भानुतीर्थ है और वह इसी नाम स विख्यात् है जो कि मनुष्यों की सब सिद्धियो को पूर्ण कर देने वाला है। इस विषय मे एक आख्यान का मैं वर्णन करता हूँ जो महान् पातको का विनाश कर देने वाला है ॥१॥ एक शर्याति नाम वाला परम धार्मिक राजा विख्यात हुआ था। उसकी भार्या स्थविष्ठा नाम वाली थी जो इस भूमण्डल मे रूप लावण्य से अनुपम थी अर्थात् अत्यधिक सुन्दरी थी जिसकी समानता रखने वाली अन्य कोई भी नही थी ॥२॥ मधुच्छन्दा इस नाम से विख्यात वैश्वमित्र उत्तम द्विज था जो शम धारियो का प्रभु ब्रह्मर्षि उस राजा का पुरोहित था ॥३॥ वह राजा उस पुरोहित के ही साथ मे दिशाओ को जीत कर मार्ग मे सन्निविष्ट महानुभाव पुरोहित जी से कहा था ॥४॥ यह पूछा था कि हे महानुभाव ! किस कारण से खेद को प्राप्त हो गये हो ? आप उसका हेतु बतलाइये। क्यो कि आप ही मेरे राज्य मे सबके द्वारा सम्मान करने के योग्य पुरुष हैं और आप सम्पूर्ण विद्याओ के द्वारा निर्दोष ज्ञान से सुसम्पन्न भी हैं

॥५॥ आपने तो अपने समस्त पापों को विधूत कर दिया है और परितापों से आप रहित हैं फिर अन्य चित्त की भाँति क्यों दिखलाई दे रहे हैं। समस्त राजा जिस के जीत लिये हैं ऐसी जीती हुई यह भूमि है और यहां पर तो महान् हर्ष का हेतु उपस्थित है फिर भी आपकी यह खिन्नता क्यों हैं ? ॥६॥ आप कृश क्यों हैं—मुझे यह सत्य-सत्य बतलाइये। हे द्विजातियों में परम श्रेष्ठ ! हे महानुभाव ! विप्र छन्दोमधु ने राजा शर्याति को सम्बोधित करके प्रेम से परिपूर्ण प्रिय उक्ति कही थी ॥७॥

शृणु भूपाल मद्वाक्यं भार्यया यदुदीरितम् ।
स्थिते यामे वयं यामो यामिनी चार्धगामिनी ॥८
स्वामिनी चास्य देहस्य कामिनी मां प्रतीक्षते ।
स्मृत्वा तत्कामिनीवाक्यं शोषं याति कलेवरम् ॥
विकारे स्मरसंजाते जीवातुर्नलिनानना ॥९
विहस्य चाब्रवीद्राजा पुरोधसमरिंदमः ॥१०
त्वं गुरुर्मम मित्रं च किमात्मानं विडम्बसे ।
किमनेन महाप्राज्ञ मम वाक्येन मानद ॥
क्षणविध्वंसिनि सुखे का नामाऽऽस्था महात्मनाम् ॥११
एतदाकर्ण्य मतिमान्मधुच्छन्दा वचोऽब्रवीत् ॥१२
यत्राऽऽनुकूल्यं दंपत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते ।
न चेद दूषणं राजन्भूषणं चातिमन्यताम् ॥१३

मधुच्छन्दा ने कहा—हे भूपाल ! आप मेरे वाक्य का श्रवण करिये जो कि भार्या ने कहा था। याम के स्थित होने पर हम चले जायेंगे। अब यामिनी अर्धगामिनी हो गई है ॥८॥ इस देह की स्वामिनी कामिनी मेरी प्रतीक्षा करती है। उस कामिनी के वाक्य का स्मरण करके मेरा यह शरीर शोष को प्राप्त हो रहा है। कामदेव के विकार होने पर वह कमलमुखी जीवित रहे ॥९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—शत्रुओं का दमन करने वाला वह राजा हँसकर पुरोहित जी से बोला ॥१०॥ राजा ने कहा—आप मेरे गुरु हैं और मेरे मित्र भी हैं। आप क्यों अपनी आत्मा

विडम्बित करते हैं ? हे महाप्राज्ञ ! हे मानद ! मेरे वचनों पर ध्यान दीजिए। महात्माओं को शाप मात्र से विध्वंस होने वाले पुत्र में क्या आस्था है ॥११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह सुनकर मतिमान् मधुच्छन्दा यह वचन बोला ॥१२॥ मधुच्छन्दा ने कहा—जहाँ पर दम्पतियों की अनुकूलता होती है वहाँ पर त्रिवर्ग की वृद्धि होती है। हे राजन् ! यह कोई दोष नहीं है इसको भूषण ही मानो ॥१३॥

आजगाम स्वकं देशं महत्या सेनया वृतः।
परीक्षार्थं च तत्प्रेम पुर्यां वार्तामदीदिशत् ॥१४
दिशो विजेतुं शर्याती याते राक्षसपुंगवः।
हत्वा रसातलं यातो राजानं सपुरोधसम् ॥१५
राज्ञा भार्या निश्चयाय प्रवृत्ता मुनिसत्तम।
वार्ता श्रुत्वा दूतमुखान्मधुच्छन्द प्रिया पुनः ॥१६
तदैवाभूद्गतप्राणा तद्विचित्रमिवाभवत्।
तस्या वृत्तं तु ते दृष्ट्वा दूता राज्ञेन्यवेदयम् ॥१७
यत्कृतं राजपत्नीभिः प्रियया च पुरोधसः।
विस्मितो दुःखितो राजा पुनर्दूतानभाषत ॥१८
शीघ्रं गच्छन्तु हे दूता ब्राह्मण्या यत्कलेवरम्।
रक्षन्तु वार्तां कुरुत राजाऽऽगन्ता पुरोधसा ॥१९
इति चिन्तातुरे राज्ञि वागुवाचाशरीरिणी ॥२०
विधास्यति गङ्गा राजंस्तव समीहितम्।
सर्वाभिषङ्गशमनी पावनी भुवि गौतमी ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—महान् सेना से युक्त वह अपने देश में आ गया था। उसके प्रेम की परीक्षा करने के लिये पुरी में ऐसी बात भेज दी थी ॥१४॥ सब दिशाओं को जीतने के लिये राजा शर्याति के चले जाने पर एक राक्षस ने पुरोहित के सहित राजा को मार दिया है और वह फिर रसातल को मार कर चला गया है ॥१५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! राजा के द्वारा भार्या ने विशेष निश्चय के लिये अपनी प्रवृत्ति की थी। और मधुच्छन्दा की जो प्रिया थी उसने दूत के मुख से यह बात सुनकर

उसी समय में वह गत प्राण वाली हो गयी थी। यह एक बहुत ही अद्भुत-सी घटना हो गयी थी। उसके समाचार को उन दूतों ने देखकर फिर उन्होंने राजा से यह सब आकर निवेदन कर दिया था ॥१६-१७॥ राजा की पत्नियों ने जो कुछ भी किया था और पुरोहित की प्रिया ने जो किया था। राजा यह सुनकर बहुत ही विस्मित हो गया था। राजा ने फिर उन दूतों से कहा था ॥१८॥ राजा बोला—हे दूतो! तुम लोग बहुत ही शीघ्र गमन करो और उस ब्रह्माजी के शरीर की रक्षा करो। यह बात वहाँ पर पहुँचा दो कि पुरोहित जी के साथ राजा हो गये हैं ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से चिन्ता से आतुर राजा के हो जाने पर आकाशवाणी ने कहा— ॥२०॥ आकाशवाणी बोली—हे राजन्! तुम्हारा यह सम्पूर्ण अभीष्ट गङ्गा कर देंगी। भूमण्डल में समस्त अभिसङ्गों के शमन करने वाली पावनी गौतमी गंगा हैं ॥२१॥

एतच्छ्रुत्वा स शर्यातिर्गौतमीतटमाश्रितः।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा तर्पयित्वा पितॄन्द्विजान् ॥२२
पुरोहितं द्विजश्रेष्ठं प्रेषयित्वा धनान्वितम्।
अन्यत्र तीर्थ सार्थेषु दानं देहि(ददौ) प्रयत्नतः ॥२३
एतत्सर्वं न जानाति राज्ञः कृत्यं पुरोहितः।
गते तस्मिन्गुरौ राजा वैश्वमित्रे महात्मनि: ॥२४
सर्वं बलं प्रेषयित्वा गङ्गातीरेऽग्निमाविशत्।
इत्युक्त्वा स तु राजेन्द्रो गङ्गां भानुं सुरानपि ॥२५
यदि दत्तं यदि हुतं यदि त्राता प्रजा मया।
तेन सत्येन सा साध्वी ममाऽऽयुष्येण जीवतु ॥२६
इत्युक्त्वाऽग्नौ प्रविष्टे तु शर्यातौ नृपसत्तमे।
तदैव जीविता भार्या राज्ञस्तस्य पुरोधसः ॥२७
अग्निप्रविष्टं राजानं श्रुत्वा विस्मयकारणम्।
पतिव्रतां तथा भार्यां मृतां जीवान्वितां पुनः ॥२८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह श्रवण करके वह राजा शर्याति राजा गौतमी गंगा के तट पर समाश्रित हो गया था। उसने ब्राह्मणों को धन

का ध्यान किया था और पितृगण का तर्पण किया था ॥२२॥ फिर उस राजा ने द्विजों में श्रेष्ठ तथा धन से समन्वित पुरोहित को प्रेषित किया था और यह किया था कि अन्यत्र तीर्थों में प्रयत्न पूर्वक दान देवें ॥ २३॥ वह पुरोहित राजा के सम्पूर्ण कृत्य को नहीं जानता था। उस गुरु महात्मा विश्वामित्र के चले जाने पर राजा ने सब सेना को ले जाकर गंगा के तीर पर अग्नि में प्रवेश कर लिया था। जिस समय में वह अग्नि में प्रवेश कर रहा था उसने कहा था कि यदि मैंने कुछ दान दिया है—हवन किया है और यदि मैंने प्रजा का त्राण किया है जो कि गंगाजी को-सूर्य को और सुरों को उद्देश्य करके किया है तो वह साध्वी उस सत्य से अथवा मेरी आयु से जीवित हो जावे ॥२४-२६॥ इतना कह कर उस नृप श्रेष्ठ शर्याति के अग्नि में प्रविष्ट होने पर उसी समय में उस राजा की भार्या जीवित हो गयी थी ॥२७॥ विस्मय का कारण अग्नि में प्रविष्ट हुआ राजा का श्रवण करके तथा अपनी पतिव्रता मरी हुई भार्या को पुनः जीवित हुई उस पुरोहित ने सुना था ॥२८॥

तदर्थं चापि राजानं त्यक्तात्मानं विशेषतः ।
आत्मनश्च पुनः कृत्यमस्मरन्नृपतेर्गुरुः ॥२९
अहमप्यग्निमाविश्य उत यास्ये प्रियान्तिकम् ।
अथवाहं तपस्तप्स्ये ततो निश्चयवान्द्विजः ॥३०

एतदेवाऽऽत्मनः कृत्यं मन्ये सुकृतमेव च ।
जीवयामि च राजानं ततो यामि प्रियां पुनः ॥३१
एतदेव शुभं मे स्यात्ततस्तुष्टाव भास्करम् ।
न ह्यन्यः कोऽपि देवोऽस्ति सर्वाभीष्टप्रदो रवेः ॥३२

नमोऽस्तु तस्मै सूर्याय मुक्तयेऽमिततेजसे ।
छन्दोमयाय देवाय आनाराध्याय ते नमः ॥३३
विरूपाय सुरूपाय त्रिगुणाय त्रिमूर्तये ।
स्थित्युत्पत्तिविनाशानां हेतवे प्रभविष्णवे ॥३४
ततः प्रसन्नः सूर्योऽभूद्वरयस्वेत्यभाषत ॥३५

राजानं देहि देवेश भार्यां च प्रियवादिनीम् ।
आत्मनश्च शुभान्पुत्रान्राज्ञश्चैव शुभान्वरान् ॥३६

उसी के लिये विशेष रूप से राजा के आत्म त्याग को उस पुरोहित ने सुना तो फिर नृपति के गुरु ने अपने कर्त्तव्य कर्म का स्मरण किया था ॥२९॥ क्या मैं भी अग्नि में प्रवेश कर जाऊँ अथवा अपनी प्रिया के समीप में गमन करूं या यहाँ पर तपश्चर्या करूँ—ऐसे विभिन्न विचारों के उत्पन्न होने के पश्चात् उस द्विज ने निश्चय किया था ॥३०॥ उस पुरोहित जी ने यही अपना कर्त्तव्य एवं सुकृत मान लिया था कि पूर्व में राजा को जीवित करूं और प्रिया के पास पीछे जाऊं ॥३१॥ मेरे लिये यही शुभ कर्म होगा। इसके अनन्तर उसने भगवान् भास्करदेव का स्तवन किया था। रवि के सिवाय अन्य कोई भी ऐसा देवता नहीं है जो सब अभीष्टों का प्रदाता हो ॥३२॥ मधुच्छन्दा ने कहा—अपरिमित तेज वाले-मोक्ष स्वरूप-छन्दोमय-उन सूर्य देव के लिये मेरा नमस्कार है-और ओङ्कारार्थ देव के लिये प्रणाम है ॥३ ॥ निरूप-सुरूप-त्रिमूर्ति,-स्थिति, उत्पत्ति और विनाश के हेतु और प्रभविष्णु प्रभु के लिये नमस्कार है ॥३४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् सूर्य देव प्रसन्न हो गये थे और सामने उपस्थित होकर उन्होंने कहा था कि वरदान माँग लो ॥३५॥ मधुच्छन्दा ने कहा—हे देवेश्वर ! राजा और प्रिय बोलने वाली भार्या को प्रदान करो और अपने शुभ पुत्रों को प्रदान करो तथा राजा के परम शुभ वरों को प्रदान कीजिए ॥३६॥

ततः प्रादाज्जगन्नाथः शर्यातिं रत्नभूषितम् ।
तां च भार्यां वरानन्यान्सर्वं क्षेममयं तथा ॥३७
ततो यातः प्रियाविष्टः प्रीतेन च पुरोधसा ।
ययौ सुखी स्वकं देशं तत्तु तीर्थं शुभं स्मृतम् ॥३८
तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च ।
ततः प्रभृति तत्तीर्थं भानुतीर्थमुदाहृतम् ॥३९
मृतसंजीवनं चैव शार्यातं चेति विश्रुतम् ।
माधुच्छन्दसमाख्यातं स्मरणात्पापनुन्मुने ॥४०

तेषु स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम्
मृत संजीवनं तत्स्यादायुरारोग्यवर्धनम् ॥४१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त जगत् के स्वामी ने रत्नों से विभूषित शर्याति को दिया था और उस भार्या को—अन्य वरदानों को और सब सोममय का प्रदान किया था ॥३७॥ इसके अनन्तर प्रिया से आविष्ट तथा प्रीति युक्त पुरोहित जी के साथ वह अपने देश को रवाना हो गया था। वह तीर्थ परम शुभ कहा गया है ॥३८॥ वहाँ पर परम गुणों वाले तीन सहस्र तीर्थ हैं तभी से लेकर वह तीर्थ भानु तीर्थ कहा गया है ॥३९॥ मृत को संजीवित करने वाला और शर्यात वह तीर्थ विख्यात है। हे मुने ! मधुच्छन्द भी कहा गया है जिसके केवल स्मरण करने से ही पाप दूर हो जाते हैं ॥४०॥ उन तीर्थों में स्नान तथा दान करने से समस्त क्रतुओं के यजन करने का फल प्राप्त किया करता है। वह मृत संजीवन और आयु तथा आरोग्य के वर्धन करने वाला है ॥४१॥

—:x:—

खड्गतीर्थवर्णन

खड्गतीर्थमिति ख्यातं गौतम्या उत्तरे तटे ।
यत्र स्नानेन दानेन मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥१

तत्र वृत्तं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः ।
पैलूष इति विख्यातः कवषस्य सुतो द्विजः ॥२

कुटुम्बभारात्परितो ह्यर्थार्थी परिधावति ।
न किमप्यासदासौ ततो वैराग्यमास्थितः ॥३

अत्यन्तविमुखे दैवे व्यर्थीभूते तु पौरुषे ।
न वैराग्यादृतेऽस्ति पण्डितस्यावलम्बनम् ॥४

इति संचिन्तयामास तदाऽसौ निःश्वसन्मुहुः ।
क्रमागतं धन नास्ति पोष्याश्च वहवो ममः ॥५
मानी चाऽऽत्मा न कष्टार्हो हा धिग्दुदवचेष्टितम् ।
स कदाचिद्वृत्तियुतो वृत्तिभिः परिवर्तयन् ॥६
न लेभे तद्धनं वृत्तेर्विरागमगमत्तदा ।
सेवा निषिद्धा या काचिद्गहना दुष्करं तपः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—गौतमी गङ्गा के तीर पर खंग तीर्थ इस नाम से एक तीर्थ विख्यात है । वहां पर स्नान करने से तथा दान करने से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करने वाला हो जाया करता है ॥१॥ हे नारद ! वहां पर जो कुछ भी हुआ था उसको मैं बतलाता हूं–तुम श्रवण करो। एक कवष का पुत्र शैलूष द्विज प्रसिद्ध था । वह कुटुम्ब के भार से घिरा हुआ था और अर्थार्थी अर्थात् धन को प्राप्त करने की इच्छा वाला इधर उधर दौड़ लगाया करता था किन्तु इसने कुछ भी प्राप्त नहीं किया था अतएव फिर यह वैराग्य को प्राप्त हो गया था ॥२-३॥ दैव के अत्यधिक विपरीत हो जाने पर अर्थात् भाग्य के बिल्कुल भी काम न देने तथा पुरुषार्थ के व्यर्थ हो जाने पर पण्डित पुरुष को वैराग्य का ही एक मात्र सहारा रह जाता है । अन्य कुछ भी नहीं है ॥४॥ उस समय में बार बार निःश्वास लेते हुए इसने यही सोचा था । क्रम से समागत धन नहीं है और मुझे पोषण करने के योग्य बहुत हैं ॥५॥ यह आत्मा मानी है अर्थात् आत्मा के अन्दर स्वाभिमान भरा हुआ है तथा अधिक कष्टों के सहने के योग्य भी नहीं है । हाय ! दुदवत् चेष्टा करने को धिक्कार है । वह किसी समय में वृत्ति से युक्त भी होता था तो अपनी वृत्तियों को बदलता रहा करता था । अर्थात् एक काम का त्याग कर दूसरा कोई अन्य कार्य किया करता था ॥६॥ किन्तु वृत्ति से भी उसने कभी भी धन की प्राप्ति नहीं की थी । उसी समय में उसको वैराग्य हो गया था । जो कोई किसी की सेवा भी की जावे तो वह भी एक निषिद्ध कर्म है और बड़ी कठिनायी होती है । तपश्चर्या करूं तो यह भी बहुत कठिन कर्म है ॥७॥

बलदाकर्षतीव मां तृष्णा सर्वत्र दुष्कृते ।
त्वयाऽपकृतमज्ञानात्तस्मात्तृष्णे नमोऽस्तु ते ॥८
एवं विचिन्त्य मेधावी तृष्णाच्छेदाय किं भवेत् ।
इत्यालोच्य स पैलूषः पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥९
ज्ञानासिना क्रोधलाभौ संसृतिं चातिदुस्तराम् ।
छेद्मीमा केन हे तात तमुपायं वद प्रभो ॥१०
ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेदित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।
तस्मादाराधयेशानं ततो ज्ञानमवाप्स्यसि ॥११
तथेत्युक्त्वा स पैलूषो ज्ञानायेश्वरमार्चयत् ।
ततस्तुष्टो महेशानो ज्ञानं प्रादाद्द्विजातये ॥
प्राप्तज्ञानो महाबुद्धिर्गाथाः प्रोवाच मुक्तिदाः ॥१२
क्रोधस्तु प्रथमं शत्रुर्निष्फलो देहनाशनः ।
ज्ञानखड्गेन तं छित्वा परमं सुखमाप्नुयात् ॥१३
तृष्णा बहुविधा माया बन्धनी पापकारिणी ।
छित्वैना ज्ञानखड्गेन सुखं तिष्ठति मानवः ॥१४

यह तृष्णा मुझको बरबस बलपूर्वक दुष्कृत करने में सर्वत्र आकर्षण किया करती है । अज्ञान से तेरे द्वारा अपकार किया गया है । हे तृष्णे ! तुम्हारे लिये मेरा नमस्कार है ॥८॥ उस मेधावी द्विज ने यह विचार किया था कि इस तृष्णा के छेदन करने के लिये क्या करना चाहिए । यह सब विचार करके उस शैलूष ने अपने पिता के समीप में जाकर यह वचन कहा था ॥९॥ शैलूष ने कहा—हे तात ! हे प्रभो ! वह कौन सा उपाय है जिसके द्वारा ज्ञान रूपी खड्ग से क्रोध और लोभ का तथा इस अति दुस्तर संसृति (संसार) का मैं छेदन कर दूँ ॥१०॥ कवष ने कहा—वैदिकी श्रुति यही है अर्थात् वेद यही आदेश देता है कि ईश्वर से ही ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिए । इसलिये तुम ईशान प्रभु की समाराधना करो फिर उन्हीं से तुमको ज्ञान की प्राप्ति हो जायगी ॥११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही करूँगा—यह कहकर उस शैलूष ने ज्ञान प्राप्त करने के लिये ईश्वर का अर्चन किया था । इसके

पश्चात् भगवान् महेश्वर प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने उस द्विज के लिये ज्ञान का प्रदान कर दिया था। जब उसे ज्ञान प्राप्त हो गया था तो महान् बुद्धिमान् वह मुक्ति के प्रदान करने वाली गाथाओं को बोला करता था ॥१२॥ शैलूष ने कहा—यह क्रोध सबसे प्रथम शत्रु है तथा देह का नाश करना निष्फल ही होता है। ज्ञानरूपी खड्ग के द्वारा उस क्रोध का विनाश करके परम सुख की प्राप्ति करनी चाहिए ॥१३॥ यह तृष्णा बहुत प्रकार की होती है-यह बन्धन में डालने वाली माया है तथा पापों के कराने वाली है। ज्ञानरूपी खड्ग से इसका छेदन करके ही मनुष्य सुखपूर्वक स्थित रह सकता है ॥१४॥

सङ्गस्तु परमोऽधर्मो देवादीनामिति श्रुतिः ।
असङ्गस्याऽऽत्मनोऽप्यस्य सङ्गोऽय परमो रिपुः ॥१५
छित्त्वैनं ज्ञानखड्गेन शिवैकत्वमवाप्नुयात् ।
संशयः परमो नाशो धर्मार्थानां विनाशकृत् ॥१६
छित्वैनं संशयं जन्तुः परसेप्सितमाप्नुयात् ।
पिशाचीव विशत्याशा निर्दहत्यखिलं सुखम् ॥
पूर्णाहन्तासिना छित्वा जीवन्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥१७
ततो ज्ञानमवाप्यासौ गङ्गातीरं समाश्रितः ।
ज्ञानखड्गेन निर्मोहस्ततो मुक्तिमवाप सः ॥१८
ततः प्रभृति तत्तीर्थं खड्गतीर्थमिति स्मृतम् ।
ज्ञानतीर्थं च कवषं सर्वकामदम् ॥१९
इत्यादिषट्सहस्राणि तीर्थान्याहुर्महर्षयः ।
अशेषपापतापौघहराणीष्टप्रदानि च ॥२०

श्रुति यह कहती है कि देवादिक का भी सङ्ग परम अधर्म होता है। सङ्ग से रहित इस आत्मा का यह संग ही परम शत्रु होता है ॥१५॥ ज्ञानरूपी खंग से इसका छेदन करके मनुष्य शिवैकत्व को प्राप्त किया करता है। धर्म और अर्थ का विनाश करने वाला संशय परम अर्थात् सबसे बड़ा नाश है ॥१६॥ जन्तु का यही कर्त्तव्य है कि इस संशय का छेदन कर डाले फिर इसके छेदन करने के बाद वह अपने परम अभी-

सिद्ध को प्राप्त कर लिया करता है। यह आशा एक पिशाचिनी के ही समान मन में प्रवेश किया करती है और सम्पूर्ण सुख का निर्दग्ध कर दिया करती है। इसका ज्ञान रूपी खड्ग से पूर्णतया हनन कर देने वाला पुरुष जीवन्मुक्त हो जाया करता है अर्थात् जीवित रहते हुए ही एक मुक्त पुरुष के तुल्य हो जाता है ॥१७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके अनन्तर उस शैलूष ने ज्ञान को प्राप्त कर लिया था और वह फिर गंगा के तट पर समाश्रित हो गया था। ज्ञानरूपी खड्ग के द्वारा वह मोह से रहित होकर फिर उसने मुक्ति की प्राप्ति कर ली थी ॥१८॥ तभी से लेकर वह तीर्थ 'खड्ग तीर्थ'—इस नाम से कहा गया है। ज्ञानतीर्थ-कवष और शैलूष भी इसके नाम हैं जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ॥१९॥ महर्षिगण इन तीर्थों को छै सहस्र बतलाते हैं जो कि समस्त पापों के तापों के समुदाय के हरण करने वाले हैं और अभीष्टों के प्रदान करने वाले होते हैं ॥२०॥

—:※:—

नारसिंहतीर्थवर्णन

नारसिंहमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे ।
तस्यानुभावं वक्ष्यामि सर्वरक्षाविधायकम् ॥१
हिरण्यकशिपुः पूर्वमभवद्बलिनां वरः ।
तपसा विक्रमेणापि देवानामपराजितः ॥२
हरिभक्तात्मजद्वेषकलुषीकृतमानसः ।
आविर्भूय सभास्तम्भाद्विश्वात्मत्वं प्रदर्शयन् ॥३
तं हत्वा नरसिंहस्तत्सैन्यमद्रावयत्तदा ।
सर्वान्हत्वा महादैत्यान्क्रमेणाऽऽजौ महामृगः ॥४
रसातलस्थाञ्शत्रूंश्च जित्वा स्वर्लोकमीयिवान् ।
तत्र जित्वा भुवं गत्वा दैत्यान्हत्वा नगस्थितान् ॥५

समुद्रस्थान्नदीसंस्थान्ग्रामस्थान्वनवासिनः ।
नानारूपधरान्दैत्यान्निजघान मृगाकृतिः ॥६
आकाशगान्वायुसंस्थाञ्ज्योतिर्लोकमुपागतान् ।
वज्रपाताधिकनखः समुध्दूतमहासटः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—गङ्गा के उत्तर तीर पर एक तीर्थ है जो 'नारसिंह'—इस नाम से प्रख्यात है। उस तीर्थ का अनुभाव का मैं वर्णन करूँगा जो सब प्रकार से रक्षा का विधायक होता है ॥१॥ पूर्व काल में एक बलवानों में भी महान् बली हिरण्यकशिपु राजा हुआ था। वह तप के द्वारा और विक्रम से भी देवों का भी अपराजित था। अर्थात् उस तप तथा विक्रम के कारण उसे पराजित नहीं कर सकते थे ॥२॥ श्री हरि भगवान् के परम भक्त अपने पुत्र के साथ द्वेषभाव रखने के कारण उसका मन कलुषित हो गया था। उसके हनन करने के लिये सभा के एक स्तम्भ से श्री हरि ने आविर्भाव किया था और यह प्रदर्शित कर दिया था कि समस्त विश्व के कण-कण में मैं विराजमान हूं ॥३॥ नरसिंह भगवान् ने उस हिरण्यकशिपु को मार गिराया था तथा उस समय में उसकी सेना को भी मार भगाया था। इन महामृग ने उस समय समस्त दैत्यों को युद्ध में क्रम से मार डाला था ॥४॥ रसातल में स्थित शत्रुओं को जीत कर यह स्वर्गलोक में गये थे वहाँ पर जो शत्रु थे उन पर विजय प्राप्त करके फिर भूलोक में पहुंच कर पर्वतों में स्थित दैत्यों का भी हनन किया था ॥५॥ जो समुद्र में जा छिपे थे उनको नदियों में रहने वालों को ग्रामों में स्थितों को और वकवासी अनेक रूपधारी दैत्यों का इन मृग के आकार धारण करने वाले प्रभु ने सब मार डाला था ॥६॥ जो आकाश में स्थित थे—जो वायु में निवास करते थे तथा जो ज्योतिर्लोक में उपागत हो गये थे उन सभी को वज्रपात से भी अधिक नखों वाले और समुद्धूत सटाओं वाले भगवान् नरसिंह जी ने मार दिया था ॥७॥

दैत्यगर्भस्त्राविगर्जी निर्जिताशेषराक्षसः ।
महानादैर्वीक्षितैश्च प्रलयानलसन्निभैः ॥८

चपेटैरङ्गविक्षेपैरसुरान्पर्यचूर्णयत् ।
एवं हत्वा बहुविधान्गौतमीमगमद्धरिः ॥९

स्वपदाम्बुजसंभूतां मनोनयननन्दिनीम् ।
तत्राम्बय इति ख्यातो दण्डकाधिपते रिपुः ॥१०

देवानां दुर्जयो योद्धा बलेन महताऽऽवृत. ।
तेनाभवन्महारौद्रं भीषणं लोमहर्षणम् ॥११
शस्त्रास्त्रवर्षणं युद्धं हरिणा दैत्यसूनुना ।
निजघान हरि. श्रीमांस्तं रिपुं ह्युत्तरे तटे ॥१२

गङ्गाया नारसिंहं तु तीर्थं त्रलोक्यविश्रुतम् ।
स्नानदानादिकं तत्र सर्वपापग्रहार्दनम् ॥१३
सर्वरक्षाकरं नित्यं जरामरणवारणम् ।
यथा सुराणां सर्वेषां न कोऽपि हरिणा समः ॥१४

दैत्यों के गर्भों के स्रवण करने वाली गर्जना से युक्त जीत लिये समस्त राक्षस जिन्होंने प्रलयकालीन अग्नि के समान महान् नाद, तीक्षण, चपेर और अङ्गों के विक्षेपों से नरसिंह भगवान् ने असुरों का चूर्ण कर दिया था। इस प्रकार से अनेक असुरों का हनन करके श्री हरि गौतमी पर चले गये थे ॥८-९॥ वह गौतमी गङ्गा अपने ही चरण कमलों से समुत्पन्न हुई थी तथा मन और नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाली थी वहाँ पर दण्डक के अधिपति का रिपु अम्बर्ण—इस नाम से विख्यात हुआ था ॥१०॥ जो देवों का भी दुर्जय योद्धा था और महान् बल विक्रम से युक्त था। उसके साथ इनका बड़ा भीषण और लोम हर्षण युद्ध हुआ था। उस दैत्य के पुत्र के साथ श्री हरि का शस्त्रों एवं अस्त्रों के वर्षा होने वाला युद्ध हुआ था ॥११॥ वह युद्ध महान् रौद्ररूप वाला था। उस उत्तर तट पर श्रीमान् हरि ने उस शत्रु का हनन किया था ॥१२॥ गङ्गा पर वह तीर्थ नारसिंह—इस नाम से विख्यात है जिसका नाम तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वहाँ पर स्नान तथा दान आदि के करने से सब पापों और ग्रहों का अर्दन हो जाया करता है ॥१३॥ वह तीर्थ सबसे

रक्षा करने वाला और नित्य ही जरा तथा मरण का वारण करने वाला है। सुरों मे श्री हरि भगवान् के समान अन्य कोई भी नहीं है ॥१४॥

तीर्थानामप्यशेषाणां तथा तत्तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा कुर्यान्नृहरिपूजनम् ॥१५
स्वर्गे मर्त्ये तले वाऽपि तस्य किंचिन्न दुर्लभम् ।
इत्याद्यष्टौ मुने तत्र महातीर्थानि नारद ॥१६
पृथक्पृथक्तीर्थकोटिफलमाहुर्मनीषिणः ।
अश्रद्धयाऽपि यन्नाम्नि स्मृते सर्वाघसंक्षयः ॥१७
भवेत्साक्षान्नृसिंहोऽसौ सर्वदा यत्र संस्थितः ।
तत्तीर्थसेवासंजातं फलं कैरिह वर्ण्यते ॥१८
यथा न देवो नृहरेरधिकः क्वापि वर्तते ।
तथा नृसिंहतीर्थेन समं तीर्थं न कुत्रचित् ॥१९

समस्त तीर्थों में भी वह तीर्थ उत्तम है। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके भगवान् नृसिंह देव का पूजन करे ॥१५॥ स्वर्ग-मर्त्य और तल में उस पुरुष को फिर कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है। हे नारद! हे मुने! ये यहाँ पर आठ महातीर्थ है ॥१६॥ मनीषी लोग पृथक् २ तीर्थों के कोटि फल कहते हैं। बिना श्रद्धा के भी जिन भगवान् के नाम का स्मरण करने पर समस्त अघों का संक्षय हो जाता है ॥१७॥ वहाँ पर भगवान् नृसिंह सर्वदा विराजमान रहा करते हैं और साक्षात्कार उनका होता है। उस तीर्थ का सेवन करने से जो पुण्य-फल होता है उसको यहाँ पर कौन वर्णन कर सकता है अर्थात् किसी में भी ऐसी शक्ति नहीं है जो उसका वर्णन कर देवे ॥१८॥ जिस प्रकार से नृसिंह भगवान् से बड़ा अन्य कोई भी देव कहीं पर भी नहीं है उसी भाँति नृसिंह तीर्थ के भी तुल्य अन्य कहीं पर भी कोई तीर्थ नहीं है ॥१९॥

—※—

भावतीर्थवर्णन

भावतीर्थमिति प्रोक्तं यत्र साक्षाद्भवः स्थितः ।
अशेषजगदन्तस्थो भूतात्मा सच्चिदाकृतिः ॥१
तत्रेमां शृणु वक्ष्यामि कथां पुण्यतमां शुभाम् ।
सूर्यवंशकरः श्रीमान्क्षत्रियाणां धुरंधरः ॥२

प्राचीनबर्हिराख्यातः सर्वधर्मेषु पारगः ।
तिस्रः कोट्यर्धकोटिश्च वर्षाणां राज्य आस्थितः ॥३
तस्येदृशं व्रतं चाऽऽसीद्यदहं यौवनच्युतः ।
भवेयं प्रियया वाऽपि पुत्रैर्वा प्रियवस्तुभिः ॥४

वियुज्येयं ततो राज्यं त्यक्ष्येऽहं नात्र संशयः ।
विवेकिनां कुलीनानामिदमेवोचितं नृणाम् ॥५
स्थीयते विजने क्वापि विरक्तं विभवक्षये ।
तस्मिन्प्रशासति महीं न वियोगः प्रियैः क्वचित् ॥६

नाऽऽधिव्याधी न दुर्भिक्षं न बन्धुकलहो नृणाम् ।
तस्मिञ्छासति राज्यं तु न च कश्चिद्वियुज्यते ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—भावतीर्थ—इस शुभ नाम से जहाँ पर जो तीर्थ कहा गया है वहाँ पर साक्षात् भव स्थित रहा करते हैं। यह भगवान् भव सम्पूर्ण जगत् के अन्त करने वाले सब भूतों का आत्मा और सत्-चित् की आकृति वाले हैं ॥१॥ वहाँ पर जो कथा है वह परम शुभ और पुण्यतम है उसका मैं वर्णन करता हूँ उसे तुम सुनो। सूर्य वंश में होने वाला, क्षत्रियों में धुरन्धर तथा सब धर्मों में पारगामी एक प्राचीन बर्हि नृप विख्यात था। वह राजा साढ़े तीन करोड़ वर्षों तक राज्य पर स्थित रहा था ॥३॥ उसका ऐसा व्रत था कि यदि मैं यौवन से च्युत हो जाऊँगा अथवा अपनी प्रिया-पुत्रगण और प्रिय वस्तुओं से वियुक्त हो जाऊँगा तो मैं राज्य का परित्याग कर दूँगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जो विवेकी और कुलीन हैं उन मनुष्यों का यही उचित भी है

॥४-५॥ विभव के क्षीण हो जाने पर विरक्तों को कहीं पर विजन प्रदेश में स्थित हो जाना चाहिए। उस राजा ने जब तक इस भूमि पर प्रशासन किया था तब तक कहीं पर भी किसी का अपने प्रियों से वियोग नहीं हुआ था ॥६॥ न तो उसके राज्य में कोई रोग था और न कोई मानसिक व्याधि ही थी—कभी भी दुर्भिक्ष (अकाल) नहीं होता था और मनुष्यों में परस्पर बन्धुओं का कलह भी नहीं था। उस राजा के शासन करने पर कोई भी किसी से वियुक्त नहीं हुआ करता था ॥७॥

ततः पुत्रार्थमकराद्यज्ञं राजा महामतिः।
ततः प्रसन्नो भगवान्वरं प्रादाद्यथेप्सितम् ॥८
गौतमीतीरसंस्थाय राज्ञे देवो महेश्वरः।
पुत्रं देहीति राजा वै भवं प्राह स भार्यया ॥९
भवः प्राह नृपं प्रीत्या पश्य नेत्रं तृतीयकम्।
ततः पश्यति राजेन्द्रे भवस्याक्षि तु मानद ॥१०
चक्षुर्दीप्त्याऽभवत्पुत्रो महिमा नाम विश्रुतः।
येनाकारि स्तुतिः पुण्या महिम्न (?) इति विश्रुता ॥११
किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने त्रिपुरान्तके।
यं नित्यमनुवर्तन्ते हरिब्रह्मादयः सुराः ॥१२
प्राप्तपुत्रश्च नृपतिस्तीर्थश्रेष्ठ्यमयाचत।
महापापमहारोगमहाव्यसनिनां नृणाम् ॥१३
नानाविपद्गणार्तानां सर्वाभिमतलब्धये।
प्रादाज्ज्यैष्ठ्यं भवश्चापि भावतीर्थं तदुच्यते ॥१४
तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
भवप्रसादादभवत्सुतः प्राचीनबर्हिषः ॥१५
महिमा गौतमीतीरे भावतीर्थं तदुच्यते।
तत्र सप्ततितीर्थानि पुण्यान्यखिलदानि च ॥१६

उस महान बुद्धिमान् राजा ने पुत्र की प्राप्ति के लिये यज्ञ किया था। इसके अनन्तर भगवान् प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने यथेप्सित वरदान दिया था ॥८॥ गौतमी के तट पर संस्थित राजा के लिये

देवेश्वर महेश ने प्रसन्न होकर वरदान के लिये कहा था। उस समय में भार्या के सहित राजा ने भगवान् भव से प्रार्थना की थी कि मुझे पुत्र प्रदान कीजिए ॥८-९॥ भगवान् महेश ने प्रीतिपूर्वक राजा से कहा था मेरा तृतीय नेत्र देखो। हे मान के देने वाले! इसके अनन्तर भगवान् भव का नेत्र राजा के देखने पर चक्षु की दीप्ति से महिमा—इस नाम से विख्यात पुत्र हुआ था जिसने पुण्यमयी स्तुति की थी जो 'महिम्न'—इस नाम से प्रसिद्ध हुई थी ॥१०-११॥ भगवान् त्रिपुरासुर के वध करने वाले प्रभु के प्रसन्न हो जाने पर क्या वस्तु अलभ्य हो सकती है अर्थात् कुछ भी अलभ्य नहीं रहा करता है जिसके नित्य ही हरि और ब्रह्मा आदि सुरगण अनुवर्ती रहा करते हैं ॥१२॥ पुत्र को प्राप्त करने वाले राजा ने उस तीर्थों में परम श्रेष्ठ से याचना की थी कि महान् पाप-महान् रोग और महान् व्यसन वाले जो मनुष्य हैं तथा जो अनेक विपदाओं के समुदाय से आर्त्त हैं उनके समस्त अभिमतों की प्राप्ति के लिये यह तीर्थ हो जावे। भगवान् भव ने भी उस तीर्थ की ज्येष्ठता प्रदान की थी। इसी लिये वह भावतीर्थ—इस नाम से कहा जाता है ॥१३-१४॥ वहाँ पर मनुष्य स्नान करने से तथा विप्रों को दान देने पर अपनी सभी कामनाओं को प्राप्त कर लिया करता है। भगवान् भव के प्रसाद से राजा प्राचीन बर्हि के पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥१५॥ गौतमी के तीर पर महिमा जो है वही भावतीर्थ—इस नाम से कहा जाता है। वहाँ पर सत्तर तीर्थ हैं जो परम पुण्यमय हैं और सब कुछ देने वाले हैं ॥१६॥

सहस्रकुण्डाख्यतीर्थवर्णन

सहस्रकुण्डमाख्यात तीर्थं वेदविदो विदुः ।
यस्य स्मरणमात्रेण सुखी संपद्यते नरः ॥१
पुरा दाशरथी रामः सेतुं बद्ध्वा महार्णवे ।
लङ्कां दग्ध्वा रिपून्हत्वा रावणादीन्रणे शरैः ॥२

वैदेहीं च समासाद्य रामो वचनमब्रवीत् ।
पश्यत्सु लोकपालेषु तस्याऽऽचार्ये पुरः स्थिते ॥३
अग्नौ शुद्धिगतां सीतां रामो लक्ष्मणसंनिधौ ।
एहि वैदेहि शुद्धाऽसि अङ्कमारोढुमर्हसि ॥४
नेत्युवाच तदा श्रीमानङ्गदो हनुमांस्तथा ।
अयोध्याया तु वैदेहि सार्धं यामः सुहृज्जनैः ॥५
तत्र शुद्धिमवाप्याथ पुनर्भ्रातृषु मातृषु ।
लौकिकेष्वपि पश्यत्सु ततः शुद्धा नृपात्मजा ॥६
अयोध्यायां सुपुण्येऽह्नि अङ्कमारोढुमर्हसि ।
अस्याश्चरित्रविषये संदेहः कस्य जायते ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सहस्रकुण्ड नाम वाला एक तीर्थ विख्यात है जिसको वेदों के वेत्ता पुरुष जानते हैं। जिस तीर्थ के स्मरण मात्र से ही मनुष्य सुखी हो जाया करता है ॥१॥ प्राचीन समय में राजा दशरथ के पुत्र श्री राम ने महा सागर में सेतु बाँधा था और लङ्का का दहन करके रण में बाणों के द्वारा रावण आदि शत्रुओं का हनन किया था ॥२॥ लङ्का से अपनी प्रिया वैदेही को प्राप्त करके श्री राम ने यह वचन कहा था। उस समय में सभी लोकपाल देख रहे थे और उनके आचार्य भी सामने स्थित थे ॥३॥ श्रीराम ने लक्ष्मण की सन्निधि में अग्नि में विशुद्धि में प्राप्त होने वाली सीताजी से कहा था—हे वैदेहि ! अब तुम विशुद्ध हो गयी हो। आओ, अब तुम मेरी गोद में बैठने के योग्य होती हो ॥४॥ उस समय में श्रीमान् अङ्गद और हनुमान ने 'यह नहीं है'—ऐसा कहा था। हे वैदेहि ! सुहृज्जनों के साथ अयोध्या में चलते हैं वहां पर पुनः भाइयों और माताओं के उपस्थित होने पर शुद्धि को प्राप्त कर सब लोकों को भी देखने पर नृपात्मजा विशुद्ध होती हुई अयोध्या में सुपुण्य दिन में अङ्क पर समारूढ होने के योग्य होती हो। इनके चरित्र के विषय में किसको सन्देह हो सकता है ॥५-७॥

लोकापवादस्तदपि निरस्यः स्वजनेषु हि ।
द्वयोर्वाक्यमनादृत्य लक्ष्मणः सविभीषणः ॥८

रामश्च जाम्ववाश्चैव तामाह्वयन् पात्मजाम् ।
स्वस्तीत्युक्ता देवताभी राज्ञोङ्कं चाऽऽरुरोह सा ॥६
मुदितास्ते ययु शीघ्रं पुष्पकेण विराजता ।
अयोध्या नगरी प्राप्य तथा राज्य स्वकं तु यत् ॥१०
मुदितास्तेऽभवन्सर्वे मदा रामानुवर्तिनः ॥
ततः कतिपयाहेपु अनार्येभ्यो विरूपिकाम् ॥११
वाच श्रुत्वा स तत्याज गुर्विणी तामयोनिजाम् ।
मिथ्यापवादमपि हि न सहन्ते कुलोन्नताः ॥१२
वाल्मीकेर्मुनिमुख्यस्य आश्रमस्य समीपत ।
तत्याज लक्ष्मण सीतामदुष्टा रुदती रुदन् ॥१३
नोल्लङ्घ्याऽऽज्ञा गुरूणामित्यसौ तदकरोद्भिया ।
तत. कतिपयाहेपु व्यतीतेपु नृपात्मजः ॥१४

तो भी स्वजनो मे लोको का अपवाद निरस न करने के योग्य है । उन दोनो के वाक्य को न मानकर लक्ष्मण-विभीपण श्रीराम और जाम्वन्त ने उस नृपात्मजा को बुलाया था । देवो के द्वारा "स्वति"—यह कही गयी वह देवी राजा के अङ्क मे समारुढ हुई थी ॥८-६॥ वे सब प्रसन्न होते हुए परम शोभित पुष्पक विमान के द्वारा शीघ्र वहा से रवाना हो गय थे । फिर अपने राज्य की राजधानी अयोध्या नगरी मे प्राप्त होकर वे सब बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे । और सब सदा श्रीराम के अनुवर्ती होकर रह रहे थे । इसके पश्चात् कुछ दिनो मे अनार्यों के द्वारा निरूपिका वाणी कही थी ॥१०-११॥ उस वचन को श्रवण करके उन श्रीराम ने अयोनिजा उस जानकी देवी का जो कि गर्भिणी थी त्याग दिया था । जो कुल म उन्नत होते है वे कभी भी मिथ्या अपवाद को सहन नही करते हैं ॥१२॥ मुनियो मे मुख्य वाल्मीकि के आश्रम के समीप मे लक्ष्मण ने स्वयं रुदन करते हुए करुण क्रन्दन करने वाली और दोष रहित उस सीता देवी का त्याग कर दिया था । गुरुओ की आज्ञा उल्लङ्घन करने के योग्य नही हुआ करती है इसी कारण से भय से उसने ऐसा यह कार्य किया था । इसके अनन्तर कुछ दिन व्यतीत हो

जाने पर नृपात्मज श्रीराम ने यज्ञ का यजन करने की इच्छा प्रकट की थी ।।१३-१४।।

रामः सौमित्रिणा सार्धं हयमेधाय दीक्षितः ।
तत्रैवाऽऽजग्मतुरुभौ रामपुत्रौ यशस्विनौ ।।१५
लवः कुशश्च विख्यातौ नारदाविव गायकौ ।
रामायणं समग्रं तद्गन्धर्वाविव सुस्वरौ ।।१६
रामस्य चरितं सर्वं गायमानौ समीयतुः ।
यज्ञवाटं राजसुतौ हेतुभिर्लक्षितौ तदा ।।१७
रामपुत्रावुभौ शूरौ वैदेह्यास्तनयाविति ।
तावानीय ततः पुत्रावभिषिच्य यथाक्रमम् ।।१८
अङ्कारूढौ ततः कृत्वा सस्वजे तौ पुनः पुनः ।
संसारदुःखखिन्नानामगतीनां शरीरिणाम् ।।१९
पुत्रालिङ्गनमेवात्र परं विश्रान्तिकारणम् ।
मुहुरालिङ्ग्य तौ पुत्रौ मुहुः स्वजति चुम्बति ।।२०
किमप्यन्तर्ध्यायति च निःश्वसत्यपि वै मुहुः ।
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राक्षसा लङ्कवासिनः ।।२१

श्रीराम सौमित्रि लक्ष्मण के साथ अश्वमेध यज्ञ करने के लिये दीक्षित हो गये थे । वहां पर परम यशस्वी दोनों श्रीराम के पुत्र वहीं पर समागत हो गये थे जिनका नाम लव और कुश विख्यात था और वे दोनों नारद मुनि के ही समान गायक थे अर्थात् गान विद्या में विशारद थे वे सम्पूर्ण रामायण को वहुत सुन्दर स्वर वाले गन्धर्वों के समान समस्त राम के चरित्र का गान करते हुए वहां पर यज्ञवाट में आ गये थे । उस समय में हेतुओं के द्वारा लक्षित राजा के पुत्र प्रतीत हो रहे थे वे दोनों शूर वैदेही के तनय श्रीराम के ही पुत्र है—ऐसा विदित हो गया था । उन दोनों पुत्रों का वहां लाकर यथाक्रम अभिषेक किया गया था ।।१५-१८।। इसके उपरान्त उन दोनों पुत्रों को श्रीराम ने अपनी गोद में समारूढ़ करके उनका आलिङ्गन किया था

और वारम्वार प्रेमालिङ्गन किया। ससार के दुःखो से खिन्न अगति वाले शरीर धारियो का पुत्र का आलिङ्गन करना ही परम विश्रान्ति का कारण होता है। श्रीराम उन दोनो पुत्रो का बारम्बार आलिङ्गन करके वारम्वार चुम्बन करते थे ॥१९ २०॥ उस समय मे श्रीराम अपने मन मे कुछ ध्यान करते जाते थे और वारम्वार लम्बी श्वास भी लेते जा रहे थे। इसी बीच मे लङ्का के निवासी राक्षस वहा पर आकर प्राप्त हो गये थे ॥२१॥

सुग्रीवो हनुमाश्चैव अङ्गदो जाम्बवास्तथा।
अन्ये च वानरा सर्वे विभीपणपुरःसरा ॥२२
ते चाऽऽगत्य नृप प्राप्ता सिंहासनमुपस्थितम्।
सीतामादृष्ट्वा हनुमानङ्गद कनकाङ्गद ॥२३
क्व गताऽयोनिजा माता एको रामोऽत्र दृश्यते।
रामेण सा परित्यक्ता इत्यूचुर्द्वारपालका ॥२४
पश्यत्सु लोकपालेपु आर्ये तत्र प्रवादिनि।
अग्नौ शुद्धिगता(ता)सीता(ता)किन्तु राजा निरङ्कुश ॥२५
उत्पन्ने लौकिके वाक्ये रामस्त्यजति ता प्रियाम्।
मरिष्याव इति ह्युक्त्वा गौतमी पुनरीयतु ॥२६
रामस्तौ पृष्ठतोऽभ्येत्य (?) अयोध्यावासिभि सह।
आगत्य गौतमी तत्राकुर्वस्ते परम तप ॥२७
स्मार स्मार निश्वसन्तस्ता सीता लोकमातरम्।
ससारास्थाविरहिता गौतमीसेवनोत्सुका ॥२८

सुग्रीव–हनुमान–अङ्गद और जाम्बवान तथा अन्य सब वानर जिनमे अग्रणी विभीपण थे वे सब आ गये थे और सिंहासन पर समवस्थित नृप के समीप मे प्राप्त हुए थ। वहाँ पर सीता माता को न देखकर हनुमान और कनकाङ्गद अङ्गद ने कहा था कि अयोनिजा सीता माता कहाँ चली गयी है? यहा पर जो केवल अकेल श्रीराम ही दिखलाई दे रहे हैं। द्वारपालो ने कह दिया था कि उनका परित्याग श्रीराम ने करा दिया है। उन्होने कहा—हे आर्ये! हे प्रवादिनो! लोकपालो के देखते

हुए अग्नि में शुद्धि को प्राप्त हुई सीता का उत्पन्न लौकिक वचनों से ही श्रीराम त्याग कर देते हैं निश्चय ही राजा निरंकुश हैं। हम सब तो मर जायेंगे--यह कहकर वे गौतमी पर चले गये थे ॥२२-२६॥ श्रीराम भी अयोध्या वासियों के साथ पीछे से वहां आ गये थे और गौतमी पर आकर उन्होंने परम दुश्चर तप किया था ॥२७॥ बारम्बार स्मरण करके और निश्वास छोड़ते हुए उस लोक माता सीता की स्मृति कर रहे थे। सभी इस संसार की आस्था से रहित हो गये थे और केवल गौतमी की सेवा करने में ही उत्सुक बने हुए थे ॥२८॥

लोकत्रयपतिः साक्षाद्रामोऽनुजसमन्वितः।
प्रातः स्नात्वा च गौतम्यां शिवाराधनतत्परः ॥२६
परितापं जहौ सर्वं सहस्रपरिवारितः।
यत्र चाऽऽसीत्स वृत्तान्तः सहस्रकुण्डमुच्यते ॥३०
दशापराणि तीर्थानि तत्र सर्वार्थदानि च।
तत्र स्नानं च दानं च सहस्रफलदायकम् ॥३१
यत्र श्रीगौतमीतीरे वसिष्ठादिमुनीश्वरः।
सर्वापत्तारकं होममकारयदघान्तकम् ॥३२
सहस्रसंख्यायुक्तेषु कुण्डेषु वसुधारया।
सर्वानपेक्षितान्कामानवापासौ महातपाः ॥३३
गौतम्याः सरिदम्बायाः प्रसादाद्राक्षसान्तकः।
सहस्रकुण्डाभिधं तदभूत्तीर्थं महाफलम् ॥३४

तीनों लोकों के स्वामी अनुज के सहित साक्षात् श्रीराम प्रातः काल में गौतमी में स्नान करके भगवान् शिव की आराधना में परायण हो गये थे ॥२६॥ वे सहस्रों से परिवारित थे और उन्होंने सब परिवार का त्याग कर दिया था। जहां पर यह वृत्तान्त हुआ था वह सहस्रकुण्ड कहा जाता है ॥३०॥ वहां पर दश दूसरे भी तीर्थ हैं जो सर्वार्थों के प्रदान करने वाले हैं। वहां पर स्नान तथा दान करना सहस्र गुना फल देने वाला होता है ॥३१॥ जहां पर श्री गौतमी के तट पर वसिष्ठादि मुनि वरों के द्वारा सब आपदाओं से तारण करने वाला और अघों का अन्त

करने वाला होम कराया था ॥३२॥ एक सहस्र संख्या से युक्त कुण्डों में वसुधारा के द्वारा ही यह होम कराया था। महा तपस्वी ने समस्त अपेक्षित मनोरथों को प्राप्त किया था ॥३३॥ सरिताओं की अम्बा गौतमी के प्रसाद से राक्षसों का अन्त किया था। यह तीर्थ महान् फल देने वाला सहस्र कुण्ड नाम वाला हो गया है ॥३४॥

--*:--

वज्रासंगमतीर्थवर्णन

वज्रासगम नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
ऋषिभि सेवित नित्य सिद्धं राजर्पिभिस्तथा ॥१
दासत्वमगमत्पूर्वं नागाना गरुडः खग ।
मातृदास्यात्तदा दु खपरिसतप्तमानस. ॥
कदाचिच्चिन्तयामास रह स्थित्वा विनिश्वसन् ॥२
त एव धन्या लोकेऽस्मिन्कृतपुण्यास्त एव हि ।
नान्यसेवा कृता यैस्तु न येषा व्यसनागमः ॥३
सुख तिष्ठन्ति गायन्ति स्वपन्ति च हसन्ति च ॥
स्वदेहप्रभवो धन्या धिग्धिगन्यवशे स्थितान् ॥४
इति चिन्तासमाविष्टो जननीमेत्य दु खित ।
पर्यपृच्छदमेयात्मा वैनतेयोऽग्र मातरम् ॥५
कस्यापराधान्मातस्त्व पितुर्वा मम वाऽन्यत ।
दासीत्वमाप्ता वद तत्कारण मम पृच्छतः ॥६
साऽब्रवीत्पुत्रमात्मीयमरुणस्यानुज प्रियम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—वज्रा सङ्गम नाम वाला तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। यह तीर्थ नित्य ही ऋषियों के द्वारा सेवित होता है तथा सिद्ध और राजर्षिगण भी उसका सेवन किया करते हैं ॥१॥ पहिले किसी समय मे गरुड पक्षी नागों की दासता को प्राप्त हो गया था। उस समय मे माता की दासता से वह दु ख से अत्यन्त

संतप्त मन वाला हो गया था। किसी समय में एकान्त में स्थित होकर लम्बी श्वांस छोड़ते हुए उसने सोचा था ॥२॥ गरुड़ ने कहा---वे ही मनुष्य इस लोक में परम धन्य हैं और वे ही प्राणी पुण्यों के करने वाले भी हैं जिन्होंने दूसरों की सेवा नहीं की है और जिनको व्यसनों का आगम भी नहीं हुआ है ॥३॥ जो सुख पूर्वक स्थित हैं-गान करते हैं-सोते हैं और हँसते हैं जो अपने देह के प्रभु हैं वे ही धन्य हैं। जो दूसरों के वश में रहने वाले हैं उनको तो धिक्कार है-धिक्कार है ॥४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा---इस प्रकार से इस चिन्ता में समाविष्ट होता हुआ वह अपनी जननी के समीप आकर बहुत ही दुःखित हो गया था उस अभयात्मा वैनतेय ने माता से पूछा था ॥५॥ गरुड़ ने कहा---हे माता ! किसका यह अपराध है, मेरा है या पिता का है अथवा अन्य किसी का है कि तुम दासीपने को प्राप्त हो गई हो ? मैं आप से पूछता हूँ आप मुझको बतलाइये कि इसका कारण क्या है ? ॥६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा---उस गरुड़ की माता ने अरुण के छोटे भाई परम प्रिय अपने पुत्र से कहा था ॥७॥

नैव कस्यापराधोऽस्ति स्वापराधो मयोदितः।
यस्या वाक्यं विपर्येति सा दासी स्यान्मयोदितम् ॥८
कद्रूश्चापि तथैवाहं सा मया संयुता ययौ।
कद्र्वा ममाभवद्वादश्छद्मनाऽहं तया जिता ॥९
विधिर्हि बलवांस्तात कां कां चेष्टां न चेष्टते।
एवं दासीत्वमगमं कद्र्वाः कश्यपनन्दन ॥
यदा दासी तु जाताऽहं दासोऽभूस्त्वं द्विजन्मज ॥१०
तूष्णीं तदा बभूवासौ गरुडोऽतीव दुःखितः।
न किंचिदूचे जननीं चिन्तयन्भवितव्यताम् ॥११
कद्रूः कदाचित्सा प्राह पुत्राणां हितमिच्छती।
आत्मनो भूतिमिच्छन्ती विनता खगमातरम् ॥१२
पुत्रः सूर्यं नमस्कर्तुं तव यात्यनिवारितः।
अहो लोकत्रयेऽप्यस्मिन्धन्याऽसि बत दास्यपि ॥१३

विनता बोली—इसमें किसी का भी अपराध नहीं है। मेरा अपना ही अपराध उदित हुआ है। मैंने कहा था कि जिसका वाक्य विपरीत होगा वह दासी होगी ॥८॥ कद्रू और मैं दोनों थी और वह मेरे साथ सयुत होकर गयी थी। कद्रू के साथ मेरा विवाद हो गया था उससे मुझ को छल से जीत लिया था ॥९॥ हे तात! विधि बड़ा बलवान् होता है और किस २ चेष्टा को किया करता है यह कुछ समझ म नहीं आता है। हे कश्यपनन्दन! इसी प्रकार से कद्रू की दासता को मैं प्राप्त हो गई हूँ। जब मैं दासी हो गयी तो ह द्विजन्मज! तुम भी दास बन गये हो ॥१०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे गरुड चुप हो गया था और वह अत्यन्त दु खित हुआ था। भवितव्यता का चिन्तन करते हुए उसन अपनी माता स कुछ भी नही कहा था ॥११॥ अपने पुत्रो के हित की इच्छा करने वाली कद्रू किसी समय मे आत्मा की विभूति की अभिलाषा रखन वाली गरुड की माता विनता से बोली थी ॥१२॥ कद्रू न कहा—तेरा पुत्र भगवान् सूर्य देव को नमस्कार करने के लिये अनिवारित रूप स जाया करता है। अहो! तीनों लोको म तू दासी होकर भी परम धन्य है ॥१३॥

स्वदु ख गूहमाना सा कद्रू प्राह सुविस्मिता ॥१४
तव पुत्रास्तु किमिति रविं द्रष्टु न यान्ति च ॥१५
पुत्रान्मदीयान्सुभगे नय नागालय प्रति।
समुद्रस्य समीपे तु तदाऽस्ते शीतल सर ॥१६
सुपर्णस्त्ववहन्नागान्कद्रू च विनता तथा।
तत प्रोवाच मुदिता वनतेयस्य मातरम् ॥१७
सुराणा नेतु निलय गरुडो मत्सुतानिति।
पुन प्राह सर्पमाता गरुड विनयान्वितम् ॥१८
पुत्रा मे द्रष्टुमिच्छन्ति हस त्रिजगता गुरुम्।
नमस्कृत्वा तत सूयमेष्यन्ति निलय मम॥
हण्डे त्वं नय पुत्रान्मे सूर्यमण्डलमन्वहम् ॥१९
सा वेपमाना विनता दीना कद्रूमभाषत ॥२०

नाहं क्षमा सर्पमातः पुत्रौ मे नेष्यते सुतान् ।
दृष्ट्वा दिनकरं देवं पुनरेव प्रयान्तु ते ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपने हार्दिक दुःख को छिपाते हुए ही सुविस्मित होती हुई उसने कद्रू से कहा, विनता बोली—क्या तुम्हारे पुत्र रविदेव के दर्शन करने को नहीं जाया करते हैं ? ॥१४-१५॥ कद्रू ने कहा—हे सुभुगे ! मेरे पुत्रों को नागालय की ओर ले जा। समुद्र के समीप में वहां पर एक शीतल सरोवर है ॥१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—सुपर्ण ने नागों का वहन किया था तथा विनता ने कद्रू का वहन किया था। उसके अनन्तर वह मुदित होकर वैनतेय की माता से कहने लगी थी कि गरुड़ मेरे पुत्रों को सुरों के निवास स्थान को ले जावे। फिर सर्पों की माता विनम्र गरुड़ से बोली ॥१७-१८॥ सर्पमाता बोली—मेरे पुत्र तीनों जगत् के गुरु हंस को देखना चाहते हैं और वहां पर सूर्यदेव को नमस्कार करके वापिस मेरे घर में ही आ जाँयगे। हे दण्डे ! तुम प्रतिदिन मेरे पुत्रों को सूर्यमण्डल में ले जाया कर ॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वह काँपती हुई विनता अत्यन्त दीन होकर कद्रू से बोली ॥२०॥ विनता ने कहा—हे सर्पों की माता ! मैं तो इस कार्य के करने में समर्थ नहीं हूं मेरा पुत्र ही तेरे पुत्रों को ले जायगा। वे दिनकर देव का दर्शन करके पुनः आ जावें ॥२१॥

विनता स्वसुतं प्राह विहगानामधीश्वरम् ।
नमस्कर्तुमथेच्छन्ति नागाः स्वामित्वमागताः ॥२२
भास्वन्तमित्युवाचेयं मां सर्पजननी हठात् ।
तथेत्युक्त्वा स गरुडो मामारोहन्तु पन्नगाः ॥२३
तदाऽऽरूढं सर्पसैन्यं गरुडं विहगाधिपम् ।
शनैः शनैरुपगमद्यत्र देवो दिवाकरः ॥
ते दह्यमानास्तीक्ष्णेन भानुतापेन विव्यथुः ॥२४
निवर्तस्व महाप्राज्ञ पतङ्गाय नमो नमः ।
अलं सूर्यस्य सदनं दग्धाः सूर्यस्य तेजसा ॥
यामस्त्वया वा गरुड विहाय त्वामथापि वा ॥२५

एव नार्गाच्यमान आदित्यं दर्शयामि व. ।
इत्युक्त्वा गगन शीघ्रं जगामाऽऽदित्यसमुख. ॥२६
दग्धभोगा निपेतुस्ते द्वीप त वीरण प्रति ।
बहव: शतसाहस्रा: पीडिता दग्धविग्रहा: ॥२७
पुत्राणामार्तसनाद पतितानां महीतले (?) ।
आश्वासितु समायाता तान्सा कद्रु: सुविह्वला ॥२८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—विनता ने विहगों के स्वामी अपने पुत्र से कहा था कि स्वामित्व भाव को प्राप्त हुए ये नाग सूर्यदेव को नमस्कार करने की इच्छा रखते हैं । यह सर्पों की माता हठात् मुझ से यह कहती है । ऐसा ही करूँगा—यह कहकर गरुड ने कहा था कि पन्नग मुझ पर समारोहण करें ॥२२-२३॥ विहगों के अधिप गरुड पर समारूढ हुए वे सर्पों का बल(सेना) धीरे २ वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर दिवाकर देव विराजमान थे । वे भानु के ताप से जो अत्यन्त तीक्ष्ण था दह्यमान होकर बहुत ही अधिक नाग व्यथित हो गये थे ॥२४॥ सर्पों ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! वापिस लौट चलो । पतङ्ग देव के लिये वारम्वार यही से नमस्कार है । सूर्य के सदन तक मत चलो । हम तो सूर्य के तेज से सदग्ध हो गये है । हे गरुड ! तेरे साथ वापिस जाते हैं अथवा तुमको भी छोडकर हम जा रहे हैं ॥२५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से नागो के द्वारा कहे गये भी गरुड ने कहा हम तो आप लोगो को आदित्य देव के दर्शन करायेंगे । यह कहकर वह बहुत ही शीघ्र आदित्य के सम्मुख चला गया था ॥२६॥ वे नाग दग्ध भोग वाले होकर उस वीरण द्वीप की ओर गिर पडे थे । सैकडो और सहस्रो ही बहुत से जले हुए शरीर वाले पीडित हो गये थे ॥२७॥ पुत्रो के उस आर्त्त ध्वनि को सुनकर जो महीतल मे निपतित हो गये थे उनको आश्वासन देने के लिये अत्यन्त विह्वल होती हुई कद्रू वहाँ पर समागत हो गयी थी ॥२८॥

उवाच विनता कद्रूस्तव पुत्रोऽतिदुष्कृतम् ।
कृतवान तिदुर्मेधा येपा शान्तिर्न विद्यते ॥२९

नान्यथा कर्तुमायाति स्वामिवाक्यं फणीश्वरः ।
स काश्यपो बृहत्तेजा यत्तत्र स्यादनामयम् ॥३०

भवेच्चैवं कथं शान्तिः पुत्राणां मम भामिनि ।
कद्रूवास्तद्वचनं श्रुत्वा विनता ह्यति भीतवत् ॥३१

पुत्रमाह महात्मानं गरुडं विहगाधिपम् ॥३२
नेदं युक्ततरं पुत्र भूषणं विनयेन हि ।
वर्तितुं युक्तमित्युक्तं वैपरीत्यं न युज्यते ॥३३

नामित्रेष्वपि कर्तव्यं सद्भिर्जिह्मं कदाचन ।
श्रोत्रिये चान्त्यजे वाऽपि समं चन्द्रः प्रकाशते ॥३४
कुर्वन्त्यनिष्टं कपटैस्त एव मम पुत्रक ।
प्रसह्य कर्तुं ये साक्षादशक्ताः पुरुषाधमाः ॥३५

कद्रू ने विनता से कहा था कि तुम्हारे पुत्र ने अत्यन्त दुष्कृत किया है। वह अत्यन्त दुष्ट बुद्धि वाला है वे ऐसे दुष्कृत हैं जिनकी कोई भी शान्ति नहीं है ॥२६॥ अन्यथा फणीश्वर स्वामि वाक्य को करने को नहीं आता है। वह काश्यप बृहत् तेज वाला है यदि यहाँ पर अनामय हो। इस प्रकार से कैसे शान्ति होवेगी, हे भामिनि ! मेरे पुत्रों की शान्ति का कोई भी उपाय नहीं है। कद्रू के इस वचन का श्रवण करके विनता अत्यन्त भीत की भाँति विहगों के स्वामी महात्मा गरुड़ से बोली। विनता ने कहा—हे पुत्र ! यह अधिक युक्त नहीं है। विनय के द्वारा ही भूषित होता है। अतः विनय का ही वर्ताव करना उचित है और इसके व्यवहार करना युक्त नहीं है ॥३०-३३॥ जो कोई अमित्र हों उनके साथ भी सत्पुरुषों को कुटिलता का व्यवहार कभी भी नहीं करना चाहिए। चाहे कोई वेदों का ज्ञाता श्रोत्रिय हो या कोई अन्त्यज हो सबके घर में चन्द्रमा समान रूप से ही प्रकाश दिया करता है ॥३४॥ हे मेरे पुत्र ! जो कपट के द्वारा व्यवहार किया करते हैं अथवा अनिष्ट करते हैं ऐसे वे ही पुरुष होते हैं जो पुरुषाधम साक्षात् रूप से बलपूर्वक करने में असमर्थ होते हैं ॥३५॥

विनता च तत प्राह कद्रू ता सर्पमातरम् ॥३६

किं कृत्वा शान्तिरभ्येति पुत्राणा ते करोमि तव ।

जरया तु गृहीतास्ते वद शान्ति करोमि तत् ॥३७

कद्रूरप्याह विनता रसातलगत पय ।

तेनाभिषेचिताना मे पुत्राणा शान्तिरेष्यति ॥३८

कद्रूवास्तद्वचन श्रुत्वा रसातलगत पय ।

क्षण नैव समानीय नागास्तानभ्यषेचयत् ॥

तत प्रोवाच गरुडो मघवान शतक्रतुम् ॥३९

मेघाश्चाप्यत्र वर्षन्तु त्रैलोक्यस्योपकारिण ॥४०

तथा ववर्ष पर्जन्यो नागानामभवच्छिवम् ।

रसातलभव गाङ्ग नागसजीवन पय ॥४१

जराशोकविनाशार्थमानीत गरुडेन यत् ।

यत्राभिषेचिता नागास्तन्नागालयमुच्यते ॥४२

श्री ब्रह्माजी न कहा—इसक उपरात विनता ने सर्पों की माता कद्रू स कहा था ॥३६॥ विनता बोली—क्या करने से तरे पुत्रों की शाति प्राप्त होगी वही मैं करूँ वे जरा से गृहीत हुए हैं । मुझे बतलाओ वही मैं शाति का उपाय करूँ ॥३७॥ श्री ब्रह्माजी न कहा—कद्रू ने भी विनता स कहा था कि पय रसातल गत है । उसके द्वारा अभिषिञ्चन किय जाने पर मेरे पुत्रो को शाति की प्राप्ति होगी ॥३८॥ कद्रू के उस वचन का श्रवण करके विनता ने एक ही क्षण म रसातल मे गये हुए पय को लाकर उसस नागों का अभिषिञ्चन किया था । इसके पश्चात् गरुड ने शतक्रतु मघवा स कहा था ॥३९॥ गरुड बोला—त्रैलोक्य के उपकार करने वाल मेघ यहाँ पर वर्षा करें ॥४०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी भाति मेघ ने वर्षा की थी और नागो का कल्याण हुआ था । रसातल मे रहन वाला गङ्गाजी का जल नागो को सजीवन प्रदान करने वाला है ॥४१॥ जरा और शोक के विनाश क लिये गरुड के द्वारा वह लाया गया था । जहा पर नागो का अभिषेक हुआ है वह नागालय कहा जाता है ॥४२॥

गरुडेन यतो वारि आनीतं तद्रसातलात् ।
तद्गाङ्गं वारि सर्वेषां सर्वपापप्रणाशनम् ॥४३
जराया वारणं यस्मान्नागानामभवच्छिवम् ।
रसातलभवं गाङ्गं नागसंजीवनं यतः ॥४४
जराशोकविनाशार्थं गङ्गाया दक्षिणे तटे ।
साक्षादमृतसंवाहा वंजरा साऽभवन्नदी ॥४५
जरादारिद्रयसंतापहारिणी क्लेशवारिणी ।
रसातलभवा गङ्गा मर्त्यलोकभवा तु या ॥४६
तयोश्च संगमो यः स्यात्किं पुनस्तत्र वर्ण्यते ।
यस्यानुस्मरणादेव नाशं यान्त्यघसंचयाः ॥४७
तत्र च स्नानदानानां फलं को वक्तुमीश्वरः ।
सपादं तत्र तीर्थानां लक्षमाहुर्मनीषिणः ॥४८
सर्वसंपत्तिदातॄणां सर्वपापौघहारिणाम् ।
वंजरासंगमसमं तीर्थं क्वापि न विद्यते ॥
यदनुस्मरणेनापि विपद्यन्ते विपत्तयः ॥४९

गरुड़ के द्वारा जहाँ रसातल से जल लाया गया था वह गंगा का जल है जो सबके सम्पूर्ण पापों का प्रणाश करने वाला है ॥४३॥ जिससे नागों की जरा का वारण हुआ है और उनका कल्याण हुआ वह रसातल में रहने वाला गङ्गा का नाम संजीवन है ॥४४॥ गङ्गा के दक्षिण तट पर जरा और शोक के विनाश के लिये साक्षात् अमृत के संवाह वाली वंजरा है वह नदी हो गयी है ॥४५॥ रसातल में उत्पन्न होने वाली अथवा मनुष्य लोक में उद्भव प्राप्त करने वाली जो गंगा है वह जरा-दारिद्रय और सन्ताप को हरण करने वाली हैं तथा क्लेशों को हटा देने वाली है ॥४६॥ उन दोनों का यदि सङ्गम हो जावे तो फिर उसके माहात्म्य के विषय में वर्णन ही क्या किया जा सकता है। अर्थात् अत्यधिक महिमा है। जिसके केवल स्मरण भर कर लेने से अघों के समुदाय नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥४७॥ वहाँ पर जो स्नान होवे

अथवा दान होवे उसके पुण्य फल को कौन कहने की सामर्थ्य रख सकता है। मनीषीगण वहाँ पर सवा लाख तीर्थ बतलाते हैं ॥४८॥ सर्व सम्पत्तियों के प्रदान करने वाला समस्त पापों के समूहों का नाश करने वाली वजरा सङ्गम के समान अन्य कहीं भी कोई भी तीर्थ नहीं है जिसके स्मरण से ही विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥४६॥

देवागमतीर्थवर्णन

देवागम नाम तीर्थं सर्वकामप्रद शिवम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रद नृणां पितृणां तृप्तिकारकम् ॥१

तत्र वृत्त समाख्यास्ये तव यत्नेन नारद ।
देवानामसुराणा च स्पर्धाऽभूद्धकहेतवे ॥२

स्वर्गं सुराणामभवदसुराणामिलाऽभवत् ।
कर्मभूमिमवष्टम्य असुरा सर्वतोऽभवन् ॥३

देवानां यज्ञभागाश्च दातृन्घ्नन्त्यसुरास्तत ।
तत. सुरगणा सर्वे यज्ञभागैर्विना कृता. ॥४

व्यथिता मामुपाजग्मु किं कृत्यमिति चाब्रुवन् ।
मया चोक्ता सुरगणा युद्धे जित्वाऽसुरान्बलात् ॥५

भुव प्राप्स्यथ कर्माणि हवींषि च यशांसि च ।
तथेत्युक्त्वा गता देवा भूमिं ते समरार्थिन ॥६

दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसा बलदर्पिता ।
एकीभूत्वा ययुस्तेऽपि जयिनो युद्धकाङ्क्षिण ॥७

हे नारद ! वहाँ पर जो भी घटित हुआ मैं उसको तुम्हारे कर्ण गोचर करूँगा और यत्नपूर्वक बताऊँगा। एक बार धन के लिये देवों और असुरों की स्पर्द्धा (होड़ा होड़ी) हो गई थी ॥२॥ सुरों का स्वर्ग

हो गया था और असुरों की इला पृथ्वी हो गई थी। कर्मों के करने की भूमि है—इस की लालसा से युक्त असुर सर्वत्र हो गये अर्थात् हर जगह अधिकार जमा लिया था ॥२-३॥ इसके अनन्तर तो यह हुआ था कि जो देवों के लिये यज्ञ भाग दिया करते हैं उनको असुर मार दिया करते थे। इसका यह परिणाम हुआ कि तब से सब देवगण यज्ञ भागों से रहित कर दिये गये थे ॥४॥ समस्त देवगण अपना भोजनीय भाग न मिलने पर बहुत ही अधिक व्यथित हुए और मेरे पास दौड़कर आये थे। वे मुझसे बोले—कि अब क्या कार्य करना चाहिए। मैंने उन सुरों से कहा था कि युद्ध में बलपूर्वक असुरों के ऊपर विजय प्राप्त करना ही परम आवश्यक है ॥५॥ तभी तुम सब लोग सुख को प्राप्त करोगे तथा भू को-कर्मों को-हवियों को और यश को भी प्राप्त करोगे। ऐसा ही किया जायेगा—यह स्वीकार करके देवगण युद्ध करने की अभिलाषा वाले होकर भूमि पर चले गये थे ॥६॥ उधर दैत्य-दानव-राक्षस जो अपने बल का दर्प रखते थे सब इकट्ठे होकर जय का लाभ पाने वाले युद्ध की इच्छा से वे सभी पहुँच गये थे ॥७॥

अहिर्वृत्रो बलिस्त्वाष्ट्रिर्नमुचिः शम्बरो मयः।
एते चान्ये च बहवो योद्धारो बलदर्पिताः ॥८

अग्निरिन्द्रोऽथ वरुणस्त्वष्टा पूषा तथाऽश्विनौ।
मरुतो लोकपालाश्च नानायुद्धविशारदाः॥९

ते दानवाः सर्व एव याम्यां वै दिशि संगरे।
अकुर्वन्त महायत्नं दक्षिणार्णवसंस्थिताः ॥१०

त्रिकूटः पर्वतश्रेष्ठो राक्षसानां पुराऽभवत्।
तद्वनेन ययुः सर्वे तैः सार्धं दक्षिणार्णवम् ॥११
सर्वेषां मेलनं यत्र पर्वतो मलयस्तु सः।
मलयस्यापि देशोऽसौ देवारीणामभूत्तदा ॥१२

देवानां गौतमीतीरे तत्र संनिहितः शिवः।
इति तेषां समायोगो देवानामभवत्किल ॥१३

देवाः स्वरथमारूढास्तत्र तत्र समागमन् ।
गौतम्याः सरिदम्नायाः पुलिने विमलाशया ॥१४
प्रसन्नाऽभीष्टदा या स्यात्पितृणामखिलस्य तु ।
अभय चिन्तयामासुस्ते सर्वेऽथ परस्परम् ॥१५

अहि-वृत्र वलि त्वाष्ट्रि नमुचि-शम्बर-मय ये सब और कुछ अन्य भी बहुत से ऐसे उनमे योद्धा थे जिन को अपने बल-विक्रम का बडा ही गर्व था ॥८॥ अग्नि-इन्द्र-वरुण त्वष्टा-पूषा अश्विनी कुमार दोनो—मरुत और लोकपाल गण अनेक प्रकार के युद्धो के विशारद देवगण थे ॥९॥ वे सब दानव दक्षिण सागर मे संस्थित होते हुए याम्य दिशा मे ही युद्ध मे महान् यत्न कर रहे थे ॥१०॥ पहिले प्राचीन समय मे राक्षसो का त्रिकूट ही श्रेष्ठ पर्वत था । उस वन के द्वारा उनके साथ वे सब दक्षिणार्णव को गये थे ॥११॥ जहा पर मलय पर्वत है वही पर सबका मिलन हो गया था । उस समय मे असुरों का मलय का यह देश भी हो गया था ॥१२॥ वहाँ पर देवो के गौतमी के तीर पर भगवान् शिव सन्निहित थे इस तरह का उन देवो का समायोग हो गया था ॥१३॥ देवगण भी अपने रथो पर चढ़े हुए वही पर आ गये थे । स्वच्छ आशय वाले देवगण सरिताओ की अम्बा गौतमी के पुलिन पर थे ॥१४॥ जो गौतमी पितृगणो की तथा सबकी अभीष्टो की दात्री थी और प्रसन्न थी । इसके अनन्तर सब देवो ने महेश्वर देव की स्तुति करके वे सब परस्पर मे अभय के विषय मे चिन्तन करने लगे थे ॥१५॥

अत्राप्युपायः कोऽस्माकं निर्जितानां परैर्हठात् ।
एकमेवात्र न श्रेयो विजयो वाऽथवा मृतिः ॥
सपत्नैरभिभूतानां जीवितं धिङ् मनस्विनाम् ॥१६
एतस्मिन्नन्तरे पुण्या वागुवाचाशरीरिणी ॥१७
क्लेशेनालं सुरगणा गौतमीमाशु गच्छत ।
भक्त्या हरिहरौ तत्र समाराधयतेश्वरौ ॥१८
गोदावर्यास्तयोश्चैव प्रसादात्किंतु दुष्करम् ॥१९

प्रसन्नाभ्यां हरीशाभ्यां देवा जयमभीप्सितम् ।
अवाप्य सर्वतो जग्मुः पालयन्तो दिवौकसः ॥२०
यत्र देवागमो जातस्तत्तीर्थं तेन विश्रुतम् ।
देवागमं प्रशंसन्ति मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥२१
तत्राशीतिसहस्राणि शिवलिङ्गानि नारद ।
देवागमः पर्वतोऽसौ प्रिय इत्यपि कथ्यते ॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं देवप्रियमतो विदुः ॥२२

देवों ने कहा— दूसरों के द्वारा निर्जित हमारा क्या उपाय यहाँ पर भी हो सकता है ? यहां पर हमारा एक ही श्रेय है कि हमारा विजय हो अथवा मरण ही हो । यदि जीत नहीं होती है तो शत्रुओं के द्वारा तिरस्कृतों का जीवन जीना धिक्कार ही है । मनस्वी होकर ही जीना उत्तम होता है पराधीन रहकर जीवन किस काम का है ॥१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र ! विना शरीर वाली वाणी ने कहा—— ॥१७॥ आकाश वाणी बोली——हे सुरगणो ! क्लेशित मत होइये और शीघ्र गौतमी के समीप में चले जाओ । वहां पर परम भक्ति की भावना से हरि हर भगवानों की आराधना करो । गोदावरी के और उन दोनों के प्रसाद से कुछ भी दुष्कर नहीं रहता है ॥१८-१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—-वहां पर देवों ने प्रसन्न हुए श्री हरि और श्री हर के द्वारा अभीष्ट विजय प्राप्त किया था और देवगण पालन करते हुए सब ओर चले गये थे ॥२०॥ जहां पर देवों का आगम हुआ था वह तीर्थ भी उसी नाम से विख्यात हो गया था । तत्त्वदर्शी मुनिगण उस देवागम की प्रशंसा किया करते हैं ॥२१॥ वहां पर हे नारद ! अस्सी हजार शिव लिङ्ग हैं, यह देवागम पर्वत इसलिये भी प्रिय है—ऐसा कहा जाता है । तभी से लेकर यह तीर्थ देव प्रियतम जाना गया है ॥२२॥

कुशतर्पणतीर्थवर्णन

कुशतर्पणमाख्यात प्रणीतासगम तथा ।
तीर्थं सर्वेषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥१
तस्य स्वरूप वक्ष्यामि शृणु पापहर शुभम् ।
विन्ध्यस्य दक्षिणे पार्श्वे सह्यो नाम महागिरि. ॥२

यदड् घ्रिभ्योऽभवन्नद्यो गोदाभीमरथीमुखा: ।
यत्राभवत्तद्विरजमेकवीरा च यत्र सा ॥३
न तस्य महिमा कैश्चिदपि शक्योऽनुवर्णितम् ।
तस्मिन्गिरौ पुण्यदेशे शृणु नारद यत्नत ॥४

गुह्याद्गुह्यतर वक्ष्ये साक्षाद्वेदोदित शुभम् ।
यन्न जानन्ति मुनयो देवाश्च पितरोऽसुरा: ॥५

तदह प्रीतये वक्ष्ये श्रवणात्सर्वकामदम् ।
पर: स पुरुषो ज्ञेयो ह्यव्यक्तोऽक्षर एव तु ॥६
अपरश्च क्षरस्तस्मात्प्रकृत्यन्वित एव च ।
निराकारात्सवयव. पुरुष. समजायत ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसी भाँति प्रणीता सङ्गम भी कुश तर्पण—इस नाम से तीर्थं विख्यात है । यह सब लोकों मे समस्त तीर्थों मे प्रसिद्ध है और मुक्ति एव भुक्ति दोनो के देने वाला है ॥१॥ उसके स्वरूपका मैं भली भाँति वर्णन करूँगा जो कि परम शुभ एव पापो का हरण करने वाला है । उसका तुम श्रवण करो । विन्ध्य पर्वत के दक्षिण पार्श्व मे एक सह्य नाम का महान् पर्वत है ॥२॥ जिस पर्वत के चरणो से गोदावरी-भीमरथी जिनमें प्रमुख है ऐसी बहुत ही नदियाँ उद्भूत हुई थी । जहाँ पर वह विरज हुआ था और जहाँ वह एक वीरा हुई थी ॥३॥ उसकी महिमा तो इतनी विशाल है कि वह किसी के द्वारा भी वर्णन नही की जा सकती है । हे नारद ! आप सुनिये और प्रयत्न पूर्वक ध्यान देकर श्रवण कीजिए । वह गिरि परम पुण्य देश है उसमे भी जो

गोपनीय से भी गोपनीय है उसे मैं आपको बतलाऊँगा। वह साक्षात् वेदों के द्वारा उदित है और परम शुभ है। जिसको समस्त मुनिगण-देवता पितृगण और असुर कोई भी नहीं जानते हैं। यह एक अत्यन्त रहस्यमय है ॥४-५॥ मेरी आप पर परम प्रीति है इसीलिये मैं आपको बतलाऊँगा। इसका श्रवण मात्र करने ही से यह सब मनोरथों का परिपूर्ण कर देता है। वह पर पुरुष-अव्यक्त और अक्षर ही समझ लेना चाहिए ॥६॥ दूसरा क्षर है इसी कारण से वह प्रकृति से समन्वित होता है। निराकार से ही अवयवों वाला पुरुष अर्थात् साकार प्रभु समुत्पन्न हो गये थे ॥७॥

तस्मादापः समुद्भूता अद्भ्यश्च पुरुषस्तथा ।
ताभ्यामब्जं समुद्भूतं तत्राहमभवं मुने ॥८
पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिस्तथैव च ।
एते मत्तः पूर्वतरा एकदैवाभवन्मुने ॥९
एतानेव प्रपश्यामि नान्यत्स्थावरजङ्गमम् ।
नैव वेदास्तदा चाऽऽस्वन्नाहं द्रष्टाऽस्मि किंचन ॥१०
यस्मादहं समुद्भूतो न पश्येयं तमप्यथ ।
तूष्णीं स्थिते मयि तदा अश्रौषं वाचमुत्तमाम् ॥११
ब्रह्मन्कुरु जगत्सृष्टिं स्थावरस्य चरस्य च ॥१२
ततोऽहमब्रवं वाचं परुषां तत्र नारद ।
कथं स्रक्ष्ये क वा स्रक्ष्ये केन स्रक्ष्य इदं जगत् ॥१३
सैव वागब्रवीद्देवी प्रकृतिर्याऽभिधीयते ।
विष्णुना प्रेरिता माता जगदीशा जगन्मयी ॥१४

उससे जल समुत्पन्न हुए उन और जलों से एक पुरुष समुद्भूत हुए थे। उन दोनों से एक महा कमल की उत्पत्ति हुई थी। हे मुनिवर ! वहां पर मैं समुत्पन्न हुआ था ॥८॥ पृथिवी-आकाश-वायु-जल और ज्योति ये महाभूत एक ही बार में हे मुने ! मुझसे भी पूर्व में होने वाले हैं ॥९॥ मैंने इन्हीं को देखा था और अन्य किसी भी स्थावर या जङ्गम (जड़-चेतन) को मैंने उस समय में नहीं देखा था। उस आदि काल के समय

मे वेद भी नही थे और मैंने किसी को नही देखा था। जिस महापुरुष से मैंने अपना स्वरूप प्राप्त किया था मैंने उसको भी वहां पर नही देखा था। उस समय मे मैं हक्का-बक्का-सा होकर मौन रह गया था। तब मैंने एक उत्तम वाणी का श्रवण किया था ॥१०-११॥ आकाशवाणी ने कहा था—हे ब्रह्मन् ! जड और चेतन का सृजन करो और जगत् की सृष्टि का निर्माण करो ॥१२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! वहा पर मैंने उस समय मे बडी खरखरी कठोर वाणी कही थी। कैसे सृजन करूगा—कहाँ करू और इस जगत् की सृष्टि की रचना किसके द्वारा करू ? ॥१३॥ उसी समय मे उसी दैवी वाणी ने कहा था जो कि प्रकृति कही जाया करती है और भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित माता थी तथा जगत् की स्वामिनी एव जगत् मे परिपूर्ण थी ॥१४॥

यज्ञ कुरु ततः शक्तिस्ते भविनी न सशयः।
यज्ञो वै विष्णुरित्येषा श्रुतिर्ब्रह्मन्सनातनी ॥१५
किं यज्वनामसाध्य स्यादिह लोके परत्र च ॥१६
पुनस्तामब्रव देवी क्व वा केनेति तद्वद।
यज्ञ. कार्यो महाभागे ततः सोवाच मा प्रति ॥१७
ओंकारभूता या देवी मातृकल्पा जगन्मयी।
कर्मभूमौ यजस्वेह यज्ञेश यज्ञपूरुषम् ॥१८
स एव साधन ते स्यात्तेन त यज सुव्रत।
यज्ञ. स्वाहा स्वधा मन्त्रा ब्राह्मणा हविरादिकम् ॥१९
हरिरेवाखिल तेन सर्व विष्णोरवाप्यते ॥२०
पुनस्तामब्रव देवी कर्मभू. क्व विधीयते।
तदा नारद नैवाऽऽसीद्भागीरथ्यथ नर्मदा ॥२१
यमुना नैव तापी सा सरस्वत्यथ गौतमी।
समुद्रो वा नद. कश्चिन्न. सर. सरितोऽमला: ॥
सा शक्ति पुनरप्येव मामुवाच पुन पुन. ॥२२

आकाश वाणी ने कहा—यज्ञ का यजन करो। इससे आपके अन्दर शक्ति समुत्पन्न हो जायगी—इसमे कुछ भी सशय नही है। यज्ञ निश्चय

ही साक्षात् भगवान् विष्णु का स्वरूप होता है—हे ब्रह्मन् ! यह सनातनी श्रुति है ॥१५॥ जो यज्वा है अर्थात् यज्ञ का यजन करने वाला है उसको इस लोक में और परलोक में कुछ भी असाध्य नहीं है ॥१६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—फिर मैंने उस आकाशवाणी देवी से कहा था—कहां करूं और किस के द्वारा करूं—यह बतलादो। हे महाभागे ! आपकी आज्ञा जो यज्ञ करने की है मैं उसको स्वीकार तो करता हूँ किन्तु स्थान और विधान मुझे समझा दो। इसके पश्चात् उसने मुझसे कहा— ॥१७॥ आकाशवाणी बोली—जो ओङ्कार भूत-माता के सदृश जगन्मयी देवी है यहां पर कर्म भूमि में यज्ञ के ईश्वर यज्ञ पुरुष का यजन करो ॥१८॥ हे सुव्रत ! वह ही आपका साधन होगा। उन्हीं के द्वारा यजन कीजिए। यज्ञ-स्वाहा-स्वधा-मन्त्र-ब्राह्मण और हवि आदि ये सब साधन हैं। इनमें केवल हवि ही सम्पूर्ण है। उससे सब विष्णु से प्राप्त किया जाता है ॥१९-२०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—फिर मैंने उस देवी से कहा—वह कर्मभू कहां पर की जाये। उस समय में हे नारद ! भागीरथी अथवा नर्मदा तो थी ही नहीं ॥२१॥ न यमुना थी और तापी-सरस्वती तथा गौतमी ही थी। न समुद्र ही था तथा कोई नद एवं सरोवर या अमल जल वाली सरिताएं थीं। अतएव वह शक्ति पुनः बोली और बारम्बार उसने कहा ॥२२॥

सुमेरोर्दक्षिणे पार्श्वे तथा हिमवतो गिरेः।
दक्षिणे चापि विन्ध्यस्य सह्याच्चं वाथ दक्षिणे ॥
सर्वस्य सवकाले तु कर्मभूमिः शुभोदया ॥२३
तत्तु वाक्यमथो श्रुत्वा त्यक्त्या मेरुं महागिरिम् ।
तं प्रदेशमथाऽऽगत्य स्थातव्यं केत्यचिन्तयम् ॥
ततो मामब्रवीत्सैव विष्णोर्वाण्यशरीरिणी ॥२४
इतो गच्छ इतस्तिष्ठ तथोपविश चात्र हि।
संकल्पं कुरु यज्ञस्य स ते यज्ञः समाप्यते ॥२५
कृते चैवाथ संकल्पे यज्ञार्थे सुरसत्तम।
यद्वदन्त्यखिला वेदा विधे तत्तत्समाचर ॥२६

इतिहासपुराणानि यदन्यच्छब्दगोचरम् ।
स्वतो मुखे मम प्रायादभूच्च स्मृतिगोचरम् ॥२७
वेदार्थश्च मया सर्वो ज्ञातोऽसौ तत्क्षणेन च ।
तत. पुरुषसूक्तं तदस्मरं लोकविश्रुतम् ॥२८

दैवीवाणी ने कहा--सुमेरु पर्वत के पार्श्व मे तथा हिम्वान्-विन्ध्य और सह्य गिरि के दक्षिण पार्श्व मे सब की सब काल मे शुभ उदय वाली कर्म भूमि है ॥२३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा--उस वाक्य का श्रवण करके महागिरिमेरु को त्याग कर उस प्रदेश मे मुझे वहां पर अपनी स्थिति करनी चाहिए-यही मैंने सोचा था । इसके बाद भी उसी भगवान् विष्णु की बिना शरीर वाली वाणी ने मुझसे कहा था ॥२४॥ आकाशवाणी बोली—इधर जाओ, उधर ठहरो और यहां पर ही बैठ जाओ । तथा यज्ञ का सङ्कल्प करो । वह आपका यज्ञ समाप्ति को प्राप्त हो जायेगा ॥२५॥ हे सुर सत्तम ! यज्ञ मे लिये सङ्कल्प के करने पर जो भी सब देव कहते हैं हे विधे ? वही-वही समाचरण करो ॥२६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा--इतिहास पुराण जो भी शब्दो का गोचर विषय है वह सब मेरे मुख मे स्वत. आ गया था और सब स्मृति गोचर हो गया था ॥२७॥ यह सम्पूर्ण वेदार्थ उसी क्षण मे मेरे द्वारा ज्ञात हो गया था । इसके अनन्तर लोक मे विख्यात वह पुरुष सूक्त मुझे स्मृत हो गया था ॥२८॥

यज्ञोपकरणं सर्वं तदुक्तं च त्वकल्पयम् ।
तदुक्तेन प्रकारेण यज्ञपात्राण्यकल्पयम् ॥२९
अहं स्थित्वा यत्र देशे शुचिर्भूत्वा यतात्मवान् ।
दीक्षितो विप्रदेशोऽसौ मन्नाम्ना तु प्रकीर्तित. ॥३०
मद्देवयजनं पुण्यं नाम्ना ब्रह्मगिरिः स्मृत, ।
चतुरशीतिपर्यन्तं योजनानि महामुने ॥३१
मद्देवयजनं पुण्यं पूर्वतो ब्रह्मणो गिरेः ।
तत्र मध्ये वेदिका स्याद्गार्हपत्योऽस्य(?)दक्षिणे ॥३२

तत्र चाऽऽहवनीयस्य एवमग्नींस्त्वकल्पयम्(?) ।
विना पत्न्या न सिध्येय यज्ञः श्रुतिनिदर्शनात् ।।३३
शरीरमात्मनोऽहं वै द्वेधा चाकरवं मुने ।
पूर्वार्धेन ततः पत्नी ममभूद्यज्ञसिद्धये ।।३४
उत्तरेण त्वहं तद्वदर्धो जाया इति श्रुतेः ।
कालं वसन्तमुत्कृष्टमाज्यरूपेण नारद ।।३५

उसके द्वारा कहे हुए सम्पूर्ण यज्ञ के उपकरणों में मैंने कल्पित किया था और उसके द्वारा वर्णित प्रकार से मैंने यज्ञ के सब पात्रों की कल्पना करली थी ।।२९।। जहाँ पर स्थित होकर शुचि होकर मैं उस देश में यत आत्मा वाला हो गया था वह विप्रदेश दीक्षित हो गया और मेरे ही नाम से कीर्त्तित हो गया था ।।३०।। मेरा वह पुण्यमय देवों का यजन नाम से ब्रह्मगिरि कहा गया है, हे महामुने ! वह भाग चौरासी योजन पर्यन्त था ।।३१।। ब्रह्मा के गिरि के पूर्व की ओर वह पुण्यमय मेरे द्वारा किया हुआ देव यजन था । वहां पर मध्य में वेदिका थी और इसके दक्षिण में गार्हपत्य था ।।३२।। वहां पर आहवनीय था । इस विधि से अग्नियों की कल्पना की थी । श्रुति के निदर्शन से यज्ञ कर्म की सिद्धि बिना पत्नी के नहीं हुआ करती है ।।३३।। हे मुने ! मैंने अपने शरीर को दो भागों में विभक्त किया था । मेरे शरीर के पूर्वार्ध से यज्ञ की सिद्धि के लिये मेरी पत्नी हुई थी ।।३४।। और शरीर का जो उत्तरार्ध भाग था उससे मैं रहा था । उसी के अनुसार "आधा भाग जाया है" यह श्रुति है । हे नारद ! बसन्त काल को आज्य (घृत) के रूप से उत्कृष्ट किया था ।।३५।।

अकल्पयं तथा चेध्मं ग्रीष्मं चापि शरद्धविः ।
ऋतुं च प्रावृषं पुत्र तदा बर्हिरकल्पयम् ।।३६
छन्दांसि सप्त वै तत्रा तदा परिधयोऽभवन् ।
कलाकाष्ठानिमेषा हि समित्पात्रकुशाः स्मृताः ।।३७
योऽनादिश्च त्वनन्तश्च स्वयं कालोऽभवत्तदा ।
यूपरूपेण देवर्षे योक्त्रं च पशुबन्धनम् ।।३८

सत्त्वादिस्त्रिगुणाः पाशाः नैव तत्राभवत्पशुः ।
ततोऽहमब्रव वाच वैष्णवीमशरीरिणीम् ॥३६

विनैव पशुना नाय यज्ञः परिसमाप्यते ।
ततो मामवदद्देवी सैव नित्याऽशरीरिणी ॥४०
पौरुषेणाथ सूक्तेन स्तुहि तं पुरुषं परम् ॥४१

ग्रीष्म ऋतु को ही मैंने इध्म (ईंधन, समिधा) कल्पित किया था। शरद् ऋतु को छवि बनाया था। हे पुत्र ! वर्षा ऋतु उस समय मे बहि. अर्थात् बाहिर का भाग कल्पित किया था ॥३६॥ वहा पर उस समय में छन्द सात परिधियाँ हो गई थी। हे देवर्षि ! कला-काष्ठा और निमेष ये सब समिधा कुशा और पात्र कहे गये हैं ॥३७॥ उस समय में जो अनादि-और अनन्त काल है वह स्वय रूप-रूप से योक्त्र और पशु बन्धन हो गया था ॥३८॥ सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण पाश थे किन्तु वहा पर पशु नही था। इसके अनन्तर मैंने बिना शरीर वाली वैष्णवी वाणी से कहा था ॥३६॥ बिना पशु के यह यज्ञ परि समाप्त नहीं होता है । तब तो उस देवी ने मुझसे कहा था जो कि नित्या और बिना शरीर वाली थी ॥४०॥ आकाशवाणी ने कहा—उस परम पुरुष का पुरुष सूक्त के द्वारा स्तवन करो ॥४१॥

तयेत्युक्त्वा स्तूयमाने देवदेवे जनार्दने ।
मम चोत्पादके भक्त्या सूक्तेन पुरुषस्य हि ॥४२
सा च मामब्रवीद्देवी ब्रह्मन्मा त्व पशुं कुरु ।
तदा विज्ञाय पुरुष जनक मम चाव्ययम् ॥४३
कालयूपस्य पार्श्वे तं गुणपाशैर्निवेशितम् ।
बर्हिस्थितमहं प्रोक्ष पुरुषं जातमग्रतः ॥४४
एतस्मिन्नन्तरे तत्र तस्मात्सर्वमभूदिदम् ।
ब्राह्मणास्तु मुखात्तस्याभवन्बाहोश्च क्षत्रियाः ॥४५
मुखान्दिन्द्रस्तथाग्निश्च श्वसनः प्राणतोऽभवत् ।
दिश. श्रोत्रात्तथा शीर्ष्णः सर्व. स्वर्गोऽभवत्तदा ॥४६

मनसश्चन्द्रमा जातः सूर्योऽभूच्चक्षुषस्तथा ।
अन्तरिक्षं तथा नाभेरूरुभ्यां विश एव च ॥४७

पद्भ्यां शूद्रश्च संजातस्तथा भूमिरजायत ।
ऋषयो रोमकूपेभ्य ओषध्यः केशतोऽभवन् ॥४८

ग्राम्यारण्याश्च पशवो नखेभ्यः सर्वतोऽभवन् ।
कृमिकीटपतङ्गादि पायूपस्थादजायत ॥४९

स्थावरं जङ्गमं किंचिद्दृश्यादृश्यं च किंचन ।
तस्मात्सर्वमभूद्देवा मत्तश्चाप्यभवन्पुनः ॥
एतस्मिन्नन्तरे सैव विष्णोर्वागब्रवीच्च माम् ॥५०

श्री ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा ही करूंगा-यह कह कर मेरे द्वारा ही उत्पादक पुरुष के सूक्त के द्वारा देवों के भी देव भगवान् जनार्दन की स्तुति किये जाने पर वह मुझसे बोली थी–हे ब्रह्मन् ! आप मुझको पशु बना लो । उसी समय में मेरे जनक अव्यय पुरुष को जानकर उसने ऐसा कहा था ॥४२-४३॥ कालयूप के पार्श्व में गुण रूपी पाशों से निवेशित उसको आगे जाते और वहि स्थित पुरुष को मैंने प्रोक्षण किया था ॥४४॥ इसी बीच में वहां पर उससे यह सब हुआ था ब्राह्मण उसके मुख और क्षत्रिय बाहु दोनों हो गये थे । मुख से इन्द्र तथा अग्नि और प्राण से श्वसनत्वायु हो गये । श्रोत्र से सब दिशाएं और उसी समय में शिर से सम्पूर्ण स्वर्ग हो गया था ॥४५-४६॥ मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ था–चक्षु से सूर्यदेव की उत्पत्ति हो गई थी । नाभि से अन्तरिक्ष और ऊरुओं से वैश्य समुत्पन्न हुए थे ॥४७॥ चरणों से शूद्र उत्पन्न हुआ था तथा भूमि हुई थी । रोमों के छिद्रों से ऋषिगण उद्भूत हुए थे और केशों से ओषधियों का उद्भव हुआ था ॥४८॥ ग्राम में रहने वाले तथा जंगलों में वास करने वाले पशुगण सब नखों से हुए थे । कृमि-कीट और पतङ्ग आदि क्षुद्र शरीर धारी प्राणी उस महा पुरुष के पायु तथा उपस्थ (जननेन्द्रिय से समुत्पन्न हुए थे ॥४९॥ स्थावर और जङ्गम-दृश्य (देखने के योग्य) और अदृश्य जो कुछ भी इस विश्व में है वह सब उसी से हुआ

था और फिर देवगण मुझसे हुए थे। इसी बीच में फिर वही भगवान् विष्णु की वाणी ने मुझसे कहा था ॥५०॥

सर्वं सपूर्णमभवत्सृष्टिर्जाता तथेप्सिता।
इदानी जुहुधि ह्यग्नौ पात्राणि च समानि च ॥५१
विसर्जय तथा यूप प्रणीता च कुशास्तथा।
ऋत्विग्रूप यज्ञरूपमुद्देश्य ध्येयमेव च ॥५२
स्रुव च पुरुष पाशान्सर्वं ब्रह्मन्विसर्जय ॥५३

तद्वाक्यसमकाल तु क्रमशो यज्ञयोनिषु।
गार्हपत्ये दक्षिणाग्नौ तथा चैव महामुने ॥५४
पूर्वस्मिन्नपि चैवाग्नौ क्रमशो जुह्वतस्तदा।
तत्र तत्र जगद्योनिमनुसधाय पूरुषम् ॥५५
मन्त्रपूत शुचि सम्यग्यज्ञदेवो जगन्मयः।
लोकनाथो विश्वकर्ता कुण्डाना तत्र सनिधौ ॥५६

आकाशवाणी ने कहा—सर्वं सम्पूर्ण हो गया है तथा जो अभीप्सित सृष्टि थी वह उत्पन्न हो गई है। अब आप आहुतियाँ दीजिए और अग्नि मे हवन करो। पात्रो को और समो को विसर्जित कर दो तथा हे ब्रह्मन्! यूप-प्रणीता-कुशा-ऋत्विग् रूप- यज्ञरूप-उद्देश्य-ध्येय-स्रुव-पुरुष-पाश इन सबको त्याग दो ॥५१-५३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उनके इस वाक्य समकाल मे ही क्रम से यज्ञ योनियो में हे महामुने! गार्हपत्य अग्नि में, दक्षिणाग्नि मे और पूर्व मे स्थित अग्नि मे भी उसी समय मे वहाँ वहाँ पर जगत् की योनि पुरुष का अनुसन्धान करके हवन मे हवन कर रहा था। मन्त्रो से पवित्र-भली भाँति शुचि-जगन्मय यज्ञ देव लोकनाथ और विश्व के कर्त्ता वहाँ पर कुण्डो की सन्निधि मे थे ॥५४-५६॥

शुक्लरूपधरो विष्णुर्भवेदाहवनीयके।
श्यामो विष्णुर्दक्षिणाग्नेः पीतो गृहपतेः कवे. ॥५७
सर्वकाल तेषु विष्णुरतो देशेषु सस्थितः।
न तेन सहित किंचिद्विष्णुना विश्वयोनिना ॥५८

प्रणीतायाः प्रणयनं मन्त्रैश्चाकरवं ततः ।
प्रणीतोदकमप्येतत्प्रणीतेति नदी शुभा ॥५६

व्यसर्जयं प्रणीतां तां मार्जयित्वा कुशैरथ ।
मार्जने क्रियमाणे तु प्रणीतोदकबिन्दवः ॥६०
पतितास्तत्र तीर्थानि जातानि गुणवन्ति च ।
संजाता मुनिशार्दूल स्नानात्क्रतुफलप्रदा ॥६१

याऽलंकृता सर्वकालं देवदेवेन शार्ङ्गिणा ।
सोपानपङ्क्तिः सर्वेषां वैकुण्ठारोहणाय सा ॥६२
समार्जिताः कुशा यत्र पतिता भूतले शुभे ।
कुशतर्पणमाख्यातं बहुपुण्यफलप्रदम् ॥६३

शुक्ल स्वरूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु थे । आहवनीय अग्नि में थे वह श्याम वर्ण वाले विष्णु विद्यमान थे और गृहपति कवि के दक्षिणाग्नि में पीत वर्ण वाले विष्णु थे ॥५७॥ सब काल में उनमें भगवान् विष्णु स्थित रहते हैं अतएव सर्वत्र देशों में वह विद्यमान हैं । उस विश्व की योनि भगवान् विष्णु से रहित कुछ भी नहीं है ॥५८॥ फिर प्रणीता का प्रणयन मन्त्रों के द्वारा मैंने किया था । यह प्रणीतोदर भी प्रणीता नाम वाली शुभ नहीं है ॥५९॥ कुशों से मार्जन करके उस प्रणीता को मैंने विसर्जित किया था । मार्जन के किये जाने पर प्रणीता से जल की बूँदें जहां पर गिरीं थीं वहां पर बड़े गुणों से युक्त तीर्थ हुए थे । हे मुनिशार्दूल ! केवल स्नान करने से क्रतु का फल प्रदान करने वाली तथा जो सर्वदा देवों के देव शार्ङ्गधारी के द्वारा जो अलंकृता है वह वैकुण्ठलोक में सबके समारोहण करने के लिये सोपानों (सीढ़ियों) की पंक्ति है ॥६०-६२॥ जिस जगह इस शुभ भूतल में समार्जित कुशाएँ गिरी थी वह तीर्थ कुश तर्पण नाम से विख्यात हो गया है जो अत्यधिक पुण्य-फल प्रदान करने वाला है ॥६३॥

कुशैश्च तर्पिताः सर्वे कुशतर्पणमुच्यते ।
पश्चाच्च संगता तत्र गौतमी कारणान्तरात् ॥६४

प्रणीताया महाबुद्धे प्रणीतासगमोऽभवत् ।
कुशतर्पणदेशे तु तत्तीर्थं कुशतर्पणम् ॥६५
तत्रैव कल्पितो यूपा मया विन्ध्यस्य चोत्तरे।
विसृष्टो लाकपूज्योऽसौ विष्णोरासीत्समाश्रयः ॥६६
अक्षयश्चाभवच्छ्रीमानक्षयोऽसौ वटोऽभवत् ।
नित्यश्च कालरूपोऽसौ स्मरणात्क्रतुपुण्यद. ॥६७
मद्देवयजन चेद दण्डकारण्यमुच्यते ।
सपूर्णे तु क्रतौ विष्णुर्मया भक्त्या प्रसादित. ॥६८
यो विराडुच्यत वेदे यस्मान्मूर्तमजागत ।
यस्माच्च मम चोत्पत्तिर्यस्येद विकृत जगत् ॥६९
तमह देवदेवेशमभिवन्द्य व्यसर्जयम् ।
योजनानि चतुर्विशन्मद्देवयजन शुभम् ॥७०

उन कुशो के द्वारा सत्र तर्पित हो गये थे अतएव वह "कुश तर्पण"–इस नाम से कहा जाता है। इसके पीछे किसी अन्य कारण से वहाँ पर गौतमी भी सगता हो गयी थी। हे महाबुद्धि वाले ! वह गौतमी प्रणीता में मिल गयी थी और वहाँ पर प्रणीता सगम हो गया था। जो कुश तर्पण देश था वहाँ पर वह तीर्थ ही कुश तर्पण नाम वाला था ॥६४-६५॥ वही पर विन्ध्यगिरि के उत्तरी भाग मे मेरे द्वारा यूप की कल्पना की गयी थी। यह लोक पूज्य विसृष्ट किया था जो भगवान् विष्णु का समाश्रय था। यह नित्य कालरूप था जो कि केवल स्मरण से ही क्रतु करने के पुण्य फल को प्रदान करने वाला है ॥६७॥ यह मेरे द्वारा देवो का यजन जहाँ किया गया था वह स्थल दण्डकारण्य कहा जाता है। क्रतु के साङ्ग सम्पूर्ण हो जाने पर मेरे द्वारा भक्ति की भावना से भगवान् विष्णु प्रसादित हुए थे ॥६८॥ जो वेद मे विराट् स्वरूप वाले कहे जाया करते हैं और जिससे मूर्त्त की उत्पत्ति हुई थी और जिससे मेरी उत्पत्ति हुई थी तथा जिसका ही यह विकृत् जगत् है अर्थात् विकार युक्त यह सम्पूर्ण जगत् उसी का स्वरूप दिखाई देता है ॥६९॥ उन देव

देवेश्वर की वन्दना करके मैंने उनको विसर्जित किया। वह मेरे द्वारा किये गये देव यजन का शुभ स्थल चौबीस योजन पर्यन्त है ॥७०॥

तस्मादद्यापि कुण्डानि सन्ति च त्रीणि नारद।
यज्ञेश्वरस्वरूपाणि विष्णोर्वै चक्रपाणिनः ॥७१
ततः प्रभृति चाऽऽख्यातं मद्देवयजनं च तत्।
तत्रस्थः कृमिकीटादिः सोऽप्यन्ते मुक्तिभाजनम् ॥७२
धर्मबीजं मुक्तिबीजं दण्डकारण्यमुच्यते।
विशेषाद्गौतमीश्लिष्टो देशः पुण्यतमोऽभवत् ॥७३
प्रणीतासंगमे चापि कुशतर्पण एव वा।
स्नानदानादि यः कुर्यात्स गच्छेत्परमं पदम् ॥७४
स्मरणं पठनं वाऽपि श्रवणं चापि भक्तितः।
सर्वकामप्रदं पुंसां भुक्तिमुक्तिप्रदं विदुः ॥७५
उभयोस्तीरयोस्तत्र तीर्थान्याहुर्मनीषिणः।
षडशीतिसहस्राणि तेषु पुण्यं पुरोदितम् ॥७६
वाराणस्या अपि मुने कुशतर्पणमुत्तमम्।
नानेन सदृशं तीर्थं विद्यते सचराचरे ॥७७
ब्रह्महत्यादिपापानां स्मरणादपि नाशनम्।
तीर्थमेतन्मुने प्रोक्तं स्वर्गद्वारं महीतले ॥७८

हे नारद ! अवएव आज तक भी वहां पर तीन कुण्ड हैं और वे चक्रपाणि भगवान् विष्णु के यज्ञेश्वर स्वरूप हैं ॥७१॥ तभी से लेकर वह मद्देव यजन समाख्यात हो गया है। वहाँ पर स्थित कृमि कीट प्रभृति कोई भी हो वह भी अन्त में मुक्ति का पात्र हो जाया करता है ॥७२॥ धर्म का बीज और मुक्ति का बीज दण्डकारण्य कहा जाता है। विशेष रूप से गौतमी से श्लिष्ट जो देश है वह अधिक पुण्यतम हो गया था ॥७३॥ प्रणीता के संगम में अथवा कुश तर्पण में जो कोई स्नान दान आदि करता है वह परम पद को प्राप्त हो जाता है ॥७४॥ इनका स्मरण-अध्ययन-श्रवण भी यदि भक्ति की भावना से किया जाता है तो पुरुषों के समस्त मनोरथों का प्रदान करने वाला तथा भुक्ति एवं मुक्ति

के देने वाला होता है ऐसा जाना जाता है ॥७५॥ वहाँ दोनों तटों पर मनीषी गण छयासी हजार तीर्थ कहते हैं उनमे जो पुण्य होता है वह पहिले ही कह दिया गया है ॥७६॥ हे मुने ! वारणसी से भी कुश तर्पण उत्तम होता है । इस चराचर जगत् म इस तीथ के सदृश अन्य कोई भी नही है ॥७७॥ ब्रह्महत्या आदि पापो का विनाश इस तीर्थ के केवल स्मरण से ही हो जाता है । हे मुने ! महीतल म इस तीर्थ को स्वग का द्वार कहा गया है ॥७८॥

— * —

मन्युतीर्थवर्णन

मन्युतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ।
सवकामप्रद नृणा स्मरणादघनाशनम् ॥१
तस्य प्रभाव वक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मुने ।
देवाना दानवाना च सगरोऽभून्मिथ पुरा ॥२
तत्राजयन्नैव सुरा दानवा जयिनोऽभवन् ।
पराङ्मुखा सुरगणा सगराद्गतचेतस ॥३
मामभ्येत्य समूचुस्ते देहि नोऽभयकारणम् ।
तानह प्रत्यवोच वै गङ्गा गच्छत सर्वश ॥४
तत्र वै गौतमीतीरे स्तुत्वा देव महेश्वरम् ।
अनपायनिरायासहजानन्दसुन्दरम् ॥५
लप्स्यते सर्वविबुधा जयहेतुमहेश्वरात् ।
तथेत्युक्त्वा सुरगणा स्तुवन्ति स्म महेश्वरम् ॥६
तपोऽतप्यन्त केचिद्वै ननृतुश्च तथाऽपरे ।
अस्नापयश्च केचिद्वापूजयश्च तथाऽपरे ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—मन्युतीर्थ—इस नाम से एक महान् तीर्थ है जो समस्त पापो का विनाश करने वाला है । यह तीर्थ मनुष्यो की सब

कामना को पूर्ण करने वाला तथा केवल स्मरण करने से अघों का विनाशक है ।।१।। हे मुनिवर ! मैं अब उस तीर्थ के प्रभाव को बतलाता हूँ आप परम सावधान होकर श्रवण कीजिए । प्राचीन समय में देवों का और दानवों का परस्पर में महान् युद्ध हुआ ।।२।। उस युद्ध में सुरगण की विजय नहीं हुई थी और दानव विजयी हो गये थे । सुरगण युद्ध से पराङ्मुख होकर चेतना शून्य हो गये थे ।।३।। वे फिर मेरे पास उपस्थित होकर बोले थे कि हमको अभय कारण प्रदान कीजिए । उनसे मैंने कहा था कि आप सब लोग गङ्गा पर चले जाइये ।।४।। वहाँ पर गौतमी के तीर पर महेश्वर देव का स्तवन करो जो बिना किसी विघ्न और आयास के सहज रूप से आनन्द स्वरूप एवं परम सुन्दर हैं ।।५।। समस्त विबुधगण महेश्वर भगवान् से ही विजय का हेतु प्राप्त कर लेंगे । ऐसा ही करेंगे—यह कह कर सब सुरगणों ने महेश्वर प्रभु की स्तुति की थी ।।६।। उनमें से कुछ देवों ने तप किया था—कुछ नृत्य करने लगे—दूसरे कुछ ने शिव का स्नपन कराया था—तथा कतिपय देवगण ने महेश्वर भगवान् का अभ्यर्चन किया था ।।७।।

ततः प्रसन्नो भगवाञ्शूलपाणिर्महेश्वरः ।
देवानथाब्रवीत्तुष्टो व्रियतां यदभीप्सितम् ।।८
देवा ऊचुः सुरपति विजयाय ददस्व नः ।
पुरुषं परमश्लाघ्यं रणेषु पुरतः स्थितम् ।।९
यद्बाहुबलमाश्रित्य भवामः सुखिनो वयम् ।
तथेत्युवाच भगवान्देवान्प्रति महेश्वरः ।।१०
आत्मनस्तेजसा कश्चिन्निर्मितः परमेष्ठिना ।
मन्युनामानमत्युग्रं देवसैन्यपुरोगमम् ।।११
तं नत्वा त्रिदशाः सर्वे शिवं नत्वा स्वमालयम् ।
मन्युना सह चाभेत्य पुनर्युद्धाय तस्थिरे ।।१२
युद्धे स्थित्वा तु दनुजैर्दैतेयैश्च महाबलैः ।
विबुधा जातसंन्नद्धा मन्युमूचुः पुरः स्थिताः ।।१३

इसके पश्चात् भगवान् महेश्वर शूलपाणि प्रसन्न हो गये थे और परम सन्तुष्ट होकर उन्होंने देवगण से कहा था कि जो भी तुम्हारा अभीष्ट वरदान हो वह मुझसे प्राप्त कर लो ॥८॥ देवों ने उस समय में सुरपति से कहा था कि हमको रण में सामने स्थित शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये परम श्लाघा करने के योग्य पुरुषार्थ अर्थ विक्रम प्रदान कीजिए ॥६॥ जिस बाहुबल का आश्रय ग्रहण करके हम सुखी हो जावें। महेश्वर भगवान् ने उसी समय में ऐसा ही होगा—यह देवों से कह दिया था ॥१०॥ अपने आत्म तेज के द्वारा परमेष्ठी प्रभु ने किसी का निर्माण किया था। वह अत्यन्त उग्र मन्यु नाम वाला था जो देवों की सेना के आगे गमन करने वाला था ॥११॥ सब देवों ने उसको नमस्कार किया था और फिर महेश्वर को प्रणाम किया था और उस मन्यु के साथ अपने निवास स्थान पर आकर पुनः युद्ध के लिये खड़े हो गये थे ॥१२॥ महान् बली दैत्य और दनुजों के साथ युद्ध में स्थित होकर देवगण जातसन्नद्ध अर्थात् तैयार होकर आगे स्थित होते हुए मन्यु से बोले ॥१३॥

सामर्थ्यं तव पश्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे परैः।
तस्माद्दर्शय चाऽऽत्मान मन्योऽस्माक युयुत्सताम् ॥१४
तद्देववचन श्रुत्वा मन्युराह स्मयन्निव ॥१५
जनिता मम देवेश. सर्वज्ञः सर्वदेवप्रभुः।
य. सर्व वेत्ति सर्वेषा धामनाम मन.स्थितम् ॥१६
नैव कश्चिच्च त वेत्ति य. सर्व वेत्ति सर्वदा।
अमूर्त मूर्तमप्येतद्वेत्ति कर्ता जगन्मय. ॥१७
परोऽसौ भगवान्साक्षात्तथा दिव्यन्तरिक्षगः।
कस्तस्य रूप यो वेद कस्य कर्ता जगन्मयः ॥१८
एव विधादह जातो मा कथ वेत्तुमर्हथ।
अथवा द्रष्टुकामा वै भवन्तो माऽनुपश्यत ॥१९
इत्युक्त्वा दर्शयामास मन्यू रूप स्वक महत्।
वार्षीयचक्षुषोद्भूत भवस्य परमेष्ठिनः ॥२०

तेजसा संभृतं रूपं यतः सर्वं तदुच्यते ।
पौरुषं पुरुषेष्वेव अहंकारश्च जन्तुषु ॥२१

देवों ने कहा—हम लोग शत्रुओं के साथ युद्ध करेंगे और पीछे आपकी शक्ति को देखते हैं । इससे हे मन्यो ! युद्ध करने की इच्छा वाले हमको अपनी आतमा अर्थात् स्वरूप दिखलाइये ॥१४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—देवों के उस वचन का श्रवण करके मुस्कराते हुए मन्यु ने कहा—मन्यु बोला–मुझे समुत्पन्न करने वाले देवेश्वर सर्वज्ञ और सबको देखने वाले प्रभु हैं वे ही सब का धाम-नाम और मन की स्थिति को जानते हैं ॥१५-१६॥ और इनको कोई भी नहीं जानते हैं । सबके कर्त्ता और जगन्मय ने मूर्त्त और अमूर्त्त को भी जानता है ॥१७॥ यह सबसे पर साक्षात् भगवान् हैं तथा दिवलोक और अन्तरिक्ष में गमन करने वाले हैं । जो उसके रूप को जानता हो ऐसा कौन है ? वह जगन्मय किसका करने वाला है ? इस प्रकार वाले उनसे मैं उत्पन्न हुआ हूं । मुझको आप कैसे जान सकने के योग्य होते हैं । अथवा आप देखने की इच्छा वाले हैं तो मुझको देखिये ॥१८-१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इतना कहकर उस मन्यु ने अपना महान् स्वरूप दिखलाया था । वह परमेष्ठी भव (शिव) के तीसरे नेत्र से उद्‌भूत था । वह नेत्र से संहित रूप था जिससे सब कुछ होता है । वही बतलाया जाता है । पौरुष पुरुषों में ही होता है और अहङ्कार सब जन्तुओं में हुआ करता है॥२०-२१॥

क्रोधः सर्वस्य यो भीम उपसंहारकृद्भवेत् ।
तं शङ्करप्रतिनिधिं ज्वलन्तं निजतेजसा ॥२२

सर्वायुधधरं दृष्ट्वा प्रणेमुः सर्वदेवताः ।
वित्रेसुर्दैत्यमनुजाः कृताञ्जलिपुटाः सुराः ॥२३
भूत्वा मन्युमथोचुस्ते त्वं सेनानीः प्रभो भव ।
त्वया दत्तमिदं राज्यं मन्यो भोक्ष्यामहे वयम् ॥२४

तस्मात्सर्वेषु कार्येषु जेता त्वं जयवर्धनः ।
त्वमिन्द्रस्त्वं च वरुणो लोकपालास्त्वमेव च ॥२५

अस्मासु सर्वदेवेषु प्रविश त्वं जयाय वै ।
मन्युः प्रोवाच तान्सर्वान्विना भक्तो न किंचन ॥२६
सर्वेष्वन्त. प्रविष्टोऽहं न मा जानाति कश्चन ।
स एव भगवान्मन्युस्ततो जात. पृथक्पृथक् ॥२७
स एव रुद्ररूपी स्याद्रुद्रो मन्यु. शिवोऽभवत् ।
स्थावर जङ्गम चैव सर्व व्याप्तं हि मन्युना ॥२८

भगवान् शिव का जो अत्यन्त भीषण क्रोध है वही उपसहार के करने वाला है। अपने तेज से जाज्वल्यमान-भगवान् शङ्कर का प्रतिनिधि-समस्त आयुधो के धारण करने वाले उसको देखकर सब देवो ने उसको प्रणाम किया था। दैत्य और मनुष्य सब भयभीत हो गये थे तथा देवगण हाथो को जोडकर खडे हुए थे ॥२२-२३॥ उन देवो ने करबद्ध होकर मन्यु से प्रार्थना की थी- हे प्रभो ! आप ही हमारे सेनानी अर्थात् सेनाध्यक्ष होइये। हे मन्यो ! आपके ही द्वारा प्रदान किये हुए इस राज्य का हम उपभोग करेंगे ॥२४॥ आप जय के वर्धन करने वाले जेता हैं और सभी कर्म्मों मे आपकी विजय होती है। आप ही इन्द्र हैं-आप वरुण हैं और आप लोकपाल भी हैं ॥२५॥ हम समस्त देवो मे विजय प्राप्त करने के लिये आप प्रवेश कीजिए। मन्यु ने उस देवगणो से कहा था कि मेरे बिना तो जगत् मे कुछ भी नही है ॥२६॥ सबके अन्दर मैं प्रविष्ट हो रहा हू और मुझको कोई भी नही जानता है। वह ही भगवान् मन्यु हैं। फिर वह पृथक् २ उत्पन्न हुए हैं वह ही रुद्र के रूप वाले रुद्र हैं और वही मन्यु शिव हो गये थे। मन्यु के द्वारा स्थावर और जङ्गम सभी प्राप्त है ॥२७-२८॥

समवाप्य सुरा सर्वे जयमापुश्च सगरे ।
जयो मन्युश्च शौर्यं च ईशतेज समुद्भवम् ॥२९
मन्युना जयमाप्याथ कृत्वा दैत्यैश्च सगमम् ।
यथागत ययु सर्वे मन्युना परिरक्षिता. ॥३०
यत्र वै गौतमीतीरे शिवमाराध्य ते सुराः ।
मन्युमापुर्जयं चैव मन्युतीर्थं तदुच्यते ॥३१

उत्पत्तिं च तथा मन्योर्यो नरः प्रयतः स्मरेत् ।
विजयो जायते तस्य न कैश्चित्परिभूयते ॥३२

न मन्युतीर्थसदृशं पावनं हि महामुने ।
यत्र साक्षान्मन्युरूपी सर्वदा शङ्करः स्थिरः ॥
तत्र स्नानं च दानं च स्मरणं सर्वकामदम् ॥३३

उस मन्यु की प्राप्ति करके सब देवों ने युद्ध में विजय प्राप्त की थी। जय, मन्यु और-शौर्य भगवान् ईश के तेज से समुद्भूत था ॥२९॥ मन्यु के द्वारा विजय की प्राप्ति करके दैत्यों के साथ सङ्गम करके मन्यु के द्वारा परिरक्षित होते हुए जिस रीति से समागत हुए थे चले गये ॥३०॥ जहां पर गौतमी के तट पर उन सुरोंने भगवान् शिवजी की समाराधना की थी और मन्यु का लाभ किया था वही मन्यु तीर्थ कहा जाता है ॥३१॥ इस मन्यु की उत्पत्ति को जो कोई पुरुष प्रयत होकर स्मरण करता है उसका निश्चय ही विजय होता है और उसका अभिभव (तिरस्कार) किसी के द्वारा भी नहीं किया जा सकता है ॥३२ ॥ हे महामुने ! इस मन्यु तीर्थ के समान पावन कोई भी तीर्थ नहीं है जहां पर सर्वदा मन्यु के स्वरूप को धारण करने वाले साक्षात् भगवान् शङ्कर विद्यमान रहा करते हैं। वहां पर स्नान करना तथा दान देना एवं स्मरण करना सब मनोरथों को देने वाला होता है ॥३३॥

--:※:--

भद्रतीर्थवर्णन

भद्रतीर्थमिति प्रोक्तं सर्वानिष्टनिवारणम् ।
सर्वपापप्रशमनं महाशान्तिप्रदायकम् ॥१

आदित्यस्य प्रिया भार्या उषा त्वाष्ट्री पतिव्रता ।
छायाऽपि भार्या सवितुस्तस्याः पुत्रः शनैश्चरः ॥२

तस्य स्वसा विष्टिरिति भीषणा पापरूपिणी ।
तां कन्यां सविता कस्मै ददामीति मतिं दधे ॥३
यस्मै यस्मै दातुकामः सूर्यो लोकगुरु प्रभु ।
तच्छ्रुत्वा भीषणा चेति किं कुर्मो भार्ययाऽनया ॥४
एवं तु वर्तमाने सा पितरं प्राह दुःखिता ॥५
बालामेव पिता यस्तु दद्यात्कन्यां सुरूपिणे ।
स कृतार्थो भवेल्लोके न चेद्दुष्कृतवान्पिता ॥६
चतुर्थाद्वत्सरादूर्ध्वं यावन्न दशमात्यय. ।
तावद्विवाह. कन्यायाः पिना कार्यः प्रयत्नत ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—भद्र तीर्थ-इस नाम से एक महान् तीर्थ कहा गया है जो सभी अनिष्टो के निवारण करने वाला है—सब पापो के प्रशमन करने वाला और महती शान्ति के प्रदान करने वाला है ॥१॥ आदित्य देव की परम प्रिया भार्या उपा त्वाष्ट्री पतिव्रता थी । छाया भी सविता देवकी भार्या थी जिसका पुत्र शनैश्चर हुआ था ॥२॥ उसकी बहिन विष्टि थी जो अत्यन्त भीषण और पापो के स्वरूप वाली थी । सविता ने उस कन्या को किसी को दूँ—ऐसी बुद्धि की थी अर्थात् विचार किया था ॥३॥ लोको का गुरु प्रभु सूर्य देव जिस किसी के लिय देने की इच्छा वाले हो गये थे । जो भी कोई यह सुनता था कि वह तो बहुत भीषण है तो यही कह देते थे कि इस भार्या का क्या करेंगे ॥ ॥ ऐसी अवस्था होने पर वह विष्टि अत्यन्त दुःखित होकर अपने पिता से बोली ॥५॥ विष्टि ने कहा—जो पिना अपनी बाला ही कन्या को किसी सुन्दर रूप वाले वर को दे दिया करता है वही पिता लोक मे कृतार्थ हो जाया करता है अन्यथा अर्थात् ऐसा न करने पर पिता पाप का भागी हो जाता है ॥६॥ चौथे वर्ष से ऊपर जब तक दशवाँ वर्ष पूर्ण न हो तभी तक पिना को कन्या का विवाह प्रयत्न पूर्वक कर देना चाहिए ॥७॥

श्रीमते विदुषे यूने कुलीनाय यशस्विने ।
उदाराय सनाथाय कन्या देया वराय वै ।।८

एतच्चेदन्यथा कुर्यात्पिता स निरयी सदा ।
धर्मस्य साधनं कन्या विदुषामपि भास्कर ॥६
नरकस्येव मूर्खाणां कामोपहृतचेतसाम् ।
एकतः पृथिवी कृत्स्ना सशैलवनकानना ॥१०
स्वलंकृतोपाधिहीना सुकन्या चैकतः स्मृता ।
विक्रीणीते यश्च कन्यामश्वं वा गां तिलानपि ॥११
न तस्य रौरवादिभ्यः कदाचिन्निष्कृतिर्भवेत् ।
विवाहातिक्रमः कार्यो न कन्यायाः कदाचन ॥१२
तस्मिन्कृते यत्पितुः स्यात्पापं तत्केन कथ्यते ।
यावल्लज्जां न जानाति यावत्क्रीडति पांशुभिः ॥१३
तावत्कन्या प्रदातव्या नो चेत्पित्रोरधोगतिः ।
पितुः स्वरूपं पुत्रः स्याद्यः पिता पुत्र एव सः ॥१४

अपनी कन्या को किसी श्री सम्पन्न-युवा को जो विद्वान् कुलीन उदार-मनाय तथा यशस्वी हो उसी वर को देनी चाहिए ॥८॥ जो इस विधान के विपरीत यदि कोई भी कन्या का पिता किया करता है वह पिता सदा निरयी होता है। हे भास्कर ! विद्वानों की भी कन्या एक धर्म का साधन होती है ॥६॥ काम से उपहृत चित्त वाले मूर्खों को नरक के ही समान है । एक ओर तो शैलवन और कानन से संयुत सम्पूर्ण पृथ्वी है और दूसरी ओर सुन्दर अलङ्कारों से भूषित उपाधियों से हीन सुन्दर कन्या होती है ऐसा कहा गया है। जो कन्या को वेचता है अश्व और गौ तथा तिलों को वेचता है ॥१०-११॥ उसकी रौरव आदि नरकों से कभी भी निष्कृति नहीं होती है। कन्या के विवाह के समय का अतिक्रम कभी भी भूल कर नहीं करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि ठीक समय पर ही कन्या का विवाह अवश्य ही कर देना चाहिए ॥१२॥ उस कन्या के विवाह के अतिक्रम करने पर जो पिता को महान् पाप होता है वह किसके द्वारा वर्णन किया जा सकता है अर्थात् उस पाप को कोई भी वतला नहीं सकता है। जब तक कन्या लज्जा का ज्ञान नहीं प्राप्त किया करती है और जिस समय तक वह बालभाव से धूलि

मे क्रीडा किया करती है तभी तक कन्या का किसी योग्य वर के लिये प्रदान कर देना चाहिए। यदि ऐसा नही किया जाता है तो माता-पिता की अधोगति हुआ करती है। पुत्र पिता का ही एक स्वरूप होता है और जो पिता होता है वही पुत्र है ॥१३-१४॥

आत्मन सुखिता लोके को न कुर्यात्करोति च ।
यत्कन्याया पिता कुर्याद्दान पूजनमीक्षणम् ॥१५
यत्कृत तत्कृत विद्यात्तासु दत्त तदक्षयम् ।
यद्दत्त तासु कन्यासु तदानन्त्याय कल्पते ॥१६
पुत्रपु चैव पौत्रेपु को न कुर्यात्सुख रवे ।
करोति य कन्यकाना स सपद्‌भाजन भवेत् ॥१७
एव ता वादिनी कन्या विष्टि प्रोवाच भास्करः ॥१८
कि करोमि न गृह्णाति त्वा कश्चिद्भीपणाकृतिम् ।
कुल रूप वयो वित्त विद्या वृत्त सुशीलताम् ॥१९
मिथ पश्यन्ति सवन्धे विवाहे स्त्रीपु पुसु च ।
अस्मासु सर्वमप्यस्ति विना तव गुणै. शुभे ॥
कि करोमि क दास्यामि वृथा मा धिक्करोपि किम् ॥२०

आत्मा के सुख को लोक मे किसको नही करना चाहिए और कौन नहीं किया करता है। कन्या के विषय में पिता को दान पूजन और ईक्षण करना चाहिए। जो भी किया गया है उसको किया हुआ समझना चाहिए। उनके विषय मे अर्थात् कन्याओं के सम्बन्ध मे जो भी दिया गया है वह अक्षय होता है। कन्याओ के लिये जो भी दिया गया है वह अनन्तता को प्राप्त हो जाया करता है ॥१५-१६॥ हे रवे ! अपने पुत्रो के लिये और पौत्रो के लिये तो कौन मनुष्य हैं जो सुख के साधन नहीं जुटाता है ? जो अपनी कन्याओ के लिये सुख के साधन किया करता है वही वास्तव में सम्पदाओं का पात्र तथा अधिकारी हुआ करता है ॥१७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से कहने वाली अपनी कन्या विष्टि से भगवान् भास्कर ने कहा ॥१८॥ सूर्यदेव ने कहा—मैं क्या करूँ तुम ऐसी भीषण आकृति वाली हो कि तुमको कोई भी ग्रहण

नहीं करता है मैं इस में क्या करूँ ? स्त्री और पुरुष के विवाहों में और सम्बन्ध करने के समय में परस्पर रूप, कुल, वय, धन, विद्या, चरित्र और सुशीलता को देखा करते हैं। हे शुभे ! हमारे अन्दर अन्य तो सभी बातें हैं केवल तुम्हारे अन्दर जो गुण होने चाहिए वे ही नहीं हैं। मैं अब क्या करूँ ? कहाँ पर तुम्हारा दान करूं ? तुम वृथा ही मुझको क्यों धिक्कार रही हो ? ॥१९-२०॥

एवमुक्त्वा पुनस्तां च विष्टिं प्रोवाच भास्करः ॥२१
यस्मै कस्मै च दातव्या त्वं वै यद्यनुमन्यसे ।
दीयसेऽद्य मया विष्टे अनुजानीहि मां ततः ॥२२
पितरं प्राह सा विष्टिर्भर्ता पुत्रा धनं सुखम् ।
आयू रूपं च संप्रीतिर्जायते प्राक्तनानुगम् ॥२३
यत्पुरा विहितं कर्म प्राणिना साध्वसाधु वा ।
फलं तदनुरोधेन प्राप्यतेऽपि भवान्तरे ॥२४
स्वदोष एव तत्पित्रा परिहर्तव्य आदरात् ।
तादृगेव फलं तु स्याद्यादृगाचरितं पुरा ॥२५
यस्मात्तद्दानसंबन्धं स्ववंशानुगतं पिता ।
करोति शेषं दैवेन यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥२६
तच्छ्रुत्वा दुहितुर्वाक्यं त्वष्टुः पुत्राय भीषणाम् ।
विश्वरूपाय तां प्रादाद्विष्टिं लोकभयंकरीम् ॥२७
विश्वरूपोऽपि तद्वच्च भीषणो भीषणाकृतिः ।
एवं मिथः संचरतोः शीलरूपसमानयोः ॥२८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से कह कर पुनः उस वृष्टि अपनी कन्या से भास्कर देव ने कहा था ॥२१॥ सूर्य देव ने कहा—यदि तुम इस बात को स्वीकार करो कि मैं जिस-किसी को तुम्हारा दान कर दूँ तो हे विष्टे ! मेरे द्वारा आज ही तुम्हारा दान किया जाता है मुझको अपनी अनुमति प्रदान कर दो तो मैं ऐसा अभी किये देता हूँ कि जो भी कोई तुमको ग्रहण कर लेवे उसे तुमको देदूँ ॥२२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वह विष्टि अपने पिता से बोली थी कि भर्त्ता, पुत्र, धन, सुख,

आयु, रूप और भली प्रीति ये सब पूर्व के शरीर द्वारा किये हुए कर्मों के ही अनुसार हुआ करते हैं ॥२३॥ प्राणी के द्वारा जो भी कुछ पहिले जन्मों मे भला बुरा कर्म किया है उसी के अनुसार दूसरे जन्म मे फल प्राप्त किया जाता है ॥२४॥ उसके पिता के द्वारा आदर से अपना दोष ही दूर करना चाहिए। फल तो वैसा ही होता है जैसा पहिले आचरण किया है ॥२५॥ इसलिये कन्या के पिता को दान और सम्बन्ध को अपने वश क्रमानुगत करना चाहिए। शेष दैव के द्वारा जो होनहार होता है वही होगा ॥२६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह अपनी पुत्री के वचन सुन कर सूर्य देव ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के लिये उस अत्यन्त भीषण और लोकों को भय देने वाली विष्टि को दे दिया था ॥२७॥ वह विश्वरूप भी उसी के समान भीषण आकृति वाला अत्यन्त भीषण था। इस प्रकार से परस्पर मे दोनो ही शील एव स्वरूप म समान होते हुए सचरण करने वाले थे ॥२८॥

प्रीति कदाचिद्दंपम्य दपत्योरभवन्मिथ ।
गण्डो नामाभवत्पुत्रो ह्यनिर्गंडस्तथव च ॥२६
रक्ताक्ष क्रोधनश्चैव व्ययो दुर्मुख एव च ।
तेभ्य कनीयानभयद्धर्षणो नाम पुण्यभाक् ॥३०
सुत सुशील सुभग शान्त शुद्धमति शुचि ।
स कदाचिद्यमगृह द्रष्टु मातुलमभ्यगात् ॥३१
स ददर्श बहूञ्जन्तून्स्वगस्थानिव दु खिन ।
स मातुल तु पप्रच्छ नत्वा धर्म सनातनम् ॥३२
क इमे सुखिनस्तात पच्यन्ते नरके च के ॥ ३
एव पृष्टो धर्मराज सर्व प्राह यथार्थवत् ।
तत्कर्मणा गति सर्वामशेषेण न्यवेदयत् ॥३४
विहितस्य न कुर्वन्ति ये कदाचिदतिक्रमम् ।
न ते पश्यन्ति निरय कदाचिदपि मानवा ॥३५
न मानयन्ति ये शास्त्र नाऽऽचार न बहुश्रुतान् ।
विहितातिक्रम कुर्युर्ये ते नरकगामिन ॥३६

उन दोनों दम्पति में किसी समय में तो परस्पर में प्रीति होती थी और किसी समय में विषमता हो आया करती थी। उन दोनों से गण्ड-अतिगण्ड-रक्ताक्ष-क्रोधन-व्यय और दुर्मुख ये पुत्र समुत्पन्न हुए थे उन सबसे छोटा पुण्यात्मा हर्षण पुत्र हुआ था ॥२९-३०॥ यह सुत परम सुशील सुभग-शान्त-शुद्धिमति-शुचि था। उसने एक बार यमराज के घर में मातुल को देखने के लिये गमन किया था ॥३१॥ उसने वहां पर बहुत से जन्तुओं को स्वर्ग में स्थितों की तरह अत्यन्त दुःखित हुए देखा था। उसने सनातन धर्म को नमस्कार करके अपने मातुल से पूछा था ॥३२॥ हर्षण ने कहा—हे तात ! ये सुखी लोग कौन हैं और जो नरकों में यातनाएँ सह रहे हैं ये कौन हैं ॥३३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से पूछे गये धर्मराज ने जो यथार्थ बातें थीं वे सब बतलादी थीं। उनके किये हुए कर्मों की जो मति थी वह सम्पूर्ण पूर्णतया समझा दी थी ॥३४॥ यमराज ने कहा—जो लोग शास्त्र में विहित कर्म का कभी भी उल्लङ्घन नहीं करते हैं वह मनुष्य कभी भी नरकों के मुख को नहीं देखा करते हैं। जो न तो शास्त्रों को ही मानते हैं—न आचार की परवाह किया करते हैं और न बहुश्रुत लोगों का ही समादर करते हैं तथा सर्वदा शास्त्र विहित कर्मों का अतिक्रमण करते हैं, वे ही पुरुष नरक गामी हुआ करते हैं ॥३५-३६॥

स तु श्रुत्वा धर्मवाक्यं हर्षणः पुनरब्रवीत् ॥३७
पिता त्वाष्ट्रो भीषणश्च माता विष्टिश्च भीषणा।
भ्रातरश्चमहात्मनो येन ते शान्त बुद्धयः ॥३८
सुरूपाश्च भविष्यन्ति निर्दोषा मङ्गलप्रदाः।
तन्मे कर्म वदस्वाद्य तत्कर्ताऽस्मि सुरोत्तम ॥३९
अन्यथा तान्न गच्छेयमित्युक्तः प्राह धर्मराट्।
हर्षणं शुद्धिबुद्धिं तं हर्षणोऽसि न संशयः ॥४०
बहवः स्युः सुताः कंचिन्नैव ते कुलतन्तवः।
एक एव सुतः कश्चिद्येन तद्ध्रियते कुलम् ॥४१

कुलस्याऽऽधारभूतो यो य पित्रोः प्रियकारकः ।
य पूर्वजानुद्धरति स पुत्रस्त्वितरो गद ॥४२

श्री ब्रह्माजी ने कहा—वह हर्पण धर्मराज के इस वचन को सुनकर *फिर उससे बोला ॥ ७॥ हर्पण ने कहा—मेरे पिता त्वाष्ट्र महान् भीषण* हैं और मेरी विष्टि माता भी अत्यन्त भीषण है और भाई लोग महात्मा हैं जिससे वे शान्त बुद्धिवाले हैं ॥३८॥ सुरूप-निर्दोष और मङ्गल प्रद हो जायेंगे। इसलिये आज हे सुरोत्तम ! मुझे कोई कर्म बतलाइये वही मैं करूगा ॥३९॥ मैं उनके अन्यथा नही जाऊँगा। इस प्रकार से कहे गये धर्मराज ने उस शुद्ध बुद्धि वाले हर्पण से कहा था कि तुम हर्पण हो—इसमे कुछ भी सशय नही है ॥४०॥ बहुत अधिक सख्या वाले पुत्र हुआ करते हैं किन्तु वे अधिक पुत्र कुल के तन्तु नही हुआ करते हैं ऐसी बढ़ी हुई पुत्रों की सख्या से क्या लाभ है। एक ही कोई ऐसा पुत्र हुआ करता है जिससे उस कुल की रक्षा की जाया करती है ॥४१॥ जो कुल का आधार भूत होता है और माता-पिता का प्रिय कर्म करने वाला होता है तथा अपने पूर्वजो का उद्धार किया करता है वही वस्तुत. पुत्र है और जो ऐसा नही है वह पुत्र नही किन्तु गद ही होता है ॥४२॥

यस्मात्त्वयाऽनुरूप मे प्रोक्त मातामह प्रियम् ।
तस्मात्त्व गौतमी गच्छ स्नात्वा नियतमानस. ॥४३
स्तुहि विष्णु जगद्योनि शान्त प्रीतेन चेतसा ।
स तु प्रीतो यदि भवेत्सर्वमिष्ट प्रदास्यति ॥४४
इति श्रुत्वा धर्मवाक्य हर्पणो गौतमी ययौ ।
शुचिस्तुष्टाव देवेश हरिं प्रीतोऽभवद्धरि. ॥४५
हर्पणाय ततः प्रादात्कुलभद्र ततस्तु सः ।
सर्वाभद्रप्रशमनपूर्वक भद्रमस्तु ते ॥४६
तद्भद्रा प्रोच्यते विष्टिः पिता भद्रस्तथा सुताः ।
तत. प्रभृति तत्तीर्थ भद्रतीर्थं तदुच्यते ॥४७

सर्वमङ्गलदं पुंसां तत्र भद्रपतिर्हरिः ।
तत्तीर्थसेविनां पुंसां सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥
मङ्गलैकनिधिः साक्षाद्देवदेवो जनार्दनः ॥४८

हे मातामह प्रिय क्योंकि आपने मातामह का प्रिय मेरे अनुरूप कहा है इसी कारण से तुम गौतमी पर चले जाओ और नियत चित्त वाले होकर वहाँ स्नान करो। फिर प्रीति युक्त चित्त से परम शान्त-जगत् को उद्भूत करने वाले आदि कारण भगवान् विष्णु का स्तवन करो। यदि वे प्रसन्न हो जायंगे तो तुमको तुम्हारा सभी अभीष्ट प्रदान कर देंगे ॥४३-४४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—धर्मराज के इस वचन का श्रवण करके वह हर्षण गौतमी गङ्गा पर चला गया था। उसने परम पवित्र होकर देवेश्वर श्री हरि का स्तवन किया था और श्री हरि भगवान् प्रसन्न हो गये थे ॥४५॥ इसके उपरान्त उन्होंने हर्षण के लिये कुलभद्र प्रदान किया था। और कहा था कि सब अभद्रों के प्रशमन के साथ ही तेरा भद्र होगा ॥४६॥ उसकी विष्टि भद्रा कही जाती है-पिता भद्र है तथा सुत भी भद्र हैं। तभी से लेकर वह तीर्थ भी "भद्रतीर्थ"-इस नाम से कहा जाता है ॥४७॥ वहाँ पर पुरुषों को सभी मङ्गलों के देने वाले भद्रपति श्री हरि विराजमान रहते हैं। उस तीर्थ के सेवन करने वाले पुरुषों के लिये वे भगवान् सभी सिद्धियों के प्रदाता हैं। साक्षात् देवों के देव जनार्दन मङ्गलों की एक निधि हैं ॥४८॥

—:※:—

भानुतीर्थवर्णन

भानुतीर्थमिति ख्यातं त्वाष्ट्रं माहेश्वरं तथा ।
ऐन्द्रं याम्यं तथाऽऽग्नेयं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१
अभिष्टुत इति ख्यातो राजाऽऽसीत्प्रियदर्शनः ।
हयमेधेन पुण्येन यष्टुमारब्धवान्सुरान् ॥२

तत्रर्त्विज. षोडश स्युर्वसिष्ठात्रिपुरोगमा· ।
क्षत्रिये यजमाने तु यज्ञभूमि· कथ भवेत् ॥३
ब्राह्मणे दीक्षिते राजा भुव दास्यति यज्ञियाम् ।
भूपतौ दीक्षिते दाता को भवेत्को नु याचते ॥४
याच्ञेयमखिलाशर्मजननी पापरूपिणी ।
केनाप्यतो न कार्यैव क्षत्रियेण विशेषत ॥५
एव मीमासमानेषु ब्राह्मणेषु परस्परम् ।
तत्र प्राह महाप्राज्ञा वसिष्ठो धर्मवित्तम. ॥६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—भानुतीर्थ-इस नाम से एव त्वाष्ट्र माहेश्वर-ऐन्द्र-याम्य तथा आग्नेय नाम से विख्यात है जो समस्त पापो के विनाश करने वाला है ॥१॥ "अभिष्टुत–" इस नाम से विख्यात प्रिय दर्शन एक राजा था। उस राजा ने परम पुण्य अश्वमेध यज्ञ के द्वारा सुरो का यजन करना आरम्भ किया था ॥२॥ उस यज्ञ मे सोलह ऋत्विज थे जो कि ऐसे थे जिनमे वसिष्ठ और अत्रि जैसे महामुनीन्द्र अग्रगामी थे। एक क्षत्रिय के यजमान होने पर यज्ञ भूमि कैसे होवे ॥३॥ ब्राह्मण के दीक्षित होने पर यज्ञिय भूमि को राजा देगा। जब भूपति ही दीक्षित होवे तो ऐसा होने पर कौन दाता होगा और कौन याचना करता है ॥४॥ यह जो याचना है वह पूर्ण रूप से अकल्याण के जनन करने वाली और पाप रूपिणी होती है। अतएव इस याचना को तो किसी को भी कभी नही करना चाहिए और विशेष रूप से क्षत्रिय के द्वारा तो कभी की ही नही जानी चाहिए ॥५॥ इस प्रकार से ब्राह्मणो के मीमासा करने पर जो कि परस्पर मे विचार कर रहे थे वहा पर महान् पण्डित धर्म के वेत्ताओ मे परम ज्ञाता एव श्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने कहा ॥६॥

राज्ञि दीक्षायमाणे तु सूर्या याच्यो भुव प्रति ।
देहि मे देव सवितर्यजन देवताचितम् ॥७
देव क्षत्रमसि ब्रह्मन्भूतनाथ नमोऽस्तु ते ।
याचित. सविता राज्ञा देवाना यजन शुभम् ॥८

ददात्येव ततो राजन्प्रार्थयेशं दिवाकरम् ॥९
तथेत्युक्त्वाऽभिष्टुतोऽपि देवदेवं दिवाकरम् ।
श्रद्धया प्रार्थयामास हरीशाजात्मकं रविम् ॥१०
देवानां यजनं देहि सवितस्ते नमोऽस्तु ते ॥११
क्षत्रं दैवं यतः सूर्यो दत्ता भूर्भूपतेस्ततः ।
सविता देवदेवेशो ददामीत्यभ्यभाषत ॥१२
एवं करोति यो यज्ञं तस्य रिष्टिर्न काचन ।
तथा वाजिमखे सत्रे ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥१३
प्रारब्धेऽभिष्टुता राज्ञा यत्रागाद्भूपतिं रविः ।
देवानां यजनं दातुं भानुतीर्थं तदुच्यते ॥१४

श्री वसिष्ठ जी ने कहा—राजा के दीक्षित होने पर भू की याचना सूर्य्य देव से ही करनी चाहिए। और इस तरह से कहना चाहिए कि हे सवितादेव ! मुझको देवतोचित यजन प्रदान करो ॥७॥ हे ब्रह्मन् आप दैवक्षत्र हैं ! हे भूतनाथ ! आपको मेरा नमस्कार है। राजा के द्वारा सविता से याचना की थी । देवों का शुभ यजन देता ही है। हे राजन् ! ईश दिवाकर से प्रार्थना करो ॥८-९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा--ऐसा ही करूँगा-यह कह कर अभिकुल भी उसने देवों के भी देव दिवाकर हरि-ईश और अज के स्वरूप वाले भगवान् रवि की बहुत ही श्रद्धा से प्रार्थना की थी ॥१०॥ राजा ने कहा—हे सविता देव ! देवों का यजन मुझे दीजिए आपकी सेवा में बारम्बार प्रणाम है ॥११॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—क्षत्रदैव है क्योंकि सूर्य है। फिर भूपति की भूमि दी गई थी। सविता देव देवेश ने देता हूं-यह कहा था ॥१२॥ जो इस प्रकार से यज्ञ किया करता है उसकी कोई भी रिष्टि नहीं होती है। तथा वाजिमख सत्र में वेदों के पारगामी ब्राह्मणों के द्वारा अभिस्तवन करने वाले राजा से आरम्भ किये जाने पर रविदेव समागत हुए थे जहाँ पर कि वह भूपति था । रविदेवों के यजन को देने के लिये ही आये थे। अतएव यह भानुतीर्थ नाम से कहा जाता है ॥१३-१४॥

त देवक्रतुमुत्कृष्ट हयमेध सुरैर्युतम् ।
दैत्याश्च दनुजाश्चैव तथाऽन्ये यज्ञघातकाः ॥१५
ब्रह्मवेशधरा सर्वे गायन्त. सामगा इव ।
तेऽपि तत्र महाप्राज्ञा प्राविशन्ननिवारिताः ॥१६

चमसानि च पात्राणि सोम चपालमेव च ।
सोमपान हविस्त्यागमृत्विजो भूपति तथा ॥१७
निन्दन्ति निक्षिपन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये तथाऽसुरा ।
तेषा चेष्टा न जानन्ति विश्वरूप विना मुमे ॥१८
विश्वरूपोऽपि पितर प्राह दैत्या इमे इति ।
तत्पुनर्वचन श्रुत्वा त्वष्टा प्राह सुरानिदम् ॥१६

गृहीत्वा वारिदर्भाश्च प्रोक्षयध्व समन्ततः ।
ये निन्दति मख पुण्य चमस सोमनेव च ॥२०
मया त्वपहृता सर्वं इत्युक्त्वा परिपिञ्चत ॥२१

उस उत्कृष्ट देव क्रतु को जो सुरो से युक्त हयमेध था दैत्य-दनुज तथा अन्य यज्ञ घातक ब्रह्मवेष को धारण करने वाले सब सामगान करने वालो की भाति गायन करते हुए वे भी महाप्राज्ञ वहा पर बिना निवा-रण किये हुए प्रविष्ट हुए थे ॥१५-१६॥ चमस-पात्र-सोम-चपाल-सोम-पाल-हवि-त्याग-ऋत्विज-भूपति की निन्दा करते हैं-निक्षेप करते हैं-दूसरे हँसते हैं और अन्य असुर मजाक उडाते हैं । हे मुनिवर ! उनकी चेष्टा को विश्व रूप के बिना नहीं जानते हैं ॥१७-१८॥ विश्वरूप ने भी अपने पिता से कहा था—ये दैत्य हैं । अपने पुत्र के इस वचन का श्रवण करके त्वष्टा ने सुरो से यह कहा था ॥१६॥ त्वष्टा बोला—वारिदर्भों को ग्रहण करके सभी ओर से प्रोक्षण करो । जो इस मख की तथा चमस और सोम की निन्दा करते हैं वे सब मेरे द्वारा अपहृत है—यह कह कर परि पिञ्चन करो ॥२०-२१॥

तथा चक्रु: सुरगणास्त्वष्टा चापि तथाऽकरोत् ।
भस्मीभूतास्तत. सर्वे कादिशीकास्ततोऽभवन् ॥२२

हता मया महापापा इत्युक्त्वा वार्यवाक्षिपत् ।
ततः क्षीणायुषो दैत्याः प्रातिष्ठन्कुपितास्ततः ॥२३
यत्रैतत्प्राक्षिपद्वारि त्वष्टा लोकप्रजापतिः ।
त्वाष्ट्रं तीर्थं तदाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२४
त्वष्टुर्वाक्याच्च्युतान्दैत्यान्निजधान यमस्तदा ।
कालदण्डेन चक्रेण कालपाशेन मन्युना ॥२५
यत्र ते निहता दैत्यास्तत्तीर्थं याम्यमुच्यते ।
यत्राभवत्क्रतुः पूर्णो हुत्वाऽग्नौ चामृतं बहु ॥२६
धाराभिः शरमानाभिरखण्डाभिर्महाध्वरे ।
यत्राभवद्धव्यवाहस्तृप्तस्तस्य ह्यभिष्टुतः ॥२७
अग्नितीर्थं तदाख्यातमश्वमेधफलप्रदम् ।
इन्द्रो मरुद्भिर्नृपतिं प्राहेदं वचनं शुभम् ॥२८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सुरगणों ने उसी प्रकार से किया था और त्वष्टा ने भी वैसा ही किया था उसके पश्चात् सभी भस्मीभूत हो गये थे और पीछे सब कांदिशीक हो गये थे अर्थात् किस दिशा को भाग जावें ऐसे विचार वाले हो गये थे ॥२२॥ महान् पाप करने वाले मेरे द्वारा मार गिराये गये हैं—यह कहकर जल का आक्षेप किया था। इसके उपरान्त क्षीण आयु वाले दैत्य कुपित होकर स्थित हो गये थे ॥२३॥ लोकों के प्रजापति त्वष्टा ने जहां पर वारि का प्रक्षेप किया था वह त्वाष्ट्र तीर्थ आख्यात हो गया था जो समस्त पापों का विनाश करने वाला है ॥२४॥ इसी समय में त्वष्टा के वाक्य से च्युत हुए दैत्यों को यमराज ने मार दिया था जो कि कालदण्ड-चक्र-कालपाश और मन्यु के द्वारा हनन किया था ॥२५॥ जहां पर वे दैत्य निहित हुए थे वह तीर्थ याम्य तीर्थ नाम से कहा जाया करता है। जहां पर वह क्रतु पूर्ण हुआ था और बहुत सा अमृत अग्नि में हवन किया गया था जो कि उस महाध्वर में शरमान अखण्ड धाराओं से किया था अभिष्टुत उसका जिस स्थान पर हव्यवाह (अग्नि) संतृप्त हुआ था वह अग्नि तीर्थ नाम से विख्यात

हो गया था जो अश्वमेध यज्ञ के फल प्रदान करने वाला है। फिर मरुद्-गणो के साथ इन्द्रदेव ने नृपति से यह शुभ वचन कहा था ॥२६-२८॥

त्वं सम्राड्भविता राजन्नुभयोरपि लोकयोः ।
सखा मम प्रियो नित्यं भविता नात्र संशयः ॥२९
स कृतार्थो मर्त्यलोके इन्द्रतीर्थे च तर्पणम् ।
कुर्यात्पितॄणां प्रीत्यर्थं यमतीर्थे विशेषतः ॥३०
माहेश्वरं तु तत्तीर्थं पूजितोऽभिष्टुतः शिवः ।
भक्तियुक्तेन विप्रैश्च सर्वकर्मविशारदैः ॥३१
वैदिकैर्लौकिकैश्चैव मन्त्रैः पूज्यं महेश्वरम् ।
नृत्यैर्गीतैस्तथा वाद्यै रमृतैः पञ्चसंभवैः ॥३२
उपचारैश्च बहुभिर्दण्डपातप्रदक्षिणैः ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः पुष्पैर्गन्धैः सुगन्धिभिः ॥३३
पूजयामास देवेशं विष्णुं शम्भुं धियैकया ।
ततः प्रसन्नौ देवेशौ वरान्ददतुरोजसा ॥३४
अभिष्टुते नरेन्द्राय भुक्तिमुक्ती उभे अपि ।
महात्म्यमस्य तीर्थस्य तथा ददतुरुत्तमम् ॥३५

हे राजन् ! दोनो लोको के आप सम्राट हो जांय जो और आप परम प्रिय सखा भी होंगे—इसमें कुछ भी संशय नही है ॥२९॥ वह मर्त्य लोक कृतार्थ है जिसने इन्द्र तीर्थ मे तर्पण किया है। पितृगणो की प्रीति के लिये यम तीर्थ मे विशेष रूप से तर्पण करना चाहिए ॥३०॥ जहा पर भगवान् महेश्वर देव अभिष्टुत हुए थे वह माहेश्वर पूजित तीर्थ होगया था। सब कर्मों मे विशारद विप्रो के द्वारा भक्ति से युक्त होकर वैदिक तथा लौकिक मन्त्रो के द्वारा भगवान् महेश्वर का पूजन करना चाहिए नृत्य गीत-वाद्य पञ्च सम्भव अमृत अर्थात् पञ्चामृत-बहुत-से उपचार-दण्डवत् प्रणिपात प्रदक्षिणा-धूप दीप नैवेद्य गन्ध-सुगन्धित पुष्प आदि समस्त उपचारो के द्वारा एक बुद्धि से भगवान् विष्णु और शम्भु का पूजन किया था। इसके अनन्तर देवेश्वर दोनो परम प्रसन्न हो गये थे ।

उन्होंने ओज के द्वारा वरदान दिया था। उस अभिस्तवन करने वाले नरेन्द्र के लिये भुक्ति और मुक्ति दोनों ही दे दी थी। इस तीर्थ का उत्तम माहात्म्य भी दिया है ॥३१-३५॥

ततःप्रभृति तत्तीर्थं शैवं वैष्णवमुच्यते।
तत्र स्नानं च दानं सर्वकामप्रदं विदुः ॥३६
इमानि सर्वतीर्थानि स्मरेदपि पठेत वा।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः शिवविष्णुपुरं व्रजेत् ॥३७
भानुतीर्थे विशेषेण स्नानं सर्वार्थसिद्धिदम्।
तत्र तीर्थे महापुण्यं तीर्थानां शतमत्र हि ॥३८

तभी से लेकर वह तीर्थ शैव तीर्थ एवं वैष्णव तीर्थ कहा जाता है। वहां पर किया हुआ स्नान तथा दान सभी मनोरथों का प्रदान करने वाला कहा गया है ॥३६॥ इन उपर्युक्त सब तीर्थों का स्मरण करे अथवा पठन करे वह सभी पापों से विमुक्त होकर शिवपुर तथा विष्णु पुर को गमन किया करता है ॥३७॥ भानुतीर्थ में विशेप रूप से स्नान करने से सभी अर्थों की सिद्धि को प्रदान हो जाता है। उस तीर्थ में महान् पुण्य होता है और वहां पर एक सौ तीर्थ हैं ॥३८॥

चक्षुस्तीर्थवर्णन

चक्षुस्तीर्थमिति ख्यातं रूपसौभाग्यदायकम्।
यत्र योगेश्वरो देवो गौतम्यादक्षिणे तटे ॥१
पुरं भौवनमाख्यातं गिरिमूर्ध्न्यभिधीयते।
यत्रासौ भौवनो राजा क्षत्रधर्मपरायणः ॥२
तस्मिन्पुरवरे कश्चिद्ब्राह्मणो वृद्धकौशिकः।
तत्पुत्रो गौतम इति ख्यातो वेदविदुत्तमः ॥३

तस्य मातृर्मनोदोषाद्विपरीतोऽभवद्द्विज. ।
सखा तस्यणिकश्चिन्मणिकुण्डल उच्यते ॥४
तेन सख्य द्विजस्याऽऽसीद्विपम द्विजवैश्ययो ।
श्रीमद्दरिद्रयोर्नित्य परस्परहितैषिणो ॥५
कदाचिद्गौतमो वैश्य वित्तेश मणिकुण्डलम् ।
प्राहेद वचन प्रीत्या रह' स्थित्वा पुन पुन ॥६
गच्छामो धनमादात्तु पर्वतानुदधीनपि ।
यौवन तद्वृथा ज्ञेय विना सौख्यानुकूल्यत ॥
धन विना तत्कथ स्यादहो धिङ्निधन नरम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—रूप और सौभाग्य को प्रदान करने वाला एक महान् तीर्थ "चक्षुस्तीर्थ"—इस नाम स विख्यात है जहाँ पर गौतमी व दक्षिण तट पर योगेश्वर देव विराजमान रहते हैं ॥१॥ वहा पर भौवनपुर नाम से कहा जाने वाला स्थल है जो गिरि की शिखर पर स्थित कहा जाया करता है। वहा पर भौवन राजा है जो कि क्षात्र धर्म मे परायण था ॥२॥ उस परम श्रेष्ठ पुर मे कोई एक वृद्ध कौशिक ब्राह्मण रहता था। उसका एक पुत्र था जो वेद वेत्ताओ मे अत्यन्त उत्तम था और गौतम इस नाम से प्रसिद्ध था ॥३॥ उसकी माता के मन के दोष से वह द्विज विपरीत हो गया था उसका कोई एक वैश्य सखा था जो मणिकुण्डल नाम से पुकारा जाया करता था ॥४॥ उसके ही साथ मे उसकी मित्रता थी जोकि द्विज और वैश्य दोनो मे विपम थी। एक श्रीमान् था और दूसरा दरिद्र था किन्तु इन दोनो की मित्रता थी और परस्पर म दोनो ही एक दूसरे के हितैषी थे ॥५॥ किसी समय मे एकान्त मे स्थित होकर वित्त के स्वामी मणिकुण्डल वैश्य से प्रीतिपूर्वक बारम्बार यह वचन उस गौतम ने कहा था—॥६॥ गौतम बोला—हम दोनो धन की प्राप्ति करने के लिये पर्वतो और समुद्रो पर भी चले क्यो कि बिना सौख्य की अनुकूलता के यह यौवन व्यर्थ ही हो जाता है। वह सुख की अनुकूलता बिना धन के कैसे हो सकती है। ओहो ! निर्धन

मनुष्य को तो धिक्कार ही है अर्थात् धनहीन पुरुष का जीवन धिक्कार पूर्ण ही होता है ॥७॥

कुण्डलो द्विजमाहेदं मत्पित्रोपार्जितं धनम् ।
बह्वस्ति किं धनेनाद्य करिष्ये द्विजसत्तम ॥
द्विजः पुनरुवाचेदं मणिकुण्डलमोजसा ॥८
धर्मार्थज्ञानकामानां को नु तृप्तः प्रशस्यते ।
उत्कर्षप्राप्तिरेवैषां सखे श्लाघ्या शरीरिणाम् ॥६
स्वेनैव व्यवसायेन धन्या जीवन्ति जन्तवः ।
परदत्तार्थसंतुष्टाः कष्टजीविन एव ते ॥१०
स पुत्रः शस्यते लोके पितृभिश्चाभिनन्द्यते ।
यः पैत्र्यमभिलिप्सेत न वाचाऽपि तु कुण्डल ॥११
स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽर्थानर्जयते सुतः ।
स कृतार्थो भवेल्लोके पैत्र्यं वित्तं न तु स्पृशेत् ॥१२
स्वयमार्ज्य सुतो वित्तं पित्रे दास्यति बन्धवे ।
तं तु पुत्रं विजानीयादितरो योनिकीटकः ॥१३

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस कुण्डल वैश्य ने द्विज से यह वचन कहा था कि हे द्विज श्रेष्ठ ! मेरे पिता के द्वारा कमाया हुआ बहुत-सा धन विद्यमान है। अब इस समय में धन से क्या करोगे ? ॥८॥ गौतम ने कहा—धर्म-अर्थ-ज्ञान और काम इनसे इस संसार में कौन तृप्त होकर प्रशंसित हो सकता है। हे सखे ! इन देहधारियों की उत्कर्ष की प्राप्ति ही श्लाघा करने के योग्य हुआ करती है ॥६॥ जन्तुगण अपने ही व्यवसाय के द्वारा जो जीवित रहा करते हैं वे ही वास्तव में परम धन्य अर्थात् भाग्यशाली हैं। दूसरे के द्वारा दिये हुए धन से सन्तुष्ट रहने वाले जो प्राणी होते हैं वे कष्टपूर्ण जीवन रखने वाले ही हुआ करते हैं ॥१०॥ वही पुत्र लोक में प्रशंसा का पात्र माना जाया करता है और पितादि के द्वारा भी अभिनिन्दित किया जाता है। हे कुण्डल ! जो वचनों के द्वारा भी पिता के अर्जित धन की अभिलिप्सा नहीं किया करता है ॥११॥ जो पुत्र अपनी भुजाओं के बल का आश्रय ग्रहण करके धन का

अर्जन किया करता है वह ही लोक मे कृतार्थ (सफल) हुआ करता है तथा जो पिता के कमाये हुए धन का स्पर्श भी नही करता है वही प्रशसनीय पुत्र होता है ॥१२॥ जो पुत्र धन का स्वय अर्जन करके पिता को तथा बन्धु के लिये दिया करता है उसी को वास्तव मे पुत्र जानना चाहिए। जो ऐसा नही करता है वह तो योनि कीटक होता है अर्थात् एक कीडे के ही तुल्य होता है ॥१३॥

एतच्छ्रुत्वा तु तद्वाक्य ब्राह्मणस्याभिलापिण. ।
तथेति मत्वा तद्वाक्य रत्नान्यादाय सत्वर ॥१४
आत्मकीयानि वित्तानि गौतमाय न्यवेदयत् ।
धनेनैतेन देशाश्च परिभ्रम्य यथासुखम् ॥१५
धनान्यादाय वित्तानि पुनरेष्यामहेगृहम् ।
सत्यमेव वणिग्वक्ति स तु विप्र प्रतारक ॥१६
पापात्मा पापचित्त च न बुबोध वणिग्द्विजम् ।
तौ परस्परमामन्त्रय माता पित्रोरजानतो ॥१७
देशाप्रदेशान्तर यातो धनार्थ तौ वणिग्द्विजौ ।
वणिग्धनस्तस्थित वित्त ब्राह्मणो हर्तु मिच्छति ॥१८
येन केनाप्युपायेन तद्धन हि समाहरे ।
अहो पृथिव्या रम्याणि नगराणि सहस्रश ॥१९
इष्टप्रदाय्य· कामस्य देवता इव योपित· ।
मनोहरास्तत्र तत्र सन्ति किं क्रियते मया ॥२०
धनमाहृत्य यत्नेन योपिद्भ्यो यदि दीयते ।
भुज्यन्ते तास्ततो नित्य सफल जीवित हि तत् ॥ १

श्री ब्रह्माजी ने कहा— अभिलाषा रखने वाले ब्राह्मण के उस वाक्य का श्रवण करके ऐसा ही किया जायगा—यह कह कर उसके वाक्य को मान कर शीघ्रता से समुत होकर अपने रत्न और धन लाकर उसने गौतम को देदिये थे। इस धन से सुख पूर्वक देशो का भ्रमण करेंगे और विशेष धनो को लेकर पुन घर में आजायगे। वह वैश्य तो सर्वथा सत्य ही बोल रहा था किन्तु वह विप्र प्रतारण करने वाला पापात्मा ठग था

॥१४-१६॥ किन्तु वह वणिक् उस चित्त में पाप रखने वाले द्विज को न समझ सका था। वे दोनों परस्पर में सलाह करके अपने२ माता-पिता को न जतला कर ही दूसरे देश में चले गये थे। वे दोनों वणिक् और द्विज धन प्राप्त करने के ही लिये गये थे। उस वणिक् के हाथ में स्थित धन को वह ब्राह्मण हरण करना चाहता था ॥१७-१८॥ ब्राह्मण ने कहा—जिस किसी भी उपाय से उसके धन का अपहरण कर लूँ। ओहो! इस भूमण्डल में सहस्रों ही परम सुन्दर नगर हैं—काम वासना के अभीष्ट सुख को प्रदान करने वाली नारियां हैं जो देवताओं की तरह से रहा करती हैं। वहाँ-वहाँ पर बहुत सुन्दर रमणियाँ हैं। मुझे अब क्या करना चाहिए ॥१९-२० इस वणिक् के धन का यत्न से अपहरण करके यदि स्त्रियों को दिया जाय तो उनका उपभोग नित्य ही किया जा सकता है और फिर जीवन भी सफल हो सकता है ॥२१॥

नृत्यगीतरतो नित्यं पण्यस्त्रीभिरलंकृतः।
भोक्ष्ये कथं तु तद्वित्तं वैश्यान्मद्धस्तमागतम् ॥२२
एवं चिन्तयमानोऽसौ गौतमः प्रहसन्निव।
मणिकुण्डलमाहेदमधर्मादेव जन्तवः ॥२३
वृद्धिं सुखमभीष्टानि प्राप्नुवन्ति न संशयः।
धर्मिष्ठाः प्राणिनो लोके दृश्यन्ते दुःखभागिनः ॥२४
तस्माद्धर्मेण किं तेन दुःखैकफलहेतुना ॥२५
नेत्युवाच ततो वैश्यः सुखं धर्मे प्रतिष्ठितम्।
पापे दुःखं भयं शोको दारिद्र्यं क्लेश एव च ॥
यतो धर्मस्ततो मुक्तिः स्वधर्मः किं विनश्यति ॥२६
एवं विवदतोस्तत्र संपरायस्तयोरभूत्।
यस्य पक्षो भवेज्ज्यायान्स परार्थमवाप्नुयात् ॥२७
पृच्छावः कस्य प्राबल्यं धर्मिणो वाऽप्यधर्मिणः।
वेदात्तु लौकिकं ज्येष्ठं लोके धर्मात्सुखं भवेत् ॥२८

फिर तो नित्य ही नृत्य और गान में निरत होकर पण्य स्त्रियों से अलंकृत रहूँगा अर्थात् वेश्याओं से समन्वित रहकर आनन्द का भोग

करूँगा। मैं वैश्य से उसका धन यदि मेरे हाथ में आगत हो जायगा तो मैं उस वित्त को कैसे भोगूँगा ॥२२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस रीति से यह गौतम चिन्तन करता हुआ हँसते हुए की भाँति मणि कुण्डल से यह बोला था कि अधर्म से ही जन्तुगण वृद्धि सुख और अभीष्टों की प्राप्ति किया करते हैं-इसमें कुछ भी संशय का अवसर नहीं है जो प्राणी बहुत बड़े धर्मिष्ठ होते है वे लोक मे दुःखों के भागी ही दिखलाई दिया करते हैं ॥२३ २४॥ इसलिये दुःख ही एक जिसके फल का हेतु है ऐसे उस धर्म से क्या करना है। अर्थात् दुःख प्रद धर्म के पालन करने से क्या लाभ है ॥२५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस वैश्य ने यही कहा था कि यह बात ठीक नहीं है। सुख तो वास्तव मे धर्म्म मे ही प्रतिष्ठित रहा करता है। पाप मे तो दुःख है भय है-शोक है दरिद्रता है और क्लेश ही क्लेश है। जहाँ पर धर्म्म है वहीं पर मुक्ति है। अपना धर्म क्या कभी नष्ट होता है ? अर्थात् धर्म का विनाश नहीं होता है ॥२६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस तरह से विवाद करते हुए उन दोनों मे वहाँ पर झगड़ा खड़ा हो गया था। जिसका पक्ष ज्यायान् (अधिक बड़ा) हो वही पदार्थ को प्राप्त कर लेगा ॥२७॥ धर्म करने वाले अथवा अधर्म करने वाले मे किसकी प्रबलता है—यह पूछा जावे। वेद से तो लौकिक ज्येष्ठ है और लोक मे धन से सुख होता है ॥२८॥

एवं विवदमानौ तावूचतु सकलाञ्जनान् ।
धर्मस्य वाऽप्यधर्मस्य प्राबल्यमनयोर्भुवि ॥२९

तद्वदन्तु यथावृत्तमेवमूचतुरोजसा ।
एवं तत्रोचिरे केचिद् धर्मेणानुवर्तिन ॥३०

तद्दुःखमनुभूयन्ते पापिष्ठा सुखिनो जना ।
सपराये धन सर्वं जितं विप्रे न्यवेदयत् ॥३१

मणिमान्धर्मविच्छ्रेष्ठ पुनर्धर्मं प्रशंसति ।
मणिमन्तं द्विज प्राह किं धर्ममनुशाससि ॥
तथेपि चेत्याह वैश्यो ब्राह्मण. पुनरब्रवीत् ॥३२

जितं मया धनं वैश्य निर्लज्जः किंनु भाषसे ।
मयैव विजितो धर्मो यथेष्टचरणात्मना ।।३३।।
तद्ब्राह्मणवचः श्रुत्वा वैश्यः सस्मित ऊचिवान् ।।३४
पुलाका इव धान्येषु पुत्तिका इव पक्षिषु ।
तथैव तान्सखे मन्ये येषां धर्मो न विद्यते ।।३५
चतुर्णां पुरुषार्थानां धर्मः प्रथम उच्यते ।
पश्चादर्थश्च कामश्च स धर्मो मयि तिष्ठति ।।
कथं ब्रूषे द्विजश्रेष्ठ मया विजितमित्यदः ।।३६

इस प्रकार से विवाद करते हुए वे दोनों से सब मनुष्यों से पूछा था कि भू मण्डल में धर्म तथा अधर्म इन दोनों में प्रवलता किसकी होती है ? यह यथावृत्त जो भी ठीक हो हमको बतलाइए—यही बड़े ओज के साथ उन दोनों ने कहा था । इस तरह से वहाँ पर उन सब लोगों में से कुछ लोग जो धर्म के ही अनुवर्त्ती थे वे बोले ।।२९-३०।। जो पापिष्ठ जन सुखी हैं उनके द्वारा दुःख का अनुभव किया जाया करता है । उस सम्पराय में जीता हुआ समस्त धन उस विप्र को देदिया था ।।३१।। धर्म के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ मणिमान् ने फिर भी धर्म की प्रशंसा की थी । वह द्विज मणिमान् से बोला था कि क्या आप धर्म की पुनः प्रशंसा कर रहे हैं । श्री ब्रह्माजी ने कहा—तो भी वह ब्राह्मण वैश्य से फिर भी यह बोला था ।।३२।। ब्राह्मण ने कहा—हे वैश्य ! मैंने सम्पूर्ण धन जीत लिया है । तुम निर्लज्ज होते हुए क्या बोलते हो । यथेष्ट आचरण करने वाले मैंने ही तो धर्म्म को विजित कर दिया है ।।३३।। श्री ब्रह्माजी ने कहा—ब्राह्मण के उस वचन को सुन कर वैश्य मुस्कराहट के साथ बोला था ।।३४।। वैश्य ने कहा—धान्यों में पुलाकाओं की तरह और पक्षियों में पुत्तिकाओं के समान हे सखे ! उसी भाँति मैं उन मनुष्यों को समझता हूँ जिनके अन्दर धर्म विद्यमान नहीं होता है ।।३५।। चारों पुरुषार्थों में धर्म प्रथम कहा जाता है । इसके पीछे अर्थ और काम है । वही धर्म मुझ में स्थित है । हे द्विज श्रेष्ठ ! तुम मुझसे कैसे बोलते हो कि मैंने यह विजित कर दिया है ।।३६।।

द्विजो वैश्य पुन प्राह हस्ताभ्या जायता पण' ।
तथेति मन्यते वैश्यस्तौ गत्वा पुनरूचतु ॥३७

पूर्ववल्लौकिकान्गत्वा जितमित्यब्रवीद्द्विज' ।
करौ छित्वा तत प्राह कथ धर्मं तु मन्यसे ॥
आक्षिप्तो ब्राह्मणेनैव वैश्यो वचनमब्रवीत् ॥३८

धर्ममेव पर मन्ये प्राणै कण्ठगतैरपि ।
माता पिता सुहृद्बन्धुधर्म एव शरीरिणाम् ॥३९
एव विवदमानौ तावथवान्ब्राह्मणोऽभवत् ।
विमुक्तो वैश्यकस्तत्र बाहुभ्या च धनेन च ॥४०

एव भ्रमन्तौ सप्राप्तौ गङ्गा योगेश्वर हरिम् ।
यदृच्छया मुनिश्रेष्ठ मिथस्तावूचतु पुन ॥४१
वैश्यो गङ्गा तु योगेश धर्ममेव प्रशसति ।
अतिकोपाद्द्विजो वैश्यमाक्षिपन्पुनरब्रवीत् ॥४२

श्री ब्रह्माजी ने कहा—द्विज उस वैश्य से फिर बोला हाथों से पण होवे। वैश्य ने भी बहुत ठीक कह कर मान लिया था। वे दोनो जाकर पुन बोले थे ॥३७॥ पूर्व की भाँति लौकिकों के पास जाकर द्विज ने कहा मैंने जीत लिया है। दोनो हाथो को छेदन करके इसके उपरान्त बोला था कैसे धर्म को मानता है। इस तरह से ब्राह्मण के द्वारा आक्षिप्त हुआ वैश्य यह वचन बोला था ॥३८॥ वैश्य ने कहा—चाहे मेरे प्राण कण्ठगत भी क्यों न हो जावें मैं धर्म को ही परमाधिक मानता हू। शरीर धारियों का माता पिता सुहृत् बन्धु यह सब कुछ एक धर्म ही है ॥३९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से वे दोनो विवाद कर रहे थे। ब्राह्मण अब वाला धनी हो गया था और वह वैश्य वहाँ पर दोनो बाहुओ से और धन से विमुक्त हो गया था ॥४०॥ इस रीति से वे दोनो भ्रमण करते हुए गङ्गा तट पर योगेश्वर श्री हरि के समीप में सम्प्राप्त हो गये थे। हे मुनिश्रेष्ठ! वे यदृच्छा से ही वहाँ पहुँच गये थे और फिर दोनो परस्पर में बोले थे ॥४१॥ वैश्य ने

गङ्गा-योगेश और धर्म की ही प्रशंसा कर रहा था और वह द्विज अत्यन्त क्रोध से वैश्य पर आक्षेप करता हुआ पुनः बोला था ॥४२॥

गतं धनं करौ छिन्नाववशिष्टोऽसुभिर्भवान् ।
त्वमन्मथा यदि ब्रूष आहरिष्येऽसिना शिरः ॥४३
विहस्य पुनराहेदं वैश्यो गौतममञ्जसा ॥४४
धर्ममेव परं मन्ये यथेच्छसि तथा कुरु ।
ब्राह्मणांश्च गुरून्देवान्वेदान्धर्मं जनार्दनम् ॥४५
यस्तु निन्दयते पापो नासौ स्पेश्योऽथ पापकृत् ।
उपेक्षणीयो दुर्वृत्तः पापात्मा धर्मदूषकः ॥४६
लतः प्राह स कोपेन धर्मं यद्यनुशंससि ।
आवयोः प्राणायोरत्र पणः स्यादति वै मुने ॥४७
एवमुक्ते गौतमेन तथेत्याह वणिक्तदा ।
पुनरप्यूचतुरुभौ लोकंलज्ञोकास्तयोचिरे ॥४८
योगेश्वरस्यापुरतो गौतम्या दक्षिणे तटे ।
तं निपात्य विशं विप्रश्चक्षुरुत्पाट्य चाब्रवीत् ॥४९

ब्राह्मण ने कहा—तुम्हारा धन गया—हाथ दोनों कट गये हैं अब आप केवल अपने प्राणों से ही युक्त रह गये हैं। यदि तुम अभी भी विपरीत बोलते ही रहोगे तो मैं तुम्हारा मस्तक तलवार से काट डालूँगा ॥४३॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस वैश्य ने तुरन्त ही हँस कर गौतम से कहा था ॥४४॥ वैश्य बोला—मैं तो धर्म को ही सबसे प्रधान मानता हूँ अब तुम्हारी इच्छा हो वह करो। ब्राह्मणों की, गुरुओं की, देवों की, वेदों की, धर्म की और जनार्दन की जो निन्दा किया करता है वह ऐसा महापापी है कि उसका स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। ऐसे पापी की तो उपेक्षा ही कर देनी चाहिए। वह बहुत ही दुश्चरित्र पापात्मा और धर्म का दूषक है ॥४५-४६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसके उपरान्त उस द्विज ने क्रोध से कहा था कि यदि तुम धर्म की ही प्रशंसा करते हो तो हे मुने! उसने कहा था कि हम दोनों का यहाँ पर प्राणों का पण (दाव) है ॥४७॥ गौतम के द्वारा ऐसा कहने पर उस समय में वैश्य ने ऐसा

ही होवे—यह कहा था। फिर उन दोनों ने लोगों से कहा था। लोगों ने भी वैसा ही कहा था ॥४८॥ गौतमी के दक्षिण तट पर योगेश्वर के आगे उस विप्र ने उस वैश्य को नीचे गिराकर विप्र ने आँखें उखाड़कर उससे कहा था ॥४६॥

गतोऽसीमां दशां वैश्य नित्यं धर्मप्रशंसया ।
गतं धनं गतं चक्षुश्छेदितौ करपल्लवौ ॥
पृष्टोऽसि मित्र गच्छामि मैवं ब्रूयाः कथान्तरे ॥५०
तस्मिन्प्रयाते वैश्योऽसौ चिन्तयामास चेतसि ।
हा कष्टं मे किमभवद्धर्मैकमनसो हरे ॥५१
स कुण्डलो वणिक्श्रेष्ठो निधनो गतबाहुकः ।
गतनेत्रः शुचं प्राप्तो धर्ममेवानुसंस्मरन् ॥५२
एवं बहुविधां चिन्तां कुर्वन्नास्ते महीतले ।
निश्चेष्टोऽथ निरुत्साहः पतितः शोकसागरे ॥५३
दिनावसाने शर्वर्यामुदिते चन्द्रमण्डले ।
एकादश्यां शुक्लपक्षे तत्राऽऽयाति विभीषणः ॥५४
स तु योगेश्वरं देवं पूजयित्वा यथाविधि ।
स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां सपुत्रो राक्षसैर्वृतः ॥५५
विभीषणस्य हि सुतो विभीषण इवापरः ।
वैभीषणिरिति ख्यातस्तमपश्यदुवाच ह ॥५६

विप्र ने कहा—हे वैश्य ! तुम नित्य ही धर्म की प्रशंसा करके ऐसी असीम दुर्दशा को प्राप्त हो गये हो। तुम्हारा सारा धन गया—नेत्र गये और दोनों हाथ छेदित हो गये हैं। हे मित्र ! तुमसे पूछ लिया है मैं अब जाता हूँ और तुम इस प्रकार से अन्य कथा में कभी मत बोलना ॥५०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उसके चले जाने पर इस वैश्य ने अपने मन में सोचा था। हे हरे ! धर्म में ही मन रखने वाले मेरी यह क्या दशा हो गई है ? बड़ा भारी कष्ट है ॥५१॥ वह कुण्डल नामधारी वैश्यों में श्रेष्ठ बिचारा धन हीन और बाहु हीन एवं नेत्र से रहित हो गया था और बहुत ही शोक को प्राप्त हो गया था और केवल धर्म का ही अनुस्मरण

करता रहा था ।।५२।। इस रीति से अनेक प्रकार की चिन्ता करता हुआ महीतल पर घूम रहा था । वह चेष्टाहीन उत्साह शून्य और शोक सागर में पतित हो रहा था ।।५३।। दिन के अन्तिम समय में रात्रि में चन्द्र-मण्डल के समुदित होने पर एकादशी के दिन शुक्ल पक्ष में वहाँ पर विभीषण आया करते थे ।।५४।। उस विभीषण ने यथाविधि योगेश्वर देव का अभ्यर्चन किया था । राक्षसों के साथ समावृत पुत्रों के सहित विभीषण ने गौतमी गङ्गा में स्नान किया ।।५५।। विभीषण का पुत्र जो था वह भी एक दूसरा विभीषण ही था । वह विभीषणि—इस नाम से विख्यात था । उसने उसको देखा था और उससे बोला ।।५६।।

वैश्यस्य वचनं श्रुत्वा यथावृत्तं स धर्मवित् ।
पित्रे निवेदयामास लङ्केशाय महात्मने ।।
स तु लङ्केश्वरः प्राह पुत्रं प्रीत्या गुणाकरम् ।।५७
श्रीमाभ्रामो मम गुरुस्तस्य मान्यः सखा मम ।
हनुमानिति विख्यातस्तेनाऽऽनीतो गिरिर्महान् ।।५८
पुरा कार्यान्तरे प्राप्ते सर्वौषध्याश्रयोऽचलः ।
जाते कर्ये तमादाय हिमवन्तमथागमत् ।।५९
विशल्यकरणी चेतो मृतसंजीवनीति च ।
तदाऽऽनीय महाबुद्धी रामायाक्लिष्टकर्मणे ।।६०
निवेदयित्वातत्साध्यं तस्मिन्वृत्ते समागतः ।
पुनर्गिरिं समादाय आगच्छद्देवपर्वतम् ।।६१
तामानीयास्य हृदये निवेशय हरिं स्मरन् ।
ततः प्राप्स्यत्यय सर्वमपेक्षितमुदारधीः ।।६२
गच्छतस्तस्य वेगेन विशल्यकरणी पुनः ।
अपतद्गौतमीतीरे यत्र योगेश्वरो हरिः ।।६३

वैश्य के वचन को सुनकर जैसी भी कुछ घटना घटित हुई थी उस धर्म के वेत्ता ने महान् आत्मा वाले लङ्का के स्वामी अपने पिता से कहा था । उस लङ्का के अधिपति ने प्रीति पूर्वक गुणों की खान अपने पुत्र से कहा ।।५७।। विभीषण बोला— श्रीमान् राम मेरे गुरु हैं । उनके मानने

के योग्य मेरे सखा हनुमान् हैं जो इसी शुभ नाम से विख्यात हैं। उनके ही द्वारा यह महान् विशाल गिरि लाया गया है ॥५८॥ प्राचीन समय मे पहिले अन्य काय को प्राप्त होने पर यह पर्वत समस्त ओषधियो का आश्रय था। कार्य के पूर्ण हो जाने पर उसको लेकर हिमालय मे चले गये ॥५९॥ विशल्यीकरणी-चेती मृत सञ्जीवनी आदि दिव्य ओषधियां थीं। महान् बुद्धिमान् ने उसको लाकर अक्लिष्ट कर्मा श्रीराम की सेवा मे निवदन किया था जो कि उनके द्वारा साध्य था। उसके हो जाने पर वह समागत हुए थे। फिर गिरि को लाकर देव पर्वत पर आ गये ॥६०-६१॥ अतएव श्री हरि का स्मरण करते हुए उसको लाकर इसके हृदय मे निवेशित कर दो। इसके अनन्तर यह उदार बुद्धि वाला सभी अपेक्षित वस्तु की प्राप्ति कर लेगा ॥६२॥ जिस समय मे वह बडे वेग के साथ गमन कर रहे थे जो विशल्यीकरणी ओषधि थी वह गौतमी के तट पर गिर पडी थी जहां पर योगेश्वर श्री हरि विराजमान हैं ॥६३॥

तामोषधी मम पितर्दर्शयाऽऽशु विलम्ब मा।
परार्तिशमनादन्यच्छ्रेयो न भुवनत्रये ॥६४
विभोषणस्तथेत्युक्त्वा ता पुत्रस्याप्यदर्शयत्।
इपे त्वेत्यस्य वृक्षस्य शाखा चिच्छेद तत्सुत ॥
वैश्यस्य चापि वै प्रीत्या सन्त परहिते रता ॥६५
यत्रापतन्नगे चास्मिन्स वृक्षस्तु प्रतापवान्।
तस्य शाखा समादाय हृदतेऽस्य निवेशय ॥
तत्स्पृष्टमात्र एवासौ स्वक रूपमवाप्नुयात् ॥६६
एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्य वैभीषणिरुदारधी.।
तथ चकार व सम्यक्काष्ठखण्ड न्यवेशयत् ॥६७
हृदसे स तु वैश्योऽपि सचक्षु सकरोऽभवत्।
मणिमन्त्रोषधीना हि वीर्यं कोऽपि न बुध्यते ॥६८
तदेव काष्ठमादाय धर्ममेवानुसस्मरन्।
स्नात्वा तु गौतमी गगा तथा योगेश्वर हरिम् ॥६९

नमस्कृत्वा पुनरगात्काष्ठखण्डेन वेश्यकः ।
परिभ्रमन्नृपपुरं महापुरमिति श्रुतम् ॥७०

विभीषणि ने कहा—हे पिताजी ! उस महादिव्य ओषधि को आप मुझे शीघ्र दिखलादो और अब थोड़ा सा भी विलम्ब मत करो। तीनों लोकों में दूसरे की पीड़ा के उपशमन के समान अन्य कोई भी श्रम नहीं है ॥६४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—विभीषण ने ऐसा ही करता हूँ-यह कहकर उस दिव्य ओषधि को पुत्र को दिखला दिया था। उसके पुत्र ने इषेतु-इस वृक्ष की शाखा को तुरन्त ही काट दिया था। उस वैश्य के साथ बहुत ही प्रीति का व्यवहार किया था। ठीक ही है सन्त लोग तो सर्वदा पराये हित में निरत रहा ही करते हैं ॥६५॥ विभीषण ने कहा—यहाँ पर इस पर्वत में वह दिव्यौषधि गिरी थी। अतएव वह वृक्ष प्रताप वाला है। उसी वृक्ष की शाखा लाकर इसके हृदय पर निवेशित कर दो। उस दिव्य ओषधि की शाखा के स्पर्श होने मात्र से ही यह अपना असली स्वरूप प्राप्त कर लेगा ॥६६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—यह अपने पिता के वचन सुनकर उदार बुद्धि वाले वैभीषणि ने उसी भाँति तुरन्त किया था और एक काष्ठ का खण्ड निवेशित कर दिया था ॥६७॥ हृदय पर रखते ही वह वैश्य भी नेत्रों से युक्त और करों वाला हो गया था। मणि-मन्त्र और ओषधियों का जो वीर्य होता है उसे कोई भी नहीं जानते हैं ॥६८॥ फिर उसी काष्ठ को लेकर धर्म का ही स्मरण करते हुए चल दिया। फिर आगे गौतमी गङ्गा में स्नपन कर योगेश्वर हरि को नमस्कार की। फिर उसी काष्ठ के खण्ड के सहित वह वैश्य नृपपुर में भ्रमण करने लगा था। यह "महापुर"-इस नाम से विश्रुत है ॥६९-७०॥

महाराज इति ख्यातस्तत्र राजा महाबलः ।
तस्य नास्ति सुतः कश्चित्पुत्रिका नष्टलोचना ॥७१
सैव तस्य सुता पुत्रस्तस्यापि व्रतमीदृशम् ।
देवो वा दानवो वाऽपि ब्राह्मणः क्षत्रियो भवेत् ॥७२

वैश्यो वा शूद्रयोनिर्वा सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।
तस्मै देया ह्यिय पुत्री यो नेत्रे आहरिष्यति ॥७३

राज्येन सह देयेयमिति राजा ह्यघोषयत् ।
अहर्निशमसौ वैश्य श्रुत्वा घोषमथाब्रवीत् ॥७४

अहं नेत्रे आहरिष्ये राजपुत्र्या असंशयम् । ७५

त वैश्य तरसाऽऽदाय महाराज न्यवेदयत् ।
तत्काष्ठस्पर्शमात्रेण सनेत्राऽभून्नृपात्मजा ॥७६

तत सविस्मयो राजा को भवानिति चाब्रवीत् ।
वैश्यो राज्ञे यथावृत्त न्यवेदयशेषत ॥७७

वहा पर महान् बलशाली राजा था जो महाराज-इस नाम से विख्यात है। उसके कोई पुत्र नही था एक लोचन नष्ट हो जाने वाली बेटी थी। वही उसकी पुत्री और पुत्र के समान एक ही थी। उसका भी व्रत ऐसा था कि देव-दानव ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रयोनि सगुण अथवा निर्गुण के सभी कोई क्यो न हो। मैं इनमे से उसी को यह पुत्री दूगा जो इसके नेत्र लाकर देगा ॥७१ ७३॥ राजा ने उसी समय मे ऐसी घोषणा करा दी थी कि इस राजपुत्री का दान राज्य के ही साथ होगा अर्थात् इसे वर को राज्यासन भी दिया जायगा। वह वैश्य रात दिन इस घोषणा को सुनता था। एक दिन वह बोला ॥७४॥ वैश्य ने कहा—मैं राजपुत्री के नेत्रों को वापिस लाऊँगा—इसमे कुछ भी संशय नही है ॥७५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—लोगो ने बहुत ही शीघ्रता से उस वैश्य को वहाँ पहुचा कर राजा से निवेदन कर दिया था। फिर क्या था उस वैश्य ने उसी काष्ठ खण्ड उपयोग किया था और उस काष्ठ के केवल स्पर्श से ही वह नृप की पुत्री नेत्रो वाली हो गयी थी ॥७६॥ तब तो राजा को बहुत ही अधिक विस्मय हो गया था और उसने पूछा था कि यह कौन है। उस वैश्य ने भी जो कुछ भी घटना उसके साथ घटी थी वह सम्पूर्ण निवेदित कर दी थी ॥७७॥

ब्राह्मणानां प्रसादेन धर्मस्य तपसस्तथा ।
दानप्रभावद्यज्ञैश्च विविधैर्भूरिदक्षिणै ॥
दिव्यौषधिप्रभावेन ममसामर्थ्यमीदृशम् ॥७८
एतद्वैश्यवचः श्रुत्वा विस्मितोऽभून्महीपतिः ॥७९
अहो महानुभावोऽयं प्रायो वृन्दारको भवेत् ।
अन्यथैतादृगन्यस्य सामर्थ्यं दृश्यते कथम् ॥
तस्मादस्मै तु तां कन्यां प्रदास्ये राजपूर्विकाम् ॥८०
इति संकल्प्य मनसि कन्या राज्यं च दत्तवान् ।
विहारार्थं गतः स्वैरं परं खेदमुपागतः ॥८१
न मित्रेण विना राज्यं न मित्रेण विना सुखम् ।
तमेव सततं विप्रं चिन्तयन्वैश्यनन्दनः ॥८२
एतदेव सुजातानां लक्षणं भुवि देहिनाम् ।
कृपार्द्रं यन्मनो नित्यं तेषामप्यहितेषु हि ॥७३

वैश्य ने कहा—ब्राह्मणों के प्रसाद से धर्म, तप-दान-यज्ञ विविध प्रकार वाले जिनमें अधिक दक्षिणा दी थी और दिव्य ओषधियों के प्रभाव से मेरी ऐसी अद्भुत सामर्थ हो गई है ॥७८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा था—वैश्य के इस वचन को सुनकर राजा विस्मित हो गये थे ॥७९॥ राजा ने कहा—यह तो कोई महानुभाव ही हैं। बहुधा करके शायद यह कोई देव ही हो। अन्यथा यदि ऐसी बात नही है तो अन्य किसी की ऐसी शक्ति कैसे हो सकती है। इसलिये मैं तो उस अपनी कन्या को राज्य वैभव के साथ ही अवश्य इसको समर्पित करूंगा ॥८०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस राजा ने अपने मन मे ऐसा संकल्प करके उसके लिये अपनी कन्या और राज्य दोनों ही दे दिये थे। वह राजा परमाधिक खेद को प्राप्त करता हुआ स्वच्छन्द विहार के लिये वहां से चला गया था ॥८१॥ मित्र के बिना न तो राज्य ही है और मित्र के बिना न कोई सुख ही है। वह वैश्यनन्दन फिर भी उसी पुराने मित्र विप्र का चिन्तन-स्मरण किया करता था ॥८२॥ यह ही सुजात पुरुषों का भूमण्डल में लक्षण

है कि जिनका मन नित्य ही अहित करने वालो पर भी कृपा से पसीजा हुआ रहा करता है ॥८३॥

महानृपो वनं प्रायात्स राजा मणिकुण्डलः ।
तस्मिञ्छासति राज्य तु कदाचिद्गौतम द्विजम् ॥८४
हृतस्व द्यूतकैः पापैरपश्यन्मणिकुण्डलः ।
तमाश्राय द्विज मित्र पूजयामास धर्मवित् ॥ ८५
धर्मािणा तु प्रभाव त तस्मै सर्वं न्यवेदयत् ।
स्नापयामास गङ्गाया त सर्वाघनिवृत्तये ॥८६
तेन विप्रेण सर्वैस्तैः स्वकीयैर्गोत्रजैर्वृतः ।
वैश्यैः स्वदेशसम्भूतैर्ब्राह्मणस्य तु बान्धवैः ॥८७
वृद्धकौशिकमुख्यैश्च तस्मिन्योगेश्वरान्तिके ।
यज्ञानिष्ट्वा सुरान्पूज्य तत. स्वर्गमुपेयिवान् ॥८८
तत प्रभृति तत्तीर्थं मृतसजीवन विदु ।
चक्षुस्तीर्थं सयोगेश स्मरणादपि पुण्यदम् ।
मन प्रसादजनन सर्वदुर्भावनाशनम् ॥८९

वह महान् नृप राजा मणि कुण्डल वन में चला गया था कि राज्य पर उसके शासन करने पर शायद वह गौतम द्विज उसे मिल जावे । फिर उस मणि कुण्डल राजा ने पापी द्यूत क्रीडा करने वालो के द्वारा हरण किये गये धन वाले उस गौतम द्विज को देखा था । उस धर्म के वेत्ता उस मित्र द्विज को लाकर उसकी पूजा की थी ॥८४-८५॥ उसने फिर धर्मो का जो प्रभाव होता है वह सब उससे कह दिया था और उसके समस्त अघो की निवृत्ति के लिये उसका गङ्गा मे स्नान कराया था ॥८६॥ फिर वह विप्र अपने समस्त गोत्रजो से समावृत होकर अपने देश मे समुत्पन्न वैश्यो एव ब्राह्मण के बन्धनो के द्वारा सयुत होता हुआ तथा वृद्ध कौशिक प्रमुखो से समन्वित होकर उन योगेश्वर प्रभु के समीप मे यज्ञो का यजन करके और सुरगणो का अभ्यर्चन करके इस सब कार्य कलाप के करने के अनन्तर वह वैश्य नृप स्वर्ग को प्राप्त हो गया था ॥८७-८८॥ तभी से आरम्भ करके वह तीर्थ मृत सजीवन कहा गया

था । उस चक्षुस्तीर्थ का योगेश के साथ में स्मरण करने से भी पुन्य प्रदायक होता है । मन के प्रसाद को उत्पन्न करने वाला तथा सभी तरह की बुरी भावनाओं का विनाशक है ॥८६॥

—:※:—

सामुद्रतीर्थवर्णन

सामुद्रं तीर्थमाख्यातं सर्वतीर्थफलदम् ।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः ॥१
विसृष्टा गौतमेनासौ गङ्गा पापप्रणाशनी ।
लोकानामुपकारार्थं प्रयात्पूर्वार्णवं प्रति ॥२
आगच्छन्ती देवनदी कमण्डलुधृतामया ।
शिरसा च धृता देवी शंभुना परमात्मना ॥३
विष्णुपादाप्रसूतां तां ब्राह्मणेन महात्मना ।
अनीतां मर्त्यभवनं स्मरणादघनाशनीम् ॥४
गुरोर्गुरुतमां सिन्धुर्दृष्ट्वा कृत्यमचिन्तयत् ।
या वन्द्या जगतामीशा ब्रह्मेशाद्यैर्नमस्कृता ॥५
तामहं प्रतिगच्छेयंनो चेत्स्याद्धर्मदूषणम् ।
आगच्छन्तं महात्मानं यो मोहान्नोपतिष्ठते ॥६
न तस्य कोऽपि त्राताऽस्ति पापिनो लोकयोर्द्वयोः ।
एवं विमृश्य रत्नेशो मूर्तिमान्विनयान्वितः ॥
कृताञ्जलिपुटो गङ्गामाहेदं सरितांपतिः ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—सब तीर्थों को पुण्य-फल के प्रदान करने वाला समुद्र तीर्थ विख्यात है । हे नारद ! तुम सुनो, मैं उस तीर्थ का जो जैसा भी स्वरूप है उसे बतलाऊँगा किन्तु परम सावधान होकर ही तन्मनस्क होकर उसका श्रवण करो ॥१॥ गौतम महर्षि ने यह महा नदी गङ्गा समुत्पन्न की है जो महा पापों का विनाश कर देने वाली है । यह गौतमी गङ्गा लोकों के उपकार के लिये पूर्व सागर की ओर वह र

किया करती है ॥२॥ वह देव नदी जिस समय मे आ रही थी उसको कमण्डलु धारण करने वाले मैंने धारणा किया था और परमात्मा शम्भु ने शिर पर उस देवी को धारण किया था ॥३॥ भगवान् विष्णु के चरणो से समुद्भूत उस गङ्गा देवी को महान् आत्मा वाले ब्राह्मणो के द्वारा ही इस मर्त्य लोक मे लाया गया है जिसके स्मरण मात्र से ही अघो का विनाश होता है ॥४॥ गुरु की सबसे बडी उस नदी को देखकर सिन्धु ने अपने हृदय के विषय मे सोचा था कि जो सब जगत् की वन्दनीय है और ईशा अर्थात् स्वामिनी है तथा ब्रह्मा और शङ्करादि देवो के द्वारा नमस्कृत है उसकी ओर मुझे स्वय ही जाना चाहिए नही तो धर्म का दूषण होगा। समागमन करने वाले महात्मा का जो मोह-से उपस्थान नही करता है वह दोनो लोको मे महान् पापी हो जाता है और उसका कोई भी त्राण करने वाला नहीं होता है। इस तरह से विचार करके रत्नो का स्वामी समुद्र मूर्तिमान साक्षात् परम विनम्र होकर दोनो हाथो को जोडे हुए वह सरिताओ का स्वामी गङ्गा से यह बोला— ॥५-७॥

रसातलगत वारि पृथिव्या यन्नभस्तले।
तत्मामेवात्र विशतु नाह वक्ष्यामि किंचन ॥८

मयि रत्नानि पीयूप पर्वता राक्षसासुरा।
एतानप्यखिलानन्यान्भीमान्सधारयाम्यहम् ॥९
ममान्त. कमलायुक्तो विष्णु. स्वपिति नित्यदा।
ममाशक्य न किमपि विद्यते सचराचरे ॥१०

महत्यभ्यागते कुर्यात्प्रत्युत्थान न यो मदात्।
स धर्मादिपरिभ्रष्टो निरय तु समाप्नुयात् ॥११
न तान्मे बिभ्रत खेदो विनाऽगस्त्यपराभवात्।
कि तु त्व गौरवेणैपामतिरिक्ता ततस्त्वहम् ॥१२

ब्रवीमि देवि गङ्गे मां त्व साम्यात्सगता भव।
नैकरूपामहं शक्त सगन्तु बहुधा यदि ॥१३

सङ्गमेष्यसि देवि त्वं संगच्छेऽहं न चान्यथा ।
गङ्गे समेष्यसि यदि बहुधा तद्विचारये ॥१४

सिन्धु ने कहा--रसातल में गया हुआ जो जल है-पृथिवी में तथा नमस्तल में जो जल है वह अब मेरे ही अन्दर प्रवेश कर जावे–मैं कुछ भी नहीं कहूँगा ॥८॥ मेरे अन्दर बहुत से रत्न हैं-पीयूष हैं-पर्वत-राक्षस-असुर हैं इन सबको भी और अन्यों को भी जो बहुत भीषण हैं मैं धारण किया करता हूं ॥९॥ मेरे अन्दर कमलात्महालक्ष्मी देवी से युक्त भगवान् विष्णु नित्य ही शयन किया करते हैं इसलिये इस चराचर जगत् में मेरे लिये कुछ भी अशक्य नहीं है अर्थात् ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जिसको मैं नहीं कर सकता हूँ ॥१०॥ किसी महान् पुरुष के समागत होने पर जो मद से उनका प्रत्युत्थान नहीं किया करता है वह धर्म आदि से परिभ्रष्ट होकर नरक को प्राप्त होता है ॥११॥ अगस्त मुनि के द्वारा किये हुए पराभव के बिना उन सबको धारण करते हुए भी मुझे कुछ भी खेद नहीं है। किन्तु आप इन सबके गौरव से भी अधिक गौरव शालिनी हैं अतएव मैं निवेदन करता हूँ ॥१२॥ हे देवि ! हे गङ्गे ! तुम साम्यभाव से मेरे साथ सङ्गत हो जाओ । अधिक करके अनेक रूप वाली आपको मैं सङ्गम करने में यदि समर्थ हूं तो हे देवि ! आप मेरे सङ्ग को प्राप्त हो जाओगी । तभी मैं संगमन करता हूँ अन्यथा नहीं करता । हे गङ्गे ! यदि तुम समागमन करोगी तो उसका बहुधा विचार करता हूँ ॥१३-१४॥

तमेवंवादिनं सिन्धुमपामीशं तदाऽब्रवीत् ।
गङ्गा सा गौतमी देवी कुरु चैतद्वचो मम ॥१५
सप्तर्षीणा च या भार्या अरुन्धतिपुरोगमाः ।
भर्तृभिः सहिताः सर्वा आनय त्वं तदा त्वहम् ॥१६
अल्पभूता भविष्यामि ततः स्यां तव संगता ।
तथेत्युक्त्वा सप्तर्षीणां भार्यामिर्ऋ(ऋ)षि भिर्वृतः(ताः) ॥
आनयामास तां(ता) देवी सप्तधा सा व्यभज्यतः ।
स चेयं गौतमी गङ्गा सप्तधा सागरं गता ॥१८

सप्तर्षीणां तु नाम्ना तु सप्त गङ्गास्ततोऽभवन् ।
तत्र स्नानं च दानं च श्रवणं पठनं तथा ॥१९
स्मरणं चापि यद्भक्त्या सर्वकामप्रदं भवेत् ।
नास्मादन्यत्परं तीर्थं समुद्राद्भुवनत्रये ॥
पापहानौ भुक्तिमुक्तिप्राप्तौ च मनसो मुदे ॥२०

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय मे जलो के स्वामी समुद्र से जो इस प्रकार से कह रहा था देवी गौतमी गङ्गा यह कहा—मेरा यह वचन तुम पालन करो ॥१५॥ सप्तर्षियो की जो भार्याएँ हैं जिनमें अरुन्धती प्रमुख हैं उन सबको अपने स्वामियों के साथ यहाँ पर लाओ उसी समय मे अल्पभूता अर्थात् बहुत ही छोटे स्वरूप वाली हो जाऊँगी। तभी मैं तुम्हारे सगत हो जाऊँगी । ऐसा ही किया जायगा—यह कह कर फिर समुद्र ने भार्याओं के सहित सप्तर्षिगण के साथ मे समाकृत सागर ने उस देवी गङ्गा को समानयन किया था और सात भागो मे विभाजित हो गयी थी । वही गौतमी गङ्गा सात प्रकार से सागर मे गयी थी ॥१६-१८॥ सप्तर्षियों के शुभ नामों से वह गङ्गा सात स्वरूपो मे हो गयी थी। उनमे स्नान करना-दान देना-श्रवण-पठनस्मरण जो भी भक्ति भाव से किया करता है उसको सब मनोरथो को वह पूर्ण किया करती हैं। इससे बडा और महान् अन्य कोई भी तीर्थ नही है। भुवनत्रय में समुद्र बहुत बडा तीर्थ है । पापो की हानि-भुक्ति मुक्ति की प्राप्ति और मन को आनन्द प्रदान करने में यह तीर्थ बहुत ही प्रमुख है ॥१९-२०॥

—:※:—

भीमेश्वरतीर्थवर्णन

ऋषिसत्रमिति ख्यातमृषयः सप्त नारद ।
निषेदुस्तपसे यत्र यत्र भीमेश्वरः शिवः ॥१
तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये देवर्षिपितृबृंहितम् ।
शृणु यत्नेन वक्ष्यामि सर्वकामप्रदं शुभम् ॥२
सप्तधा व्यभजन्गङ्गामृषयः सप्त नारद ।
वासिष्ठी दाक्षिणेयी स्याद्वैश्वामित्री तदुत्तरा ॥३
वामदेव्यपरा ज्ञेया गौतमी मध्यतः शुभा ।
भारद्वाजी स्मृता चान्या आत्रेयी चेत्यथापरा ॥४
जामदग्नी तथा चान्या व्यपदिष्टा तु सप्तधा ।
तैः सर्वैऋषिभिस्तत्र यष्टुमिष्टं महात्मभिः ॥६
निष्पादितं महासत्रमृषिभिः पारदर्शिभिः ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां प्रबलो रिपुः ॥६
विश्वरूप इति ख्यातो मुनीनां सत्रमभ्यगात् ।
ब्रह्मचर्येण तपसा तानाराध्य यथाविधि ॥
विनयेनाथ पप्रच्छ ऋषीन्सर्वाननुक्रमात् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! एक ऋषि सत्र-इस नाम से विख्यात तीर्थ है । सात ऋषिगण जहाँ पर तप करने के लिये स्थित हुए थे और जहां२ पर इन्होंने तपश्चर्या करने को स्थिति की थी वहीं पर भीमेश्वर शिव विराजमान हैं ॥१॥ वहाँ पर जो घटित हुआ था उसको मैं वर्णित करूँगा जो कि देवर्षि पितृगणों से बृंहित है । हे नारद ! तुम श्रवण करो । यह सब कामनाओं का प्रदान करने वाला और परम शुभ है ॥२॥ हे नारद ! सात ऋषियों ने उस गङ्गा को सात भागों में विभाजित कर दिया था । उनके नाम ये हैं—वासिष्ठी-दक्षिणेयी-वैश्वामित्री-तदुत्तरा वाम देवी-मध्य में स्थित शुभा गौतमी-भारद्वाजी-आत्रेयी और अन्य जामदाग्नी ये सात स्वरूपों में कही गयी हैं । उन महात्मा सत्र ऋषियों ने यजन करने के लिये एक सत्र

किया था ॥३-५॥ पारदर्शी ऋषियों ने एवं महान् सत्र वहाँ पर निष्पादित किया था। इसी बीच में वहाँ पर देवों का एक महान् प्रबल शत्रु आ गया था ॥६॥ वह विश्वरूप इस नाम से विख्यात था। वह फिर मुनियों के सत्र में समागत हो गया था। उसने ब्रह्मचर्य और तप से उन सबका विधि के साथ समाराधन करके बहुत ही विनम्रता के साथ उन सब ऋषियों से अनुक्रम पूर्वक उसने पूछा था ॥७॥

ध्रुव सर्वे यथाकाम मम स्वास्थ्येन हेतुना ।
यथा स्याद्‌बलवान्पुत्रो देवानामपि दुर्धरः ॥
यज्ञैर्वा तपसा वाऽपि मुनयो वक्तुमर्हथ ॥८
तत्र प्राह महाबुद्धिर्विश्वामित्रो महामनाः ॥९
कर्मणा तात लभ्यन्ते फलानि विविधानि च ।
त्रयाणां कारणानां च कर्म प्रथमकारणम् ॥१०
ततश्च कारणं कर्ता ततश्चान्यत्प्रकीर्तितम् ।
उपादानं तथा बीजं न च कर्म विदुर्बुधाः ॥११
कर्मणा कारणत्वं च कारणे पुष्कले सति ।
भावाभावौ फले दृष्टौ तस्मात्कर्माश्रितं फलम् ॥१२
कर्मापि द्विविधं ज्ञेयं क्रियमाणं तथा कृतम् ।
कर्तव्यं क्रियमाणस्य साधनं यच्चदुच्यते ॥१३
तद्‌भावाः कर्मसिद्धौ च उभयत्रापि कारणम् ।
यद्यद्‌भावयते जन्तुः कर्म कुर्वन्विचक्षणः ॥१४

विश्वरूप ने कहा—सभी मेरे स्वास्थ्य के होने के कारण से यथा काम निश्चित एवं ध्रुव हैं। अब जिस तरह से मेरा महा बलवान् पुत्र हो जावे जो कि देवों को भी दुर्धर हो—ऐसा कृपाकर कीजिए। आप सब मुनिगण हैं। यज्ञों के द्वारा तथा तपस्या के बल से सभी कुछ कहने के लिये योग्य होते हैं ॥८॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—वहा पर महान् बुद्धि वाले विश्वामित्र जी ने कहा था जो कि महान् मन वाले भी हैं ॥९॥ विश्वामित्र जी ने कहा—हे तात ! कर्म के द्वारा अनेक प्रकार के फल प्राप्त हुआ करते हैं। तीन कारण होते हैं उन तीनों में कर्म प्रथम प्रमुख

कारण होता है ॥१०॥ उनमें एक कर्त्ता कारण है—अन्य उपादान है और वीज है। किन्तु कर्म को बुध पुरुष नही जानते हैं ॥११॥ पुष्कल कारण के होने पर कर्मो को कारणत्व होता है। भाव और अभाव फल में देखे गये है इस कारण से फल कर्म के ही आश्रित होता है ॥१२॥ वह कर्म भी दो प्रकार का जानना चाहिए। एक तो क्रियमाण कर्म होता है और दूसरा किया हुआ होता है क्रियमाण कर्म का कर्त्तव्य साधन जो जो भी है वह कहा जाता है ॥१३॥ कर्म की सिद्धि में तद्भावा हैं और दोनों स्थलों में भी कारण है। जो भी विलक्षण जन्तु कर्म करता हुआ भावना करता है ॥१४॥

तद्भावनानुरूपेण फलनिष्पत्तिरुच्यते ।
करोति कर्म विधिवद्विना भावनया यदि ॥१५
अन्यथा स्यात्फलं सर्वं तस्य भावानुरूपतः ।
तस्मात्तपो व्रतं दानं जपयज्ञादिकाः क्रियाः ॥१६
कर्मणस्त्वनुरूपेण फलं दास्यन्ति भावतः ।
तस्माद्भावानुरूपेण कर्म वै दास्यते फलम् ॥१७
भावस्तु त्रिविधो ज्ञेयः सात्त्विको राजसस्तथा ।
तामसस्तु तथा ज्ञेयः फलं कर्मानुसारतः ॥१८
भावनानुगुणं चेति विचित्रा कर्मणां स्थितिः ।
तस्मादिच्छानुसारेण भावं कुर्याद्विचक्षणः ॥१९
पश्चात्कर्मापि कर्तव्यं फलदाताऽपि तद्विधम् ।
फलं ददाति फलिनां फले यदि प्रवर्तते ॥२०
कर्मकारो न तत्रास्ति कुर्यात्कर्म स्वभावतः ।
तदेव चोपदानादि सत्त्वादिगुणभेदतः ॥२१

उसी-उसी भावना के अनुरूप फल की निष्पत्ति कही जाया करती है। यदि विना भावना के ही विधि-विधान पूर्वक कर्म किया करता है उसका फल उसी के भावों के अनुरूप सब अन्यथा ही हुआ करता है। इसी कारण से तप-व्रत-दान-जप-यज्ञ आदि क्रियाऐं होती हैं। अनुरूपता से कर्म के फल को भाव से देंगे। इसीलिए भावना के अनुसार ही कर्म

फल दिया करते हैं ॥१५ १७॥ वह भाव भी तीन प्रकार का हुआ करता है जो कि सात्विक राजस और तामस तथा फल कर्मों के ही अनुसार हुआ करता है ॥१८॥ भावना के ही अनुगुण कर्मों की स्थिति भी विचित्र होती है। अतएव विचक्षण पुरुष को अपनी इच्छा के अनुसार ही भाव रखना चाहिए॥१९॥ पीछे कर्म भी करना चाहिए फलों का देने वाला भी उसी प्रकार का फल दिया करता है यदि फल वालों के फल मे प्रवृत्त होता है ॥२०॥ वहा पर कर्म कार नहीं है। स्वभाव से ही कर्म करना चाहिए। वह ही उपदान आदि और सत्वादि गुणों के भेद से होता है ॥२१॥

भावात्प्रारभते तद्वद्भावैं फलमवाप्यते।
धर्मार्थकाममोक्षाणा कर्म चैव हि कारणम् ॥२२
भावस्थित भवेत्कर्म मुक्तिद बन्धकारणम्।
स्वभावानुगुण कर्म स्वस्यैवेह परत्र च ॥२३
फलानि विविधान्याशु करोति समतानुगम्।
एक एव पदार्थोऽसौ भावैर्भेद प्रदृश्यते ॥२४
क्रियते भुज्यते वाऽपि तस्माद्भावो विशिष्यते।
यथाभाव कर्म कुरु यथेप्सितमवाप्स्यसि ॥२५
एतच्छ्रुत्वा ऋषेर्वाक्य विश्वामित्रस्य धीमत।
तपस्तप्त्वा बहुकाल तामस भावमाश्रित. ॥२६
विश्वरूप कर्म भीम चकार सुरभीषणम्।
पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु धार्यमाणोऽपि नित्यश ॥२७
आत्मकोपानुसारेण भीम कर्म तथाऽकरोत्।
भीषणे कुण्डखाते तु भीषणे जातवेदसि ॥२८

भावों से प्रारम्भ किया जाता है उसी के अनुसार भावो ही से फल प्राप्त किया जाता है। धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का कर्म ही कारण हुआ करता है ॥२२॥ भाव में स्थित कर्म ही मुक्ति का देने वाला तथा बन्ध का कारण हुआ करता है। स्वभाव के अनुगुण ही अपना ही कर्म इस लोक मे और परलोक में फल का कारण होता है। समतानुग कर्म

विविध प्रकार के फलों को बहुत ही शीघ्र ही किया करता है। एक ही पदार्थ होता है किन्तु भावों के होने से उसमें भेद दिखलाई दिया करता है ॥२३-२४॥ जो कुछ किया जाता है अथवा भोगा जाता है (खाया जाता है) इससे भाव विशेषता रखता है। यथाभाव अर्थात् भाव के अनुसार कर्म करो जो भी अभीष्ट होगा वही प्राप्त होगा ॥२५॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा--परम धीमान् विश्वामित्र ऋषि के इस वाक्य को सुन कर बहुत से समय तक तपस्या करके वह तामस भाव में समाश्रित हो गया था ॥२६॥ उस विश्व रूप ने सुरों को भीषणता प्रदान करने वाला भीम कर्म किया था। यद्यपि सभी प्रमुख ऋषिगणों ने उसे नित्य ही रोका भी था और तो भी उनके देखते हुए वह भयानक कर्म ही करता रहा था ॥२७॥ अपने कोप के अनुसार उसी प्रकार का भयानक कर्म उसने किया था और उसका भीषण ही कुण्ड का गर्त्त था तथा भीषण ही अग्नि थी जिसमें उसने अपना कर्मारम्भ किया था ॥२८॥

भीषणं रौद्रपुरुषं ध्यात्वाऽऽत्मानं गुहाशयम्।
एनं तपन्तमालक्ष्य वागुवाचाशरीरिणी ॥२९
जटाजूटं विनाऽऽत्मानं न च वृत्तो व्यजीयत।
वृथाऽऽत्मानं विश्वरूपो जुहुयाज्जातवेदसि (?) ॥३०
स एवेन्द्रः स वरुणः स च स्यात्सर्वमेव च।
त्यक्त्वाऽऽत्मानं जटामात्रं हुतवान्वृजिनोद्भवः ॥३१
वृत्र इत्युच्यते वेदे स चापि वृजिनोऽभवत्।
भीमस्य महिमानं को जानाति जगदीशितुः ॥३२
सृजत्यशेषमपि यो न च सङ्गेन लिप्यते।
विररामेति संकीर्त्य सा वाण्येनं मुनीश्वराः ॥३३
भीमेश्वरं नमस्कृत्य जग्मुः स्वं स्वमथाऽऽश्रमम्।
विश्वरूपो महाभीमो भीमकर्मा तथाकृतिः ॥३४
भीमभावो भीमतनुं ध्यात्वाऽऽत्मानं जुहाव ह।
तस्माद्भीमेश्वरो देवः पुराणे परिपठ्यते ॥
तत्र स्नानं च दानं च मुक्तिदं नात्र संशयः ॥३५

परम भीषण रौद्र पुरुष का ध्यान करके आत्मा को गुहा मे शयन करने वाला इस प्रकार से तपश्चर्या करते हुए उसको लक्ष्य करके बिना शरीर वाली आकाशवाणी ने कहा ॥२९॥ वृत्र के जटाजूट के बिना आत्मा को नही जीवित किया था। विश्वरूप व्यर्थ ही आत्मा को अग्नि मे हवन करता है ॥३०॥ वह ही इन्द्र है-वह ही वरुण है और वह सभी कुछ है। वृजिनोद्भव ने अपने आपका त्याग करके जरा भाव का हवन किया था ॥३१॥ वेद मे वृत्र-इस नाम से कहा जाता है और वह ही वृजिन हो गया था। जगत् के स्वामी भीम की महिमा को कौन जानता है ॥३२॥ वह इस सम्पूर्ण चराचर का सृजन करता है और वह मङ्ग से लिप्त नही होता है। वह आकाशवाणी इसको यह सकीत्तित करके निरत हो गई थी। मुनीश्वरो ने भीम को प्रणाम किया था और फिर वे सब अनने२ आश्रमो को चले गये थे। विश्वरूप महान् भीम (भयानक) और भीषण कर्म के करने वाला तथा भीषण ही आकृति वाला था ॥३३-३४॥ उसने भीम भाव ग्रहण करके ही भीम तनुका ध्यान करके अपने आत्मा का हवन किया था। इसीलिय पुराण मे भीमेश्वर देव इस नाम से पढा जाया करता है। वहा पर स्नान करना-दान देना मुक्ति के प्रदान करने वाला है—इसमे लेश मात्र भी सशय नही है ॥३५॥

इति पठति शृणोति यश्च भक्त्या,
विबुधपति शिवमत्र भीमरूपम् ।
जगति विदितमशेषपापहारि-
स्मृतिपदशरणेन मुक्तिदश्च (?) ॥३६

गोदावरी तावदशेषपाप-
समूहहन्त्री परमार्थदात्री ।
सदैव सर्वत्र विशेषतस्तु,
यनाम्बुराशि समनुप्रविष्टा ॥३७

स्नात्वा तु तस्मिन्सुकृती शरीरी,
गोदावरीवारिधिसगमे य ।

उद्धृत्य तीव्रान्निरयादशेषा-
त्स पूर्वजान्याति पुरं पुरारेः ॥३८

वेदान्तवेद्यं यदुपासितव्यं,
तद्ब्रह्म साक्षात्खलु भीमनाथः ।
दृष्टे हि तस्मिन्न पुनर्विशन्ति
शरीरिणः संस्मृतिमुग्रदुःखाम् ॥३९

जो पुरुष भक्ति की भावना से इसका पठन करता है—श्रवण किया करता है और देवों के स्वामी भीमस्वरूप वाले शिव का यहाँ पर ध्यान करता है तो जगत् में वे अशेष पापों के हरण करने वाले विदित हैं और स्मृति पद शरण के द्वारा मुक्ति के भी प्रदान करने वाले हैं ॥३६॥ गोदावरी सरिता अशेष पापों के हरण करने वाली हैं और पाप समूह के हरण के साथ ही परमार्थ के प्रदान करने वाली भी हैं। यह गोदा-दास ही सब जगह पर है और विशेष रूप से जहाँ पर अम्बुराशि समुद्र है वहाँ समनु प्रविष्ट होगई है ॥३७॥ जो शरीर धारी सुकृत् वाला है उस गोदावरी और वारिधि (सागर) के सङ्गम में स्नान करता है वह बहुत ही तीव्र नरक से अपने सब पूर्वजों का उद्धार करके अन्त में पुरारि भगवान् के पुर में प्रवेश किया करता है ॥३८॥ वेदान्तों के द्वारा जो जानने के योग्य हैं और जिनकी उपासना करनी चाहिए वही साक्षात् ब्रह्म भगवान् भीमनाथ हैं। उनके दर्शन करने पर शरीरधारी इस उग्र दुःखों वाली संसृति में फिर कभी प्रवेश नहीं किया करते हैं अर्थात् पुनर्जन्म उनका नहीं होता है ॥३९॥

गंगासागरसंगमतीर्थवर्णन

सा संगता पूर्वमपांपतिं तं,
गङ्गा सुराणामपि वन्दनीया ।

देवैश्च सर्वैरनुगम्यमाना,
सस्तूयमाना मुनिभिर्मरुद्भिः ॥१
वसिष्ठजाबालियाज्ञवल्क्य-
क्रत्वङ्गिरोदक्षमरीचिवैष्णवाः ।
शातातपः शौनकदेवरात-
भृग्वग्निवेश्यात्रिमरीचिमुख्याः ॥२
सुधूतपापा मनुगौतमाद्यः,
सकौशिकास्तुम्बरुपर्वताद्याः ।
अगस्त्यमार्कण्डसपिप्पलाद्याः,
सगालवा योगपरायणाश्च ॥३
सवामदेवाङ्गिरसोऽथ भार्गवाः,
स्मृतिप्रवीणाः श्रुतिभिर्मनोज्ञाः ।
सर्वे पुराणार्थविदो बहुज्ञा-
स्ते गौतमी देवनदीं तु गत्वा ॥४
स्तोष्यन्ति मन्त्रं श्रुतिभिः प्रभूतं
हृष्टैश्च तुष्टैर्मुदितैर्मनोभिः ।
तां सगतां वीक्ष्य शिवां हरिश्च,
आत्मानमादर्शयतां मुनिभ्यः ॥५
तथाऽमरास्तौ पितृभिश्च दृष्टौ,
स्तुवन्ति देवौ सकलार्तिहारिणौ ॥६
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतो लोकपालकाः ।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे स्तुवन्ति हरिशङ्करौ ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस जलों के स्वामी के साथ जो पूर्व में सङ्गता हुई थी वह गङ्गा देवी सुरों के द्वारा भी वन्दना करने के योग्य है। समस्त देव उसका अनुगमन करते हैं और मुनिगण तथा मरुद्गण के द्वारा उसका संस्तवन किया जाता है। मुनिगण के नाम इस प्रकार से हैं—वसिष्ठ, जाबालि, याज्ञवल्क्य, क्रतु, अङ्गिरा, दक्ष, मरीचि, वैष्णव, शातातप, शौनक, देवराज, भृगु, अग्निवेश्य, अत्रि, मरीचि, मुख्य हैं

॥१-२॥ सुव्रत पाप, मनु, गौतम आदि, कौशिक तुम्बरु, पर्वत आदि, अगस्त्य, मार्कण्ड, पिप्पल आदि, गालव, योगपरायण। वामदेव, अङ्गिरा, भार्गव, स्मृतियों में परम प्रवीण और श्रुतियों के द्वारा परम मनोज्ञ सब थे। सभी पुराणों के अर्थों के ज्ञाता-बहुत थे। ये सब देव नदी गौतमी पर पहुंच कर बहुत से मन्त्रों के द्वारा और श्रुतियों के द्वारा अतिशय हृष्ट-तुष्ट और मुदित मनों के द्वारा स्तवन करते हैं। भगवान् शिव और श्री हरि ने उस गङ्गा को संगता हुई देखकर मुनिगणों के लिये अपने स्वरूपों का दर्शन कराया था ॥३-५॥ उसी भांति देवों ने भी दर्शन प्राप्त किये थे और पितृगणों ने भी उन दोनों को देखा था। सभी समस्त पीड़ाओं के हरण करने वाले उन दोनों देवों का स्तवन किया था ॥६॥ आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, लोकपालों का समुदाय सभी हाथ जोड़कर भगवान् हरि और शङ्कर दोनों देवों की स्तुति कर रहे थे ॥-॥

संगमेषु प्रसिद्धेषु नित्यं सप्तसु नारद।
समुद्रस्य च गङ्गाया नित्यं देवौ प्रतिष्ठितौ ॥८

गौतमेश्वर आख्यातो यत्र देवो महेश्वरः।
नित्यं संनिहितस्तत्र माधवो रमया सह ॥६

ब्रह्मेश्वर इति ख्यातो मयैव स्थापितः शिवः।
लोकानामुपकारार्थमात्मनः कारणान्तरे ॥१०

चक्रपणिरिति ख्यातः स्तुतो देवैर्मया सह।
तत्र संनिहितो विष्णुर्देवैः सह मरुद्गणैः ॥११

ऐन्द्रतीर्थमिति ख्यातं तदेव हयमूर्धकम्।
हयमूर्धा तत्र विष्णुस्तन्मूर्धनि सुरा अपि ॥
सोमतीर्थमिति ख्यातं यत्र सोमेश्वर शिवः ॥१२

इन्द्रस्य सोमश्रवसो देवैश्च ऋषिभिस्तथा।
प्रार्थितः सोम एवाऽऽदाविन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१३

सप्त दिशो नानासूर्या सप्त होतार ऋत्विज ।
देवा आदित्या ये सप्त तेभि-
सोमाभिरक्ष न इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१४

हे नारद ! इन सात मङ्गमो मे नित्य ही जो कि गौतमेश्वर नाम से आख्यात है वे महेश्वर देव वहा सन्निहित रहते है और रमा देवी के साथ भगवान् माधव भी वहा नित्य विराजमान रहा करते हैं ॥८-६॥ ब्रह्मेश्वर इस नाम से जो विख्यात देव हैं वे मेरे ही द्वारा शिव भगवान् स्थापित किये गये थे । उनकी स्थापना लोका के उपकार के लिये और अपने अन्य कारण स की गयी थी ॥१०॥ जो चक्रपाणि इस शुभ नाम से विख्यात हैं उनकी देवो के साथ मैंने स्तुति की थी । वहाँ पर भगवान् विष्णु देवो के साथ तथा मरुद्गण के साथ सन्निहित रहा करते हैं ॥११॥ ऐन्द्र तीर्थ—इस नाम से विख्यात है और यही हय मूर्धन नाम से कहे जाते हैं । वहा पर हयमूर्धा विष्णु हैं और उनके मूर्धा पर सुरभी है । एक सोम तीर्थ नाम से विख्यात है जहा पर सोमेश्वर शिव विराजमान हैं ॥१२॥ देवो के द्वारा और ऋषियो के द्वारा सोम के स्रवण करने वाले इन्द्र के सोम की प्रार्थना की गयी थी और आदि में इन्द्र के लिये ही इन्द्र का परिस्रव हुआ था ॥१३॥ इस प्रकार से प्रार्थना की थी—हे इन्दो ! सात दिशाएँ-नाना सूर्य-सात होता ऋत्विज देव आदित्य जो सात हैं उनसे सोम की अभिरक्षा करो और इन्द्र के लिये सोम का परिस्रवण करो ॥१४॥

यत्ते राजञ्छृत हविस्तेन सोमाभिरक्ष न ।
अरातो वा मा नस्तारीन्मो च-
न किंचनाममदिन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१५

ऋषे मन्त्रकृता स्तोमै कश्यपोद्वर्धयन्गिर ।
सोम नमस्य राजान यो जज्ञे-
वीरुधा पतिरिन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१६

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा-
इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥१७
एवमुक्त्वा च ऋषिभिः सोमं प्राप्य च वज्रिणे।
तेभ्यो दत्त्वा ततो यज्ञः पूर्णो जातः शतक्रतोः ॥१८
तत्सोमतीर्थमाख्यातमाग्नेयं पुरतस्तु तत्।
अग्निरिष्ट्वा महायज्ञैर्मामाराध्य मनीषितम् ॥१९
संप्राप्तवान्मत्प्रसादादहं तत्रैव नित्यशः।
स्थितो लोकोपकारार्थं तत्र विष्णुः शिवस्तथा ॥२०
तस्मादाग्नेयमाख्यातमादित्यं तदनन्तरम्।
यत्राऽऽदित्यो वेदमयो नित्यमेति उपासितुम् ॥२१

हे राजन्! जो आपके लिये हविश्रुत किया गया है उससे हमारे सोम की अभिरक्षा करो। हमारे शत्रु न होवें। हमारे अरियों से पीछा छुड़ाओ। हे इन्दो! इन्द्र के लिये किञ्चन सोम का परिस्रवण करो ॥१५॥ हे ऋषे! मन्त्र कृत्तों के स्तोमों से कश्यप कणियों का वर्धन करते हुए सोम राजा को नमस्कार करके जिसने वीरुधों को उत्पन्न किया था वह वीरुधों का स्वामी है हे इन्दो! इन्द्र के लिये सोम का परिस्रवण करो ॥१६॥ काम रुद्र को-भिषगुपल प्रक्षिणी-ननानानधिय-वसूयव और अनुगा की भांति तास्थि को हे इन्दो! इन्द्र के लिये परि-स्रवण करो ॥१७॥ इस तरह से कह कर ऋषियों ने वज्रधारी के लिये सोम की प्राप्ति करके उनको दे दिया था और फिर शत ऋतु का यज्ञ पूर्ण हो गया था ॥१८॥ वह सोम तीर्थ नाम से आख्यात हुआ था और उसके आगे आग्नेय था। महायज्ञों के द्वारा अग्नि का यजन करके मेरी आराधना करके जो भी मनीषित था उसकी प्राप्ति करती थी। यह मेरे ही प्रसाद से हुआ था और मैं भी वहीं पर नित्य स्थित होगया था। लोकों के उपकार करने के लिये भगवान् विष्णु और शिव भी वहां प्रतिष्ठित हो गये थे ॥१९-२०॥ इसी कारण से वह तीर्थ आग्नेय नाम से कहा गया था और इसके उपरान्त वह आदित्य कहा गया है

जहा पर कि वेदमय भगवान् आदित्य नित्य ही उपासना करने के लिये आया करते हैं ॥२१॥

रूपान्तरेण मध्याह्ने द्रष्टुं मां शङ्करं हरिम् ।
नमस्कार्यस्तत्र सदा मध्याह्ने सकलो जन ॥२२
रूपेण केन सविता समायातीत्यनिश्चयात् ।
यस्मादादित्यमाख्यातं बार्हस्पत्यमनन्तरम् ॥२३
वृहस्पति. सुरैः पूजा तस्मात्तीर्थादवाप ह ।
ईजे च यज्ञान्विविधान्बार्हस्पत्य ततो विदुः ॥२४
तत्तीर्थस्मरणादेव ग्रहशान्तिर्भविष्यति ।
तस्मादप्यपर तीर्थमिन्द्रगोपे नगोत्तमे ॥२५
प्रतिष्ठितं महालिङ्ग कस्मिश्चित्कारणान्तरे ।
हिमालयेन तत्तीर्थमद्रितीर्थं तदुच्यते ॥२६
तत्र स्नानं च दान च सर्वकामप्रदं शुभम् ।
एव सा गौतमी गङ्गा ब्रह्माद्रेश्च विनिःसृता ॥२७
यावत्सागरगा देवी तत्र तीर्थानि कानिचित् ।
सक्षेपेण तथोक्तानि रहस्यानि शुभानि च ॥२८

रूपान्तर से अर्थात् दूसरा कोई स्वरूप धारण करके मध्याह्न के समय मे मुझको श्रीहरि को और भगवान् शम्भु को देखने के लिये ही वे आया करते हैं। अतएव वहा पर सदा और नित्य ही मध्याह्न के समय मे सभी मनुष्यों को जो भी दर्शनार्थी वहा आया करते हैं अवश्य ही नमस्कार करनी चाहिए ॥२२॥ सविता देव किस रूप से आते हैं—यह निश्चय नही हैं इसलिये वह तीर्थ आदित्य कहा गया है। इसके बाद मे बार्हस्पत्य कहा गया है ॥२३॥ वृहस्पति ने सुरो के द्वारा दी हुई पूजा को उस तीर्थ से प्राप्त किया था और अनेक प्रकार के यज्ञो का यजन किया था। तभी से बार्हस्पत्य नाम से जानते हैं ॥२४॥ उस तीर्थ के केवल स्मरण से ही सब ग्रहो की शान्ति हो जायगी। इससे भी दूसरा एक तीर्थ है जो इन्द्र गोप श्रेष्ठ पर्वत पर है ॥२५॥ वहा किसी अन्य कारण से एक महा लिङ्ग की प्रतिष्ठा की गयी है। हिमालय के द्वारा वह

तीर्थ होता है और अद्वितीर्थ वह कहा जाता है ॥२६॥ वहाँ पर स्नान दान करना परम शुभ है और समस्त कामनाओं का देने वाला है। इस प्रकार से वह गौतमी गङ्गा ब्रह्मादि से विनिःसृत हुई है ॥२७॥ जितनी भी जगह में गमन करने वाली देवी है और वहां पर जो कोई भी तीर्थ हैं मैंने संक्षेप से उन सबको बतला दिया है और उनके जो भी रहस्य हैं वे भी सब शुभ कह दिये हैं ॥२८॥

वेदे पुराणे ऋषिभिः प्रसिद्धा,
या गौतमी लोकनमस्कृता च ।
वक्तुं कथं तामतिसुप्रभावा-
मशेषतो नारद कस्य शक्तिः ॥२६
भक्त्वा प्रवृत्तस्य यथाकथंचि-
न्नैवापराधोऽस्ति न संशयोऽत्र ।
तस्माच्च दिङ्मात्रमतिप्रयासा-
त्संसूचितं लोकहिताय तस्याः ॥३०
कस्तस्याः प्रतितीर्थं तु प्रभावं वक्तुमीश्वरः ।
अपिलक्ष्मीपतिर्विष्णुरलं सोमेश्वरः शिवः ॥३१
क्वचित्कस्मिंश्च तीर्थानि कालयोगे भवन्ति हि ।
गुणवन्ति महाप्राज्ञ गौतमी तु सदा नृणाम् ॥३२
सर्वत्र सर्वदा पुण्या कोन्वस्या गुणकीर्तनम् ।
वक्तुं शक्तस्ततस्तस्यै नम इत्येव युज्यते ॥३३

वेदों में—पुराणों में ऋषियों के द्वारा जो प्रसिद्धा गौतमी है वह लोकों के द्वारा नमस्कृत है। हे नारद ! उस अत्यन्त सुप्रभाव वाली के विषय में पूर्ण रूप से कथन करने की किसकी शक्ति हो सकती है ? अर्थात् किसी में भी सामर्थ नहीं है ॥२८॥ भक्ति के द्वारा प्रवृत्त होने वाले मेरा जो कि किसी भी प्रकार से प्रवृत्त हो सका है कोई भी अपराध नहीं है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इसी कारण से अत्यन्त प्रयास से मैंने कुछ दिङ्मात्र सूचित कर दिया है—जो कि उसके विषय में यह संसूचना लोकों के हित ही के लिये की है ॥३०॥ उसके प्रत्येक तीर्थ के

प्रभाव को कौन बतलाने मे समर्थ है ? मैं तो विचारा हूँ ही क्या ! साक्षात् लक्ष्मी के पति विष्णु और सोमेश्वर शिव भी असमर्थ हैं ।।३१।। कही पर किसी स्थल मे काल के योग से तीर्थ होते हैं। हे महाप्राज्ञ ! गौतमी तो मनुष्यो के लिये सदा ही गुणो वाली है। यह तो सर्वदा और सर्वत्र ही परम पुण्यमयी है। इसके गुणो का कीर्तन करने को कौन समर्थ हो सकता है। उसके लिये मेरा नमस्कार है—यही युक्त होता है ।।३२-३३।।

—— * ——

तीर्थदोनाचातुर्विध्यादिनिरूपण

त्रिदैवत्या सुरेशान गङ्गा ब्रूपे सुरेश्वर।
ब्राह्मणेनाऽऽहृता पुण्या जगतः पावनी शुभाम् ।।१

आदिमध्यावसाने च उभयोस्तीरयोरपि।
या व्याप्ता विष्णुनेशेन त्वया च सुरसत्तम ।।
पुन. सक्षेपतो ब्रूहि न मे तृप्ति. प्रजायते ।।२

कमण्डलुस्थिता पूर्व ततो विष्णुपदानुगा।
महेश्वरजटाजूटे स्थिता सैव नमस्कृता ।।३

ब्रह्मतेज.प्रभावेण शिवमाराध्य यत्नतः।
ततः प्राप्ता गिरि पुण्य ततः पूर्वार्णव प्रति ।।४

आगत्य सगमा देवी सर्वतीर्थमयी नृणाम्।
ईप्सितानां तथा दात्री प्रभावोऽस्या विशिष्यते ।।५

एतस्या नाधिक मन्ये किंचित्तीर्थं जगत्त्रये।
अस्याश्चैव प्रभावेण भाव्य यच्च मन स्थितम् ।।६

अद्याप्यस्या हि माहात्म्य वक्तु केश्चिन्न शक्यते।
भक्तिनो वक्ष्यते नित्य या ब्रह्म परमार्थत. ।।७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे सुरेश्वर ! हे सुरेशान ! आप गङ्गा को त्रिदैवत्या बोल रहे हैं जो कि ब्राह्मण गौतम के द्वारा आहृत हुई हैं और परम पुण्यमयी-जगत् को पावन करने वाली एवं शुभ हैं ॥१॥ हे सुरसत्तम ! आदि-मध्य और अवसान में दोनों तीरों पर भी ईशा विष्णु के द्वारा और आप के द्वारा जो व्याप्त है उसके विषय में पुनः संक्षेप से कहो, मेरी तृप्ति नहीं हो रही है ॥२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—पूर्व में तो यह गङ्गा सबसे पूर्व में तो मेरे कमण्डलु में स्थित थी फिर यह भगवान् श्री विष्णु के चरण कमलों की अनुगामिनी हो गयी थी। इसके उपरान्त भगवान् महेश्वर देव के जटा जूट में आकर स्थित हो गयी थी वही नमस्कृत हुई थी ॥३॥ इसके अनन्तर ब्रह्म तेज के प्रभाव से भगवान् शिव की समाराधना करके मन्त्र पूर्वक फिर गिरि के ऊपर वह प्राप्त हुई थी जो कि परम पुण्यमय था। इसके अनन्तर पूर्व सागर में आकर उस समुद्र से देवी सङ्गत हो गयी थी जो कि मनुष्यों के लिये सम्पूर्ण तीर्थों से परिपूर्ण थी। यह मनुष्यों की सभी अभीष्ट मनोरथों के प्रदान करने वाली थी और इसका प्रभाव विशेषता रखता है ॥४-५॥ तीनों भुवनों में इससे अधिक बड़ा कोई भी तीर्थ मैं नहीं समझता हूँ एवं मानता हूं। इसी के प्रभाव से जो भी मन में स्थित होता है वही हुआ करता है। आज भी इसके माहात्म्य को किसी के द्वारा भी कहा नहीं जा सकता है। परमार्थ रूप से जो साक्षात् ब्रह्म है वह भक्ति के भाव से ही नित्य कही जायगी ॥६-७॥

तस्याः परतरं तीर्थं न स्यादिति मतिर्मम ।
अन्यतीर्थेन साधर्म्यं न युज्येत कथंचन ॥८

श्रुत्वा मद्वाक्यपीयूषैर्गङ्गाया गुणकीर्तनम् ।
सर्वेषां न मतिः कस्मात्तत्रैवोपरतिं गता ॥
इति भाति विचित्रं मे मुने खलु जगत्त्रये ॥९

धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं वेत्ता चोपदेशकः ।
छन्दांसि सरहस्यानि पुराणस्मृतयोऽपि च ॥१०

धर्मशास्त्राणि यच्चान्यत्तव वाक्ये प्रतिष्ठितम् ।
तीर्थानामथ दानाना यज्ञाना तपसा तथा ॥११
देवतामन्त्रसेवानामधिक किं वद प्रभो ।
यद्ब्रूपे भगवन्भक्त्या तथा भाव्य न चान्यथा ॥१२
एत मे सशय ब्रह्मन्वाक्यात्त्व छेत्तुमर्हसि ।
इष्ट मनोगत श्रुत्वा तस्माद्विस्मयमागत. ॥१३

मेरी मति तो ऐसी ही है कि उससे पर तर अर्थात् अधिक बडा कोई तीर्थ नही है । अन्य तीर्थ से उसका साधर्म्य अर्थात् समानता किसी भी प्रकार से हो नही सकता है ॥८॥ मेरे बचनो के स्वरूप वाले अमृत से गङ्गा देवी के गुणो का कीर्त्तन श्रवण करके भी किस कारण से सबकी मति की उपरति उसमे नही हुई है ? हे मुने ! इस त्रिलोकी मे निश्चय ही मुझको यह एक अद्भुत सा प्रतीत हो रहा है ॥६॥ देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—आप तो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों के ज्ञाता तथा उपदेश करने वाले हैं । रहस्य के सहित छन्द-पुराण और स्मृतियाँ-धर्मशास्त्र और जो कुछ अन्य है वह सभी आपके वाक्यो मे प्रतिष्ठित है । हे प्रभो ! सब तीर्थ-सम्पूर्ण दान-यज्ञ-तप-देवता-मन्त्र और सेवा इनमे क्या सबसे अधिक है—यह मुझे बतलाइये । हे भगवन् ! आप जो भी कुछ बोलते हैं वही भक्ति के भाव से किया जावेगा और इसके विपरीत नही किया जावेगा ॥११-१२॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे हृदय मे यह सशय विद्यमान है उसे आप छेदन करने के लिये समर्थ होते हैं । मन मे रहने वाले इष्ट का श्रवण करके उससे मैं विस्मय को प्राप्त हो गया हू ॥१ ॥

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्य धर्ममुत्तमम् ।
चतुर्विधानि तीर्थानि तावन्त्येव युगानि च ॥१४
गुणास्त्रयश्च पुरुषास्त्रयो देवा. सनातन ।
वेदाश्च स्मृतिभियु क्ताश्चत्वारस्ते प्रकीर्तिता. ॥१५
पुरुपार्थाश्च चत्वारो वाणी चापि चतुर्विधा ।
गुणा ह्यपि तु चत्वार. समत्वेनेति नारद ॥१६

सर्वत्र धर्मः सामान्यो यतो धर्मः सनातनः ।
साध्यसाधनभावेन स एव बहुधा मतः ॥१७

तस्याऽऽश्रयश्च द्विविधो देशः कालश्च सर्वदा ।
कालाश्रयश्च यो धर्मो हीयते वर्धते सदा ॥१८

युगानामनुरूपेण पादः पादोऽस्य हीयते ।
धर्मस्येति महाप्राज्ञ देशापेक्षा तथोभयम् ॥१९

कालेन चाऽऽश्रितो धर्मो देशे नित्यं प्रतिष्ठितः ।
युगेषु क्षीयमाणेषु न देशेषु स हीयते ॥२०
उभयत्र विहीने च धर्मस्य स्यादभावता ।
तस्माद्देशाश्रितो धर्मश्चतुष्पात्सुप्रतिष्ठितः ॥२१

श्री ब्रह्माजी ने कहा--हे नारद ! सुनो, मैं रहस्य के सहित उत्तम धर्म को कहता हूं । चार प्रकार के तीर्थ हैं और चार ही तरह के युग भी हैं ॥१४॥ गुण (सत्त्व-रज-तम) तीन हैं तथा सनातन देव पुरुष भी तीन ही हैं । स्मृतियों से युक्त वेद चार कीर्त्तित किये गये हैं ॥१५॥ पुरुषार्थ (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) चार हैं तथा वाणी भी चार प्रकार की है । हे नारद ! समत्त्व से गुण भी चार हैं । सर्वत्र धर्म सामान्य है जिससे सनातन धर्म्म है । साध्य और साधन के भाव से वही धर्म बहुत प्रकार का माना गया है ॥१६-१७॥ सर्वदा उसका आश्रय देश और काल से दो प्रकार का होता है । काल के आश्रय में रहने वाला धर्म वह सदा क्षीण होता है और वर्धमान भी होता है ॥१८॥ युगों की अनुरूपता से इस धर्म का एक-एक पाद क्षीण होता रहा करता है । हे महाप्राज्ञे ! धर्म की उसी भाँति देश की भी अपेक्षा होती है । यह दोनों ही देश और काल के प्रकार वाला होता है ॥१९॥ काल के द्वारा जो आश्रित धर्म है वह देश में भी नित्य ही प्रतिष्ठित रहा करता है । युगों के क्षीण होने पर देशों में वह हीन नहीं होता है ॥२०॥ दोनों में जो विहीन धर्म्म होता है उसका अभाव होता है । इसी कारण से यह धर्म चार पादों वाला सुप्रतिष्ठित होता है ॥२१॥

स चापि धर्मो देशेषु तीर्थरूपेण तिष्ठति ।
कृते देश च काल च धर्मोऽवष्टभ्य तिष्ठति ॥२२
त्रेताया पादहीनेन स तु पादः प्रदेशत ।
द्वापरे सार्धंत काले धर्मो देशे समास्थितः ॥२३
कलौ पादेन चैकेन धर्मश्चलति सकटम् ।
एवविध तु यो धर्मं वेत्ति तस्य न हीयते ॥२४
युगानामनुभावेन जातिभेदाश्च सस्थिताः ।
गुणेभ्यो गुणकर्तृभ्यो विचित्रा धर्मसस्थितिः ॥२५
गणानामनुभावेन उद्भवाभिभवौ तथा ।
तीर्थानामपि वर्णाना वेदाना स्वर्गमोक्षयोः ॥२६
तादृग्रूपप्रवृत्त्या तु तदेव च विशिष्यते ।
कालोऽभिव्यञ्जक प्रोक्तो देशोऽभिव्यङ्ग्य उच्यते ॥२७
यदा यदा अभिव्यक्ति कालो धत्ते तदा तदा ।
तदेव व्यञ्जन ब्रह्म स्तस्मान्नास्त्यत्र सशयः ॥२८

वह धर्म भी देशों मे तीर्थों के स्वरूप से प्रतिष्ठित होता है । कृत युग मे यह धर्म देश और काल को अवष्टब्ध करके स्थित रहा करता है ॥२२॥ त्रेता मे वही धर्म एक पाद से हीन होता है और वह पाद प्रदेश से होता है । द्वापर मे काल में आधा धर्म होता है अर्थात् दो ही पाद उसके रूप रहा करते हैं और वह देश मे समास्थित रहता है ॥२३॥ कलियुग में एक ही पाद वाला धर्म रहता है जो कि बड़े ही सङ्कट को प्राप्त हो जाया करता है तथा बड़ी ही कठिनाई से चलता है । जो इस प्रकार से धर्म का ज्ञान रखता है उसका धर्म क्षीण नहीं होता है ॥२४॥ युगो के अनुभाव से जातियों के भी भेद सस्थित हुआ करते हैं । गुणों से और गुणों के कर्त्ताओं से इस धर्म की सस्थिति बहुत ही अद्भुत होती है ॥२५॥ गुणो के ही अनुभाव से से इसका उद्भव (उत्पत्ति) और अभिभव (छिपाव) हुआ करते हैं । तीर्थों का-वर्णों का-वेदों का स्वर्ग और मोक्ष का भी उसी प्रकार के स्वरूप की प्रवृत्ति से वह होता है ॥२६॥ उसी प्रकार की रूप प्रवृत्ति से वह ही विशेषता को प्राप्त हो

जाया करता है। यह काल ही अभिव्यञ्जक कहा गया है और देश उस काल का अभिव्यङ्ग्य हुआ करता है ऐसा ही कहा जाता है ॥२७॥ जब जब काल अभिव्यक्ति को धारण किया करता है अर्थात् प्रकट स्वरूप वाला होता है तब-तभी हे ब्रह्मन् ! व्यञ्जन (प्रकटता) होती है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२८॥

युगानुरूपा मूर्तिः स्याद्देवानां वैदिकी तथा ।
कर्मणामपि तीर्थानां जातीनामाश्रमस्य तु ॥२६
त्रिदैवत्यं सत्ययुगे तीर्थं लोकेषु पूज्यते ।
द्विदैवत्यं युगेऽन्यस्मिन्द्वापरे चैकदैविकम् ॥३०
कलौ न किंचिद्विज्ञेयमथान्यदपि तच्छृणु ।
दैवं कृतयुगे तीर्थं त्रेतायामासुरं विदुः ॥३१
आर्षं च द्वापरे प्रोक्तं कलौ मानुषमुच्यते ।
अथान्यदपि वक्ष्यामि शृणु नारद कारणम् ॥३२
गौतम्यां यत्त्वया पृष्टं तत्ते वक्ष्यामि विस्तरात् ।
यदा चेयं हरशिरः प्राप्ता गङ्गा महामुने ॥३३
तदा प्रभृति सा गङ्गा शंभोः प्रियतराऽभवत् ।
तद्देवस्य मतं ज्ञात्वा गजवक्त्रमुवाच सा ॥३४
उमा लोकत्रयेशाना माता च जगतो हिता ।
शान्ता श्रुतिरिति ख्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥३५

युगों के ही अनुरूप देवों की मूर्त्ति वैदिकी हुआ करती है। इसी भाँति कर्म्मों की-तीर्थों की-जातियों की और आश्रम की भी हुआ करती है ॥२६॥ तीन देवताओं वाला सत्ययुग में तीर्थ होता है जो लोकों में पूजित हुआ करता है। अन्य त्रेतायुग में दो देवताओं वाला होता है द्वापर एक देवता वाला तथा कलियुग में कुछ भी नहीं जानना चाहिए अर्थात् कलियुग में कोई भी देवता नही होता है। इसके अतिरिक्त और भी श्रवण करो। कृतयुग में दैवतीर्थ होता है और त्रेता में आसुर होता है ॥३०-३१॥ द्वापर में आर्ष तीर्थ होता है तथा कलियुग में मानुष कहा

जाया करता है। हे नारद ! इसके सिवाय मैं और भी बतलाऊँगा—इसका भी श्रवण करो कि वह क्या कारण होता है ॥३२॥ गौतमी के विषय मे जो तुमने मुझसे पूछा है उसी को मैं विस्तार के साथ बतलाता हूँ। हे महामुने ! जिस समय में यह गङ्गा भगवान् शम्भु के शिर पर प्राप्त हो गयी थी तभी से आरम्भ करके वह गङ्गा भगवान् शम्भु की अधिक प्यारी बन गयी थी। उन देवेश्वर के मत को जानकर वह गजवक्त्र (श्री गणेशजी) से बोली थी ॥३३-३४॥ यह उमा तो तीनो लोको की स्वामिनी, जगत् की माता और संसार की हितकारिणी है तथा परम शान्त स्वरूपा, श्रुति इन शुभ नामो से विख्यात है एवं भुक्ति और मुक्ति दोनो की देने वाली है ॥३५॥

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा गजवक्त्रोऽभ्यभाषत ॥३६
किं कृत्यं शाधि मां मातस्तत्कर्ताऽहमसंशयम् ॥३७
उमा सुतमुवाचेदं महेश्वरजटास्थिता ।
त्वायाऽवतार्यतां गङ्गा सत्यमीशप्रिया सती ॥३८
पुनश्चेशस्तत्र चित्रमध्यास्ते सर्वदा सुत ।
शिवा यत्र सुरास्तत्र तत्र वेदाः सनातनाः ॥३९
तत्रैव ऋषयः सर्वे मनुष्याः पितरस्तथा ।
तस्मान्निवर्तयेशानं देवदेवं महेश्वरम् ॥४०
तस्या निवर्तिते देवे गङ्गाया सव एव हि ।
निवृत्तास्ते भविष्यन्ति शृणु चेदं वचो मम ॥
निवर्तय ततस्तस्या भवभावेन शङ्करम् ॥४१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस माता के इस वचन का श्रवण करके गजवदन ने भी यह कहा था—॥३६॥ गजवदन ने कहा—हे माताजी ! अब क्या करना है मुझको आदेश दीजिए। मैं बिना किसी संशय के वही अवश्य ही करूँगा ॥३७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—जगदम्बा उमा ने उस समय में अपने पुत्र गजवदन (श्रीगणेशजी) से कहा था कि भगवान् महेश्वर देव के जटाजूट मे गङ्गा देवी समवस्थित हैं। वह सती सचमुच ही भगवान् ईश्वर की प्रिया है। उसको तुम नीचे उतार दो

॥३८॥ हे सुत ! फिर यह बात बहुत ही अद्भुत है कि ईश्वर वहीं पर सर्वदा स्थित रहा करते हैं और जहाँ पर भगवान् शिव रहते हैं वहीं पर समस्त सुरगण भी निवास किया करते हैं और ये सनातन वेद भी रहते हैं ॥३९॥ वहीं पर सब ऋषिगण मनुष्य और पितृगण भी वास किया करते है । इसलिये उस स्थल से देवों के देव महेश्वर को निवृत्त करो ॥४०॥ उन देवेश्वर के वहाँ से हट जाने पर अर्थात् गंगा से दूर हट कर चले आने पर सब ही निवृत्त हो जाँयगे । यही मेरा आदेश वचन है उसका तुम श्रवण करो । इसलिये सर्व भाव से वहां से भगवान् शङ्कर को हटाओ ॥४१॥

मातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुनराह गणेश्वरः ॥४२
नैव शक्यः शिवो देवो मया तस्या निर्वर्तितुम् ।
अनिवृत्ते शिवे तस्या देवा अपि निर्वर्तितुम् ॥४३
न शक्या जगतां मातरथान्यच्चापि कारणम् ।
गङ्गाऽवतारिता पूर्वं गौतमेन महात्मना ॥४४
ऋषिणालोकपूज्येन त्रैलोक्यहितकारिणा ।
सामोपायेन तद्वाक्यात्पूज्येन ब्रह्मतेजसा ॥४५
आराधयित्वा देवेशं तपोभिः स्तुतिभिर्भवम् ।
तुष्टेन शङ्करेणेदमुक्तोऽसौ गौतमस्तदा ॥४६
वरान्वरय पुण्यांश्च प्रियांश्च मनसेप्सितान् ।
यद्यदिच्छसि तत्सर्वं दाता तेऽद्य महामते ॥४७
एवमुक्तः शिवेनासौ गौतमो मयि शृण्वति ।
इदमेव तदोवाच सजटां देहि शङ्कर ॥
गङ्गां मे याचते पुण्यां किमन्येन वरेण मे ॥४८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अपनी माता उमा देवी के इस वचन का श्रवण करके फिर गणेश जी ने कहा—॥४२॥ गणेश्वर ने कहा—हे माताजी ! देव शिव मेरे द्वारा तो हटाये जाने के योग्य नहीं हैं अर्थात् मैं तो उनको वहां से नही हटा सकता हूं । जब देवेश्वर शिव ही वहाँ से निवृत्त नहीं होंगे तो वहाँ देव भी नहीं हटाये जा सकते हैं ॥४३॥ हे

जगत् की माता ! फिर तो कोई भी हटाया नहीं जा सकता है। इसके अनन्तर और भी कारण है और वह यह है कि गगा पूर्व में महात्मा गौतम ने अवतरित की है जो ऋषि समस्त लोकों के द्वारा पूजा के योग्य है और तीनों लोकों के हित करने वाले हैं। सामोपाय ही गगा का अवतरण किया गया है। पूज्य ब्रह्मतेज के द्वारा तपों से और स्तुतियों से देवेश की आराधना करके ही इनको अवतरित किया है। जब भगवान् शङ्कर सन्तुष्ट हो गये थे तब उन्होंने महात्मा गौतम से यह कहा था ॥४४-४६॥ भगवान् शङ्कर बोले—हे मुने ! तुम जो भी तुम्हारे मन में अभीष्ट हो तथा प्रिय हो एवं पुण्यमय हो उन वरदानों को मुझ से वरण कर लो। हे महामते ! आज तो तुम जो-जो भी कुछ चाहोगे उस सबका मैं देने वाला हूँ अर्थात् वह सभी मैं दे दूँगा ॥४७॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—मैं भी उस समय में सुन रहा था और मेरे सुनते२ उन गौतम से भगवान् शिव ने कहा था। उस समय में उन गौतम मुनि ने उनसे कहा था— हे शङ्कर ! जटा के सहित मुझे प्रदान कीजिए। मैं परम पुण्यमयी गगा की याचना ही करता हूँ फिर अन्य वरदान से प्रयोजन ही क्या है ॥४८॥

पुन प्रोवाच त शभु सर्वलोकोपकारक ॥४९

उक्त न चाऽऽत्मन किंचित्तस्माद्याचस्व दुष्करम् ॥५०

गौतमोऽदीनसत्वस्त भवमाह कृताञ्जलि ॥५१

एतदेव च सर्वेषा दुष्कर तव दर्शनम् ।

मया तदद्य सप्राप्त कृपया तव शकर ॥५२

स्मरणादेव ते पङ्क्त्या कृतकृत्या मनीषिण ।

भवन्ति किं पुन साक्षात्त्वयि दृष्टे महेश्वरे ॥५३

एवमुक्तो गौतमेन भवो ह्युपसमन्वित ।

त्रयाणामुपकारार्थं लोकाना याचित त्वया ॥५४

न चाऽऽत्मनो महाबुद्धे याचेत्याह शिवो द्विजम् ।

एव प्रोक्त पुनर्विप्रो ध्यात्वा प्राह शिव तथा ॥५५

विनीतवददीनात्मा शिवभक्तिसमन्वितः ।
सर्वलोकोपकाराय पुनर्याचितवानिदम् ॥
शृण्वत्सु लोकपालेषु जगादेदं स गौतमः ॥५६

श्री ब्रह्माजी ने कहा—समस्त लोकों के उपकार करने वाले फिर भगवान् शङ्कर ने उस मुनि गौतम से कहा था ॥४९॥ शम्भु देव ने कहा—तुमने अपनी भलाई के लिये कुछ भी याचना नहीं की है अतएव हमारा कथन है कि कुछ अत्यन्त कठिन वस्तु हो उसे माँग लो ॥५०॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—गौतम मुनि अदीन सत्त्व वाले थे अर्थात् उनके सत्त्व में नाममात्र को भी दैन्य भाव था ही नहीं । वह फिर हाथ जोड़कर भगवान् शङ्कर से बोला था ॥५१॥ गौतम मुनि ने कहा—हे भगवन् ! आपका दर्शन ही सब के लिये परम दुष्कर वस्तु है । हे शङ्कर ! वही मैंने आज प्राप्त कर लिया है और यह भी आपकी ही कृपा का प्रसाद मुझे प्राप्त हो गया है ॥५२॥ आपके सभी चरणों के स्मरण से ही मनीषीगण इस जगत् में कृतकृत्य हुआकरते हैं फिर जिसमें आप महेश्वर भगवान् के साक्षात् देख लिये जाने पर तो कुछ कसर ही शेष नहीं रह जाती है ॥५३॥ गौतम ने कहा—यही आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त करना परम दुष्कर है मैंने अब उसे पा लिया है । श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस तरह से जब भगवान् भवानीश से कहा तो गौतम के ऊपर महेश्वर बहुत ही प्रसन्न हुए थे । फिर शिव ने उस द्विज से कहा था कि हे महान् बुद्धि वाले ! तुमने जो यह याचना की है वह तीनों लोकों की भलाई के लिये ही की है अपने आपके लिये तो कुछ भी माँगा ही नहीं है जब ऐसा शिव भगवान् के द्वारा कहा गया तो फिर उस विप्र ने ध्यान करके शिव से कहा था ॥५४-५५॥ उस अदीन आत्मा वाले तथा भगवान् शिव की भक्ति से संयुत उस द्विज ने सब लोगों के उपकार के लिये ही पुनः यह याचना की थी । उस समय में सभी लोकपाल भी सुन रहे थे । उस गौतम ने यह कहा था ॥५६॥

यावत्सागरगा देवी निसृष्टा ब्रह्मणो गिरेः ।
सर्वत्र सर्वदा तस्यां स्थातव्यं वृषभध्वज ॥५७

फलेप्सूना फल दाता त्वमेव जगत प्रभो।
तीर्थान्यन्यानि देवश क्वापि क्वापि शुभानि च ॥५८
यत्र ते सनिधिर्नित्य तदेव शुभद विदु ।
यत्र गङ्गा त्वया दत्ता जटामुकुटसस्थिता ॥
सवत्र तव सानिध्यात्सवतीर्थानि शङ्कर ॥५९
तद्गौतमवच श्रुत्वा पुनर्हर्षाच्छिवोऽब्रवीत् ॥६०
यत्र क्वापि च यत्किचिद्यो वा भवति भक्तित (?)।
यात्रा स्नानमथा दान पितृणा वाऽपि तपणम् ॥६१
श्रवण पठन वाऽपि स्मरण वाऽपि गौतम ।
य करोति नरो भक्त्या गोदावर्या यतव्रत ॥ २
सप्तद्वीपवती पृथ्वी सशैलवनकानना ।
सरत्ना सौषधी रम्या साणवा धर्मभूषिता ॥ ३
दत्त्वा भवति यो धर्म स भवेद्गौतमीस्मृने ।
एव विधा इला विप्र गोदानाद्याऽभिधीयते ॥६४

गौतम महामुनीन्द्र ने कहा था कि यह देवी ब्रह्माजी के पवत से निकली थी और जहा तक सागर है यह गई है। हे वृषभध्वज ! मैं यही याचना तथा प्राथना करता हू कि आप उन सभी स्थलो म सर्वदा सस्थित होकर विराजमान रहें ॥५७॥ हे प्रभो 'जो पुण्य फल के इच्छुक हैं। उन सब के जगत् म प्रदान करने वाले आप ही तो हैं। हे देवेश्वर ! अन्य जो भी शुभ तीथ हैं कहीं कहीं पर ही शुभ हुआ करते हैं ॥५८॥ जहा पर ही आपकी सन्निधि है वही स्थल नित्य ही शुभ फल दने वाला होता है-एसा ही जाना जाता है। आपकी जटा और मुकुट मे से स्थित रहने वाली गङ्गा दवी को आपने प्रदान किया है हे शङ्कर ! सभी जगह पर आपके सान्निध्य होने के कारण से व सभी स्थल तीथ हैं ॥५९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—गौतम के इस वचन का श्रवण कर पुन हर्षातिरेक म विह्वल होते हुए भगवान् शिव ने यह कहा था ॥६०॥ भगवान् शिव बोले—जहाँ कहीं पर भी जो कुछ भी भक्ति की भावनाओ से होता है अथवा किया जाता है। यात्रा हो—स्नान हो—दान हो अथवा पितृगणा के

लिये तर्पण हो ! ये ही परम धार्मिक पुण्य कर्म हैं जो तीर्थों में किये जाते हैं ।।६१।। श्रवण-पठन-स्मरण हे गौतम ! इनमें एक भी जो कोई मनुष्य भक्ति भाव से किया करता है और गोदावरी की भक्ति में यत व्रत होता है कि शैल-वन-कानन से युक्त-सात द्वीपों वाली-रत्नों से भूषित-औषधियों वाली-समुद्र युक्त-धर्म से भूषित भूमि का दान करने से हुआ करता है। गौतमी के स्मरण करने से ही उतना फल होता है। इस प्रकार से हे विप्र ! इला ऐसी ही गोदानाद्या कही जाया करती है ।।६२-६४।।

चन्द्रसूर्यग्रहे काले मत्सांनिध्ये यतव्रतः ।
भूभृते विष्णवे भक्त्या सर्वकालं कृता सुधीः ।।६५
यो ददाति द्विजश्रेष्ठ तत्र यत्पुण्यमाप्नुयात् ।।६६
तस्माद्वरं पुण्यमेति स्नानदानादिना नरः ।
गौतम्यां विश्ववन्द्यायां महानद्यां तु भक्तितः ।।६७
तस्माद्गोदावरी गङ्गा त्वया नीता भविष्यति ।
सर्वपापक्षयकरी सर्वाभीष्टप्रदायिनी ।।६८
एतच्छ्रुतं मया मातर्वदतो गौतमं शिवात् ।
एतस्मात्कारणाच्छंभुर्गङ्गायां नियतः स्थितः ।।६९
को निवर्तयितुं शक्तस्तमम्ब करुणोदधिम् ।
अथापि मातरेतत्स्यान्मानुषा विघ्नपाशकैः ।।७०।।

चन्द्र या सूर्यदेव के ग्रहण के समय में मेरी सन्निधि में यत व्रत होकर उस वैष्णव भक्त के लिये सर्व प्रकार के अलङ्कारों से समलंकृत, वत्सों से युक्त सुन्दर गौओं का जो सुधी द्विज हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! लोकों में विख्यात सङ्गम में दान किया करता है और उसका जो पुण्य-फल प्राप्त करता है उससे भी कहीं श्रेष्ठ पुण्य-फल गौतमी में स्नान और दान आदि से मनुष्य प्राप्त कर लेता है क्योंकि यह महान् ही विश्व के वन्दनीय हैं। इसकी भक्ति का बहुत ही महान् पुण्य-फल होता है ।।६५-६७।। इससे यह गोदावरी गङ्गा आपके ही द्वारा लायी हुई होगी यह

सभी पापों के क्षय करने वाली और सभी अभीप्सितों के प्रदान करने वाली है ॥ ६८॥ गणेश्वर देव ने कहा—गौतम मुनि के प्रति बोलने वाले शिव से हे माता जी ! यह मैंने सुना है। इस कारण से भगवान् शम्भु गङ्गा में नियत रूप से स्थित रहा करते हैं ॥६६॥ हे अम्बे ! उन करुणा के सागर देवेश्वर को वहाँ से निवर्त्तन करने के लिये किसकी सामर्थ्य है ? अर्थात् कोई भी ऐसी शक्ति नहीं रखता है ॥७०॥

विनिबद्धा न गच्छन्ति गोदामप्यन्तिकस्थिताम् ।
न नमन्ति शिवं देवं न स्मरन्ति स्तुवन्ति न ॥७१
तथा मातः करिष्यामि तव संतोषहेतवे ।
सन्निरोद्धुमयो क्लेशस्तव वाक्यं क्षमस्व मे ॥७२
ततः प्रभृति विघ्नेशो मानुषान्प्रति किंचन ।
विघ्नमाचरते यस्तु तमुपास्य प्रवर्तते ॥७३॥
अथो विघ्नमनादृत्य गौतमीं याति भक्तितः ।
स कृतार्थो भवेल्लोके न कृत्यमवशिष्यते ॥७४
विघ्नान्यनेकानि भवन्ति गेहा
न्निर्गन्तुकामस्य नराधमस्य ।
निधाय तन्मूर्ध्नि पदं प्रयाति,
गंगां न किं तेन फलं प्रलब्धम् ॥७५
अस्याः प्रभावं को ब्रूयादपि साक्षात्सदाशिवः ।
संक्षेपेण मया प्रोक्तमितिहासपदानुगम् ॥७६
धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं यच्चराचरे ।
तदत्र विद्यते सर्वमितिहासे सविस्तरे ॥७७

जो कर्मों के पाश से विशेष रूप से निबद्ध हैं वे समीप में संस्थित भी गोदावरी के ऊपर नहीं जाया करते हैं और वे कभी देवेश्वर शिव को प्रणाम नहीं किया करते हैं और न कभी स्मरण करते हैं तथा स्तवन करते हैं ॥७१॥ तथापि हे माताजी ! आपके सन्तोष के कारण के लिये ही मैं कुछ करूँगा। उनके सन्निरोध करने के लिये बड़ा भारी क्लेश है। आपसे जो भी वचन मैंने कह दिया है उसे क्षमा कीजिए ॥७२॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—तभी से आरम्भ करके वे विघ्नों के ईश मनुष्यों के प्रति विघ्न किया करते हैं जो भी कोई उपासना करके प्रवृत्त हुआ करता है ॥७३॥ इसके भी अनन्तर जो विघ्नों का अनादर करके भक्ति-भाव से गौतमी के समीप में गमन किया करता है वही लोक में कृतार्थ हो जाता है और फिर उसे लोक में कृत्य करने के लिये कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा करता है ॥७४॥ इस अधम नर के लिये जो घर से निर्गमन करने की अभिलाषा रखा करता है उसे अनेक विघ्न हुआ करते हैं। उन सभी विघ्नों के मस्तक पर पैर रखकर जो गङ्गा को प्रणाम किया करता है उसने इस जगत् में क्या फल नहीं प्राप्त कर लिया है ? अर्थात् उसे सभी पुण्यों का फल अवश्य प्राप्त हो जाया करता है ॥७५॥ इस गङ्गा के प्रभाव को कौन कहे ? जिसे साक्षात् सदाशिव प्रभु भी नहीं कह सकते हैं संक्षेप से मैंने इतिहास पद के अनुगमन करने वाला वृत्त कह दिया है ॥७६॥ इस चराचर जगत् में धर्म-अर्थ काम और मोक्ष का जो साधन है वह इस विस्तारयुक्त इतिहास में सभी विद्यमान है ॥७७॥

वेदोदितं श्रुतिसकलरहस्यमुक्तं.
सत्कारणं समभिधानमिदं सदैव ।
सम्यक्च दृष्टं जगतां हिताय,
प्रोक्तं पुराणं वहुधर्मयुक्तम् ॥७८॥
अस्य श्लोकं पदं वाऽपि भक्तितः शृणुयात्पठेत् ।
गंगा गंगेति वा वाक्यं स तु पुण्यमवाप्नुयात् ।·७९
कलिकलङ्कविनाशनदक्षमिदं,
सकलसिद्धिकरं शुभदं शिवम् ।
जगति पूज्यमभीष्टफलप्रदं,
गांगमेतदुदीरितमुत्तमम् ॥८०॥
साधु गौतम भद्रं ते कोऽन्योऽस्ति सदृशस्त्वया ।
य एनां गौतमी गंगां दण्डकारण्यमाप्नुयात् ॥८१

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८२
तिस्रः कोटयोऽर्धकोटी च तीर्थानि भुवनत्रये ।
तानि स्नातुं समायान्ति गङ्गायां सिंहगे गुरौ ॥८३
षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहनम् ।
सकृद्गोदावरीस्नानं सिंहयुक्ते बृहस्पतौ ॥८४

वेदों में कहे हुए श्रुतियों का सम्पूर्ण रहस्य हमने वर्णित कर दिया है । सत् कारण वाला यह सदा ही सन्निधान है और भली भाँति से देखा हुआ तथा जगत् के हित के लिये बहुत से धर्म से युक्त यह पुराण कहा गया है ॥७८॥ इस पुराण का एक ही श्लोक और पद जो भक्ति-भाव से सुनता है या पाठ करता है अथवा "गङ्गा-गङ्गा" इस वाक्य का श्रवण या पठन करता है वह परम पुण्य-फल की प्राप्ति किया करता है ॥७६॥ यह कलियुग में कलङ्क का विनाश कर देने में परम दक्ष हैं तथा सकल सिद्धियों के करने वाला शुभ का प्रदाता और मङ्गल स्वरूप है । यह जगत् में पूजा करने के योग्य है और मन का अभीप्सित फल का देने वाला है तथा यह अतीव उत्तम गाङ्ग नाम से कहा गया है ॥८०॥ हे गौतम ! अच्छा है—तेरा कल्याण हो । इस संसार में तेरे समान अन्य कौन है ? अर्थात् कोई भी तुम्हारे जैसा अन्य नहीं है जिसने इस गौतमी देवी श्री गङ्गा को दण्डकारण्य में प्राप्त किया है ॥८१॥ गङ्गा देवी से सौ योजन की दूरी पर रहते हुए भी जो कोई "गङ्गा-गङ्गा" इस तरह से अपने मुख से उच्चारण करता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और सीधा विष्णुलोक को चला जाया करता है ॥८२॥ इन भुवन त्रय में अर्थात् तीनों लोकों में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं उन सब तीर्थों के स्नान करने के पुण्य को प्राप्त करने के लिये मनुष्य सिंह राशि पर गुरु के आने के अवसर में इस गङ्गा पर आया करते हैं ॥८३॥ साठ वर्ष तक निरन्तर नियम पूर्वक जो अवगाहन (स्नान) करने का जो पुण्य है वही सिंहस्थ गुरु के होने पर केवल एक बार ही गोदावरी के स्नान से प्राप्त हो जाता है ॥८४॥

इयं तु गौतमी पुत्र यत्र क्वापि ममाऽऽज्ञया ।
सर्वेषां सवदा नृणां स्नानान्मुक्ति प्रदास्यति ॥८५

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदस्य श्रवणाद्भवेत् ॥८६

यस्यैतत्तिष्ठति गृहे पुराणं ब्रह्मणोदितम् ।
न भयं विद्यते तस्य कलिकालस्य नारद ॥८७

यस्य कस्यापि नाऽऽख्येयं पुराणमिदमुत्तमम् ।
श्रद्दधानाय शान्ताय वैष्णवाय महात्मने ॥८८

इदं कीर्त्यं भुक्तिमुक्तिदायकं पापनाशकम् ।
एतच्छ्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥८९

लिखित्वा पुस्तकमिदं ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनर्गर्भं न संविशेत् ॥९०

हे पुत्र ! मेरी आज्ञा से जहां कहीं पर भी यह गौतमी सर्वदा सभी मनुष्यों को स्नान से ही मुक्ति प्रदान किया करती है और अवश्य ही मुक्ति होगी ॥८५॥ एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और एक सौ वाजपेय यज्ञ-इनको करके जो फल प्राप्त होता है वही फल इसके श्रवण करते ही हो जाया करता है ॥८६॥ जिसके घर में ब्रह्मा के द्वारा कहा हुआ यह पुराण रहता है उसको सांसारिक व्यथा-वेदनाएँ नहीं होती है और यह संसार ही नहीं रहता है तथा हे नारद ! कलिकाल का भी डर नहीं होता है ॥८७॥ हे नारद ! जिस किसी ऐरेगैरे को यह पुराण नहीं बताना चाहिए क्यों कि यह अत्यन्त उत्तम है । जो श्रद्धालु हो-परम शान्त प्रकृति वाला हो विष्णु के अन्दर भक्ति रखने वाला हो तथा महान् आत्मा वाला हो उसको इसे कहना चाहिए । भुक्ति और मुक्ति के दाता-पापों को समूल उखाड़ फैंकने वाला यह पुराण है । इसके श्रवण मात्र से मनुष्य कृत कृत्य हो गया है ॥८८-८९॥ इस पुस्तक को लिखकर या लिखाकर जो कोई भी मनुष्य किसी सुयोग्य ब्राह्मण को दान करते हुए

प्रदान करता है वह सभी पापों से छूटकर फिर माता के गर्भ में प्रवेश नहीं किया करता है ॥६०॥

—※—

अनन्तवासुदेवमाहात्म्यवर्णन

न हि नस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां भगवत्कथाम् ।
पुनरेव परं गुह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥१
अनन्तवासुदेवस्य न सम्यग्वर्णितं त्वया ।
श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण वदस्व नः ॥२
प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठाः सारात्सारतरं परम् ।
अनन्तवासुदेवस्य माहात्म्यं भुवि दुर्लभम् ॥३
आदिकल्पे पुरा विप्रास्त्वहमव्यक्तजन्मवान् ।
विश्वकर्माणमाहूय वचनं प्रोक्तवानिदम् ॥४
वरिष्ठं देवशिल्पीन्द्रं विश्वकर्माग्रकर्मिणम् ।
प्रतिमां वासुदेवस्य कुरु शैलमयीं भुवि ॥५
यां प्रेक्ष्य विधिवद्भक्त्या सेन्द्रा वै मानुषादयः ।
येन दानवरक्षोभ्यो विज्ञाय सुमहद्भयम् ॥६
त्रिदिवं समनुप्राप्य सुमेरुशिखरं चिरम् ।
वासुदेवं समाराध्य निरातङ्का वसन्ति ते ॥७

मुनिमण्डल ने कहा—यहाँ पर भगवान् की कथा को सुनते हुए हमारी तृप्ति नहीं हो रही है अतएव प्रार्थना यह है कि पुनः आदि से लेकर सम्पूर्ण इस परम गोपनीय विषय को कहिए आप इस कथन के परम योग्य महानुभाव हैं ॥१॥ आपने भगवान् अनन्त वासुदेव के विषय में भली भाँति से वर्णन नहीं किया है। हे देव! हम लोग उसे विस्तार से श्रवण करना चाहते हैं। आप उसका वर्णन कीजिए ॥२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठो! सार का भी परम सार अनन्त

वासुदेव का जो भूमण्डल में अतीव दुर्लभ माहात्म्य है उसको मैं बतला-ऊँगा ॥३॥ हे विप्रो ! आदि कल्प में पहिले मैं अव्यक्त आत्म जन्म वाला था और विश्वकर्म्मा को बुलाकर मैंने यह वचन कहा था ॥४॥ वह विश्वकर्मा के कर्म में अग्र कर्मी था और देवों के शिल्पियों का सर्व श्रेष्ठ स्वामी था। मैंने उससे यही कहा था कि भूमण्डल में भगवान् वासुदेव की शैलमयी एक प्रतिमा की रचना करो ॥५॥ जिस मूर्त्ति का भक्त लोग इन्द्र के सहित मनुष्य आदि विधि पूर्वक दर्शन करके निडर होवेंगे और जिससे दानव तथा राक्षसों का महान् भय जानकर त्रिदिव सुमेरु शिखर को प्राप्त करके चिरकाल पर्यन्त वासुदेव भगवान् की समाराधना करके वे आतङ्क रहित होकर वास करें ॥६-७॥

मम तद्वचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा तु तत्क्षणात् ।
चकार प्रतिमां शुद्धां शङ्खचक्रगदाधराम् ॥८
सर्वलक्षणसंयुक्तां पुण्डरीकायतेक्षणाम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तामत्युग्रां प्रतिमोत्तमाम् ॥९
वनमालावृतोरस्कां मुकुटाङ्गदधारिणीम् ।
पीतवस्त्रां सुपीनांसां कुण्डलाभ्यामलंकृताम् ॥१०
एव सा प्रतिमा दिव्या गुह्यमन्त्रैस्तदा स्वयम् ।
प्रतिष्ठाकालमासाद्य मयाऽसौ निर्मिता पुरा ॥११
तस्मिन्काले तदा शक्रो देवराट्खेचरैः सह ।
जगाम ब्रह्मसदनमारुह्य गजमुत्तमम् ॥१२
प्रसाद्य प्रतिमां शक्रः स्नानदानैः पुनः पुनः ।
प्रतिमां तां समाराध्या(दाय)स्वपुरं पुनरागमत् ॥१३
तां समाराध्य सुचिरं यतवाक्कायमानसः ।
वृत्राद्यानसुरान्क्रूरान्नमुचिप्रमुखान्स च ॥१४

मेरे इस वचन को सुनकर उसी क्षण में तुरन्त विश्वकर्म्मा ने भगवान् वासुदेव की प्रतिमा का निर्माण कर दिया था जो परम विशुद्ध और शङ्ख-चक्र तथा गदा आदि आयुधों के धारण करने वाली थी ॥८॥ वह प्रतिमा सभी सुन्दर लक्षणों से समन्वित और पुण्डरीक के सदृश

आयत एव विशाल नेत्रो वाली थी। उसमे श्री वत्स का चिह्न भी विद्यमान था और वह अत्यन्त उग्र प्रतिमाओं मे अतीव उत्तम थी ॥९॥ वह प्रतिमा वनमाला को धारण करने से समावृत वक्षःस्थल वाली-मुकुट तथा अङ्गदो को धारण किये हुए-पीताम्बर धारिणी-परिपुष्ट स्कन्धो से सयुत और कानो मे कुण्डलो से समलङ्कृत थी ॥१०॥ इस प्रकार से वह प्रतिमा परमाधिव दिव्य थी। उसी समय मे मैंने स्वय उसकी गोपनीय मन्त्रो के द्वारा प्रतिष्ठा का समय प्राप्त करके यह प्रथम समय में निर्माण करायी थी ॥११॥ उस समय मे देवों का राजा इन्द्र सब देवो के सहित उत्तम ऐरावत हाथी पर समारूढ होकर ब्रह्म सदन मे गये थे ॥१२॥ उस इन्द्र देव ने बारम्बार स्नान दानादि से उस प्रतिमा को प्रसन्न किया था अर्थात् विभूषित बना दिया था। उस प्रतिमा की आराधना करके वह अपने ही पुर मे वापिस आ गये थे ॥१३॥ मतवाणी काया और मन वाले उन देवेन्द्र ने उस प्रतिमा की बहुत अधिक समय तक आराधना की थी और उसी आराधना के महान् उत्तम प्रभाव से उनने वृत्र आदि असुरो को तथा नमुचि जिनमे प्रमुख था ऐसे महान् क्रूर दैत्यों का हनन किया था ॥१४॥

निहत्य दानवान्भीमाभ्भुक्तवान्भुवनत्रयम् ।
द्वितीये च युगे प्राप्ते त्रेताया राक्षसाधिप. ॥१५
बभूव सुमहावीर्यो दशग्रीव प्रतापवान् ।
दश वर्षसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रियः ॥१६
चचार व्रतमत्युग्र तपः परमदुश्चरम् ।
तपसा तेन तुष्टोऽह वर तस्मै प्रदत्तवान् ॥१७
अवध्यः सर्वदेवाना स दैत्योरगरक्षसाम् ।
शापप्रहरणैरुग्रै रवध्यो यमकिंकरैः ॥१८
वरं प्राप्य तदा रक्षो यक्षान्सर्वगणानिमान् ।
धनाध्यक्ष विनिर्जित्य शक्र जेतुं समुद्यतः ॥१९
सग्राम सुमहाघोरं कृत्वा देवैः स राक्षसः ।
देवराज विनिर्जित्य तदा इन्द्रजिनेति वै ॥२०

राक्षसस्तत्सुतो नाम मेघनादः प्रलब्धवान् ।
अमरावतीं ततः प्राप्य देवराजगृहे शुभे ॥२१

उस इन्द्र ने बहुत भीषण दानवों का निहनन करके स्वयं ही तीनों भुवनों का भोग किया था। दूसरे युग त्रेता के प्राप्त होने पर एक राक्षसों का स्वामी हुआ था जो महान् वीर्यविक्रम वाला प्रतापी दशग्रीव हुआ उसने दश हजार वर्षों तक आहार का त्याग करके और जितेन्द्रिय रहकर अत्यन्त उग्र और बहुत ही दुश्चर तप किया था। उसकी उस तपश्चर्या से मैं प्रसन्न हो गया था तथा उसको मैंने वरदान प्रदान किया था ॥१५-१७॥ वह वरदान यही था कि वह दशग्रीव सब देवों के द्वारा वध न करने के योग्य होगा और उसे कोई भी उरग एवं राक्षस एवं यम के दूत भी अपने शाप और हथियारों से न मार सकेंगे ॥१८॥ ऐसा वरदान मुझसे ही प्राप्त करके उसने समस्त राक्षस-यक्ष-सवगण-धन के स्वामी कुबेर इन सबको जीत लिया था और अन्त में इन्द्र को भी जीतने के लिये वह तैयार हो गया था ॥१९॥ उस राक्षस ने देवों के साथ बड़ा भीषण संग्राम किया था तथा देवों के राजा को भी निर्जित कर दिया था। तभी से उस राक्षस का पुत्र मेघनाद ने इन्द्र-जित्—इस नाम को प्राप्त कर लिया था। वह फिर इन्द्र की जो अमरावती पुरी थी वहाँ पर भी देवराज के शुभ घर में प्रवेश कर गया था ॥२०-२१॥

ददर्शाञ्जनसंकाशां रावणस्तु बलान्वितः ।
प्रतिमां वासुदेवस्य सर्वलक्षणसंयुताम् ॥२२
श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तां पद्मपत्रायतेक्षणाम् ।
वनमालावृतोरस्कां मुकुटाङ्गदभूषिताम् ॥२३
शङ्खचक्रगदाहस्तां पीतवस्त्रां चतुर्भुजाम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तां सर्वकामफलप्रदाम् ॥२४
विहाय रत्नसङ्घांश्च प्रतिमां शुभलक्षणाम् ।
पुष्पकेण विमानेन लङ्कां प्रास्थापयद्द्रुतम् ॥२५

पुराध्यक्षः स्थित. श्रीमान्धर्मात्मा स विभीषणः ।
रावणस्यानुजो मन्त्री नारायणपरायण. ॥२६
दृष्ट्वा ता प्रतिमा दिव्या देवेन्द्रभवनच्युताम् ।
रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा विस्मयं समपद्यत ॥२७
प्रणम्य शिरसा देव प्रहृष्टनान्तरात्मना ।
अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफल तप· ॥२८

उसी समय मे उस महान् बलवान् रावण ने वहाँ पर भगवान् वासुदेव की अजन के सदृश श्याम वर्ण वाली उस प्रतिमा को देखा था जो सभी सुन्दर एव शुभ लक्षणो से युक्त थी । वह प्रतिमा श्री वत्स के चिह्न से सयुत कमल दल के समान विशाल लोचनो वाली वनमाला वक्ष स्थल पर धारण करने वाली मुकुट एव अङ्गदो से भूषित-हाथो मे शङ्ख-चक्र-गदा रखने वाली-पीताम्बर पहिने हुए चार भुजाओ से युक्त थी । वह प्रतिमा ऐसी थी कि सभी प्रकार के अलङ्कार धारण किये थी और सब कामनाओ के फलो को प्रदान करने वाली थी ॥२२-२४॥ उस दशग्रीव ने उसी समय मे अन्य सब रत्नो के सघो का त्याग करके वह उस शुभ लक्षणो वाली प्रतिमा को पुष्पक विमान के द्वारा शीघ्र ही लङ्का मे लाकर प्रतिष्ठित कर दिया था ॥२५॥ उस समय मे उस लङ्का पुरी का अध्यक्ष श्रीमान् धर्मात्मा विभीषण था जो रावण का छोटा भाई था और मन्त्री भी था एव यह विभीषण नारायण भगवान् की सेवा मे तत्पर रहने वाला था ॥२६॥ विभीषण ने उस परम दिव्य प्रतिमा का दर्शन किया था जो देवेन्द्र के भवन से लाई गयी थी । विभीषण के शरीर मे उस प्रतिमा को देखकर रोमाच हो गये थे और उसे बहुत ही विस्मय हो गया था ॥२७॥ उसने उस देव को शिर के बल प्रणाम किया था और उसकी आत्मा अत्यन्त प्रहर्षित हो गई थी । विभीषण ने मन मे सोचा था कि आज मेरा जीवन सफल हो गया है और आज मेरी तपश्चर्या भी पूर्ण फल वाली हो गई है ॥२८॥

इत्युक्त्वा स तु धर्मात्मा प्रणिपत्य मुहुर्मुहु. ।
ज्येष्ठं भ्रातरमासाद्य कृताञ्जलिरभाषत ॥२९

राजन्प्रतिमया त्वं मे प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
यामाराध्य जगन्नाथ निस्तरेयं भवार्णवम् ॥३०
भ्रातुर्वचनमाकर्ण्य रावणस्तं तदाऽब्रवीत् ।
गृहाण प्रतिमां वीर त्वनया किं करोम्यहम् ॥३१
स्वयंभुवं समाराध्य त्रैलोक्यं विजये त्वहम् ।
नानाश्चर्यमयं देवं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥३२
विभीषणो महाबुद्धिस्तदा तां (रासाद्य) प्रतिमां शुभाम् ।
शतमष्टोत्तरं चाब्दं समाराध्य जनार्दनम् ॥३३
अजरामरत्वं प्राप्तमणिमादिगुणैर्युतम् ।
राज्यं लङ्काधिपत्यं च भोगान्भुङ्क्ते यथेप्सितान् ॥३४

उस धर्मात्मा ने यह अपने मन में सोचकर वारम्वार उस प्रतिमा को प्रणाम किया था और फिर अपने बड़े भाई रावण के समीप में पहुंच कर हाथ जोड़कर अपने ज्येष्ठ भाई से कहा था ॥२६॥ हे राजन् ! आप इस प्रतिमा को मुझे प्रदान कर देवें क्योंकि मेरे ऊपर कृपा करने के योग्य हैं जिस प्रतिमा की मैं आराधना करके ही जगत् के स्वामिन् ! मैं इस संसार रूपी सागर से पार हो जाऊँगा ॥३०॥ अपने छोटे भाई विभीषण के इस वचन का श्रवण करके उसी समय में रावण ने उससे कहा था—हे वीर ! इस प्रतिमा को तुम ले लो—मैं इसको रखकर क्या करूंगा ॥३१॥ मैंने तो सब प्राणियों को जन्म प्रदान करने वाले नाना आश्चर्यों से परिपूर्ण स्वयम्भू देव की आराधना करके त्रैलोक्य पर विजय प्राप्त की है । विभीषण महान् बुद्धिमान् था । उसने उस समय में उस परम शुभ प्रतिमा को प्राप्त करके एक सौ आठ वर्ष पर्यन्त भगवान् जनार्दन की समाराधना की थी ॥३२-३३॥ उसी आराधना के प्रभाव से उसने जरा तथा मरण की अप्राप्ति की थी और अणिमा आदि सिद्धियों के गुणों से युक्त लङ्का के राज्य का आधिपत्य प्राप्तकर यथेच्छ भोगों के सुख को भोगा था ॥३४॥

अहो नो विस्मयो जातः श्रुत्वेदं परमामृतम् ।
अनन्तवासुदेवस्य संभवं भुवि दुर्लभम् ॥३५

श्रोतुमिच्छाम हे देव विस्तरेण यथातथम् ।
तस्य देवस्य माहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥३६
तदा स राक्षसः क्रूरो देवगन्धर्वकिन्नरान् ।
लोकपालान्समनुजान्मुनिसिद्धांश्च पापकृत् ॥३७
विजित्य समरे सर्वानाजहार तदङ्गनाः ।
संस्थाप्य नगरीं लङ्कां पुनः सीतार्थं(ता च) मोहितः ॥३८
शङ्कितो मृगरूपेण सौवर्णेन च रावणः ।
ततः क्रुद्धेन रामेण रणे सौमित्रिणा सह ॥३९
रावणस्य वधार्थाय हत्वा वालिं मनोजवम् ।
अभिषिक्तश्च सुग्रीवो युवराजोऽङ्गदस्तथा ॥४०
हनुमान्नलनीलश्च जाम्बवान्पनसस्तथा ।
गवयश्च गवाक्षश्च पाठीनः परमौजसः ॥४१
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्वानरैः समहाबलैः ।
समावृतो महाघोरैः रामो राजीवलोचनः ॥४२

मुनियों ने कहा था—अहो ! इस अनन्त वासुदेव की परमामृतमय एवं भूलोक अतीव दुर्लभ उत्पत्ति का श्रवण करके हम को बहुत ही अधिक विस्मय हुआ है ॥३५॥ हे देव ! उस देव का माहात्म्य ठीक २ रीति से विस्तार पूर्वक हम सुनना चाहते हैं और आप पूर्णतया उसे कहने के योग्य हैं ॥३६॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस समय में वह महान् क्रूर राक्षस रावण सब देव-गन्धर्व किन्नर-लोकपाल मनुज मुनि और सिद्धों को पापी ने युद्ध में जीतकर उनकी अङ्गनाओं का अपहरण कर ले आया था और उनको लङ्का में रखकर फिर सीता के हरण करने के लिये मोहित हो गया था ॥३७-३८॥ वह रावण सुवर्ण के मृग रूप से शङ्कित हो गया था। इसके उपरान्त लक्ष्मण के सहित क्रोधित हुए श्री राम ने रण स्थल में रावण के वध करने के लिये मन के समान वेग वाले बालि को मारकर सुग्रीव का अभिषेक किया था तथा अंगद को युवराज बना दिया था ॥३९-४०॥ हनुमान्-नल-नील-जाम्बवान्-पनस-

गवम-गवाक्ष और पाठीन ये सभी परम ओज वाले थे। इन सबके तथा अन्य महान् बलवान् बहुत से महान् घोर वानरों से समावृत होकर राजीव के समान नेत्रों वाले श्री राम ने समस्त राक्षसों का ध्वंस किया था ॥४१-४२॥

गिरीणां सर्वसंघातैः सेतुं बद्ध्वा महोदधौ।
बलेन महता रामः समुत्तीर्य महोदधिम् ॥४३
संग्राममतुलं चक्रे रक्षोगणसमन्वितः।
यमहस्तं प्रहस्तं च निकुम्भं कुम्भमेव च ॥४४
नरान्तकं महावीर्यं तथा चैव यमान्तकम्।
मालाढ्यं मालिकाढ्यं च हत्वा रामस्तु वीर्यवान् ॥४५
पुनरिन्द्रजितं हत्वा कुम्भकर्णं सरावणम्।
वदेहीं चाग्निनाऽऽशोध्य दत्वा राज्यं विभीषणे ॥४६
वासुदेवं समादाय यानं पुष्पकमारुहत्।
लीलया समनुप्रापदयोध्यां पूर्वपालिताम् ॥४७
कनिष्ठं भरत स्नेहाच्छत्रुघ्नं भक्तवत्सलः।
अभिषिच्य तदा रामः सर्वराज्येऽधिराजवत् ॥४८
पूरातनी स्वमूर्ति च समाराध्य ततो हरिः।
दश वर्षसहस्राणि दश वषशतानि च ॥४९

श्री राम ने पर्वतों की चट्टानों के समुदाय से महासागर में सेतु बँधवाया था और फिर बड़ी भारी रीछ वानरों की सेना लेकर महा समुद्र को पार किया था। श्री राम ने राक्षसों के समूह के साथ अनुपम महान् घोर संग्राम किया था। महान बल वीर्य वाले श्री राम ने यम हस्त, प्रहस्त, निकुम्भ, कुम्भ, महावीर्य, नरान्तक, यमान्तक, मालाढ्य, मालिकाढ्य इन सबको मारकर फिर इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण और रावण का हनन किया था। इसके उपरान्त वैदेही सीताजी को अग्नि में शुद्ध करके विभीषण को राज्य दिया था ॥४३-४६॥ इसके अनन्तर वासुदेव की प्रतिमा को ग्रहण कर श्री राम पुष्पक विमान पर समारूढ़ हुए थे। फिर लीला के साथ ही अपनी पूर्व में पालिता अयोध्या पुरी में प्राप्त

हो गये थे ॥४७॥ अपने सम्पूर्ण राज्य में अधिराज की भाँति श्री राम ने कनिष्ठ भाई भरत को स्नेह से शत्रुघ्न को भक्तों पर प्यार करने वाले ने उस समय में अभिषिक्त करके फिर श्री हरि ने अपनी पुरातनी मूर्ति की आराधना करके ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य पर शासन किया था ॥४८-४९॥

भुक्त्वा सागरपर्यन्तां मेदिनीं स तु राघवः ।
राज्यमासाद्य सुगतिं वैष्णवं पदमाविशत् ॥५०
तां चापि प्रतिमां रामः समुद्रेशाय दत्तवान् ।
धन्यो रक्षयितासि त्वं तोयरत्नसमन्वितः ॥५१
द्वापरं युगमासाद्य यदा देवो जगत्पतिः ।
धरण्याश्चानुरोधेन भावमैथिल्यकारणात् ॥५२
अवतीर्णः स भगवान्वसुदेवकुले प्रभुः ।
कंसादीनां वधार्थाय संकर्षणसहायवान् ॥५३
तदा तां प्रतिमां विप्राः सर्वकाङ्क्षाफलप्रदाम् ।
सर्वलोकहितार्थाय कस्यचित्कारणान्तरे ॥५४
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये दुर्लभे पुरुषोत्तमे ।
उज्जहार स्वयं तोयात्समुद्रः सरितां पतिः ॥५५
तदा प्रभृति तत्रैव क्षेत्रे मुक्तिप्रदे द्विजाः ।
आस्ते स देवो देवानां सर्वकामफलप्रदः ॥५६

फिर उन श्री राघवेन्द्र प्रभु ने सागर पर्यन्त भूमि का उपभोग करके और राज्य प्राप्त करके अन्त में सुन्दर शुभ गति वाले वैष्णव पद में प्रवेश कर गये थे ॥५०॥ श्री राम ने उस वासुदेव की प्रतिमा को भी समुद्र के स्वामी को दे दिया था और कहा था कि जल और रत्नों से समन्वित तुम रक्षा करने वाले परम धन्य हो। द्वापर युग प्राप्त करके जिस समय में जगत् के स्वामी देव धरणी के अनुरोध करने पर भाव की शिथिलता के कारण से वह प्रभु भगवान् वासुदेव के कुल में अवतीर्ण होंगे। सङ्कर्षण की सहायता से युक्त कंस आदि के वध करने के लिये भगवान् ने अवतार ग्रहण किया ॥५१-५३॥। उस समय में विप्रो ने

सब इच्छाओं के फल को प्रदान करने वाली उस प्रतिमा को सब लोगों के हित के लिये किसी के अन्य कारण में उस दुर्लभ पुण्यमय पुरुषोत्तम श्रेष्ठ क्षेत्र में उस प्रतिमा का उद्धार किया था और सरिताओं के स्वामी समुद्र ने जल से स्वयं ऊपर उठा दिया था ॥५४-५५॥ तभी से लेकर मुक्ति प्रदायक उसी क्षेत्र में हे द्विजो ! समस्त देवों की सब कामनाओं के फल को देने वाले वह देव विराजमान हैं ॥५६॥

ये संश्रयन्ति चानन्तं भक्त्या सर्वेश्वरं प्रभुम् ।
वाङ्मनःकर्मभिर्नित्यं ते यान्ति परमं पदम् ॥५७
दृष्ट्वाऽनन्तं सकृद्भक्त्या संपूज्य प्रणिपत्य च ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं दशगुणं लभेत् ॥५८
सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा ।
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥५९
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य दिव्यस्त्रीगणसेवितः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैर्नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥६०
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगाञ्जरामरणवर्जितः ।
दिव्यरूपधरः श्रीमान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥६१
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातश्चतुर्वेदी द्विजोत्तमः ।
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥६२
एवं मया त्वनन्तोऽसौ कीर्तितो मुनिसत्तमाः !
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तस्य वर्षशतैरपि ॥६३

जो लोग भक्ति की दृढ़ भावना से सर्वेश्वर अनन्त प्रभु संश्रय ग्रहण करते हैं और वचन-मन और कर्मों के द्वारा नित्य हर आश्रम प्राप्त किया करते हैं वे लोग परम पद को प्राप्त होते हैं ॥५७॥ अनन्त भगवान् का दर्शन करके और एक बार भक्ति से भली-भाँति अर्चन करके तथा प्रणिपात करके मनुष्य राजसूय यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ से दशगुना फल प्राप्त कर लेता है ॥५८॥ सब कामनाओं से समृद्ध अर्थात् समन्वि- इच्छागामी-सुवर्चस बालसूर्य के तुल्य वर्ण वाले और किङ्किणियों के जालों की माला वाले विमान के द्वारा अपने तीन कुलों का उद्धार करके

दिव्य स्त्रियों के गण से सुसेवित-गन्धर्वों के द्वारा उपगीयमान होता हुआ सीधा भगवान विष्णु के पुर में गमन करता है ॥५९-६०॥ वहाँ पर वह मनुष्य श्रेष्ठ भोगों के सुख का उपभोग करके जरा-मरण से रहित होते हुए-दिव्य स्वरूप को धारण करके श्री सम्पन्न होते हुये जब तक सम्पूर्ण भूतों का सम्प्लव होता है तब तक अर्थात् महाप्रलय के काल पर्यन्त यही पर निवास किया करता है ॥६१॥ जब पुण्यों का क्षय हो जाता है तो यहा पर मृत्युलोक में चारो वेदो का ज्ञाता श्रेष्ठ द्विज होता है और वैष्णव योग में समास्थित होकर फिर वह मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ॥६२॥ इस प्रकार से हे मुनिश्रेष्ठो ! इन अनन्त भगवान के विषय मे मैंने वर्णन कर दिया है। उनमे तो इतने गुण हैं कि उनका कोई भी सौ वर्ष तक वर्णन नही कर सकता है ॥६३॥

—※—

पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यवर्णन

एव वोऽनन्तमाहात्म्य क्षेत्र च पुरुषोत्तमम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रद नृणा मया प्रोक्त सुदुर्लभम् ॥१
यत्राऽऽस्ते पुण्डरीकाक्षः शङ्खचक्रगदाधरः ।
पीताम्बरधर. कृष्ण. कसकेशिनिषूदन. ॥२
ये तत्र कृष्ण पश्यन्ति सुरासुरनमस्कृतम् ।
सकर्षण सुभद्रा च धन्यास्ते नात्र सशयः ॥३
त्रैलोक्याधिपति देव सर्वकामफलप्रदम् ।
ये ध्यायन्ति सदा कृष्ण मुक्तास्ते नात्र सशयः ॥४
कृष्णे रता. कृष्णमनुस्मरन्ति,
रात्रौ च कृष्ण पुनरुत्थिता ये ।
ते भिन्नदेहा. प्रविशन्ति कृष्ण,
हविर्यथा मन्त्रहुत हुताशनम् ॥५

तस्मात्सदा मुनिश्रेष्ठाः कृष्णः कमललोचनः ।
तस्मिन्क्षेत्रे प्रयत्नेन द्रष्टव्यो मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥६

शयनोत्थापने कृष्णं ये पश्यन्ति मनीषिणः ।
हलायुधं सुभद्रां च हरेः स्थानं व्रजन्ति ते ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार से भगवान् अनन्त का माहात्म्य और पुरुषोत्तम क्षेत्र जो कि मनुष्यों के लिये भोग और मोक्ष दोनों का देने वाला है तथा परम दुर्लभ है वह मैंने आपको कहकर समझा दिया है ॥१॥ जहां पर पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले-शङ्ख, चक्र और गदा के धारी-पीत वस्त्र पहिनने वाले कंस और केशी के मारने वाले भगवान् श्री कृष्ण विराजमान रहा करते हैं ॥२॥ जो लोग वहां पर सुर और असुरों के द्वारा वन्दनीय श्री कृष्ण का दर्शन किया करते हैं तथा सङ्कर्षण प्रभु और सुभद्रा देवी को देखते हैं वे पुरुष अतीव धन्य अर्थात् भाग्यशाली हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३॥ त्रिलोकी के अधिपति और सब कामनाओं के फलों का प्रदान करने वाले देव श्रीकृष्ण का जो लोग सदा ध्यान किया करते हैं वे मुक्त ही हैं—इसमें कोई भी संशय नहीं है। श्री कृष्ण में रति रखने वाले जो लोग कृष्ण भगवान् का अनुस्मरण किया करते हैं और रात्रि में पुनः उपस्थित होकर जो स्मरण करते हैं वे भिन्न देहों वाले श्री कृष्ण में प्रवेश किया करते हैं जिस प्रकार से मन्त्रों के द्वारा हुत किये हुए हवि का प्रवेश हुताशन (अग्नि) में हो जाता है ॥४-५॥ हे मुनियों में श्रेष्ठो ! इसलिये सदा ही उस क्षेत्र में कमल के समान लोचनों वाले श्री कृष्ण मोक्ष की आकाङ्क्षा रखने वालों के द्वारा प्रयत्न पूर्वक अवश्य ही देखना चाहिए ॥६॥ जो मनीषीगण शयन और उत्थापन के समय में श्री कृष्ण का दर्शन किया करते हैं तथा हलधर एवं सुभद्रा को देखते हैं वे निश्चित रूप से श्री हरि के ही स्थान में गमन किया करते हैं ॥७॥

सर्वकालेऽपि ये भक्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् ।
रौहिणेयं सुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ॥८

आस्ते यश्चतुरो मासान्वार्षिकान्पुरुषोत्तमे ।
पृथिव्यास्तीर्थयात्राया. फल प्राप्नोति चाधिकम् ॥६
ये सर्वकाल तत्रैव निवसन्ति मनीषिण: ।
जितेन्द्रिया जितक्रोधा लभन्ते तपस: फलम् ॥१०
तपस्तप्त्वाऽन्यतीर्थेषु वर्षाणामयुत नर. ।
यदाप्नोति तदाप्नोति मासेन पुरुषोत्तमे ॥११
तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन यत्फलम् ।
तत्फल सनत तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिण. ॥१२
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्य स्नानदानेन कीर्तितम् ।
तत्फल सतत तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिण: ॥१३
सम्यक्तीर्थन यत्प्रोक्त व्रतेन नियमेन च ।
तत्फल लभते तत्र प्रत्यह प्रयत शुचि. ॥१४

सभी काल मे भी जो भक्ति की भावना से भगवान् पुरुषोत्तम-रौहिणेय (बलदेवजी और सुभद्रा का दर्शन किया करते हैं वे विष्णु लोक को गमन किया करते हैं ॥८॥ जो पुरुष वार्षिक चार मास तक उस पुरुषोत्तम क्षेत्र मे रहता है वह इस पृथिवी की तीर्थयात्रा के फल से भी अधिक फल प्राप्त कर लिया करता है ॥६॥ जो मनीषीगण सब काल मे वही पर निवास किया करते हैं और इन्द्रियो को जीतने वाले तथा क्रोध पर विजय पाने वाले परम तपश्चर्या का पुण्य-फल प्राप्त कर लेते हैं ॥१०॥ मनुष्य अन्य तीर्थों मे दश हजार वर्ष तक तपस्या करके जो भी फल प्राप्त किया करता है वही पुण्य का फल पुरुषोत्तम क्षेत्र मे एक ही मास मे पा लेता है ॥११॥ तपस्या से ब्रह्मचर्य से और सङ्ग के त्याग से जो फल होता है वही फल निरन्तर वहा पर मनीषीगण प्राप्त कर लिया करते हैं ।१२॥ समस्त तीर्थों मे स्नान करने से और दान देने से जो पुण्य फल हुआ करता है वही फल निरन्तर मनीषी लोग वहा पर प्राप्त कर लेते हैं ॥१३॥ भली भाँति तीर्थाटन करने से तथा व्रत और नियम के परिपालन से जो फल मिला करता है वही फल वहा पर प्रतिदिन प्रयत एव शुचि होकर रहने से ही प्राप्त हो जाया करता है ॥१४॥

यस्तु नानाविधैर्यत्फलं लभते नरः ।
तत्फलं लभते तत्र प्रत्यहं संयतेन्द्रियः ॥१५
देहं त्यजन्ति पुरुषास्तत्र ये पुरुषोत्तमे ।
कल्पवृक्षं समासाद्य मुक्तास्ते नात्र संशयः ॥१६
वटसागरयोर्मध्ये ये त्यजन्ति कलेवरम् ।
ते दुर्लभं परं मोक्ष प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥१७
अनिच्छन्नपि यस्तत्र प्राणांस्त्यजति मानवः ।
सोऽपि दुःखविनिर्मुक्तो मुक्ति प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥१८
कृमिकीटपतङ्गाद्यास्तिर्यग्योनिगताश्च ये ।
तत्र देहं परित्यज्य ते यान्ति परमां गतिम् ॥१९
भ्रान्ति लोकस्य पश्यध्वमन्यतीर्थं प्रति द्विजाः ।
पुरुषाख्येन यत्प्राप्तमन्यतीर्थफलादिकम् ॥२०
सकृत्पश्यति यो मर्त्यः श्रद्धया पुरुषोत्तमम् ।
पुरुषाणां सहस्रेषु स भवेदुत्तमः पुमान् ॥२१

जो मनुष्य अनेक प्रकार से यज्ञों का यजन करके पुण्य फल प्राप्त किया करता है वही फल वहां पर प्रति दिन संयत इन्द्रियों वाला प्राप्त कर लेता है ॥१५॥ जो पुरुष उस पुरुषोत्तम क्षेत्र में अपने देह का त्याग किया करते हैं उन्होंने समझ लो कि कल्प वृक्ष (मन की इच्छापूर्ण करने वाला देव वृक्ष) को प्राप्त कर लिया है और मुक्ति प्राप्त करने वाले निश्चय ही हो जाया करते हैं—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥१६॥ वट और सागर के मध्य में जो अपने देह का त्याग किया करते हैं वे परमाधिक दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी सन्देह का अवसर नहीं है । जो वहां पर मनुष्य विना इच्छा के भी अपने प्राणों का त्याग किया करता है वह भी समस्त दुःखों से निर्मुक्त होकर परम दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥१७-१८॥ कृमि-कीट-पतङ्ग आदि जो तिर्यक तोनियों में जो जन्म ग्रहण करने वाले हैं वे भी यहां पर देह का परित्याग करके परम गति को प्राप्त हो जाया करते हैं यद्यपि उसके महत्त्व का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है ॥१९॥ हे द्विजो ! अन्य तीर्थ के

प्रति लोक की भ्रान्ति को देखो ! अन्य तीर्थ के फलादि को पुरुष नाम वाले के द्वारा प्राप्त कर लिया गया है ॥२०॥ जो कोई मनुष्य एक बार भी श्रद्धा से पुरुषोत्तम भगवान् का दर्शन करता वह सहस्रों पुरुषों में अत्युत्तम पुमान् होता है ॥२१॥

प्रकृतेः स परो यस्मात्पुरुषादपि चोत्तमः ।
तस्माद्वेदे पुराणे च लोकेऽस्मिन्पुरुषोत्तमः ॥२२
योऽसौ पुराणे वेदान्ते परमात्मेत्युदाहृतः ।
आस्ते विश्वोपकाराय तेनासौ पुरुषोत्तमः ॥२३
पथि श्मशाने गृहमण्डपे वा,
रथ्याप्रदेशेष्वपि यत्र कुत्र ।
इच्छन्ननिच्छन्नपि तत्र देहं,
संत्यज्य मोक्षं लभते मनुष्यः ॥२४
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः ।
देहत्यागो नरैः कार्यः सम्यङ्मोक्षाभिकाङ्क्षिभिः ॥२५
पुरुषाख्यस्य माहात्म्यं न भूतं न भविष्यति ।
त्यक्त्वा यत्र नरो देहं मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥२६
गुणानामेकदेशोऽस्य मया क्षेत्रस्य कीर्तितः ।
कः समस्तान्गुणान्वक्तुं शक्तो वर्षशतैरपि ॥२७
यदि यूयं मुनिश्रेष्ठा मोक्षमिच्छथ शाश्वतम् ।
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निवसध्वमतन्द्रिताः ॥२८
ते तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
निवासं चक्रिरे तत्र अवापुः परमं पदम् ॥२९
तस्माद्यूयं प्रयत्नेन निवसध्वं द्विजोत्तमाः ।
पुरुषाख्ये वरे क्षेत्रे यदि मुक्तिमभीप्सथ ॥३०

क्यों कि वह प्रकृति से भी पर है और पुरुष से भी उत्तम है। इसी कारण से लोक में-वेद में और पुराण में वह पुरुषोत्तम कहे जाते हैं ॥२२॥ जो यह पुराण में-वेदान्त में परमात्मा-इस नाम से कहा गया है वह सम्पूर्ण विश्व के उपकार के लिये ही है इसी कारण से वह पुरुषोत्तम

है ॥२३॥ मार्ग में, श्मशान में, ग्रह मण्डप में अथवा प्रदेशों में जहां कहीं पर भी इच्छा करते हुए और इच्छा न करते हुए भी वहां पर देह का त्याग करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥२४॥ हे द्विजोत्तम ! अतएव सम्पूर्ण प्रयत्न से उस क्षेत्र में मनुष्यों को देह का त्याग करना चाहिए जो कि भली भाँति मोक्ष की प्राप्ति की आकांक्षा रखते हैं ॥२५॥ पुरुषाख्य का माहात्म्य ऐसा है जो न तो अब तक किसी का हुआ न भविष्य में भी होगा जहाँ पर मनुष्य देह का त्याग करके ही दुर्लभ मुक्ति को पा जाता है ॥२६॥ क्षेत्र के गुणों का यह एक देश ही मैंने वर्णित किया है। ऐसा कौन है जो उसके समस्त गुणों को बतलाने में सैकड़ों वर्षों में भी समर्थ हो सके। अर्थात् कोई है ही नहीं ॥२७॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! यदि आप लोग शाश्वत मोक्ष की अभिलाषा रखते हैं तो उस परम क्षेत्र में जो कि परम पुण्यमय है अतन्द्रित होकर निवास कीजिए ॥२८॥ श्री व्यास देवजी ने कहा—अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माजी के वचन को उन्होंने सुना था और फिर उन्होंने वहां पर निवास किया था तथा परम पद को भी प्राप्त किया था ॥२९॥ हे द्विजोत्तमो ! इसी कारण से प्रबल प्रयत्न करके पुरुष नाम वाले परम श्रेष्ठ क्षेत्र में यदि मुक्ति की अभिलाषा रखते हो तो निवास करो। अर्थात् मुक्ति के इच्छुक को वहां निवास अवश्य ही करना चाहिए ॥३०॥

कण्डुचरित्रवर्णन

तस्मिन्क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः सर्वसत्वसुखावहे ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदे पुरुषोत्तमे ॥१
कण्डुर्नाम महातेजा ऋषिः परमधार्मिकः ।
सत्यवादी शुचिर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः ॥२
जितेन्द्रियो जितक्रोधो वेदवेदाङ्गपारगः ।
अवाप परमां सिद्धिमाराध्य पुरुषोत्तमम् ॥३

अन्येऽपि तत्र संसिद्धा मुनयः संशितव्रताः ।
सर्वभूतहिता दान्ता जितक्रोधा विमत्सराः ॥४
कोऽसौ कण्डुः कथं तत्र जगाम परमां गतिम् ।
श्रोतुमिच्छामहे तस्य चरितं ब्रूहि सत्तम ॥५
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः कथां तस्य मनोहराम् ।
प्रवक्ष्यामि समासेन मुनेस्तस्य विचेष्टितम् ॥६
पवित्रे गौतमीतीरे विजने सुमनोहरे ।
कन्दमूलफलैः पूर्णे समित्पुष्पकुशान्विते ॥७

श्री व्यास देव जी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! यह पुरुषोत्तम क्षेत्र सभी जीवों को सुख देने वाला है और धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष का फल देने वाला है ॥१॥ उसी क्षेत्र में एक कण्डु नामक महान् तेजस्वी एवं परम धार्मिक ऋषि थे जो सत्यवादी-शुचि दमनशील और सभी भूतों के हित में रति रखने वाले थे ॥२॥ यह ऋषि इन्द्रियों को जीत लेने वाले तथा क्रोध पर विजय पाने वाले एवं वेदों तथा वेदांग शास्त्रों के पारगामी विद्वान् थे। उन्होंने पुरुषोत्तम प्रभु की आराधना करके परम सिद्धि को प्राप्त किया था ॥३॥ उसके अतिरिक्त अन्य भी मुनिगण संशित व्रत वाले होकर वहाँ पर संसिद्ध हुए हैं जो सब प्राणियों के हित में रत थे, दान्त थे, जितक्रोध थे और मत्सरता रहित थे ॥४॥ मुनियों ने कहा—यह कण्डु कौन हुआ था और वहाँ पर कैसे यह परम गति को प्राप्त हो गया था ? हे श्रेष्ठतम ! उसके चरित्र का वर्णन कीजिएगा। हमारी बहुत कुछ श्रवण करने की इच्छा है ॥५॥ श्री व्यासजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! उसकी कथा बहुत ही मनोहर है उसको आप सुनिए। उस मुनि का हाल (विशेष चेष्टा) मैं बहुत संक्षेप से ही कहूँगा ॥६॥ गौतमी के तट परम पवित्र-विजन अर्थात् जनों से रहित कन्द मूल और फलों से परिपूर्ण था जो फल और कन्द समिधा-पुष्प और कुशा से युक्त थे ॥७॥

नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ।
नानापक्षिरुते रम्ये नानामृगगणान्विते ॥८

तत्राऽऽश्रमपदं कण्डोर्बभूव मुनिसत्तमाः ।
सर्वर्तु फलपुष्पाढ्य कदलीखण्डमण्डितम् ॥९
तपस्तेपे मुनिस्तत्र सुमहत्परमाद्‌भुतम् ।
व्रतोपवासैर्नियमैः स्नानमौनसुसंयमैः ॥१०
ग्रीष्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षासु स्थण्डिलेशयः ।
आर्द्रवासास्ते हेमन्ते स तेपे सुमहत्तपः ॥११
दृष्ट्वा तु तपसा वीर्यं मुनेस्तस्य सुविस्मिताः ।
बभूवुर्देवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा ॥१२
भूमिं तथाऽन्तरिक्षं च दिवं च मुनिसत्तमाः ।
कण्डुः संतापयामास त्रैलोक्यंतपसो बलात् ॥१३
अहोऽस्य परमं धैर्यमहोऽस्य परमं तपः ।
इत्यब्रुवंस्तदा दृष्ट्वा देवास्तं तपसि स्थितम् ॥१४

वह तीर अनेक वृक्ष और लताओं से समाकीर्ण था । वहां अनेक पुरुपों से विशेष शोभा हो रही थी । बहुत भाँति के पक्षियों का कलरव वहां हो रहा था और अनेक मृगों के समुदाय से समन्वित एवं रम्य था ॥८॥ उस तट पर हे मुनिश्रेष्ठो ! कण्डु का आश्रम स्थल था वह सब ऋतुओं के फलों और पुष्पों से युक्त था और चारों ओर उसके कदलियों के खण्ड शोभा दे रहे थे ॥९॥ वहीं पर इस मुनि ने बड़ी भारी और अत्यन्त अद्भुत तपस्या की थी जो व्रत-स्नान-मौन-सुसंयम-उपवास और नियमों के परिपालन वाली थी ॥१०॥ उसकी तपश्चर्या का वर्णन इस तरह से है कि ग्रीष्म ऋतु में तो वह पंचाग्नियों बैठकर तपा करते थे और वर्पा में स्थण्डिल में शयन किया करते थे । हेमन्त ऋतु के घोर जाड़े में गीले वस्त्र पहिनते थे । इस तरह से उन्होंने महान् तप किया था ॥११॥ उस मुनि के तपश्चर्या के इस वीर्य को देखकर देव-गन्धर्व-सिद्ध और विद्याधर सब बहुत ही विस्मित हो गये थे ॥१२॥ हे मुनि सत्तमो ! उस कण्डु मुनि ने भूमि-अन्तरिक्ष-दिवलोक-और त्रैलोक्य को अपनी तपस्या के बल से सन्तापित कर दिया था ॥१३॥ देवगण ने उस मुनि को तप में स्थित देखकर उस समय में यही कहा था—अहो ! इसके

परम धैर्य पर बड़ा आश्चर्य है और इसका परमाद्भुत एवं अत्यधिक तप कैसा है ॥१४॥

मन्त्रयामासुरव्यग्रा शक्रेण सहितास्तदा ।
भयात्तस्य समुद्विग्नास्तपोविघ्नमभीप्सवः ॥१५
ज्ञात्वा तेषामभिप्राय शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ।
प्रम्लोचाख्या वरारोहा रूपयौवनगर्विताम् ॥१६
सुमध्या चारुजङ्घा सा पीनश्रोणिपयोधराम् ।
सर्वलक्षणसपन्न प्रोवाच फलसूदन ॥१७॥
प्रम्लोचे गच्छ शीघ्र त्व यदाऽसौ तप्यते मुनिः ।
विघ्नार्थं तस्य तपस क्षोभयस्वा (स्वाऽऽ) शु सुप्रभे ॥१८
तव वाक्य सुरश्रेष्ठ करोमि सतत प्रभो ।
किन्तु शङ्का ममैवात्र जीवितस्य च सशयः ॥१९
बिभेमि तमुनिवर ब्रह्मचर्यव्रते स्थितम् ।
अत्युग्र दीप्ततपस ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥२०
ज्ञात्वा मा स मुनि क्रोधाद्विघ्नार्थं समुपागताम् ।
कण्डुः परमतेजस्वी शाप दास्यति दु सहम् ॥२१

उस समय मे उस मुनि की तपश्चर्या के भय से एक दम उद्वेग वाले देवगण इन्द्र के साथ मन्त्रणा करने मे सलग्न हो गये थे तथा उसके तप मे विघ्न डालने के लिये सभी देवगण इच्छुक बने हुए थे ॥१५॥ त्रिभुवन के स्वामी इन्द्रदेव न उनके अभिप्राय को समझ कर फल के विनाश करने वाले इन्द्रदेव ने प्रम्लोचा नाम वाली अप्सरा स कहा था जो श्रेष्ठ आरोह वाली थी अर्थात् जिसका देह परम सुघटित तथा रूप लावण्य तथा यौवन के गर्व से युक्त थी—सुन्दर मध्य भाग वाली-सुचारु जघनो से सयुत-पुष्ट श्रेणी और स्तनो वाली एव सभी सौन्दय के सुन्दर लक्षणो से समन्वित थी ॥१६-१७॥ इन्द्रदेव ने कहा—हे प्रम्लोचे ! जहा पर यह मुनि तप कर रहे हैं वहा पर अति शीघ्र जाओ । हे सुन्दर प्रभाव वाली ! उस मुनि के तप मे विघ्न डालने के लिये शीघ्र ही उसके मन मे क्षोभ उत्पन्न कर दो ॥१८॥ प्रम्लोचा अप्सरा न कहा—हे सुर श्रेष्ठ ! आप तो मेरे

प्रभु हैं। मैं आपके वचनादेश का सर्वदा पालन किया करती हूँ किन्तु मुझे स्वयं ही अपने जीवन की ही आशङ्का है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है कि मैं जीवित बनी रहूँ ॥१६॥ उस ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित मुनि से मुझे भय लग रहा है वह अत्यन्त उग्र-दीप्त तप वाले और अग्नि तथा सूर्य के समान प्रभा वाले हैं। वह मुनि जब मुझको पहचान लेंगे कि यह मेरे तप में विघ्न डालने को ही समागत हुई है तो परम तेजस्वी वह मुनि क्रोध से मुझे शाप अवश्य ही दे देंगे जो कि बहुत ही दुस्सह होगा ॥२०-२१॥

उर्वशीमेनका रम्भा घृताची पुञ्जिकस्थला ।
विश्वाची सहजन्या च पूर्वचित्तस्तिलोत्तमा ॥२२
अलम्बुषा मिश्रकेशी शशिलेखा च वामना ।
अन्याश्चाप्सरसःसन्ति रूपयौवनगर्विताः ॥२३
सुमध्याश्चारुवदनाः पीनोन्नतपयोधराः ।
कामप्रधानकुशलास्तास्तत्र सनियोजय ॥२४
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह शचीपतिः ।
तिष्ठन्तु नाम चान्या स्तास्त्वं चात्र कुशला शुभे ॥२५
कामं वसन्तं वायुं च सहयार्थे ददामि ते ।
तैःसार्धं गच्छ सुश्रोणि यत्राऽऽस्ते स महामुनिः ॥२६
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा तदा सा चारुलोचना ।
जगामाऽऽकाशमार्गेण तैः सार्धंचाऽऽश्रमं मुनेः ॥२७
गत्वा सा तत्र रुचिरं ददर्श वनमुत्तमम् ।
मुनिं च दीप्ततपसमाश्रमस्थमकल्मषम् ॥२८

हे भगवन् ! मेरे अलावा अन्य भी बहुत सी अप्सराएँ हैं जिनके नाम उर्वशी-मेनका-रम्भा-घृताची-पुञ्जिक स्थला विश्वाची-सहजन्या-पूर्व-चित्ति तिलोत्तमा-अलम्बुषा-मिश्रकेशी-शशिलेखा और वामना हैं। ये सभी अपने २ रूप यौवन के गर्व वाली हैं इन सबका मध्य भाग बहुत सुन्दर है—मुख कमल बहुत सुन्दर है—पुष्ट एवं उन्नत स्तनों वाली तथा काम कला में बहुत कुशल भी हैं। आप उनमें से किसी की नियुक्ति

कीजिए ॥२२-२४॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—उस प्रम्लोचा अप्सरा के इस वचन को सुनकर शची के स्वामी इन्द्र ने फिर कहा था कि हे शुभे ! अन्य अप्सराएँ कुशल हैं तो उन्हें रहने दो। यहाँ पर तो तुम ही कुशल हो ॥२५॥ तुम्हारी सहायता के लिये कामदेव वसन्त ऋतु और वायु को मैं तुम्हें देता हूं। हे सुश्रोणि ! इन सबके साथ तुम वहाँ पर चली जाओ जहाँ पर वह मुनि रहते हैं और तप किया करते हैं ॥२६॥ इन्द्र देव के इस वचन को सुनकर उसी समय में वह सुन्दर लोचनों वाली प्रम्लोचा उन सबके साथ में आकाश मार्ग के द्वारा मुनि कण्डु के आश्रम में चली गयी थी ॥२७॥ वहाँ पर जाकर उसने बहुत ही उत्तम एवं सुन्दर वन को देखा था। तथा दीप्त तप वाले-आश्रम में स्थित कल्मष से रहित मुनीन्द्र के भी दर्शन किये थे ॥२८॥

अपश्यत्सा वनं रम्यं तैः सार्धं नन्दनोपमम् ।
सर्वर्तुवरपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम् ॥२९
पुण्यं पद्मवनोपेतं सपल्लवमहाबलम् ।
श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्शब्दान्खगमुखेरितान् ॥३०
सर्वर्तुफलभाराढ्यान्सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलान् ।
अपश्यत्पादपांश्चैव विहङ्गैरनुनादितान् ॥३१
आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेरान्सतिन्दुकान् ।
अथ बिल्वांस्तथा जीवान्दाडिमान्बीजपूरकान् ॥३२
पनसाँल्लकुचान्नीपाञ्शिरीषान्सुमनोहरान् ।
पारावतांस्तथा कोलानरिमेदाम्लवेतसान् ॥३३
भल्लातकानामलकाञ्शतपर्णांश्च किंशुकान् ।
इङ्गुदान्करवीरांश्च हरीतकीविभीतकान् ॥३४
एतानन्यांश्च सा वृक्षान्ददर्श पृथुलोचना ।
तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ॥३५

उस प्रम्लोचा ने उन सब सहायकों के साथ में नन्दन वन के समान परम रम्य वन को वहाँ पर देखा था। उस वन में सब ऋतुओं के श्रेष्ठ पुष्पों से अतीव शोभा थी और वह वन अनेक वानरों के समुदाय से

समन्वित था ॥२६॥ परम पुण्यमय-पद्मों के समूह से युक्त और लता पल्लवों से शोभित वन को देखा था। कानों के लिये प्रिय लगने वाले-सुमधुर पक्षियों के मुख से उच्चरित कलरव ध्वनि-समस्त ऋतुओं के फलों के भारों को और सब ऋतुओं के कुसुमों से उज्ज्वल बादलों को जो कि पक्षियों से अनुनादित थे वहां पर देखा था। वहां पर संस्थित वृक्षों के नाम इस प्रकार से हैं—आम्र-आम्रातक-भव्य नारियल-तिन्दुक-विल्व-जीद दाड़िम वीजपूरक-पनस-लकुच नीम (कदम्ब) -शिरीष-सुमनोहर पारावत कोल-अरिमेद-अम्ल-वेवस-भल्लातक-आमलक-(आँवला) -शत पर्ण-किंशुक (ढाक)-इंगुद-करवीर-हरीतकी-विभीतक आदि बहुत से वृक्ष वहां पर थे जिनको उस विशाल नयनों वाली ने देखा था। उसी भाँति उसने अशोक-पुन्नाग-केतकी वकुल वृक्षों को देखा था ॥३०-३५॥

पारिजातान्कोविदारान्मन्दारेन्दीवरांस्तथा ।
पाटलाः पुष्पिता रम्या देवदारुद्रुमांस्तथा ॥३६
शालांस्तालांस्तमालांश्च निचुलाँल्लोमकांस्तथा ।
अन्यांश्च पादपश्रेष्ठानपश्यत्फलपुष्पियान् ॥३७
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः ।
कोकिलैः कलविङ्कैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥३८
प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथाऽन्यैर्विविधैः खगैः ।
श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम् ॥३९
सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च ।
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥४०
कह्लारैः कमलैश्चैव आचितानि समन्ततः ।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥४१
कारण्डवैर्बकैर्हंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च ।
एतैश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः ॥४२

पारिजात-कोविदार-मन्दार-इन्दीवर-पुष्पित-पाटल-सुरम्य देवदारुद्रुम शाल-तालतमाल-निचुल-लोमक आदि वृक्षों को तथा इनके अतिरिक्त अन्य फल-फूलों से लदे हुए पादपों को वहां देखा था ॥३६-३७॥ वह वन

चकोर-शतपत्र-भृङ्गराज-शुक-कोकिल-कलविङ्क दारीत-जीव जीवक प्रिय पुत्र-चातक और अन्य अनेक कूजते हुए खगो के द्वारा सुन्दर एव श्रुति मधुर ध्वनि से युक्त था जिसमे कण्डु मुनि रहते थे ॥३८-३६॥ उस वन मे परम सुन्दर सरोवर थे जिनका जल बहुत ही स्वच्छ था और जो कुमुद-पुण्डरीक-नीलोत्पल शुभ कह्लार-कमल-इनसे चारो ओर समाचित थे। उन सरोवरों के आस-पास कादम्ब-चक्र वाक-जल कुक्कुट-कारण्डव बक-हंस-कूर्म-मद्गु आदि जल चारी पक्षियो से तथा इनके अतिरिक्त भी अन्य जीवों के समुदाय था ॥४०-४२॥

क्रमेणैव तथा सा तु वन वभ्राम तैः सह ।
एव दृष्ट्वा वन रम्य तैः सार्धं परमाद्भुतम् ॥४३
विस्मतोत्फुल्लनया सा बभूव वराङ्गना ।
प्रोवाच वायु काम च वसन्त च द्विजोत्तमाः ॥४४
कुरुध्व मम साहाय्य यूय सर्वे पृथक्पृथक् ॥४५
एवमुक्त्वा तदा सा तु तथेत्युक्ता सुरैर्द्विजाः ।
प्रत्युवाचाद्य यास्यामि यत्रासौ सस्थितो मुनिः ॥४६
अद्य त देहयन्तार प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् ।
स्मरशरासनद्रश्मि करिष्यामि कुसारथिम् ॥४७
ब्रह्मा जनार्दनो वाऽपि यदि वा नीललोहितः ।
तथाऽप्यद्य करिष्यामि कामबाणक्षतान्तरम् ॥४८
इत्युक्त्वा प्रययौ साऽथ यत्रासौ तिष्ठते मुनि ।
मुनेस्तपः प्रभावेन प्रशान्तश्वापदाश्रमम् ॥४९

इस तरह से उस अतीव सुन्दर वन का दृश्य देखती हुई वह प्रम्लोचा अपने सहायकों के साथ क्रम से ही वन मे भ्रमण करने लगी थी। इसी रीति से उस रम्य वन को सहायकों के साथ देखा था जो कि परम अद्भुत था। वह वराङ्गना उत्फुल्ल नयनो वाली और अतीव विस्मित हो गयी थी। हे द्विजोत्तम! वह वायु-कामदेव और वसन्त से बोली थी ॥४३-४४॥ प्रम्लोचा ने कहा—आप सब लोग अलग २ मेरी सहायता कीजियेगा। श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे द्विजो! ऐसा जब उसने कहा तो

सबने यही उत्तर उसे दिया था कि ऐसा ही किया जायगा फिर अप्सरा ने कहा था कि मैं आज ही वहां पर जाऊँगी जहां पर वह मुनीन्द्र समुपस्थित हैं ।।४५-४६।। आज मैं उस देह के यमन करने वाले यन्ता-इन्द्रिय रूपी अश्व वाले को कामदेव के शस्त्र से किरण हीन एवं बुरे सारथि वाला कर दूंगी ।।४७।। ब्रह्मा स्वयं हों अथवा जनार्दन हों यदि व्यनील लोहित (शिव) हों चाहे जो कोई भी हों तथापि आज मैं उनको कामदेव के बाण द्वारा अन्तः करण को क्षत वाला बना दूंगी ।।४८।। इतना कह करके वह वहां से रवाना हो गई थी जहां पर यह मुनिवर समवस्थित थे। मुनि के तप के प्रभाव से वहां आश्रम का स्थल परम प्रशान्त श्वापदों वाला था ।।४९।।

सा पुंस्कोकिलमाधुर्ये नदीतीरे व्यवस्थिता ।
स्तोकमात्रं स्थिता तस्मादगायत वराऽप्सराः ।।५०
ततो वसन्तः सहसा बलं समक्करोत्तदा ।
कोकिलारावमधुरमकालिकमनोहरम् ।।५१
ववौ गन्धवहश्चैव मलयाद्रिनिकेतनः ।
पुष्पानुच्चावचान्मेध्यान्पातयश्च शनैः शनैः ।।५२
पुष्पबाणधरश्चैव गत्वा तस्य समीपतः ।
मुनेश्च क्षोभयामास कामस्तस्यापि मानसम् ।।५३
ततो गीतध्वनिं श्रुत्वा मुनिर्विस्मितमानसः ।
जगाम यत्र सा सुभ्रूः कामबाणप्रपीडितः ।।५४
दृष्ट्वा तामाह सहृष्टो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
भ्रष्टोत्तरीयो विकलः पुलकाञ्चितविग्रह ।।५५

वह कोयलों के कलरव की मधुरता वाले नदी के तीर पर वह अप्सरा व्यवस्थित हो गई थी। वहां पर थोड़ी देर तक ठहरी थी और वहीं से उस श्रेष्ठतमा अप्सरा ने गाना आरम्भ कर दिया था ।।५०।। इसके पश्चात् सहसा उसी समय में वसन्त ने अपना बल दिखलाया था। कोकिलों की ध्वनि से मधुर तथा अकालिक मनोहर वह आश्रम हो गया

था। उस समय में मलय गिरि में रहने वाला वायु वहन कर रहा था जो कि परम पवित्र उच्चावच (ऊँच नीचे) पुष्पों को धीरे २ भूमि पर गिरा रहा था ॥५१ ५२॥ पुष्पों के बाणों को धारण करने वाले कामदेव ने भी उस मुनि के समीप में पहुँच कर उनके मन में क्षोभ उत्पन्न किया था ॥५३॥ इसके उपरान्त गीतों की ध्वनि का श्रवण कर मुनि के मन में बड़ा विस्मय हो गया था और वहीं पर पहुँच गये थे जहाँ पर वह सुभ्रू उपस्थित थी। मुनि का मन काम के बाण से पीड़ित हो गया था ॥५४॥ भली भाँति देखते हुए उस मुनि ने उस अप्सरा को देखा था और देखकर ही वह विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाले हो गये थे। उनका उत्तरीय गिर गया था—वह विकल होकर रोमांचित शरीर वाले हो गये थे अर्थात् उनके रोंगटे खड़े हो गये थे ॥५५॥

काऽसि कस्यासि सुश्रोणि सुभगे चारुहासिनि ।
मनो हरसि मे सुभ्रु ब्रूहि सत्यं सुमध्यमे ॥५६

तव कर्मकरा चाहं पुष्पार्थमहमागता ।
आदेशं देहि मे क्षिप्रं किं करोमि तवाऽऽज्ञया ॥५७

श्रुत्वैवं वचनं तस्यास्त्यक्त्वा धैर्यं विमोहितः ।
आदाय हस्ते तां बालां प्रविवेश स्वमाश्रमम् ॥५८

ततः कामश्च वायुश्च वसन्तश्च द्विजोत्तमाः ।
जग्मुर्यथागतं सर्वे कृतकृत्यास्त्रिविष्टपम् ॥५९

शशंसुश्च हरिं गत्वा तस्यास्तस्य च चेष्टितम् ।
श्रुत्वा शक्रस्तदा देवाः प्रीताः सुमनसोऽभवन् ॥६०

स च कण्डुस्तया सार्धं प्रविशन्नेव चाऽऽश्रमम् ।
आत्मनः परमं रूपं चकार मदनाकृतिः ॥६१

रूपयौवनसंपन्नमतीव सुमनोहरम् ।
दिव्याभरणसंयुक्तं षोडशाब्दसराकृतिः ॥६२

दिव्यवस्त्रधरं कान्तं दिव्यस्रग्गन्धभूषितम् ।
सर्वोपभोगसंपन्नं सहसा तपसो बलात् ॥६३

ऋषि ने कहा—हे सुश्रोणि ! आप कौन हैं और किस की प्रियतमा हैं । हे सुभगे ! आपका हास्य तो बहुत ही सुरम्य है । हे सुभ्रु ! आप तो मेरे मन का हरण कर रही हैं । हे सुमध्यमे ! आप मुझे अपने विषय में सत्य २ बतलाइये ।।५६।। प्रम्लोचा ने कहा——मैं तो आपकी कर्मकरा सेवा करने वाली टहलनी हूँ और यहाँ पुष्पों के लिये आई हूँ । मुझे अब आप आदेश शीघ्र प्रदान कीजिए कि मैं आपकी आज्ञा क्या करूँ ? ।।५७।। श्री व्यासदेव जी ने कहा——उसके ऐसे वचन को इस तरह से श्रवण कर वह मुनि धैर्य का त्याग करके विमोहित हो गये थे और बाला को हाथ से पकड़ कर अपने आश्रम में प्रवेश कर गये थे ।।५८।। इसके पश्चात् कामदेव-वसन्त और मलयानिल ये सब हे द्विजोत्तमो ! जैसे समागत हुए थे वैसे कृतकृत्य होकर स्वर्ग में चले गये थे ।।५९।। वहाँ पहुँच कर इन्द्रदेव से उस अप्सरा की सम्पूर्ण चेष्टाऐं कह दी थीं जो उसने मुनि के आश्रम में दिखलाई थीं । इन्द्रदेव और समस्त देवता बहुत प्रसन्न हुए और उनके मन को बहुत आनन्द हुआ था ।।६०।। वह कण्डु मुनि उस प्रम्लोचा को साथ में लेकर प्रवेश कर गया था । उसने अपना रूप बहुत ही उत्तम मदन (कामदेव) की आकृति जैसा बना लिया था जो कि रूप-यौवन से सम्पन्न अतीव मनोहर हो गया था तथा दिव्य अलङ्कारों से भूषित सोलह वर्ष की अवस्था वाला बन गया था ।।६१-६२।। दिव्य वस्त्रधारी-दिव्य माला एवं गन्ध से विभूषित सहसा सभी उपभोगों से सम्पन्न तप के बल से हो गया था ।।६३।।

दृष्ट्वा सा तस्य तद्वीर्यं परं विस्मयमागता ।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा मुदिताऽभवत् ।।६४
स्नानं संध्यां जपं होमं स्वाध्यायं देवतार्चनम् ।
व्रतोपवासनियमं ध्यानं च मुनिसत्तमाः ।।६५
त्यक्त्वा स रेमे मुदितस्तया सार्धमहर्निशम् ।
मन्मथाविष्टहृदयो न बुबोध तपःक्षयम् ।।६६
संध्यारात्रिदिवापक्षमासर्त्वयनहायनम् ।
न बुबोध गतं कालं विषयासक्तमानसः ।।६७

सा च त कामजैर्भावैर्विदग्धा रहसि द्विजा. ।
वरयामास सुश्रोणिः प्रलापकुशला तदा ॥६८
एव कण्डुस्तया सार्धं वर्षाणामधिक शतम् ।
अतिष्ठन्मन्दरद्रोण्या ग्राम्यधर्मरतो मुनिः ॥६९
सा त प्राह महाभाग गन्तुमिच्छाम्यह दिवम् ।
प्रसादसुमुखो ब्रह्मन्ननुज्ञातु त्वमर्हसि ॥७०

उस अप्सरा प्रम्लोचा ने उस मुनि के अत्यद्भुत परम वीर्य-विक्रम को देखकर उसे अत्यन्त विस्मय हो गया था । उसने कहा—ओहो ! इसके महान् तप का प्रभाव है—यह मन मे कहकर वह बहुत मुदित हो गई थी ॥६४॥ हे मुनिसत्तमो ! फिर तो उस मुनि ने अपना स्नान-सन्ध्यावन्दन-जप-होम स्वाध्याय-देवो का अभ्यर्चन-व्रत उपवास-नियमों का परिपालन और ध्यान सभी कुछ का त्याग कर दिया था और रात दिन परम प्रसन्न होकर उसी अप्सरा के साथ रमण किया करता था । कामदेव के द्वारा उसका मन ऐसा अभिभूत हो गया था कि उसने अपनी तपस्या की क्षीणता को समझा ही नही था ॥६५-६६॥ वह तो फिर विषयो मे इतना अधिक आसक्त हो गया था कि उसको सन्ध्या-रात-दिन-पक्ष मास-ऋतु-अयन (वर्ष) और हायन किसी का भी ज्ञान नही रहा था और जो काल बीत चुका था उसे समझ ही नही पा रहा था ॥६७॥ हे द्विजो ! उस अप्सरा ने भी उस समय मे जो सुन्दर श्रोणि वाली एव प्रलाप म कुशल थी काम से उत्पन्न हुए भावो के द्वारा एकान्त मे विदग्ध होकर उस मुनि का वरण कर लिया था ॥६८॥ इस तरह से वह कण्डु मुनि सौ वर्षों से भी अधिक समय तक उस अप्सरा के साथ मन्दराचल की द्रोणी मे ग्राम्य धर्म मे निरत हो गया था ॥६९॥ उस अप्सरा ने फिर उस महाभाग मुनि से कहा था कि मैं स्वर्ग मे जाना चाहती हूँ, अतएव आप प्रसन्न तथा सुन्दर मुख वाले होकर हे ब्रह्मन् ! अब मुझे आज्ञा देने को योग्य हैं ॥७०॥

तयैवमुक्त स मुनिस्तस्यामासक्तमानसः ।
दिनानि कतिचिद्भद्रे स्थीयतामित्यभाषत ॥७१

एवमुक्ता ततस्तेन साग्रं वर्षशतं पुनः ।
बुभुजे विषयांस्तन्वी तेन सार्धं महात्मना ॥७२
अनुज्ञां देहि भगवन्व्रजामि त्रिदशालयम् ।
उक्तस्तयेति स पुन. स्थीयतामित्यभाषत ॥७३
पुनर्गते वर्षशते साधिके सा शुभानना ।
याम्यहं त्रिदिवं ब्रह्मन्प्रणयस्मितशोभनम् ॥७४
उक्तस्तयैवं स मुंनिः पुनराहाऽऽयतेक्षणाम् ।
इहाऽऽस्यतां मया सुभ्रु चिरं कालं गमिष्यसि ॥७५
तच्छापभीता सुश्रोणी सह तेनर्षिणा पुनः ।
शतद्वयं किंचिदूनं वर्षाणां समतिष्ठत ॥७६
गमनाय महाभागो देवराजनिवेशनम् ।
प्रोक्तःप्रोक्तस्तया तन्व्या स्थीयतामित्यभाषत ॥७७

उस प्रकार से प्रार्थना किये गये उस मुनि ने जो कि उसमें बहुत ही अधिक आसक्त मन वाले थे, कहा—हे भद्रे ! कुछ दिन और यहां पर ठहर जाओ ॥७१॥ इसी रीति से कही गयी उस तन्वी अप्सरा ने फिर डेढ़ सौ वर्ष तक उस महात्मा के साथ विषयों का उपभोग किया था ॥७२॥ फिर उस प्रम्लोचा ने उस कण्डु मुनि से कहा था कि हे भगवन् ! मुझे आज्ञा दीजिए मैं स्वर्ग में जाती हूँ किन्तु फ़िर भी उस मुनि ने यही कहा था कि कुछ अभी और ठहरो ॥७३॥ फिर सौ वर्ष से भी अधिक हो जाने पर उस अप्सरा ने कहा था कि हे ब्रह्मन् ! आप तो प्रणय के स्मित से परम शोभन हैं मैं अब स्वर्ग में जाती हूं ॥७४॥ इस तरह से उसने जब कहा था तो वह मुनि फिर उस विशाल नेत्रों वाली से बोला था कि हे सुभ्रु ! मेरे साथ चिरकाल पर्यन्त रहो फ़िर बहुत समय के पश्चात् चली जाना ॥७५॥ उसके शाप के भय से डरी हुई वह सुश्रोणि उस ऋषि के साथ दो सौ वर्षो से कुछ ही कम समय तक ठहर गयी थी ॥७६॥ उस तन्वी के द्वारा देवराज के घर जाने के लिये बारम्बार ब्रह्म महाभाग से कहा गया था किन्तु वह 'अभी ठहरो'—यही कह दिया करता था ॥७७॥

तस्य शापभयाद्भीरुर्दाक्षिण्येन च दक्षिणा ।
प्रोक्ता प्रणयभङ्गार्तिवेदनी न जहौ मुनिम् ।।७८

तथा च रमतस्तस्य परमर्षेरहर्निशम् ।
नव नवमभूत्प्रेम मन्मथासक्तचेतस ।।७९

एकदा तु त्वरायुक्तो निश्चक्रामोटजान्मुनि ।
निष्क्रामन्त च कुत्रेति गम्यते प्राह सा शुभा ।।८०
इत्युक्त स तया प्राह परिवृत्तमह॰ शुभे ।
सन्ध्योपास्ति करिष्यामि क्रियालोपोऽन्यथा भवेत् ।।८१

तत प्रहस्य मुदिता सा त प्राह महामुनिम् ।
किमद्य सवधमज्ञ परिवृत्तमहस्तव ।।
गतमेतन्न कुरुते विस्मय कस्य कथ्यते ।।८२
प्रातस्त्वमागता भद्रे नदीतीरमिद शुभम् ।
मया दृष्टाऽसि सुश्रोणि प्रविष्टा च ममाऽऽश्रमम् ।।८३
इय च वतत सध्या परिणाममहो गतम् ।
अवहास किमर्थोऽय सद्भाव कथ्यता मम ।।८४

उस परम दक्ष अप्सरा ने बहुत ही चतुराई से उससे कहा था किन्तु उसे उसके शाप का भय मन म रहा करता था और प्रणय के भङ्ग होने की पीडा के ज्ञान वाली उसने उस मुनि का परित्याग नही किया था ।।७८।। मन्मथ (कामदेव) म आसक्त चित्त वाल उस ऋषि का र तदिन उस अप्सरा क साथ रमण करते हुए नया-नया प्रेम हो गया था ।।७९।। एक वार वह मुनीन्द्र अपनी झोपडी से बडी शीघ्रता से युक्त होकर निकल गया था जब वह वहाँ स निष्क्रमण कर रहे थे उस समय म उस शुभा प्रम्लोचा ने उसस कहा था कि आप कहा जा रहे हैं ? ।।८०।। जब उसने इस रीति स पूछा था तो उस ऋषि ने उस अप्सरा से कहा था कि हे शुभे ! दिन परिवृत हो गया है अर्थात् समाप्त हो गया है-मैं अब सन्ध्या की उपासना करूँगा अन्यथा अर्थात् यदि मैं ऐसा नही करता हू तो क्रिया का लोप हो जायगा ।।८ ।। तब तो परम प्रसन्न उस अप्सरा

ने उस महामुनि से कहा था-हे सर्वधर्मों के ज्ञाता ! आज क्या हो गया है कि आपका दिन परिवृत्त हो गया। इतने दिन तो निकल ही गये हैं। उसका विस्मय है क्या कहा जावे ॥८ ॥ कण्डु मुनि ने कहा—हे भद्रे ! इस परम शुभ नदी के तट पर तुम प्रातःकाल में समागत हुई थीं, हे सुश्रोणि ! मैंने उसी समय में आपको देखा था और तुमने तभी मेरे आश्रम में प्रवेश किया था ॥८३॥ यह तो सन्ध्या का समय है और दिन परिणाम को प्राप्त हो गया है अर्थात् समाप्त हो गया है। यह अपहास किस लिये मेरे साथ किया जाता है। मुझसे तो जो सद्भाव हो उसे ही कहिए ॥८४॥

प्रत्पूषस्यागता ब्रह्मन्सत्यमेतन्न मे मृषा ।
किं त्वद्य तस्य कालस्य गतान्यब्दशतानि ते ॥८५
ततः ससाध्वसो विप्रस्तां पप्रच्छाऽऽयतेक्षणाम् ।
कथ्यतां भीरु कः कालस्त्वया मे रमतः सदा ॥८६
सप्तोत्तराण्यतीतानि नववर्षशतानि च ।
मासाश्च षट्तथैवान्यत्समतीतं दिनत्रयम् ॥८७
सत्यं भीरु वशस्येतत्परिरासोऽथवा शुभे ।
दिनमेकमहं मन्ये त्वया सार्धमिहोषितम् ॥८८
वदिष्याम्यनृतं ब्रह्मन्कथमत्र तवान्तिके ।
निशेषादद्य भवता पृष्टा मार्गानुगामिना ॥८९
निशम्य तद्वचस्तस्याः स मुनिर्द्विजसत्तमाः ।
धिग्धिङ्मामित्यनाचारं विनिन्द्याऽऽत्मानमात्मना ॥९०

प्रम्लोचा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! प्रातःकाल के समय में ही मैं आई थी-यह मेरा कथन सत्य है और मिथ्या नहीं है। किन्तु आपको आज तो उस समय को सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं ॥८५॥ इसके अनन्तर भय से कम्पित उस विप्र ने उस विशाल लोचनों वाली से पूछा था—हे भीरु ! मुझे यह बतलाओ कि तुम्हारे साथ रमण करते हुए मुझे कितना और कौन सा समय हो गया है ? ॥८६॥ प्रम्लोचा ने कहा—आपके साथ रमण करने में नौ सौ सात वर्ष छै मास और तीन दिन व्यतीत

हुए हैं ॥८७। ऋषि ने कहा—हे शुभे ! हे भीरु ! क्या आप यह सत्य बोल रही हैं या आपका यह परिहास (मजाक) है ? मैं तो आपके साथ यहा पर रमण करने का केवल एक दिन मानता हूँ ॥८८॥ हे ब्रह्मन् ! यहाँ पर आपके समीप मे मिथ्या भाषण कैसे करूगी और विशेष रूप से आज जब कि आप मार्ग के अनुगामी होते हुए मुझसे पूछ रहे है मैं कभी झूठ बोल ही नही सकती हूँ ॥८९॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठो ! उस महा मुनि ने उस अप्सरा प्रम्लोचा के इस वचन का श्रवण करके तो उसने कहा—मुझ आचार रहित को धिक्कार है-धिक्कार है। इस तरह से अपने आप ही अपने आपकी उसने विशेष निन्दा की थी ॥९०॥

तपासि मम नष्टानि हृत ब्रह्मविदा धनम् ।
हृतो विवेक केनापि योषिन्मोहाय निर्मिता ॥९१
ऊर्मिषट्कातिग ब्रह्म ज्ञेयमात्मजयेन मे ।
मतिरेषा कृता येन धिक्त काममहाग्रहम् ॥९२
व्रतानि सर्ववेदाश्च कारणान्यखिलानि च ।
नरकग्राममार्गेण कामेनाद्य हृतानि मे ॥९३
विनिन्द्येत्य स धर्मज्ञ. स्वयमात्मानमात्मना ।
तामप्सरसमासीनामिद वचनमब्रवीत् ॥९४
गच्छ पापे यथाकाम यत्कार्य तत्त्वया कृतम् ।
देवराजस्य यत्क्षोभ कुर्वन्त्या भावचेष्टितै ॥९५
न त्वा करोम्यह भस्म क्रोधतीव्रेण वह्निना ।
सता साप्तपद मैत्र्यमुषितोऽह त्वया सह ॥९६
अथवा तव दोष, क: किवा कुर्यामह तव ।
ममैव दोषा नितरा येनाहमजितेन्द्रिय: ॥९७
यया शक्रप्रियार्थिन्या कृतो मत्तपसो व्यय: ।
त्वया धिङ्महामोहमनुनाऽह जुगुप्सित: ॥९८

मुनि ने कहा—मेरी सम्पूर्ण तपस्या नष्ट हो गई है और ब्रह्म-वेत्ताओं का सब धन चला गया है। किसी के द्वारा मेरे विवेक का, अप-

हरण किया गया है और यह स्त्री मेरे मोह उत्पन्न करने के ही लिये निर्माण की गई है ॥६१॥ ऊर्मिषट्क का अति गमन करने वाला ब्रह्म आत्मा के ऊपर विजय प्राप्त करने वाले मुझे जानना चाहिए। जिसने मेरी ऐसी यह गति कर दी है उस कामदेव रूपी महाग्रह को भी धिक्कार है ॥६२॥ व्रत और समस्त देव तथा अन्य समस्त मेरी तपश्चर्या के कारण थे वे सभी नरकों के समुदाय के मार्ग वाले कामदेव ने आज हरण कर लिये हैं ॥६३॥ इस प्रकार से उस धर्म्मज्ञ ने अपनी ही आत्मा से अपने आपकी स्वयं विनिन्दा करके बैठी हुई अप्सरा से यह वचन बोला था ॥६४॥ महर्षि ने कहा था—हे पापे ! तू अब यहाँ से स्वेच्छया चली जा। तूने जो कार्य यहां पर किया है और भावों की चेष्टाओं से तू देवराज के क्षोभ को जो किया है इसलिये मैं अपने तीव्रतम क्रोध की अग्नि से तुमको भस्म नहीं कर रहा हूँ क्योंकि सत्पुरुषों के सात पद मैत्री में मैं तेरे साथ रहा हूँ ॥६५-६५॥ अथवा तेरा दोष ही क्या है और तेरा मैं अब क्या करूं। यह सब तो मेरा ही दोष है जिसके द्वारा मैं अजित इन्द्रियों वाला बन गया हूं ॥६७॥ जिस तरह से इन्द्रदेव के प्रिय की चाह वाली तूने मेरी तपस्या का व्यय किया है और तेरे द्वारा दृष्टि के महा मोह के मनु द्वारा मैं निन्दित हो गया हूँ ॥६८॥

यावदित्थं स विप्रर्षिस्तां ब्रवीति सुमध्यमाम्।
तावत्स्वलत्स्वेदजला सा बभूवातिवेपथुः ॥६६

प्रवेपमानां स च तां स्विन्नगात्रलतां सतीम्।
गच्छ गच्छेति सक्रोधमुवाच मुनिसत्तमः ॥१००

सा तु निर्भर्त्सिता तेन विनिष्क्रम्य तदाश्रमात्।
आकाशगामिनो स्वेदं ममार्जतरुपल्लवैः ॥१०१

वृक्षाद्वृक्षं ययौ बाला उदग्रारुणपल्लवैः।
निर्ममार्ज च गात्राणि गलत्स्वेदजलानि वै ॥१०२

ऋषिणा यस्तदा गर्भस्तस्या देहे समाहितः।
निर्जगाम सरोमाञ्चस्वेदरूपी तदङ्गतः ॥१०३

त वृक्षा जगृहुर्गर्भमेव चक्रे च मारुतः ।
सोमेनाऽऽप्यायितो गोभिः स यदा ववृधे शनैः ॥१०४
मारिषा नाम कन्याऽभूद्वृक्षाणां चारुलोचना ।
प्राचेतसानां सा भार्या दक्षस्य जननी द्विजाः ॥१०५

श्री व्यासजी ने कहा—जब तक वह विप्रर्षि उस सुमध्यमा से इस तरह से कह रहा था तब तक वह अत्यन्त कम्पित हो गई थी और उसके शरीर से पसीने का जल निकल कर गिर रहा था ॥९९॥ वह मुनिश्रेष्ठ कम्पायमान होती हुई पसीने मे लथपथ शरीर वाली उस सती स बड़े भारी क्रोध के साथ बोला था—यहा से चली जा और तुरन्त निकल जा ॥१००॥ वह उस मुनि के द्वारा निर्भर्त्सित हुई (फटकारी गयी) उस आश्रम मे निकलकर आकाश गामिनी हो गई थी और वृक्षों के पत्तों से उसने अपने स्वेद (पसीने) का परिमार्जन किया था ॥१०१॥ वह बाला एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर गयी थी और नवीन एवं अरुण पल्लवों से शरीर के अङ्गों का मार्जन किया था जिनसे कि पसीने का जल गिर रहा था ॥१०२॥ ऋषि ने उस समय मे जो गर्भ उसके देह मे समाहित किया था वही रोमाचों के सहित उसके अङ्गों से स्वेद के रूप वाला होकर निकल गया था ॥१०३॥ वृक्षों ने उस गर्भ को ग्रहण कर लिया था और वायु ने उसको एक कर दिया था । सोमदेव ने भी किरणों के द्वारा उसे आप्यायित किया था तथा उस समय मे वह धीरे से वृद्धि वाला हुआ था ॥१०४॥ वृक्षों की मारिषा नाम वाली एक कन्या हुई थी जो बहुत ही सुन्दर नेत्रों वाली थी । वह प्रचेताओं की भार्या हुई थी और हे द्विजो ! वही फिर दक्ष की जननी हुई थी ॥१०५॥

स चापि भगवान्कण्डुः क्षीणे तपसि सत्तमः ।
पुरुषोत्तमाख्य भो विप्रा विष्णोरायतनं ययौ ॥१०६
ददर्श परमं क्षेत्रं मुक्तिदं भुवि दुर्लभम् ।
दक्षिणस्योदधेस्तीरे सर्वकामफलप्रदम् ॥१०७
सुरम्यं वालुकाकीर्णं केतकीवनशोभितम् ।
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापक्षिरुतं शिवम् ॥१०८

सर्वत्र सुखसंचारं सर्वर्तुकुसुमान्वितम् ।
सर्वसौख्यप्रदं नृणां धन्यं सर्वगुणाकरम् ॥१०९
भृग्वाद्यैः सेवितं पूर्वं मुनिसिद्धवरैस्तथा ।
गन्धर्वैः किनरैर्यक्षैस्तथाऽन्यैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥११०
ददर्श च हरिं तत्र देवैः सर्वैरलंकृतम् ।
ब्राह्मणाद्यैस्तथा वर्णैराश्रमस्थैर्निषेवितम् ॥१११
दृष्ट्वैव स तदा क्षेत्रं देवं च पुरुषोत्तमम् ।
कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने स मुनिसत्तमः ॥११२
तत्रैकाग्रमना भूत्वा चकराऽऽराधनं हरेः ।
ब्रह्मपारमयं कुर्वञ्जपमेकाग्रमानसः ॥
ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी स्थित्वाऽसौ मुनिसत्तमः ॥११३

वह भगवान् कण्डु भी जो परम श्रेष्ठ थे अपने तप के क्षीण हो जाने पर हे विप्रो ! पुरुषोत्तम नाम वाले भगवान् विष्णु के आयतन को चले गये थे ॥१०६॥ उन्होंने दक्षिण सागर के तट पर समस्त कामनाओं के पुण्य-फल को प्रदान करने वाले—इस भूमण्डल में दुर्लभ मुक्ति देने वाले परमोत्कृष्ट क्षेत्र को देखा था ॥१०७॥ वह स्थल अतीव सुरम्य था—वालुका से समाकीर्ण केतकी के वनों की शोभा से युक्त—अनेक द्रुमों तथा लताओं से घिरा हुआ और विविध पक्षियों के कलरव वाला एवं शिव था ॥१०८॥ वह पुरुषोत्तम तीर्थ ऐसा था जहाँ सर्वत्र सुखों का संचार था और सब ऋतुओं के कुसुमों से युक्त था—मनुष्यों के सभी सुखों का देने वाला परम धन्य-सब गुणों की खान था। भृगु आदि सब मुनि-गण उसका सेवन किया करते थे तथा पहिले मुनि-सिद्ध-गन्धर्व-किन्नर-यक्ष तथा अन्य मोक्ष की आकांक्षा वाले भी उसका सेवन करते थे ॥१०९-११०॥ वहाँ पर ही सब देवों से विभूपित-ब्राह्मण आदि सब वर्णों से तथा चारों आश्रमों में रहने वाले पुरुषों के द्वारा सेवित भगवान् श्री हरि का दर्शन किया था ॥१११॥ उस श्रेष्ठ मुनीन्द्र ने उस समय में उस क्षेत्र को और देव पुरुपोत्तम को देखकर ही अपनी आत्मा को कृतकृत्य मान लिया था ॥११२॥ वहीं पर एकाग्र मन वाला होकर श्री

हरि का समाराधन उस मुनि ने किया था और एकाग्र मन वाला होते हुए पारमय ब्रह्म का जाप किया करता था। वह श्रेष्ठ मुनि ऊर्ध्व बाहुओं वाला होकर महायोगी वहीं पर समवस्थित हो गया था ॥११३॥

ब्रह्मपार मुने श्रोतुमिच्छाम परम शुभम् ।
जपता कण्डुना देवो येनाऽराध्यत केशव ॥११४
पार पर विष्णुरपारपार पर परेभ्य परमात्मरूप ।
स ब्रह्मपार परपारभूत पर पराणामपि पारपार ॥११५
स कारण कारणसश्रितोऽपि
तस्यापि हेतु परहेतुहेतु ।
कार्योऽपि चप सह कर्मकर्तृ
रूपैरनेकैरवतीह सवम् ॥११६
ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सवभूतो,
ब्रह्म प्रजाना पतिरच्युतोऽसौ ।
ब्रह्माव्यय नित्यमज स विष्णु-
रपक्षयाद्यै रखिलैरसङ्ग ॥११७
ब्रह्माक्षरमज नित्य यथाऽसौ पुरुषोत्तम ।
तथा रागादयो दोषा प्रयान्तु प्रशम मम ॥११८
श्रुत्वा तस्य मुनेर्जाप्य ब्रह्मपार द्विजोत्तमा ।
भक्ति च परमा ज्ञात्वा सुदृढा पुरुषोत्तम ॥११९

मुनिगण ने कहा—हे मुनिवर ! उस परम शुभ ब्रह्म पार के विषय मे हम श्रवण करना चाहते है जिस प्रकार स कण्डु ऋषि ने देवेश्वर के शव की आराधना की थी ? श्री व्यासदेव जी ने कहा—पार पर अपार पार वाले परो स भी पर-परमात्मा के स्वरूप वाले वह पर पारभूत ब्रह्मपार हैं। वह परो के भी पर हैं और पारपार हैं ॥११४ ११५॥ वह कारणा से सश्रित होते हुए भी वह कारण है। उसका भी हेतु और पर हेतु का भी हेतु है। अनेक कम कर्तृ के रूपो स वही काय भी है और सबकी रक्षा किया करता है ॥११६॥ ब्रह्म ही प्रभु हैं और वही ब्रह्म सवभूतमय है। ब्रह्म प्रजाओ का स्वामी है। यही अच्युत हैं

ब्रह्म अव्यय-नित्य-अज तथा विष्णु और अपक्षीणता आदि सबके सङ्ग से हीन हैं ॥११७॥ ब्रह्म अक्षर-अज नित्य है । उस तरह से यह पुरुषोत्तम है उसी भाँति मेरे सब राग आदि के दोष प्रशम को प्राप्त हो जावें ॥११८॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो ! ब्रह्मपार ने उसमुनि के जाप्य का श्रवण करके और परमाधिक सुदृढ़ भक्ति का ज्ञान प्राप्त करके भगवान् पुरुषोत्तम उस पर प्रसन्न हो गये थे ॥११९॥

प्रीत्या स परया देवस्तदाऽसौ भक्तवत्सलः ।
गत्वा तस्य समीपं तु प्रोवाच मधुसूदनः ॥१२०
मेघगम्भीरया वाचा दिशः संनादयन्निव ।
आरुह्य गरुडं विप्रा विताकुलनन्दनम् ॥१२१
मुने ब्रूहि परं कार्यं यत्ते मनसि वर्तते ।
वरदोऽहमनुप्राप्तो वरं वरय सुव्रत ॥१२२
श्रुत्वैवं वचनं तस्य देवदेवस्य चक्रिणः ।
चक्षुरुन्मील्य सहसा ददर्श पुरतो हरिम् ॥१२३
अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदधारिणम् ॥१२४
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं पीतवस्त्रधरं शुभम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥१२५
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वरत्नविभूषितम् ।
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यमाल्यविभूषितम् ॥१२६

वह देवेश्वर परम प्रीति से उसी समय में अपने भक्तों पर प्रेम करने वाले होते हुए उस विप्रर्षि के समीप में गये थे और मधु सूधन प्रभु उस से बोले थे । उनकी वाणी मेघ के समान गम्भीर थी जो सब दिशाओं को ध्वनित कर रही थी । हे विप्रो ! वे देवेश्वर विनता के पुत्र गरुड़ पर समारूढ़ होकर वहां पर समागत हुए थे ॥१२०-१२१॥ श्री भगवान् ने कहा--हे मुनिवर ! जो भी कोई परतम कार्य हो और आपके मन में विद्यमान हो उसे मेरे सामने वतला दो । हे सुव्रत ! मुझसे किसी भी वरदान का वरण कर लो मैं वरों के प्रदान करने वाला इस समय में

तुम्हारे समीप में सम्प्राप्त हो गया हूँ ॥१२२॥ देवों के भी देव चक्रधारी भगवान् के इस प्रकार के वचन को सुनकर उस विप्रर्षि ने अपना नेत्र खोलकर सहसा ही अपने आगे श्री हरि का दर्शन किया था ॥१२३॥ भगवान् श्री हरि का स्वरूप अलसी के पुष्प के समान नील वर्ण का था-उनके नेत्र पद्म दल के सदृश विशाल थे-उनके हाथों में शङ्ख-चक्र-और गदा आयुध थे-वे मस्तक पर मुकुट तथा भुजाओं में अङ्गद धारण किये हुए थे। चार उनकी भुजाएँ थी-उदार अङ्ग था पीत अम्बर धारी श्री वत्स के चिह्न से संयुक्त-वनमाला से शोभित-परम शुभ-सभी सुन्दर लक्षणों से समन्वित-समस्त रत्नों से विभूषित-दिव्य चन्दन के लेपन वाले अङ्गों से संयुत तथा दिव्य मालाओं से समलङ्कृत उनके सब अङ्ग थे ॥१२४-१२६॥

ततः स विस्मयाविष्टो रोमाञ्चिततनूरुहः।
दण्डवत्प्रणिपत्योर्व्यां प्रणाममकरोत्तदा ॥१२७
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः।
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलास्त स्तोतुमुपचक्रमे ॥१२८
नारायण हरे कृष्ण श्रीवत्साङ्क जगत्पते।
जगद्बीज जगद्धाम जगत्साक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥१२९
अव्यक्त जिष्णो प्रभव प्रधान पुरुषोत्तम।
पुण्डरीकाक्ष गोविन्द लोकनाथ नमोऽस्तु ते ॥१३०
हिरण्यगर्भ श्रीनाथ पद्मनाभ सनातन।
भूगर्भ ध्रुव ईशान हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥१३१
अनाद्यन्तामृताजय जय त्वं जयतां वद।
अजिताखण्ड श्रीकृष्ण श्रीनिवास नमोऽस्तु ते ॥१३२
पर्जन्यधर्मकर्ता च दुष्पार दुरधिष्ठित।
दुःखार्तिनाशन हरे जलशायिन्नमोऽस्तु ते ॥१३३

श्री हरि के दर्शन करने के पश्चात् वह विस्मय से भर गया था और उसका शरीर पुलकित हो गया था। उसी समय में भूमि में गिरकर दण्ड के समान उसने साष्टाङ्ग प्रणाम किया था ॥१२७॥ उसने हे मुनि

शार्दूलो ! भगवान् से कहा था कि आज मेरा जन्म सफल हो गया और आज ही मेरी तपश्चर्या भी सफल हो गई है। इतना कहकर उस मुनि ने भगवान् की स्तुति करने का आरम्भ कर दिया था ॥१२८॥ कण्डुमुनि ने कहा—हे नारायण ! हे हरे ! हे श्री कृष्ण ! हे श्री वत्स के अङ्क वाले ! हे जगत् के स्वामिन् ! आप तो इस सपूर्म्ण विश्व के वीज हैं। हे जगत् के धाम ! हे जगत् के साक्षिन् ! आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥१२६॥ हे अव्यक्त ! हे जिष्णो ! हे प्रभव ! आप तो प्रधान पुरुषोत्तम हैं। हे पुण्डरीकाक्ष ! हे गोविन्द ! आप लोकों के नाथ हैं आपके चरणों में मेरा प्रणाम है ॥१३०॥ हे हिरण्यगर्भ ! हे गोविन्द ! हे श्री नाथ ! हे पद्म-नाभ ! आप तो सनातन हैं। हे भगवन् ! हे ध्रुव ! हे ईशान ! हे हृषी-केश ! आपकी सन्निधि में मेरा प्रणाम है ॥१३१॥ हे अनाद्यन्त ! हे अमृताञ्जय ! आप तो जय प्राप्त करने वालों में परम श्रेष्ठ हैं। आपकी जय हो। हे अजिता खण्ड ! हे श्री कृष्ण ! हे श्री निवास ! आपके लिये नमस्कार है ॥१३२॥ हे पर्जन्य के धर्म के करने वाले ! हे दुष्पार ! हे दुरधिष्ठित ! आप दुःखों की पीड़ा के नाश करने वाले हैं। हे हरे ! हे जलशायिन् ! आपको नमस्कार है ॥१३३॥

भूतपाव्यक्त भूतेश भूततत्त्वैरनाकुल ।
भूताधिवास भूतात्मन्भूतगर्भ नमोऽस्तु ते ॥१३४

यज्ञयज्वन्यज्ञधर यज्ञधाताऽभयप्रद ।
यज्ञगभ हिरण्याङ्ग पृश्निगर्भ नमोऽस्तु ते ॥१३५

क्षेत्रज्ञः क्षेत्रभृत्क्षेत्री क्षेत्रहा क्षेत्रकृद्वशी ।
क्षेत्रात्मन्क्षेत्ररहित क्षेत्रस्रष्ट्रे नमोऽस्तु ते ॥१३६

गुणालय गुणावास गुणाश्रय गुणावह ।
गुणप्रोक्तृ गुणाराम गुणत्यागिन्नमोऽस्तु ते ॥१३७

त्वं विष्णुस्त्वं हरिश्चक्री त्वं जिष्णुस्त्वं जनार्दनः ।
त्वं भूतस्त्वं वषट्कारस्त्वं भव्यस्त्वं भवत्प्रभुः ॥१३८

त्वं भूतकृत्त्वमव्यक्तस्त्वं भवो भूतभृद्भवान् ।
त्वं भूतभावनो देवत्वामाहुरजमीश्वरम् ॥१३६

त्वमनन्त कृतज्ञस्त्व प्रकृतिस्त्व वृषाकपि ।
त्व रुद्रस्त्व दुराधर्षस्त्वममोघस्त्वमीश्वर ॥१४०

हे भूतो के पालक ! हे अव्यक्त ! हे भूतेश ! भूत तत्वों से आवृत न रहने वाले ! हे भूतों के अधिवास ! हे भूतात्मन् ! हे भूतगर्भ ! आपको नमस्कार है ॥१३४॥ हे यज्ञो के यज्वन् ! आप यज्ञो के स्वरूप वाले हैं। हे यज्ञ के धाता ! हे अभय प्रदान करने वाले ! हे यज्ञगर्भ ! हे हिरण्याङ्ग ! हे वृष्णि गर्भ ! आपको प्रणाम है ॥१३५॥ हे क्षेत्रज्ञ ! हे क्षेत्रभृत् ! आप क्षेत्री और क्षेत्र के हनन करने वाले हैं। हे क्षेत्रकृत् ! हे वशी ! आप क्षेत्र स्वरूप और क्षेत्र रहित हैं। क्षेत्र के सृजन करने वाले आपके लिये नमस्कार है ॥१३६॥ हे गुणालय ! आप गुणो के आवास स्थल हैं। हे गुणावह ! आप गुणो के आश्रय हैं। हे गुणो के भोक्ता ! हे गुणाराम ! हे गुण त्यागिन् ! आपको नमस्कार है ॥१३७॥ आप विष्णु हैं, हरि है, आप चक्र धारी हैं। आप जिष्णु हैं–हे जनार्दन ! आप भूत हैं–आप वषट्कार है। आप भव्य हैं और आप भवत्प्रभु हैं। आप ही अव्यक्त और भूतों के करने वाले हैं। आप भव और भूतकृत् है। आप भूतभावन देव हैं और आपको ही अज एव ईश्वर कहा जाता है ॥१३८-१३९॥ हे भगवन् ! आप अनन्त-कृतज्ञ-प्रकृति और वृषाकपि हैं। आप ही रुद्र-दुराधर्ष अमोघ और ईश्वर है ॥१४०॥

त्व विश्वकर्मा जिष्णुस्त्व त्व शभुस्त्व वृषाकृति ।
त्व शङ्करस्त्वमुशना त्व धर्म त्व तपो जन. ॥१४१
त्व विश्वजेता त्व शम त्व शरण्यस्त्वमक्षरम् ।
त्व शभुस्त्व स्वयभूश्च त्व ज्येष्ठस्त्व परायण ॥१४२
त्वमादित्यस्त्वमोकारस्त्व प्राणस्त्व तमिस्रहा ।
त्व पर्जन्यस्त्व प्रथितस्त्व वेधास्त्व सुरेश्वर ॥१४३
त्वमृग्यजु साम चैव त्वमात्मा समतो भवान् ।
त्वमग्निस्त्व च पवनस्त्वमापो वसुधा भवान् ॥१४४
त्व स्रष्टा त्व तथा भोक्ता होता त्व च हवि क्रतु. ।
त्व प्रभुस्त्व विभु श्रेष्ठस्त्व लोकपतिरच्युत. ॥१४५

त्वं सर्वदर्शनः श्रीमांस्त्वं सर्वदमनोऽरिहा ।
त्वमहस्त्वं तथा रात्रिस्त्वामाहुर्वत्सरं बुधाः ॥१४६
त्वं कालस्त्वं कला काष्ठा त्वं मुहूर्तः क्षणा लवाः ।
त्वं बालस्त्वं तथा वृद्धस्त्वं पुमान्स्त्री नपुंसकः ॥१४७

हे भगवन् ! आप ही शम्भु-विश्वकर्मा-विष्णु-वृषाकृति शङ्कर-उशना हैं तथा आप सत्य-जन और तप हैं ॥१४१॥ हे भगवन् ! आप इस सम्पूर्ण विश्व के जेता-कल्याण-शरण्य और अक्षर हैं । आप ही शम्भु-स्वयम्भू-ज्येष्ठ और परायण हैं आप आदित्य-ओङ्कार-अन्धकार के हनन करने वाले तथा प्राण हैं । हे भगवन् ! आप पर्जन्य प्रथित हैं—वेधा तथा सुरेश्वर भी आप ही हैं । ऋग्वेद-यजु और सामवेद की आत्मा आप ही हैं । आप ही अग्नि, पवन-जल तथा भूमि हैं ॥१४२-१४४॥ हे प्रभो ! इस विश्व के सृजन करने वाले-भोग करने वाले ! आप ही होता-हवि और क्रतु हैं । हे भगवन् ! आप प्रभु-विभु-श्रेष्ठ-लोकों के स्वामी और अच्युत हैं । आप सर्व दर्शन-श्रीमान्-सर्व दमन और अरियों के नाशक हैं । हे भगवन् ! आप ही दिन-रात्रि हैं तथा बुधगण आपको ही वत्सर कहते है ॥१४५-१४६॥ आप ही काल-कला काष्ठा-मुहूर्त्त-क्षण और लव हैं । आप बालक-वृद्ध-पुमान्-स्त्री तथा नपुंसक है ॥१४७॥

त्वं विश्वयोनिस्त्वं चक्षुस्त्वं वेदाङ्गं त्वमव्ययः ।
त्वं वेदवेदस्त्वं धाता विधाता त्वं समाहितः ॥१४८
त्व जलनिधिरामूलं त्वं धाता त्व पुनर्वसुः ।
त्व वैद्यस्त्वं धृतात्मा च त्वमतीन्द्रियगोचरः ॥१४९
त्वग्रणीर्ग्रामणीस्त्वं त्व सुपर्णस्त्वमादिमान् ।
त्व सग्रहस्त्व सुमहत्त्व धृतात्मा त्वमच्युतः ॥१५०
त्व यमस्त्वं च नियमस्त्व प्रांशुस्त्व चतुर्भुजः ।
त्वमेवान्नान्तरात्मा त्वं परमात्मा त्वमुच्यते ॥१५१
त्वं गुरुस्त्वं गुरुतमस्त्वं वामस्त्वं प्रदक्षिणः ।
त्वं पिप्पलस्त्वमगभस्त्वं व्यक्तस्त्वं प्रजापतिः ॥१५२

हिरण्यनाभस्त्वं देवस्त्वं शशी त्वं प्रजापतिः ।
अनिदश्ववपुस्त्वं व त्वं यमस्त्वं सुरारिहा ॥१५३
त्वं च संकर्षणो देवस्त्वं कर्ता त्वं सनातनः ।
त्वं वासुदेवोऽमेयात्मा त्वमेव गुणवर्जितः ॥१५४

हे भगवन् ! आप इस सम्पूर्ण विश्व की योनि हैं—आप ही चक्षु-वेदाङ्ग-अव्यय वेदों के वेत्ता धाता-विधाता-और समाहित है ॥१४८॥ आप आमूल जलनिधि हैं—धाता पुनर्वसु, वैद्य, धृतात्मा, अतीन्द्रिय गोचर, अग्रणी, ग्रामणी, सुपर्ण, आदिमान, सग्रह सुमहत् धृतात्मा और अच्युत हैं हे भगवन् ! आप यम-नियम प्राशु-चतुर्भुज हैं। आप ही अन्न के अन्तरात्मा हैं परमात्मा भी आप ही कहे जाते हैं ॥१४९-१५१॥ आप गुरु गुरुतम वाम प्रदक्षिण पिप्पल-अगम-व्यक्त प्रजापति-हिरण्यनाभ-देव संकर्षण कर्त्ता और सनातन है। हे भगवन् ! आप अमेय आत्मा वाले वासुदेव तथा आप ही गुणों से वर्जित निराकार हैं ॥१५२-१५४॥

त्वं ज्येष्ठस्त्वं वरिष्ठस्त्वं त्वं सहिष्णुश्च माधवः ।
सहस्रशीर्षा त्वं देवस्त्वमव्यक्तः सहस्रदृक् ॥१५५
सहस्रपादस्त्वं देवस्त्वं विराटत्वं सुरप्रभुः ।
त्वमेव तिष्ठसे भूयो देवदेव दशाङ्गुलः ॥१५६
यद्भूतं तत्त्वमेवोक्तः पुरुषः शक्र उत्तमः ।
यद्भाव्यं तत्त्वमीशानस्त्वमृतस्त्वं तथाऽमृतः ॥१५७
त्वत्तो रोहत्ययं लोको महीयांस्त्वमनुत्तमः ।
त्वं ज्यायान्पुरुषस्त्वं च त्वं देव दशधा स्थितः ॥१५८
त्रिभूतश्चतुर्भागो नवभागोऽमृतो दिवि ।
नवभागान्तरिक्षस्थः पौरुषेयः सनातनः ॥१५९
भागद्वयं च भूसंस्थं चतुर्भागोऽप्यभूदिह ।
त्वत्तो यज्ञाः संभवन्ति जगतो वृष्टिकारणम् ॥१६०
त्वत्तो विराट्समुत्पन्नो जगतो हृदि यः पुमान् ।
सोऽतिरिच्यत भूतेभ्यस्तेजसा यशसा श्रिया ॥१६१

हे भगवन् ! आप सवसे वड़े हैं सवसे श्रेष्ठ हैं-आप सहनशील-रमा के स्वामी-सहस्र-शीर्षों वाले-सहस्र-नेत्रों वाले अव्यक्त देव हैं ।।१५५।। आप सहस्र चरणों से युक्त सुरों के स्वामी-विराट् देव हैं । हे देवों के भी देव ! आप दशागुल हैं और महा प्रलय के पश्चात् आप ही स्यित रहते हैं ।।१५६।। हे भगवन् ! जो हो गया वह आप ही हैं-आप ही पुरुष-महेन्द्र और उत्तम हैं-जो भविष्य में होने वाला है वह आप ही हैं-ईशान और अमृत भी आप ही हैं ।।१५७।। हे भगवन् ! यह विश्व एवं लोक आप से ही उत्पन्न होता है-आप सवसे महान् तथा उत्तम हैं । आप सवसे वड़े पुरुष हैं । हे देव ! आप दश प्रकार से स्थित हैं---विश्वभूत,चतुर्भाग, नवभाग, दिवलोक में अमृत-अन्तरिक्ष में स्थित नवभाग-पौरुषेय-सनातन-दो भाग भूमि में स्थित-यहां पर भी चतुर्भाग हैं । हे भगवन् ! आप से यज्ञों की उत्पत्ति होती है । इस जगत् की वृष्टि के कारण हैं ।।१५८-१६०।। हे भगवन् ! आपसे ही यह विराट् समुत्पन्न हुआ है-जो पुमान जगत् के हृदय में है वह आप ही हैं । वही आप अपने तेज से, यश से और श्री से सब भूतों से अतिरिक्त हैं ।।१६१।।

त्वत्तो सुराणामाहारः पृषदाज्यमजायत ।
ग्राम्यारण्याश्चौषधयस्त्वत्तः पशुमृगादयः ।।१६२
ध्येध्यानपरस्त्वं च कृतवानसि चौषधीः ।
त्वं देवदेव सप्तास्य कालाख्यो दीप्तविग्रहः ।।१६३

जङ्गमाजङ्गमं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।
त्वत्तः सर्वमिदं जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।१६४
अनिरुद्धस्त्वं माधवस्त्वं प्रद्युम्नः सुरारिहा ।
देव सवसुरश्रेष्ठ सर्वलोकपरायण ।।१६५

त्राहि मामरविन्दाक्ष नारायण नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते भगवन्विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ।।१६६
नमस्ते सर्वलोकेशनमस्ते कमलालय ।
गुणालय नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु गुणाकर १६७।।

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम ।
जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सनातन ॥१६८

हे भगवन् ! आप से ही देवों को आहार प्राप्त होता है और पृषद् आज्य उत्पन्न हुए हैं। हे भगवन् ! ग्रामों में होने वाली तथा वन में उत्पन्न होने वाली औषधियाँ और पशु मृग आदि सब आपसे ही हुए हैं ॥१६२॥ ध्यम और ध्यान परायण है आप तथा आपने ही सब औषधियों का निर्माण किया है। हे देव देव ! आप सात मुखों वाले दीप्त विग्रह से युक्त काल नाम वाले हैं ॥१६३॥ हे भगवन् ! जड और चेतन स्वरूप यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आप से ही समुत्पन्न हुआ है और सब कुछ आप ही में प्रतिष्ठित है ॥१६४॥ हे भगवन् ! आप ही अनिरुद्ध हैं-माधव हैं-प्रद्युम्न हैं और सुरारि दैत्यों के हन्ता हैं। हे देव ! आप सुरों में श्रेष्ठ और सब लोकों में परायण हैं ॥१६५॥ हे कमल के लोचनों वाले ! हे नारायण ! मेरी रक्षा करो। मेरा आपके लिये नमस्कार है। हे भगवन् ! हे विष्णो ! हे पुरुषोत्तम ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है ॥१६६॥ हे सर्वलोकेश्वर ! आपका आलय कमल में रहता है आपकी सेवा में बारम्बार नमस्कार है। हे गुणों के आलय ! हे गुणों की खान ! आपको बारम्बार नमस्कार समर्पित है। हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है। हे सुरोत्तम ! आपको प्रणाम है। हे जनार्दन ! हे सनातन ! आपकी सेवा में पुन पुन नमस्कार है ॥१६७-१६८॥

नमस्ते योगिनां गम्य योगावास नमोऽस्तु ते ।
गोपते श्रीपते विष्णो नमस्तेऽस्तु मरुत्पते ॥१६९

जगत्पते जगत्सूते नमस्ते ज्ञानिनां पते ।
दिवस्पते नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु महीपते ॥१७०
नमस्ते मधुहन्त्रे च नमस्ते पुष्करेक्षण ।
कैटभघ्न नमस्तेऽस्तु सुब्रह्मण्य नमोऽस्तु ते ॥१७१

नमोऽस्तु ते महामीन श्रुतिपृष्ठधराच्युत ।
समुद्रसलिलक्षोभ पद्मजाह्लादकारिणे ॥१७२

अश्वशीर्ष महाघोण महापुरुषविग्रह ।
मधुकटभहन्त्रे च नमस्ते तुरगानन ॥१७३
महाकमठभोगाय पृथिव्युद्धरणाय च ।
विधृताद्रिस्वरूपाय महाकूर्माय ते नमः ॥१७४
नमो महावराहाय पृथिव्युद्धारकारिणे ।
नमश्चाऽऽदिवराहाय विश्वरूपाय वेधसे ॥१७५

हे योगावास ! आप योगियों के द्वारा जानने के योग्य हैं। हे गोपते ! हे श्रीपते ! हे विष्णो ! हे मरुत्पते ! आपके लिये नमस्कार है । हे जगत् के स्वामिन् ! आप ही इस जगत् को प्रसूत किया करते हैं । आप ज्ञानियों के स्वामी हैं आपको प्रणाम अर्पित है । हे दिवस्पते ! हे मही के स्वामिन् ! आपको नमस्कार है ।।१६८-१७०।। हे पुष्करेक्षण ! मधु दैत्य के हनन करने वाले के लिये प्रणाम है । हे सुब्रह्मण्य ! आप कैटभ दैत्य के हनन कर्त्ता हैं आपको बारम्बार प्रणाम है ॥१७१॥ हे महामीन ! आप श्रुतियों को मत्स्यावतार धारण करके अपनी पीठ पर धारण करने वाले हैं । हे अच्युत ! आपकी सेवा में बारम्बार नमस्कार अर्पित है । हे समुद्र के सलिल में क्षोभ करने वाले ! पद्मजा (महालक्ष्मी) के आह्लाद करने वाले आपको प्रणाम है ॥१७२॥ हे अश्व के सदृश मस्तक वाले ! हे महती नासिका वाले ! आपका विग्रह महान् पुरुष के तुल्य है । हे तुरगानन आपको नमस्कार है । महा कमठ भोग और पृथिवी के उद्धार करने वाले एवं विधृतादि स्वरूप वाले महा कूर्म आपके लिये नमस्कार है ॥१७३-१७४॥ महावराह भूमि के उद्धारकारी-विश्वरूप तथा आदि वराह वेधा के लिये नमस्कार है ॥१७५॥

नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय मुख्याय च वराय च ।
परमाणुस्वरूपाय योगिगम्याय ते नमः ॥१७६
तस्मै नमः कारणकारणाय,
योगीन्द्रवृत्तनिलयाय सुदुर्विदाय ।
क्षीरार्णवाश्रितमहाहिसुतल्पगाय,
तुभ्यं नमः कनकरत्नसुकुण्डलाय ॥१७७

इत्थं स्तुतस्तदा तेन प्रीतः प्रोवाच माधव ।
क्षिप्रं ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ मत्तो यदभिवाञ्छसि ॥१७८

ससारेऽस्मिञ्जगन्नाथ दुस्तरे लोमहर्षणे ।
अनित्ये दु खबहुले कदलीदलसंनिभे ॥१७६

निराश्रये निरालम्बे जलबुद्बुदचञ्चले ।
सर्वोपद्रवसंयुक्ते दुस्तरे चातिभैरवे ॥१८०
भ्रमामि सुचिरं काल मायया मोहितस्तव ।
न चान्तमभिगच्छामि विषयासक्तमानसः ॥१८१

त्वामहं चाद्य देवेश ससारभयपीडित. ।
गतोऽस्मि शरण कृष्ण मामुद्धर भवार्णवात् ॥१८२

अनन्त, सूक्ष्म, मुख्य, वैर, परमाणु स्वरूप, और योगियो के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करने के योग्य आपके लिये नमस्कार है ॥१७६॥ कारणो के भी कारण, योगीन्द्रो में वृत्त के निलय, मुदुमिद, क्षीर सागर मे आश्रित महान् अहि की (शेष) शय्या पर शयन करने वाले और सुवर्ण के निर्मित रत्नो से युक्त कुण्डलो के धारी आपके लिये नमस्कार है ॥१७७॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—उस समय मे इस रीति से उसके द्वारा स्तुति किये जाने पर भगवान् माधव बहुत ही प्रसन्न होते हुए बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! जो भी कुछ तुम मुझ से चाहते हो वह मुझे शीघ्र बतलाओ ॥१७८॥ कण्डु मुनि ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! यह समार बहुत ही दुस्तर एव रोमाचित कर देने वाला तथा बहुत दु खों से भरा हुआ कदली के पत्ते के सदृश है एव अनित्य है । यह ससार बिना आश्रय वाला निरालम्ब, अनेक उपद्रवो से युक्त दुस्तर और जल के बुलबुले के समान अत्यन्त भैरव है । इस ऐसे भीषण ससार मे आपकी माया से मोहित होकर बहुत समय से भ्रमण कर रहा हूँ । इसका कहीं भी कोई अन्त मैं नही जानता हूँ और न पहुँच पाता हूँ क्योकि मेरा मन सासारिक विषयो मे आसक्त हो रहा है ॥१७६-१८१॥ हे देवेश्वर ! इस ससार के भय से पीडित हो रहा हूँ हे श्रीकृष्ण ! आज ही मुझे यह

सुअवसर मिला है कि आपकी शरणागति में प्राप्त हो गया हूं। इस संसार रूपी सागर से मेरा उद्धार कीजिए ॥१८२॥

गन्तुमिच्छामि परमं पदं यत्तो सनातनम् ।
प्रसादात्तव देवेश पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१८३
भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ ममाराधय नित्यशः ।
मत्प्रसादाद्ध्रुवं मोक्षं प्राप्स्यसि त्वं समोहितम् ॥१८४
मद्भक्ताः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातिजाः ।
प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम ॥१८५
श्वपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ।
प्राप्नोत्यभिमतां सिद्धिमन्येषां तत्र का कथा ॥१८६
एवमुक्त्वा तु तं विप्राः स देवो भक्तवत्सलः ।
दुर्विज्ञेयगतिर्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयतः ।।१८७
गते तस्मिन्मुनिश्रेष्ठाः कण्डुः संहृष्टमानसः ।
सर्वान्कामान्परित्यज स्वस्थचित्तो भवत्पुनः ॥१८८
सर्वेन्द्रियाणि संयम्य निर्ममो निरहंकृतिः ।
एकाग्रमानसः सम्यग्ध्यात्वा तं पुरुषोत्तमम् ॥१८९

हे देवेश ! जो आपका सनातन परम पद है उसी को मैं गमन करना चाहता हूँ जो कि पुनरावृत्ति इस संसार में नहीं किया करता है अतएव वह परम दुर्लभ है। आपकी ही कृपा से वहाँ मैं जा सकता हूं ॥१८३॥ श्री भगवान् ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम मेरे परम भक्त हो और नित्य ही मेरी समाराधना करो। मेरे प्रसाद से तुम विश्वास रक्खो कि अपने अभीष्ट मोक्ष की प्राप्ति निश्चय ही कर लोगे ॥१८४॥ हे द्विजोत्तम ! मेरे जो भक्त होते हैं वे चाहे क्षत्रिय हों, वैश्य हों, स्त्री या शूद्र और अन्त्यज हों परम सिद्धि को प्राप्त किया करते हैं जिसमें तुम श्रेष्ठ विप्र हो, तुम्हारे विषय मे तो कहना ही क्या है ॥१८५॥ यदि मेरा भक्त हो और वह श्वपाक भी हो तथा भली भाँति श्रद्धा से समन्वित हो तो वह भी अभिमत सिद्धि को प्राप्त कर लेता है फिर अन्यों के विषय में तो कहना ही क्या है ॥१८६॥ श्री व्यासदेव जी ने कहा—हे विप्रो !

इस प्रकार से उससे कहकर यह भक्तवत्सल देव वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे जिन विष्णु भगवान् की गति दुर्विज्ञेय थी ॥१८७॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उनके चले जाने अर्थात् अन्तर्धान होने पर कण्डु मुनि के मन को बहुत प्रसन्नता हुई थी और फिर उसने समस्त कामनाओं का त्याग करके स्वस्थ चित्तता प्राप्त कर ली थी ॥१८८॥ वह सब अपनी इन्द्रियों पर संयम रखकर ममता से रहित और अहङ्कार से शून्य हो गया था। एकाग्र मन वाला होकर उन्हीं पुरुषोत्तम प्रभु का उसने ध्यान किया था ॥१८९॥

निर्लेप निर्गुण शान्त सत्तामात्रव्यवस्थितम् ।
अवाप परम मोक्ष सुराणामपि दुर्लभम् ॥१९०
य पठेच्छृणुयाद्वाऽपि कथा कण्डोर्महात्मनः ।
विमुक्त सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोक स गच्छति ॥१९१
एव मया मुनिश्रेष्ठा. कर्मभूमिरुदाहृता ।
मोक्षक्षेत्र च परम देव च पुरुषोत्तमम् ॥१९२

ये पश्यन्ति विभु स्तुवन्ति वरद -
ध्यायन्ति मुक्तिप्रद ।
भक्त्या श्रीपुरुषोत्तमाख्यमजर -
ससारदु खापहम् ॥१९३
ते भुक्त्वा मनुजेन्द्रभोगममला -
स्वर्गे च दिव्य सुख ।
पश्चाद्यान्ति समस्तदोषरहिता -
स्थान हरेरव्ययम् ॥१९४

निर्लेप, निर्गुण, शान्त, सत्तामात्र मे व्यवस्थित सुरो को भी अत्यन्त दुर्लभ उसने परम मोक्ष को प्राप्त कर लिया था ॥१९०॥ इन महान् आत्मा वाले कण्डु मुनि की पावन कथा को जो कोई श्रवण करता है अथवा पाठ करता है वह समस्त पापो से मुक्त हो जाता है अन्त मे वह स्वर्ग लोक का निवास प्राप्त किया करता है ॥१९१॥ हे मुनियो मे परम श्रेष्ठ पुरुषो ! इस प्रकार से मैने इस कर्मभूमि का वर्णन कर दिया है।

मैंने परम मोक्ष क्षेत्र का तथा पुरुषोत्तम देव का भी वर्णन करके बतला दिया है ॥१६२॥ जो लोग वरदान प्रदान करने वाले विभु का दर्शन करते हैं तथा उनकी स्तुति किया करते हैं और मुक्तिप्रद का ध्यान किया करते हैं जो कि पुरुषोत्तम नाम वाले अजर और सांसारिक दुःखों के अपहरण करने वाले हैं। उनकी भक्ति से भक्त दर्शन किया करते हैं ॥१६३॥ वे पुरुष मनुजेन्द्रो (राजाओं) के भोगों का उपभोग करके निर्मल होते हुए स्वर्ग के दिव्य सुख को भोगा करते हैं। इसके उपरान्त सब दोषों से रहित होते हुए श्री हरि के अव्यय पद को गमन किया करते हैं ॥१६४॥

वराहावतारवर्णन

अहो कृष्णस्य माहात्म्यमद्भुतं चातिमानुषम् ।
रामस्य च मुनिश्रेष्ठ त्वयोक्तं भुवि दुर्लभम् ॥१
न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तो भगवत्कथाम् ।
तस्माद्ब्रूहि महाभाग भूयो देवस्य चेष्टितम् ॥२
प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमित तेजसः ।
सतां कथयतामेष वराह इति नः श्रुतम् ॥३
न जानीमोऽस्य चरितं न विधिं न च विस्तरम् ।
न कर्मगुणसद्भावं न हेतुत्वमीषितम् ॥४
किमात्मको वराहोऽसौ का मूर्तिः का च देवता ।
किमाचारप्रभावो वा किंवा तेनतदा कृतम् ॥५
यज्ञाथ समवेतानां मिषतां च द्विजन्मनाम् ।
महावराहचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥६
यथा नारायणो ब्रह्मन्वाराहं रूपमास्थितः ।
दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दनः ॥७

मुनियों ने कहा--अहो ! भगवान् कृष्ण का अतिमानुष अर्थात् मानवी शक्ति से परे अद्भुत माहात्म्य है। हे मुनिश्रेष्ठ ! और आपने इस भूमण्डल में दुर्लभ श्री राम का भी माहात्म्य बतला दिया है। दोनो ही माहात्म्य वर्णित कर दिये हैं ॥१॥ तथापि भगवान् की कथा का श्रवण करते हुए भी हम लोग पूर्णतया तृप्ति नही पा रहे हैं। अतएव हे महाभाग ! और एक बार देवेश्वर का चेष्टित वर्णित कीजिए ॥२॥ अपरिमित तेज वाले भगवान् विष्णु का पुराणों मे प्रादुर्भाव वराह है ऐसा हमने सुना है और वह सत्पुरुषों को कहते हुए ही श्रवण किया है ॥३॥ इनके चरित्र को हम नहीं जानते हैं और न इनका विधान तथा विस्तार ही हमको ज्ञात है। इनके कर्म और गुण के सद्भाव को तथा अनीपित हेतुत्व को ही हम नही जानते हैं अर्थात् इनके अवतार का कारण एव गुण और कर्मों का ज्ञान हमको नही है ॥४॥ यह वराह किस स्वरूप वाले हैं--इनकी मूर्त्ति कैसी है तथा यह कौन देव हैं। क्या इनका आचार एव प्रभाव है अथवा उन्होने उस समय मे क्या किया था ? ॥५॥ यज्ञ के लिये एकत्रित मिप करते हुए द्विजन्माओं को महान् वराह का चरित सब लोकों को सुख देने वाला है ॥६॥ हे ब्रह्मन् ! जिस तरह से नारायण न वराह के स्वरूप को धारण किया था और अरियो के मर्दन करने वाले प्रभु ने दाढ से समुद्र मे स्थित भूमि का उद्धार किया था ॥७॥

विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुघातिन ।
थ्रोतु नो वर्तते वुद्धिर्हरे: कृष्णस्य धीमत: ॥८
कर्मणामानुपूर्व्या च प्रादुर्भावाश्च ये विभो ।
या वाऽस्य प्रकृतिर्ब्रह्म स्ताश्चाऽऽख्यातुं त्वमर्हसि ॥९
प्रश्नभारो महानेप भवद्भि: समुदाहृत: ।
यथाशक्त्या तु वक्ष्यामि श्रूयतां वैष्णवं यश: ॥१०
विष्णो: प्रभावश्रवणे दिष्ट्या वो मतिरुत्थिता ।
तस्माद्विष्णो: समस्ता वै शृणुध्वं या: प्रवृत्तय: ॥११
सहस्रास्यं सहस्राक्षं सहस्रचरणं च यम् ।
सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमव्ययम् ॥१२

सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम् ।
सहस्रदं सहस्रादिं सहस्रभुजमव्ययम् ॥१३
हवनं सवनं चैव होतारं हव्यमेव च ।
पात्राणि च पवित्राणि वेदिं दीक्षां समित्स्रुवम् ॥१४

परम धीमान् हरि श्री कृष्ण के जो रिपुओं का संहार करने वाले थे, विस्तार से समस्त कर्मों का श्रवण करने की हमारी वुद्धि हो रही है ॥८॥ हे विभो ! आनुपूर्वी से कर्म्मों के जो भी प्रादुर्भाव हैं अथवा जो इनकी प्रकृति है हे ब्रह्मन् ! उसको आप वर्णन करने के योग्य होते हैं ॥९॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—यह तो वहुत बड़ा प्रश्नों का भार आप लोगों ने मेरे सामने कह दिया है। मैं अपनी शक्ति के अनुसार कहूँगा। आप लोग भगवान् विष्णु के यश का श्रवण करिए ॥१०॥ यह बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि श्री विष्णु के प्रभाव के श्रवण करने के लिये आपकी बुद्धि उठी है। अतएव अब आप भगवान् विष्णु की समस्त प्रवृत्तियों को सुनो ॥११॥ वेदों के वेत्ता विद्वान् पुरुष यज्ञ में प्रभु के स्वरूप को सहस्र मुखों वाला-सहस्र नेत्रों वाला-सहस्र चरणों वाला-सहस्र शिर वाला-सहस्र करों वाला-और अव्यय कहते हैं ॥१२॥ एक सहस्र जिह्वाओं से युक्त-सहस्र मुकुटों वाला-सहस्र देने वाला-सहस्रादि-सहस्र भुजाओं वाला-अव्यय उनका स्वरूप है ॥१३॥ हवन-सवन-होता-हव्य-पवित्र पात्र-वेदी दीक्षा-समिधा-स्रुव ये सभी उन्हीं प्रभु का स्वरूप है ॥१४॥

स्रुवसोमसूर्यमुशलं प्रोक्षणीं दक्षिणायनम् ।
अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सदः ॥१५
यूपं चक्रं ध्रुवां दर्वीं चरूंश्चोलूखलानि च ।
प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं च परं च यत् ॥१६
ह्रस्वाण्यतिप्रमाणानि स्थावराणि चराणि च ।
प्रायश्चित्तानि वाऽर्घ्यं च स्थण्डिलानि कुशास्तथा ॥१७
मन्त्रयज्ञवहं वह्निं भागं भागवहं च यत् ।
अग्रासिनं सोमभुजं हुतार्चिषमुदायुधम् ॥१८

आहुर्वेदविदो विप्रा य यज्ञे शाश्वत प्रभुम् ।
तस्य विष्णो सुरेशस्य श्रीवत्साङ्कस्य धीमत ॥१९
प्रादुर्भावसहस्राणि समतीतान्यनेकशः ।
भूयश्च व भविष्यन्ति ह्येवमाह पितामहः ॥२०
यत्पृच्छध्व महाभागा दिव्या पुण्यामिमा कथाम् ।
प्रादुर्भावाश्रिता विष्णोः सर्वपापहरा शिवाम् ॥२१

स्रुक्, सोम, सूर्य, मूशल, प्रोक्षणी, दक्षिणायन, अध्वर्यु, सामग विप्र, सदस्य, सदन, सद, यूप, चक्र, ध्रुवा, दर्वी, चरु, उलूखल, प्राग्वश, यज्ञ भूमि, होता, परह्लस्व, एव अत्यधिक प्रमाण वाले स्थावर तथा चर प्रायश्चित्त, अर्घ्य, स्थण्डिल, कुशा, मन्त्र, यज्ञ का वहन करने वाली वह्नि, भाग, भागवह, अग्रासिन, सोम भुज, हुतार्चिष, उदायुध इन सब मे यज्ञ एव वेदा के ज्ञाता जिन शाश्वत प्रभु को कहते है इन्ही सुरो के ईश श्री वत्स के चिह्नो से अङ्कित धीमान् विष्णु के सहस्रो प्रादुर्भाव हैं । जिनमे अनेक तो व्यतीत हो चुके हैं । फिर और भी होगे—इस प्रकार से पितामह ने कहा था ॥१५-२०॥ हे महाभागो ! जो आप लोग पूछ रहे हैं वह परम पुण्यमयी दिव्य कथा है और यह विष्णु भगवान् के प्रादुर्भाव के ही आश्रित, मङ्गलमयी तथा सब पापो के हरण करने वाली है ॥२१॥

शृणुध्व ता महाभागास्तद्गतेनान्तरात्मना ।
प्रवक्ष्याम्यानुपूर्व्येण यत्पृच्छध्वं ममानघा ॥२२
वासुदेवस्य माहात्म्य चरित च महामतेः ।
हितार्थं सुरमर्त्याना लोकाना प्रभवाय च ॥२३
बहुश. सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति वीर्यवान् ।
प्रादुर्भावाश्च वक्ष्यामि पुण्यान्दिव्यान्गुणान्विनान् ॥२४
सुप्तो युगसहस्र यः प्रादुर्भवति कार्यत ।
पूर्णे युगसहस्रेऽथ देवदेवो जगत्पति. ॥२५
ब्रह्मा च कपिलश्चैव त्र्यम्बकस्त्रिदशास्तथा ।
देवाः सप्तर्षयश्चैव नागाश्चाप्सरसस्तथा ॥२६

सनत्कुमारश्च महानुभावो,
मनुर्महात्मा भगवान्प्रजाकरः ।
पुराणदेवोऽथ पुराणि चक्रे,
प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥२७

योऽसौ चार्णवमध्यस्थो नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
नष्टे देवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥२८

हे महान् भाग वालो ! उसका श्रवण करो । तद्गत अन्तरात्मा के द्वारा मैं उसको आनुपूर्वी से अर्थात् बिल्कुल आरम्भ से लेकर पूर्ण बताऊँगा जो कि हे अनघो ! मुझसे आप लोग पूछ रहे हो ॥२२॥ मैं महामति वासुदेव के चरित और माहात्म्य को देवों तथा मनुष्यों के हित के लिये और लोकों के प्रभव के लिये कहता हूं ॥२३॥ वे समस्त भूतों के आत्मा वीर्य वाले बहुत बार प्रादुर्भाव किया करते हैं । मैं उनके परम दिव्य एवं गुणगण से समन्वित प्रादुर्भावों को बतलाऊँगा ॥२४॥ सहस्रों युगों तक शयन करने वाले जो कार्य से प्रादुर्भाव किया करते हैं जबकि युगों की एक सहस्र संख्या पूर्ण हो जाती है तभी देवों के भी देव इस जगत् के पति प्रादुर्भाव हुआ करते हैं ॥२५-२६॥ महानुभाव सनत्कुमार-महात्मा मनु-भगवान् प्रजाकर समुत्पन्न हुए थे तथा प्रदीप्त अग्नि के समान तेज वाले पुराण देव ने पुरों की रचना की थी ॥२७॥ यह वह है जो देव-असुर और मनुष्यों के विनष्ट हो जाने पर, उरग तथा राक्षसों के क्षय हो जाने पर और चर-अचर सबके नाश के हो जाने पर सागर के मध्य में संस्थित हो जाया करते हैं ॥२८॥

योद्धुकामौ दुराधर्षौ तावुभौ मधुकैटभौ ।
हतौ भगवता तेन तयोर्दत्त्वाऽमितं वरम् ॥२९
पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि ।
पुष्करे तत्र सभूता देवाः सर्षिगणास्तथा ॥३०

एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ।
पुराणं कथ्यते यत्र देवश्रुतिसमाहितम् ॥३१

वाराहस्तु श्रुतिमुख प्रादुर्भावो महात्मन ।
यत्र विष्णु सुरश्रेष्ठो वाराह रूपमास्थित ॥३२
वेदपादो यूपदंष्ट्र क्रतुदन्तश्चितीमुख ।
अग्निजिह्वा दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपा ॥३३
अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वेदाङ्ग श्रुतिभूषण ।
आज्यनास स्रुवतुण्ड सामघोपस्वरो महान् ॥३४
सत्यधर्ममय श्रीमान्क्रमविक्रमसत्कृत ।
प्रायश्चित्तनखो घोर पशुजानुमुखाकृति ॥३५

मधु और कटभ नाम वाले दो असुर बहुत ही दुराधष थे अर्थात् असह्य प्रताप वाले थे। वे दोनों युद्ध करने की इच्छा वाले थे। उन दोनों को अपरिमित वरदान प्रदान करके उन भगवान् ने उन दोनों को मार डाला था ॥२६॥ पुरातन समय में सागर के जल के मध्य में शयन करने वाले कमल नाभि रखने वाले प्रभु के पुष्कर में वहाँ पर समस्त ऋषिगण के साथ देव समुत्पन्न हुए थे ॥३०॥ जहाँ पर देव और श्रुति से समाहित पुराण का कथन किया जाता है यह पौष्कर नाम वाला महात्मा का प्रादुर्भाव हुआ था ॥३१॥ वराह तो श्रुति के मुख वाला महात्मा का प्रादुर्भाव था। जहाँ पर श्रुति श्रेष्ठ भगवान् विष्णु वराह के स्वरूप में समास्थित हुए थे ॥३२॥ वराह का स्वरूप बतलाया जाता है—वेद ही उनके चार चरण थे यूप दंष्ट्रा थी, क्रतु दाँत थे चिती ही मुख था। अग्नि जिह्वा थी दर्भ (कुशा) ही रोम थे और ब्रह्म मस्तक था तथा महान् तपस्वी स्वरूप था ॥३३॥ दिन और रात्रि दोनों नेत्र थे। वराह का स्वरूप परम दिव्य एवं वेदाङ्ग और श्रुति के भूषण वाला था। आज्य (घृत) ही उनकी नासिका थी स्रुव तुण्ड था, सामवेद का घोष ही उनका महान् स्वर था ॥३४॥ सत्य धर्म से परिपूर्ण, श्रीमान् क्रम विक्रम से सत्कृत, प्रायश्चित्तों के नखों वाला, घोर पशुओं के जानुओं वाली मुखाकृति थी ॥३५॥

उद्गतान्त्रो होमलिङ्गो बीजौषधिमहाफल ।
वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फिग्विकृत सोमशोणित ॥३६

वेदिस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वितः ॥३७
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ।
उपाकर्माष्टरुचकः प्रवर्गावर्तभूषणः ॥३८
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ।
छायापत्नीसहायोऽसो मणिशृङ्ग इवोत्थितः ॥३६
महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ।
एकार्णवजलभ्रष्टामेकार्णवगतः प्रभुः ॥४०
दंष्ट्रया यः समुद्धृत्य लोकानां हितकाम्यया ।
सहस्रशीर्षो लोकादिश्चकार जगतीं पुनः ॥४१
एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ।
उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुधरा पुरा ॥४२

उद्धत अन्त्रों से युक्त, होम के लिङ्ग वाला, बीज ओषधि के महान् फल वाला, वादी ही उसकी अन्तरात्मा थी तथा मन्त्र स्फिक् से बिकार युक्त, सोम के शोणित वाला वराह का स्वरूप था ॥३६॥ वेदी उसके स्कन्ध थे, हवि गन्ध था, हव्य, कव्य अत्यन्त वेगों से समन्वित, प्राग्वंश की काया वाला, द्युतिमान् और दीक्षाओं से संयुत स्वरूप था ॥३७॥ दक्षिणा के हृदय वाला, योगी, महान् सबसे परिपूर्ण, महान्, उपाकर्म के अष्ट रुचक वाला, प्रवर्ग के आवर्त्त से युक्त भूषण वाला, वराह का स्वरूप था ॥३८॥ अनेक छन्द ही गति पथ थे, गुह्य उपनिषदों के आसन वाला, छाया रूपिणि पत्नी की सहायता से युक्त मणि के शृङ्ग की भाँति समुत्थित हुए थे ॥३६॥ शैलों, वनों और काननों के सहित सागर तक एकार्णव में परिभ्रष्ट हुई को उस महा सागर में जाकर जिस प्रभु ने अपनी दाढ़ से लोकों के हित की कामना से उठाकर सहस्र शीर्ष वाले ने जो लोकों का आदि स्वरूप है इस जगत् को पुनः किया था ॥४०-४१॥ इस तरह से यज्ञ वराह के स्वरूप को धारण करके प्राणियों के हित के चाहने वाले पुरातन समय में सागर के जल को धारण करने वाली पृथिवी देवी को उद्धृत किया था ॥४२॥

वाराह एप कथितो नारसिंहस्ततो द्विजा: ।
यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हत. ॥४३
पुरा कृतयुगे नाम सुरारिर्बलदर्पित: ।
दैत्यानामादिपुरुपश्चकार सुमहत्तप ॥४४
दश वर्पसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।
जपोपवासनिरतस्तस्थौ मौनव्रतस्थित ॥४५
तत: शमदमाभ्या च ब्रह्मचर्येण चैव हि ।
प्रीतोऽभवत्ततस्तस्य तपसा नियमेन च ॥४६
त वै स्वयम्भूर्भगवान्स्वयमागम्य भो द्विजा. ।
विमानेनार्कवर्णेन हसयुक्तेन भास्वता ॥४७
आदित्यैर्वसुभि सार्धं मरुद्भिर्दैवतैस्तथा ।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिंनरै: ॥४८
दिशाभि: प्रदिशाभिश्च नदीभि सागरैस्तथा ।
नक्षत्रैश्च मुहुर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहै: ॥४९

यह वराह नाम से कहे गये है। हे द्विजगण ! इसके पश्चात् नारसिंह प्रादुर्भूव हुए थे जहा पर मृगेन्द्र का स्वरूप धारण करके उनने हिरण्यकशिपु का हनन किया था ॥४३॥ प्राचीन काल मे कृतयुग मे सुरो के घोर शत्रु-अपने बल के दर्प से भरा हुआ दैत्यो के आदि पुरुष उस हिरण्यकशिपु ने महान तप किया था ॥४४॥ वह तपश्चर्या साढे ग्यारह हजार वर्षो तक की थी और जप तथा उपवासो मे एक दम से लग्न होकर मौन व्रत मे रहते हुए वह स्थित हो गया था ॥४५॥ इतने समय तक तप करने के पश्चात् वह शम-दम और ब्रह्मचर्य के परिपालन से युक्त हो गया था। इसके उपरान्त उसके महान उग्र तप से और नियमो के पालन करने से भगवान् स्वयभु बहुत प्रसन्न हो गये थे ॥४६॥ हे द्विजो ! फिर स्वयम्भू भगवान् ने वहा पर स्वय समागत होकर उससे कहा था। स्वयम्भू प्रभु सूर्य के सदृश और हसों से युक्त विमान के द्वारा वहा पर पधारे थे जो कि अत्यन्त भास्वर वर्ण वाला था ॥४७॥ उनके साथ मे आदित्य वर्ग, वसुगण, मरुद्गण, देवो का समूह, रुद्रगण, विश्व

सहायक, यक्ष, राक्षस, किन्नर, दिशा, प्रदिशा, नदियाँ, सागर, नक्षत्र, मुहूर्त्त, खेचर और महाग्रह सभी थे ॥४८-४९॥

देवर्षिभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैर्विद्वद्भिरेव च ।
राजर्षिभिः पुण्यतमैर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥५०
चराचरगुरुः श्रीमान्वृतः सर्वैः सुरैस्तथा ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥५१
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेन सुव्रत ।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥५२
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
ऋषयो वाऽथ मां शापैः क्रुद्धा लोकपितामह ॥५३
शपेयुस्तपसा युक्ता वर एष वृतो मया ।
न शस्त्रेण न वाऽस्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ॥५४
न शुष्केण न चाऽऽर्द्रेण न चैवोर्ध्वं न चाप्यधः ।
पाणिप्रहारेणैकेन स भृत्यबलवाहनम् ॥५५
यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति ।
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः ॥५६
सलिलं चान्तरिक्षं च आकाशं चैव सर्वशः ।
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणा वासवो यमः ॥
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥५७

ब्रह्माजी के चारों ओर, देवर्षि गण, तपो वृद्ध, सिद्ध, विद्वद्गण आदि सभी सुरों का समुदाय था । राजर्षि, पुण्यतम गन्धर्व और अप्सराओं के गणों से वे श्रीमान् समावृत थे । ब्रह्म के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ चराचर गुरु ब्रह्माजी यहां आकर उस दैत्य से यह वचन बोले थे-॥५०-५१॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा था—हे सुव्रत ! मेरे परम भक्त तेरे इस महान् उग्र तप से मैं बहुत ही अधिक प्रसन्न हो गया हूं । तुम्हारा कल्याण होगा । मुझसे वरदान की याचना कर लो जो भी कुछ तुम्हारे मन की अभीष्ट कामना हो उसे प्राप्त कर लो ॥५२॥ हिरण्य कशिपु ने कहा—हे लोकों के पिता-

मह ! मैं आपसे यही वरदान चाहता हूं कि देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस, अथवा ऋषिगण क्रुद्ध होकर मुझे भी शाप न देवें अर्थात् उनके शापों का कुछ भी प्रभाव मेरे ऊपर न होवे। शस्त्र से, अस्त्र से, गिरि से, पादप से, चाहे वह शुष्क हो या गीला ही हो, ऊपर के भाग से, नीचे के हिस्से से भृत्य बल के वाहन मुझको जो एक हाथ के प्रहार से नष्ट करने के लिये समर्थ हो वह मेरी मृत्यु नहीं होगी। मैं ही सूर्य, सोम, वायु, अग्नि, सलिल, अन्तरिक्ष, और आकाश सभी ओर हो जाऊं। मैं क्रोध, काम, वरुण, वासव (इन्द्र), यम, धनद, धन का स्वामी किन्नु रथाधिप यक्ष हो जाऊं ॥५३-५७॥

एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुता ।
सर्वान्कामानिमांस्तात प्राप्स्यसि त्वं न संशय ॥५८
एवमुक्त्वा तु भगवाञ्जगामाऽऽशु पितामह ।
वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥५९
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा ।
वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिता ॥६०
वरेणानेन भगवन्बाधिष्यति स नोऽसुर ।
तत्प्रसीदाऽऽशु भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥६१
भगवन्सर्वभूतानां स्वयंभूरादिकृत्प्रभु ।
स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तं प्रकृतिर्ध्रुवम् ॥६२
ततो लोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापति ।
प्रोवाच भगवान्वाक्यं सर्वदेवगणांस्तथा ॥६३

श्री ब्रह्माजी ने कहा—ये सब दिव्य वर हैं हे तात ! यद्यपि ये वर बहुत ही अद्भुत हैं तो भी मैंने आपको दे दिये हैं। हे तात ! इन सभी कामनाओं को तुम अवश्य ही प्राप्त कर लोगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥५८॥ श्री व्यासजी ने कहा—इस रीति से कहकर भगवान् पितामह वहां से शीघ्र ही चले गये थे और वे ब्रह्मर्षि गणों के द्वारा सेवित वैराज ब्रह्म सदन में पहुंच गये थे ॥५९॥ इसके उपरान्त देवता, नाग, गन्धर्व और मुनिगण सब इस प्रकार के वर प्रदान को श्रवण करके

ही सीधे पितामह के समीप में उपस्थित हो गये थे ॥६०॥ देवगण ने कहा—हे भगवन् ! इस वरदान के प्रभाव से जो उस दैत्य को आपने दिया है वह असुर हम सबको मार डालेगा सो हे भगवन् ! हमारे ऊपर प्रसन्न होइये और इसके वध को भी कोई उपाय सोचिए ॥६१॥ हे भगवन् ! समस्त भूतों के आप स्वयम्भू आदि वर्त्ता है और प्रभु हैं। आप हव्य कव्यों के सृजन करने वाले हैं तथा आप अव्यक्त निश्चित रूप से प्रकृति हैं ॥६२॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—प्रजापति देव ने लोकों के हितकर वाक्य का श्रवण किया था और फिर भगवान् ने समस्त देवगणों से कहा था ॥६३॥

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ।
तपसोऽन्ते च भववान्वधं विष्णुः करिष्यति ॥६४
एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्य पङ्कजजन्मनः ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विताः ॥६५
लब्धमात्रे वरे चापि सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ॥६६
आश्रमेषु महाभागान्मुनीन्वै संशितव्रतान् ।
सत्यधर्मरतान्दान्तांस्तदा धर्षितवांस्तथा ॥६७
त्रिदिवस्थांस्तथा देवान्पराजित्य महाबल ।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति सोऽसुरः ॥६८
यदा वरमदोन्मत्तो विचरन्दानवो भुवि ।
यज्ञीयानकरोद्दैत्यानयज्ञोयाश्च देवताः ॥६९
आदित्या वसवः साध्या विश्वे च मरुतस्तथा ।
शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ॥७०
देवब्रह्ममयं यज्ञं ब्रह्मदेवं सनातनम् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च प्रभुं लोकनमस्कृतम् ॥
नारायणं विभुं देवं शरण्यं शरणं गताः ॥७१

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे देवगणो ! उसको दिये हुए अपने तप का फल तो अवश्य ही प्राप्त होना चाहिए। इस तपश्चर्या के फल के

अन्त मे भगवान् विष्णु इसका स्वयं ही वध करेंगे ॥६४॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—पङ्कज से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्माजी के वचन को सुन कर सभी सुरगण प्रसन्नता से युक्त होकर अपने २ दिव्य स्थानो को चले गये थे ॥६५॥ उस दैत्य ने वरदान के प्राप्त होने के साथ ही समस्त प्रजा को बाधाएँ पहुचाने लग गया था। वह हिरण्यकशिपु दैत्य वरदान पाकर बहुत ही अधिक दर्पित (घमण्डी) हो गया था ॥६६॥ वह मुनियो के आश्रमो मे संशित व्रत वाले महाभाग मुनियो को जो सत्य धर्म मे निरत रहा करते थे उस समय मे उन दमनशील मुनियो को वह धर्षित करता था ॥६ ॥ महान् बल वाला वह स्वर्ग मे रहने वाले देवो को पराजित करके सब पर विजेता हो गया था और तीनो लोको को अपने वश मे करके वह असुर फिर स्वर्ग मे निवास करने लग गया था ॥६८॥ जिस समय मे वरदान प्राप्त करने के मद से उन्मत्त वह दानव भूमण्डल मे विचरण करता हुआ सर्वत्र आ जा रहा था उस समय म उसने जो यज्ञीय अर्थात् यज्ञ के भाग को ग्रहण करने वाले देवता थे उनको अयज्ञीय अर्थात् यज्ञ भाग को न ग्रहण करने वाले बना दिया था और दैत्यो को यज्ञीय कर दिया था ॥६९॥ आदित्य, वसुगण, साध्य, विश्वेदेवा, मरुद्गण सब शरण मे समागत की रक्षा करने वाले महा बलवान् भगवान् विष्णु की सेवा मे पहुच कर उपस्थित हो गये थे ॥७०॥ देव-ब्रह्म स परिपूर्ण, यज्ञ स्वरूप, ब्रह्मदेव, सनातन, भूत, भव्य, भविष्य, लोको के द्वारा वन्दित, विभु, देव और शरण्य भगवान् नारायण की शरणागति मे हो गये थे ॥७१॥

त्रायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात् ।
त्वं हि न. परमो देवस्त्वं हि न परमो गुरुः ॥७२
त्वं हि न परमो धाता ब्रह्मादीना सुरोत्तम ।
उत्फुल्लामलपत्राक्ष शत्रुपक्षक्षयंकर ॥
क्षयाय दितिवंशस्य शरणं त्वं भवस्व न. ॥७३
भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् ।
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिलप्स्यथ मा चिरम् ॥७४

एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ।
अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्मि तम् ॥७५

एवमुक्त्वा तु भगवान्विसृज्य त्रिदशेश्वरान् ।
हिरण्यकशिपोः स्थानमाजगाम महाबलः ॥७६
नरस्यार्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः ।
नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ॥७७

देवों ने कहा—हे भगवन् ! हे देवेश्वर ! आज हम सबकी हिरण्यकशिपु के भय से रक्षा कीजिए । आप ही हमारे परम देव हैं और आप ही हमारे परम गुरु हैं ॥७२॥ हे भगवन् ! आप ही हमारे परम धाता हैं जो हम सब ब्रह्मा आदि है । आप सुरों में सबसे उत्तम हैं । हे विकसित कमल के दल के समान नेत्रों वाले ! आप शत्रु के पक्ष का क्षय करने वाले हैं । दिति के वंश के क्षय के लिये आप हमारे रक्षक हो जाइये ॥७३॥ श्री वासुदेव भगवान् ने कहा—हे देवो ! आप लोग भय का त्याग कर दो । मैं आप लोगों को अभय प्रदान करता हूँ । हे देवगणो ! आप अपने स्वर्ग को बहुत ही शीघ्र पूर्व की भाँति ही प्राप्त कर सुख प्राप्त करोगे और इसमें अब अधिक विलम्ब नहीं है ॥७४॥ यह मैं ही स्वयं गण के सहित और वरदान पाकर घमण्ड से भरे हुए दैत्य को मार दूँगा जो दानवेन्द्र देवों के द्वारा भी अवध्य है ॥७५॥ श्री व्यासजी ने कहा—इस प्रकार से भगवान् ने देवगण से कहकर उनको विदा कर दिया था और महान् बलवान् वे हिरण्यकशिपु के स्थान पर आगये थे ॥७६॥ प्रभु ने अपना आधा शरीर तो नर का बनाया था और आधा शरीर सिंह का बना लिया था । इस तरह से नारसिंह शरीर के द्वारा हाथ से हाथ का स्पर्श किया था ॥७७॥

घनजीमूतसंकाशो घनजीमूतनिस्वनः ।
घनजीमूतदीप्तौजा जीमूत इव वेगवान् ॥७८

दैत्यं सोऽतिबलं दृष्ट्वा दृप्तशार्दूलविक्रमः ।
दृप्तैर्दैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना ॥७९

नृसिंह एष कथितो भूयोऽयं वामनः परः ।
यत्र वामनमास्थाय रूपं दैत्यविनाशनम् ॥८०

दलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा ।
विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः ॥८१

विप्रचित्ति शिवः शङ्कुरय शङ्कुस्तथैव च ।
अय शिरा अश्वशिरा हयग्रीवश्च वीयवान् ॥८२

वेगवान्केतुमानुग्र सोग्रव्यग्रो महासुरः ।
पुष्करः पुष्कलश्चैव शा (सा श्वोऽश्वपतिरेव च ॥८३

प्रह्लादोऽश्वपति कुम्भः सह्लादा गमनप्रियः ।
अनुह्लादो हरिहयो वाराहः सहरोऽनुजः ॥८४

वह नरसिंह प्रभु सघन मेघ के समान शरीर के वर्ण वाले थे और घन मेघ के ही तुल्य गर्जना करने वाले थे। सघन मेघ के सदृश दीप्त ओज से सयुत और जो बादल के समान वेग वाले थे ॥७८॥ दर्प से युक्त शार्दूल के सदृश विक्रम वाले उन नरसिंह प्रभु ने अत्यन्त घमण्डी दैत्यों के समुदाय से रक्षित अत्यन्त बल वाले दैत्य को एक ही हाथ से मार गिराया था ॥७९॥ यह नृसिंह कहे गये थे। यह भूप दूसरे वामन हैं। जहा पर दैत्यो के विनाश करने वाले वामन के रूप मे आस्थित होकर प्राचीन समय मे बली राजा बलि के यज्ञ मे बलवान् विष्णु ने तीन ही कदमो से उन समस्त महान् असुरो को क्षोभित कर दिया था ॥८०-८१॥ अब उन प्रसिद्ध असुरो के नाम बतलाये जाते हैं जिन्होने नरसिंह प्रभु के सामने युद्ध करके पराजय तथा हनन प्राप्त किया था। विप्रचित्ति, शिव, शकु, अय शकु, अय शिरा, अश्व शिरा, हयग्रीव जो बड़ा वीर्यवान् था—वेगवान्, केतुमान्, उग्र, सोग्रव्यग, महासुर, पुष्कर, पुष्कल, शाश्व, अश्वपति, प्रह्लाद, अश्वपति, कुम्भ, सह्लाद, गमन प्रिय, अनुह्लाद, हरिहय, वाराह और सहर एवं अनुज ये सब दैत्य थे ॥८२-८४॥

शरभः शलभश्चैव कुपयः क्रोधनः क्रथः ।
बृहत्कीर्तिर्महाजिह्व शङ्कुकर्णो महास्वन ॥८५

दीप्तजिह्वोऽर्कनयनो मृगपादो मृगप्रियः ।
वायुर्गरिष्ठो नमुचिः सम्बरो विस्करो महान् ।।८६
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च ।
कालकः कालकोपश्च वृत्रः क्रोधो विरोचनः ।।८७
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ ।
इन्द्रतापनवातापि केतुमान्बलदर्पितः ।।८८
असिलोमा पुलोमा च बाष्कलः प्रमदो मदः ।
स्वमिश्रः कालवदनः करालः केशिरेव च ।।८९
एकाक्षश्चन्द्रमा राहुः संह्लादः सम्बरः स्वनः ।
शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुशलपाणयः ।।९०
अश्मयन्त्रायुधोपेता भिन्दिपालायुधास्तथा ।
शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वधधरास्तथा ।।९१

इनके अतिरिक्त शरभ, शलभ, कुपथ, क्रोधन, क्रथ, बृहत्कीर्त्ति, महाजिह्व, शंकुकर्ण, महास्वन, दीप्तजिह्व, अर्कनयन, मृगपाद, मृगप्रिय, वायु, गरिष्ठ, नमुचि, सम्बर, विस्कर, महान्, चन्द्र हन्ता, क्रोधहन्ता, क्रोधवर्धन, कालक, काल कोप, वृत्र, क्रोध, विरोचन, गरिष्ठ, वरिष्ठ, प्रलम्ब, नरक, इन्द्र, तापन, वातापी, वलदर्पित केतुमान्, असिलोमा पुलोमा, वाष्कल, प्रमद, मद, स्वमिश्र, कालवदन-कराल-केशि-एकाक्ष-चन्द्रमा-राहु-संह्लाद सम्बर, स्वन, शतघ्नी, चक्रहस्ता, हाथ में मुसलधारी, अश्मयन्त्र आयुधों से युक्त, भिन्दिपाल के आयुध वाले, मूल, उलूखल हाथों में रखने वाले, परशुधारी सब असुर थे ।।८५-९१।।

पाशमुद्गरहस्ताश्च तथा परिघपाणयः ।
महाशिलाप्रहरणाः शूलहस्ताश्च दानवाः ।।९२
नानाप्रहरणा घोरा नानावेशा महाबलाः ।
कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ।।९३
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ।
मार्जारशिखिवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथा परे ।।९४

नक्रमेषाननाः शूरा गोजाविमहिषाननाः ।
गोधाशल्लकिवक्त्राश्च क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवाः ॥९५
आखुदर्दुरवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा ।
भामा मकरवक्त्राश्च क्रोञ्चवक्त्राश्च दानवाः ॥९६
अश्वानना खरमुखा मयूरवदनास्तथा ।
गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ॥९७
चीरसंवृतगात्राश्च तथा नीलकवाससः ।
उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः ॥९८

उन असुरों में विभिन्न अस्त्रधारी थे । कुछ पाश और मुद्गर हाथो मे लिये हुए थे । हाथो मे परिघ ग्रहण करने वाले थे । महाशिलाओ के प्रहरण वाले, कुछ दानव हाथों म शूल मे युक्त थे, विभिन्न प्रहरण वाले, घोर, अनेक वशो वाले, महान् बल वाले, कूर्म तथा कुक्कुट के मुख वाले, शश और उलूक के समान मुख से युक्त, खर (गधा), ऊट के तुल्य मुखो वाले, वराह के समान वदनो से सयुत, गीदड के जैसे मुखो से युक्त नदाव, अश्वानन, खरमुख, मयूर वदन, गजेन्द्र के समान चर्म और वस्त्रो वाले, काले मृग के चर्म के तुल्य वसनो वाले, चीरों से ढके हुए शरीर वाले, नीले वस्त्रो से सयुत, उष्णीषि (पागो वाले), मुकुट धारी और कुण्डल पहिने हुए असुर थे ॥९२-९८॥

किरीटिनो लम्बशिखा कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः ।
नानावेशधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः ॥९९
स्वान्यायुधानि संगृह्य प्रदीप्तानि च तेजसा ।
क्रममाणं हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः ॥१००
प्रमथ्य सर्वान्दैतेयान्पादहस्ततलैर्विभुः ।
रूपं कृत्वा महाभीमं जहाराऽऽशु स मेदिनीम् ॥१०१
तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ।
नभः प्रक्रममाणस्य नाभ्यां किल तथा स्थितौ ॥१०२
परमाक्रममाणस्य जानुदेशे व्यवस्थितौ ।
विष्णोरमितवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः ॥१०३

हृत्वा स मेदिनीं कृत्स्नां हत्वा चासुरपुंगवान् ।
ददौ शक्राय वसुधां विष्णुर्बलवतां वरः ॥१०४
एष वो वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ।
वेदविद्भिर्द्विजैरेतत्कथ्यते वैष्णवं यशः ॥१०५

किरीटी, लम्ब शिख, अम्बुग्रीव, सुवर्चा, अनेक वेशधर, नाना माल्य और विविध अनुलेपन वाले दैत्य थे। समस्त उपर्युक्त नाम धारी तथा मुखाकृति से युक्त तेज से प्रदीप्त अपने २ आयुधों को लेकर क्रमण करते हुए हृषीकेश पर सभी ओर से आक्रमण करने लग गये थे ॥६६-१००॥ विभु ने पैर और हाथों के तले से उन सब दैत्यों का मथन करके महान् भीम (भयानक) अपना स्वरूप बना लिया था और भूमि को छीनकर शीघ्र उसका उद्धार किया था ॥१०१॥ भूमिके चारों ओर विक्रमण करने वाले स्तनों के बीच में चन्द्र और सूर्य थे। नभो मण्डल में क्रममाण होने वाले उनकी नाभि में आकाश की स्थिति थी ॥१०२॥ द्विजातिगण ऐसा कहते थे कि उन अपरिमित वीर्य वाले भगवान् विष्णु के जानुदेश में सबकी व्यवस्थिति थी ॥१०३॥ बलवानों में परम श्रेष्ठ भगवान् विष्णु ने सम्पूर्ण भूमि का हरण करके तथा सब असुरों के समुदाय का विहनन कर दिया था और उस सम्पूर्ण भूमि को इन्द्र देव को प्रदान कर दिया था ॥१०४॥ उस महात्मा का यह वामन नाम वाला प्रादुर्भाव था। वेदों के ज्ञाता द्विजों के द्वारा यह वैष्णव यश कहा जाया करता है ॥१०५॥

भूयो भूतात्मनो विष्णोः प्रादुर्भावो महात्मनः ।
दत्तात्रेय इति ख्यातः क्षमया परयायुतः ॥१०६
तेन नष्टेषु वेदेषु प्रक्रियासु मखेषु च ।
चातुर्वर्ण्ये च संकीर्णे धर्मे शिथिलतां गते ॥१०७
अतिवर्धति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते ।
प्रजासु शीर्यमाणासु धर्मे चाऽऽकुलतां गते ॥१०८
सयज्ञाः सक्रिया वेदाः प्रत्यानीता हि तेन वै ।
चातुर्वर्ण्यमसंकीर्णं कृतं तेन महात्मना ॥१०९

तेन हैहयराजस्य कार्तवीर्यस्य धीमत ।
वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता ॥११०
एतद्‌बाहुद्वय यत्ते तत्त मम कृते नृप ।
शतानि दश बाहूना भविष्यन्ति न सशय ॥१११
पालयिष्यसि कृत्स्ना च वसुधा वसुधेश्वर ।
दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दाना युद्धस्थश्च भविष्यसि ॥११२

फिर उस भूतात्मा महात्मा विष्णु भगवान् का प्रादुर्भाव दत्तात्रेय इस नाम से विख्यात हुआ था जो परमाधिक क्षमा से युक्त था ॥१०६॥ उस समय मे उसने ही सबका उद्धार किया था। जब सब वेद, वैदिक प्रक्रिया, मख नष्ट हो गये थे तथा वर्णों की व्यवस्था का लोप हो गया था और धर्म शिथिल हो गया था। उस समय मे अधर्म बढ गया था-सत्य विनष्ट हो गया था मिथ्या का ही सबसे बढाव हो रहा था। सब प्रजा विशीर्ण हो रही थी और धर्म आकुलता को प्राप्त हो गया था ॥१०७-१०८॥ उसी समय मे उन भगवान् ने यज्ञ और प्रक्रिया के सहित समस्त वेदो का पुन आनयन किया था तथा उन महात्मा ने चातुर्वर्ण्य को सङ्कीर्णता से रहित कर दिया था ॥१०६॥ परम धीमान् हैहय कार्त-वीर्य को बुद्धिमान वरद दत्तात्रेय ने वर दिया था ॥११०॥ उन्होंने कहा था कि हे नृप ! ये जो दो बाहु तुम्हारी हैं वे मेरे लिये हैं तुम्हारी एक सहस्र बाहुएँ होगी-इसमकुछ भी सशय नही है ॥१११॥ उन्होने कार्त्तवीर्य से कहा था कि हे वसुधेश्वर ! तुम इस सम्पूर्ण भूमि का पालन करोगे और शत्रुओ के समूहके सामने युद्ध स्थल मे स्थित होकर दुर्निरीक्ष्य हो जाओगे अर्थात् कोई भी शत्रु तुमको देखने की भी शक्ति नही रख सकेगा ॥११२॥

एष वो वैष्णव श्रीमान्प्रादुर्भावोऽद्‌भुत शुभ ।
भूयश्च जामदग्न्योऽय प्रादुर्भावो महात्मन ॥११३
येन बाहुसहस्रेण द्विषता दुर्जय रणे ।
रामोऽर्जुनमनीकस्थ जघान नृपति प्रभु ॥११४
रथस्थ पार्थिव राम पातयित्वार्जुन भुवि ।
धर्षयित्वाऽर्जुन रामक्रोशमान च मेघवत् ॥११५

कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः ।
परश्वधेन दीप्तेन ज्ञातिभिः सहितस्य वै ॥११६

कीर्णा क्षत्रियकोटीभिमरुमन्दरभूषणा ।
त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता ॥११७

कृत्वा निःक्षत्रियां चैनां भार्गवः सुमहायशाः ।
सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेन चेष्टवान् ॥११८
यस्मिन्यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः ।
मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुंधराम् ॥११९

यह भगवान् विष्णु का परम शुभ-श्री समन्न अत्यन्त अद्भुत प्रादुर्भाव था । इसके पश्चात् उन महात्मा का एक जामदग्न्य प्रादुर्भाव हुआ था । जहाँ पर युद्ध में एक सहस्र बाहुओं से द्वेषियों का दुर्जय उस नृपति सहस्राजुंन को सेना के मध्य में स्थित होने पर राम (परशुराम) प्रभु ने मार डाला था ॥११३-११४॥ राम ने रथ में स्थित उस राजा अजुंन को भूमि में गिराकर मेध के समान गर्जन करते हुए को धर्षित करके भृगुनन्दन ने पूरी एक सहस्र भुजाओं का छेदन कर दिया था और उस दीप्त परशु से जाति के सब लोगों का भी हनन कर दिया था ॥११५-११६॥ उन प्रभु जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने बहुत से क्षत्रियों के द्वारा समाकीर्ण, मेरु तथा मन्दर पर्वतों के भूपण वाली इस पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से रहित कर दिया था अर्थात् खोज-बीन करके क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार किया था ॥११७॥ महान् यशस्वी भार्गव ने इस भूमि को क्षत्रियों से विहीन करके अन्त में इस महान् हनन के सम्पूर्ण पापों के विनाश करने के लिये वाजिमेध यज्ञ का यजन किया था ॥११८॥ भृगुनन्दन ने जिस यज्ञ में महादान में दक्षिणा के स्वरूप में मरीचि के पुत्र कश्यप के लिये प्रसन्न होते हुए पूर्ण वसुन्धरा का दान कर दिया था ॥११९॥

वारणांस्तुरगाञ्शुभ्रान्रथांश्च रथिनां वरः ।
हिरण्यमक्षयं धेनुर्गजेन्द्रांश्च महीपतिः ॥१२०

ददौ तस्मिन्महायज्ञे वाजिमेधे महायशा ।
अद्यापि च हितार्थाय लोकाना भृगुनन्दन ॥१२१

चरमाणस्तपो घोर जामदग्न्य पुन प्रभु ।
आस्त व देववच्छ्रीमान्महेन्द्रे पवतोत्तमे ॥१२२
एप विष्णो सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च ।
जामदग्न्य इति ख्यात प्रादुर्भावो महात्मन ॥१२३

चर्तुविशे युगे वाऽपि विश्वामित्रपुर सर ।
जज्ञे दशरथस्याथ पुत्र पद्मायतेक्षण ॥१२४
कृत्वाऽत्मान महावाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वर ।
लोक राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपम ॥१२५

प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसा निग्रहाय च ।
धमस्य च विवृद्धयर्थं जज्ञ तत्र महायशा ॥१२६

रथियो मे परम श्रेष्ठ महान् यशस्वी राजा ने उस महान् यज्ञ अश्वमेध मे विप्रो के लिये हाथी, घोडे, शुभ्र रथ, अक्षय सुवर्ण धेनु, और गजेन्द्रो को दान म प्रदान किये थे। उस भृगुनन्दन के द्वारा दिये हुए महान् दान का प्रभाव लोको के हित के लिये अभी तक भी विद्यमान है ॥१२० १२१॥ फिर जामदग्न्य प्रभु घोर तप का समाचरण करते हुए वे श्रीमान् पवतो म उत्तम महेन्द्र पर देवता की भाँति विराजमान हैं ॥१२२॥ यह सुरो के स्वामी शाश्वत, अव्यय महात्मा विष्णु भगवान् का प्रादुर्भाव (अवतार) जामदग्न्य, इस शुभ नाम से विख्यात हुआ है ॥१२३॥ चौबीसवें युग में विश्वामित्र क सहित पद्म दल के सदृश विशाल लोचनो वाले पुत्र ने राजा दशरथ के यहा पर जन्म ग्रहण किया था ॥१२४॥ उन महान् बाहुओ वाले प्रभु ईश्वर ने अपने आपको चार भागो मे विभक्त कर दिया है जो कि वह प्रभु इस लोक म "श्रीराम"—इस नाम से तेज के द्वारा भास्कर के तुल्य विख्यात हुए थे ॥१२५॥ लोकों के प्रसादन के लिये और राक्षसो के विग्रह तथा धम की वृद्धि के लिये वे महा यशस्वी समुत्पन्न हुए थे ॥१२६॥

तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतहिते रतम् ।
यः समाः सवधर्मज्ञश्चतुर्दश वनेऽवसत् ॥१२७
लक्ष्मणानुचरो रामः सर्वभूतहिते रतः ।
चतुर्दश वने मप्त्वा तपो वर्षाणि राघवः ॥१२८
रूपिणी तस्य पाश्र्वस्था सीतेति प्रथिता जने ।
पूर्वोदिता तु या लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति ॥१२९
जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशानां चकार सः ।
तस्यापकारिणं क्रूरं पौलस्त्यं मनुजर्षभः ॥१३०
सीताया पदमन्विच्छन्निजघान महायशाः ।
देवासुरगणानां च यक्षराक्षसभोगिनाम् ॥१३१
यत्रावध्यं राक्षसेन्द्रं रावणं युधि दुर्जयम् ।
युक्तं राक्षसकोटीभिर्नीलाञ्जनचयोपमम् ॥१३२
त्रैलोक्यद्रावणं क्रूरं रावणं राक्षसेश्वरम् ।
दुर्जयं दुर्धरं दृप्तं शार्दूलसमविक्रमम् ॥१३३

उनको भी समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाले को मनुष्येन्द्र कहते हैं जो सब धर्मों के ज्ञाता चौदह वर्ष पर्यन्त वन में वास करने वाले हुए थे ॥१२७॥ श्रीराम के अनुचर लक्ष्मण थे जो सब भूतों के हित में रति रखने वाले थे। राघवेन्द्र ने वन में चौदह वर्ष तक तप किया था अर्थात् वनवास की कठिन तपस्या की थी ॥१२८॥ उनके पार्श्व भाग में स्थित रूप लावण्य वाली सीता—इस नाम से लोगों में प्रख्यात थी। पूर्व में जो वतलाई गयी थी वही लक्ष्मी भर्त्ता का अनुगमन कर रही थी ॥१२९॥ उन श्री राघवेन्द्र ने जन स्थान में निवास करते हुए देवों का कार्य किया था। महान् यशस्वी उन मनुष्यों में परम श्रेष्ठ राघव प्रभु ने उसके उपकार करने वाले, महान् क्रूर पौलस्त्य (रावण) को सीताजी के चरणों के पीछे २ खोज करके गमन कर मार दिया था। यह रावण सब देव, असुर, यक्ष, राक्षस और उरगों के द्वारा अवध्य था अर्थात् मारने की शक्ति के वाहिर था उस नीले अञ्जन के ढेर के समान वर्ण वाले, राक्षसों से समन्वित, युद्ध में निर्जित न होने वाले, त्रिलोकी को

द्रवण (भयभीत) करने वाले राक्षसेन्द्र रावण को श्रीराम ने मारा था जो राक्षसेश्वर दुर्जय, दुर्धर, दृप्त (महा घमण्डी) और शार्दूल के सदृश विक्रम वाला था ॥१३०-१३३॥

दुर्निरीक्ष्य सुरगणैर्वरदानेन दर्पितम् ।
जघान सचिवं' सार्धं ससैन्यं रावणं युधि ॥१३४
महाभ्रगणसंकाशं महाकायं महाबलम् ।
रावणं निजघानाऽऽशु रामो भूतपतिः पुरा ॥१३५
सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबलः ।
वाली विनिहतः सख्ये सुग्रीवश्चाभिषेचितः ॥१३६
मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानवः ।
हतो मधवने वीरो वरमत्तो महासुरः ॥१३७
यज्ञविघ्नकरो येन मुनीनां भावितात्मनाम् ।
मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिना वरौ ॥१३८
निहतो च निराशो च कृतो तेन महात्मना ।
समरे युद्धशौण्डेन तथाऽन्ये चाहि राक्षसा ॥१३६
विराधश्च कबन्धश्च राक्षसौ भीमविक्रमौ ।
जघान पुरुषव्याघ्रो गन्धर्वौ शापमोहितौ ॥१४०

वह रावण ब्रह्माजी से प्राप्त वरदान के कारण बहुत ही दर्प वाला हो रहा था और उस महान् घमण्डी को सुरगण देख भी नहीं सकते थे—ऐसा तेजस्वी था। उसी रावण को सेना के सहित तथा सचिवों से युक्त को श्री राम ने युद्ध में मार दिया था ॥१३४॥ प्राचीन समय में समस्त भूतों के स्वामी श्री राघवेन्द्र प्रभु ने महान् मेघ गण के तुल्य, महान् विशाल वपु वाले, महान् बलवान् रावण को बहुत ही शीघ्र मार गिराया था ॥१३५॥ जिन श्री राम ने अपने परम मित्र एवं महान् भक्त सुग्रीव के हित के लिये महान् बलशाली वानरों के राजा बालि को युद्ध में मार दिया था और सुग्रीव को उसके राज्यासन पर अभिषिक्त कर दिया था ॥१३६॥ मधु दैत्य के पुत्र का नाम लवण था और वह दानव बहुत ही

घमण्डी था। वह भी वरदान प्राप्त कर बहुत ही मद से मत्त हो रहा था और वह वीर महान् असुर मधुवन में ही मारा गया था ॥१३७॥ परम भावित आत्मा वाले मुनि गणों के यज्ञों में विघ्न-बाधा डालने वाले और बड़े बल धारियों में भी महान् बल वाले मारीच और सुबाहु थे उन महात्मा ने अपने बल के द्वारा उन दोनों को निराश कर दिया था और मार डाला था। इस भाँति से युद्ध में महान् शौण्ड (वीर) श्रीराम ने समर में अन्य भी राक्षसों का वध कर दिया था ॥१३८-१३९॥ बहुत ही भयानक विक्रम से युक्त विराध और कवन्ध दो राक्षस थे ये पूर्व में गन्धर्व थे और शाप से मोहित होकर राक्षस हो गये थे। इनको उन्हीं पुरुष व्याघ्र श्रीराम ने मार दिया था ॥१४०॥

हुताशनार्कांशुतडिद्गुणाभैःप्रतप्तजाम्बूनदचित्रपुङ्खैः ।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यसारै निपून्स रामः समरे निजघ्ने ॥१४१

तस्मै दत्तानिशस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता ।
वधार्थं देवशत्रूणां दुर्धर्षाणां सुरैरपि ॥१४२

वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः ।
भग्नं माहेश्वरं चापं क्रीडता लीलया पुरा ॥१४३

एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृतां वरः ।
दशाश्वमेधाञ्जारूथ्यानाजहार निरर्गलान् ॥१४४

नाश्रूयन्ताशुभा वाचो नाऽऽकुलं मारुतोववौ ।
न वित्तहरणं चाऽऽसीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥१४५

परिदेवन्ति विधवा नानर्थाश्च कदाचन ।
सर्वमासीच्छुभं तत्र रामे राज्यं प्रशासति ॥१४६

न प्राणिनां भयं चाऽऽसीज्जलाग्न्यनिलघातजम् ।
न चापि वृद्धावालानां प्रेतकार्याणि चक्रिरे ॥१४७

उन श्री राघवेन्द्र प्रभु ने युद्ध स्थल में अपने समस्त शत्रुओं को अग्नि और सूर्य की किरणों के तथा विद्युत् के समान आभा वाले एवं तपे हुए सुवर्ण के समान सार रखने वाले अपने आयुधों से मार गिराया था ॥१४१॥ सुरगणों के द्वारा भी महान् दुर्धर्ष अर्थात् न दवाये जाने वाले

देवो के शत्रुओ के वध के लिये परम धीमान् श्री विश्वामित्र ऋषि ने अद्भुत शस्त्र श्री राम को प्रदान किये थे ॥१४२॥ जिन श्री राम ने महात्मा जनक नृप के वर्तमान मख मे पुरातन समय मे खेल ही खेल मे क्रीडा करते हुए भगवान् महेश्वर के धनुष को भङ्ग कर दिया था ॥१४३॥ धर्मधारियो में श्रेष्ठ श्री राम ने ये सब कर्म करके निरर्गल जारथ्य दशाश्व मेघ यज्ञो को किया था ॥१४४॥ श्री राम के शासन काल मे कही पर भी कोई अशुभ वाणी नही सुनी जाती थी और कभी भी आकुल वायु वहन नही किया करती थी श्री राम के प्रशासन करने के समय मे कही पर भी धन का अपहरण नही होता था ॥१४५॥ विधवाऐं परिदेवन , रुदन) नही करती थी और कभी भी कही अनर्थ नही होते थे । श्री राघवेन्द्र प्रभु के शासन करने के समय मे उनके राज्य में सभी शुभ हुआ करता था अतएव 'रामराज्य' सुख-शुभ के लिये अभी तक परम प्रख्यात है ॥१४६॥ श्री रामचन्द्र जी के राज्य मे प्राणियो को जल-अग्नि अनिल से उत्पन्न कोई घात करने वाला भय नही था । वृद्ध अपने बालको के प्रेत कर्म भी नही किया करते थे । तात्पर्य यह है कि वृद्धो के रहते हुए उनसे छोटे बालको की मृत्यु नही होती थी ॥१४७॥

ब्रह्मचर्यपर क्षत्र विशस्तु क्षत्रिये रता: ।
शूद्राश्चैव हि वर्णा स्त्रीञ्शुश्रूषन्त्यनहङ्कृता. ॥१४८
नार्यो नात्यचरन्भर्तॄन्भार्या नात्यचरत्पति ।
सर्वमासीज्जगद्दान्त निर्दस्युरभवन्मही ॥१४९
राम एकोऽभवद्भर्ता राम: पालयिताऽभवत् ।
आसन्नृपसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिण: ॥१५०
अरोगा· प्राणिनश्चाऽऽसन्रामे राज्य प्रशासति ।
देवतानामृषीणा च मनुष्याणा च सर्वश ॥१५१
पृथिव्या समवायोऽभूद्रामे राज्य प्रशासति ।
गाथामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जना· ॥१५२
रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्य तस्य धीमत: ।
श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषित. ॥१५३

आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ।
दश वर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ॥१५४

क्षत्रिय लोग सब ब्रह्मचर्य व्रत में परायण रहते थे और वैश्य गण क्षत्रियों में रति रखते थे । शूद्र लोग श्री राम राज्य में अहङ्कार रहित होकर तीनों वर्णों की शुश्रूषा किया करते थे ॥१४८॥ नारियाँ अपने भर्त्ता के साथ अत्याचार नहीं किया करती थीं और पति लोग भी अपनी पत्नियों के साथ में अत्याचरण नहीं किया करते थे । विशेष क्या कहा जावे सम्पूर्ण जगत् ही आवास वृद्ध वनिता स्वरूप परम दान्त (दमनशील) था और समस्त भूमि में कहीं पर भी कोई दस्यु (ठग, डाकू) नहीं थे ॥१४९॥ श्री राम एक ही स्वामी थे और श्री राघव सबके पालन करने वाले थे । सहस्रों वर्षों तक वे रहे थे और सहस्रों पुत्रों वाले थे ॥१५०॥ श्री राम राज्य में सब प्राणी रोगों से रहित थे । श्री राम के द्वारा राज्य पर प्रशासन करने के समय में इस पृथिवी में देवों का, ऋषियों का और मनुष्यों का सभी ओर समवाय था । वे पुराणों के ज्ञाता लोग यहाँ पर उनकी गाथाओं का गायन भी किया करते हैं ॥१५१-१५२॥ ये गाथाएँ उन्हीं धीमान् श्री राम के माहात्म्य की थीं और ये पुराण वेत्ता श्री राम में निवद्ध रतिवाले थे । उनके शुभ नाम इस प्रकार से हैं–श्याम, युवा, लोहिताक्ष, दीप्तास्य, मित भाषित, आजानु बाहु, सुमुख, सिंह स्कन्ध, और महाभुज हैं । इनका अर्थ यह है–श्री राम श्याम वर्ण वाले थे–युवा (नौजवान) लाल नेत्रों वाले, दीप्ति से युक्त भुजाओं वाले, सुन्दर मुखाकृति से युक्त, सिंह के समान परिपुष्ट स्कन्धों वाले और महान् भुजाओं से संयुत । ये सब सुलक्षण श्री राम में होने से ही उन्हें उपर्युक्त नामों से कहा जाता था । श्री राम ने दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था ॥१५३-१५४॥

ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः ।
अव्युच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयतां भुज्यतामिति ॥१५५
सत्त्ववान्गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ।
अतिचन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्वभौ ॥१५६

ईजे क्रतुशतै पुण्यै' समाप्तवरदक्षिणै ।
हित्वाऽयोध्या दिव यातो राघवो हि महाबलः ॥१५७

एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः ।
रावण सगण हत्वा दिवमाचक्रमे विभुः ॥१५८

अपर केशवस्याय प्रादुर्भावो महात्मनः ।
विख्यातो माथुरे कल्पे सर्वलोकहिताय वै ॥१५९

यत्र शाल्व च चैद्य च कस द्विविदमेव च ।
अरिष्ट वृषभ केशि पूतना दैत्यदारिकाम् ॥१६०
नाग कुवलयापीड चाणूर मुष्टिक तथा ।
दैत्यान्मानुपदेहेन सूदयामास वीर्यवान् ॥१६१

श्री राम के राष्ट्र मे ऋक्-साम-यजुर्वेद का सर्वत्र घोष होता था और महान् आत्मा वाले श्री राम की धनुष की डोरी की ध्वनि भी अत्युत्कृष्ट रूप से होती रहती थी सर्वत्र दान दो और उपभोग करो-यही ध्वनि सुनाई दिया करती थी ॥१५५॥ महाराज दशरथ के पुत्र श्री राम दाशरथि सत्त्व शालि-गुणगणो से समन्वित-अपने ही तेज से देदीप्यमान तथा तेजस्विता से चन्द्र और सूर्य को भी तिरस्कृत कर देने वाले थे तथा परम शोभा से शोभित थे ॥१५६॥ श्री राम ने श्रेष्ठ दक्षिणाओं को देकर समाप्त किये जाने वाले पुण्यमय सैकडो ही क्रतुओ के द्वारा यजन किया था। महा बलशाली श्री राम अन्त मे अयोध्या को त्याग कर दिवलोक मे प्रस्थान कर गये थे ॥१५७॥ इसी रीति से बडी बाहुओ वाले इक्ष्वाकु नृप के कुल के नन्दन ने गणो के साथ रावण का हनन करके विभु दिवलोक को चले गये थे ॥१५८॥ उन्ही महात्मा केशव का यह एक दूसरा प्रादुर्भाव विख्यात हुआ था जो माथुर कल्प मे सब लोको के हित के लिये ही हुआ था ॥१५९॥ जिस अवतार मे शाल्व-चैद्य कस द्विविद-अरिष्ट वृषभ-केशि-पूतना जो दैत्य की ही दारिका (पुत्री) थी-नाग-कुवलया पीड-चाणूर-मुष्टिक इन सब दैत्यो को वीर्यवान् भगवान् ने इस मनुष्य देह द्वारा ही कर दिया था ॥१६०-१६१॥

छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्‌भुतकर्मणः ।
नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः ।।१६२

हृतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा ।
दुराचाराश्च निहिताः पार्थिवा ये महीतले ।।१६३
एष लोकहितार्थाय प्रादुर्भावो महात्मनः ।
कल्की विष्णुयशा नाम शम्भलग्रामसंभवः ।।१६४

सर्वलोकहितार्थाय भूयो देवो महायशाः ।
एते चान्ये च बहवो दित्या देवगणैर्वृताः ।।१६५
प्रादुर्भावाः पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः ।
यत्र देवा विमुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने ।।१६६

अत्यन्त अद्भुत कर्म वाले वाण के एक सहस्र वाहुओं का छेदन कर दिया था और युद्ध में नरक असुर तथा महान् वलवान् यवन को मार डाला था ।।१६२।। जो इस महीतल पर दुष्ट आचरण वाले नृप थे उन महीपों के समस्त रत्नों का हरण कर लिया था और अपने हो तेज के बल से उन सबको मार दिया था । यह उन महात्मा प्रभु का जो प्रादुर्भाव हुआ था वह पूर्णतया लोकों के हित के सम्पादन के ही लिये हुआ था । विष्णु यश वाले कल्की नामधारी थे जो शम्भल नामक ग्राम में उद्धृत हुए हैं ।।१६३-१६४।। पुनः महान् यश वाले देव ने सब लोगों के हित के ही लिये प्रादुर्भाव किया था । ये तथा अन्य बहुत से दिति के पुत्र देव गणों से समावृत प्रादुर्भाव हैं जो कि ब्रह्मवादियों के द्वारा पुराणों में गाये जाते हैं जहाँ पर देव भी प्रादुर्भावों के गुणगान में विमोहित हो जाया करते हैं और नहीं कर पाते है ।।१६५-१६६।।

पुराणं वर्तते यत्र वेदश्रुतिसमाहितम् ।
एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम् ।।१६७
कीर्तितं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोर्विभोः ।
प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्तनात् ।।१६८
विष्णोरमितवीर्यस्य यः शृणोति कृताञ्जलिः ।।१६९

एताश्च योगेश्वरयोगमाया,
श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः ।
ऋद्धिं समृद्धिं विपुलांश्च भोगा-
न्प्राप्नोति शीघ्रं भगवत्प्रसादात् ॥१७०
एवं मया मुनिश्रेष्ठा विष्णोरमिततेजसः ।
सर्वपापहरा पुण्याः प्रादुर्भावाः प्रकीर्तिताः ॥१७१

वेद और श्रुति से समाहित जहाँ पर पुराण वर्त्तमान हैं। इसी उद्देश मात्र में प्रादुर्भाव का अनुकीर्त्तन किया करते हैं ॥१६७॥ कीर्त्तन करने के योग्य, विभु, सब लोकों के गुरु का जो कीर्त्तित है उसके पितर प्रादुर्भाव के अनुकीर्त्तन से परम प्रसन्न होते हैं ॥१६८॥ अपरिमित बल-वीर्य वाले भगवान् विष्णु के प्रादुर्भाव का अनुकीर्त्तन जो कोई अञ्जलि बाधकर श्रवण किया करता है। ये सब योगेश्वर प्रभु की योगमाया है मनुष्य इनका श्रवण करके सब किए हुए पापों से मुक्त हो जाया करता है। भगवान् के प्रसाद से वह मनुष्य ऋद्धि समृद्धि बहुत से भोगों को बहुत शीघ्र प्राप्त कर लिया करता है ॥१६९-१७०॥ हे मुनि श्रेष्ठो! अमित तेज वाले भगवान् विष्णु के परम पुण्यमय और सब पापों के अप-हरण करने वाले प्रादुर्भावों को मैंने कहकर वर्णित कर दिया है ॥१७१॥

सदाचारवर्णन

एवं सम्यग्गृहस्थेन देवताः पितरस्तथा ।
संपूज्या हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबान्धवाः ॥१
भूतानि भृत्याः सकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः ।
भिक्षवो याचमानाश्च ये चान्ये पान्थका गृहे ॥२
सदाचाररता विप्राः साधुना गृहमेधिना ।
पापं भुङ्क्ते समुल्लङ्घ्य नित्यनैमित्तिकीं क्रियाम् ॥३
कथितं भवता विप्र नित्यनैमित्तिकं च यत् ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं कर्म पौरुषम् ॥४

सदाचारं मुने श्रोतुमिच्छामो वदतस्तव ।
यं कुर्वन्सुखमाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥५

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिरक्षणम् ।
न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र वा ॥६

यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये ।
भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते ॥७

श्री व्यास देवजी ने कहा—इस प्रकार से एक गृहस्थ के द्वारा हव्य कव्य से देवता और पितरों को भली भाँति पूजना चाहिए और अन्नके द्वारा अतिथि तथा बान्धवों का पूजन करे ॥१॥ इनके अतिरिक्त सब भूत, समस्त भृत्य, पशु, पक्षी, पिपीलिका, याचना करने वाले भिक्षुगण और जो राहगीर घर में हों उन सबका भी अर्चन करना चाहिए ॥२॥ साधु प्रकृति वाले सदाचारी विप्रों का भी अर्चन साधु गृहस्थ के द्वारा होना चाहिए। जो नित्य क्रियाएँ तथा नैमित्तिकी क्रियाएँ हैं उनका समुल्लङ्घन नहीं करे अन्यथा इनका उल्लङ्घन करने पर मनुष्य को पाप होता है और उसको भोगना भी पड़ता है ॥३॥ मुनिगण ने कहा—हे विप्र ! आपने जो नित्य और नैमित्तिक कर्म के विषय में कहा है वह तीन प्रकार के कर्म पौरुष हुआ करते हैं एक नित्य होता है दूसरा नैमित्तिक होता है और तीसरा काम्य कर्म हुआ करता है ॥४॥ हे मुने ! आपके मुख से हम अब सदाचार को श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं जिसको करते हुए मानव इस लोक में और परलोक में सुख की प्राप्ति किया करता है ॥५॥ श्री व्यास देव जी ने कहा— एक गृहस्थाश्रम में रहने वाले पुरुष को सदा ही आचार का परिरक्षण करना चाहिए। जो आचार से हीन होता है ॥६॥ यहां पर इस लोक में यज्ञ-दान और तपश्चर्या पुरुष की भूति के लिये नहीं होते हैं जब कि कोई सदाचार का उल्लङ्घन करके ये सब किया करता है। सदाचार से ही कल्याण हुआ करता है ॥७॥

दुराचारो हि पुरुषो नेहाऽऽयुर्विन्दते महत् ।
कार्यो धर्मः सदाचार आचारस्यैव लक्षलम् ॥८

तस्य स्वरूप वक्ष्यामि सदाचारस्य भो द्विजा. ।
आत्मनैकमना भूत्वा तथैव परिपालयेत् ॥६
त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्तव्यो गृहमेधिना ।
तत्ससिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च ॥१०
पादेनाप्यस्य पारत्र्य कुर्याच्छ्रेय' स्वमात्मवान् ।
अघन चाऽऽत्मभरण नित्यनैमित्तिकानि च ॥११
पादेनैव तथाऽप्यस्य मूलभूत विवर्धयेत् ।
एवमाचरतो विप्रा अर्थ. साफल्यमृच्छति ॥१२
तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्मं कार्यो विपश्चिता ।
परत्रार्थस्तथैवान्य कार्योऽत्रैव फलप्रद ॥१३
प्रत्यवायभयात्कामस्तथाऽन्यश्चाविरोधवान् ।
द्विधाकामोऽपि रचितस्त्रिवर्गस्याविरोधकृत् ॥१४

जो पुरुष दुष्ट एव दोषो से युक्त आचार वाला होता है वह यहा पर बडी आयु को भी प्राप्त नहीं किया करता है अर्थात् उसकी आयु क्षीण होकर कम हो जाती है । धर्म अवश्य ही करना चाहिए और सदाचार आचार का ही लक्षण होता है ॥८॥ हे द्विजो ' उस सदाचार का स्वरूप बतलाऊँगा । अपनी आत्मा के द्वारा एक मन वाला होकर उसी तरह से पूर्णतया उसका परिपालन करना चाहिए ॥६॥ गृहस्थ के द्वारा तीनो वर्ग (धर्म अर्थ काम) के साधन मे यत्न करना चाहिए । उस त्रिवर्ग की ससिद्धि मे इस लोक और परलोक मे गृहस्थ की सिद्धि हुआ करती है ॥१ ॥ आत्मवान् पुरुष को अपना परलोक का श्रेय अवश्य ही एक पाद के द्वारा करना ही चाहिए और अधन दशा मे आत्मा का भरण तथा नित्य एव नैमित्तिक कर्म भी करने चाहिए ॥११॥ तथापि एक पाद स इसके मूल भूत की विशेष वृद्धि करनी चाहिए । हे विप्रो ' इसी रीति से आचार का परिपालन करने का अर्थ सफलता को प्राप्त हो जाया करता है ॥१२॥ उसी के समान विद्वान् पुरुष को पापो के निषेध के लिये धर्म अवश्य करना चाहिए । जैसे परलोक के लिये होता है उसी भाति ही अन्य को भी यहा पर ही करना चाहिए और वह यहा

पर ही फलों का देने वाला होता है ॥१३॥ प्रत्यवाय के भय से काम तथा अन्य भी उसी भाँति है। ये दोनों आपस में विरोधी नहीं है। काम भी दो प्रकार का बनाया गया है जो त्रिवर्ग (धर्म-अर्थ-काम) की सिद्धि के लिये विरोध करने वाला नहीं है ॥१४॥

परस्परानुबन्धांश्च सर्वानेतान्विचिन्तयेत् ।
विपरीतानुबन्धांश्च बुध्यध्वं तान्द्विजोत्तमाः ॥१५
धर्मो धर्मानुबन्धार्थो धर्मो नाऽऽत्मार्थपीडकः ।
उभाभ्यां च द्विधा कामं तेन तौ च द्विधा पुनः ॥१६
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत् ।
समुत्थाय यथाऽऽचम्य प्रस्नातो नियमः शुचिः ॥१७
पूर्वां संध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् ।
उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि ॥१८
असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत् ।
असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवां च वै द्विजाः ॥१९
सायंप्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान् ।
नोदयास्तमने चैवमुदीक्षेत विवस्वतः ॥२०
केशप्रसाधनादर्शदन्तधावनमञ्जनम् ।
पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च तर्पणम् ॥२१

हे द्विज श्रेष्ठो ! इन सब आपस में रहने वाले अनुबन्धों का विशेष रूप से चिन्तन करना चाहिए। जो विपरीत अनुबन्ध हों उनको अच्छी तरह समझना चाहिए ॥१५॥ धर्म के अनुबन्ध के लिये किया हुआ धर्म ही वास्तविक धर्म है जो आत्मा और अर्थ को पीड़ा देने वाला नहीं होता है इन दोनों से दोनों प्रकार का काम और उस काम से वे दोनों धर्म और अर्थ फिर दो प्रकार के होते हैं ॥१६॥ ब्रह्म मुहूर्त्त में बहुत तड़के पौ फटने के काल में निद्रा का त्याग कर शय्या से जाग उठना चाहिए फिर धर्म और अर्थ के विषयों में विचार करो कि मेरे स्वरूप के अनुसार मेरा धर्म क्या है और अर्थ न्यायोचित से कैसे अर्जित होता है इनमें मुझे क्या करना चाहिए। फिर उठकर तथा आचमन करके स्नान करे और

प्रयत होकर पवित्र हो जावे ।।१७।। प्रातःकाल के समय मे जो सन्ध्योपासना की जाती है वह उसी समय होनी चाहिए जब नभ मे तारा गण दिखाई दे रहे हो । मध्याह्न तो ठीक दुपहर मे होती ही है किन्तु सायंकाल की सन्ध्या वह सूर्यास्त होने के पूर्व ही दिन रहते हुए ही करना चाहिए । न्याय के अनुसार उपासना करे और आपत्ति काल के अभाव मे इसका त्याग कभी नही करना चाहिए ।।१८।। हे द्विजगणो ! असत् प्रलाप (अनर्थक वचन) –मिथ्या भाषण और वाणी की कठोरता को वर्जित कर देना चाहिए । असत् शास्त्र-असत् विवाद और असत्पुरुषो की सेवा को भी छोड देना चाहिए ।।१९।। नियत आत्मा वाले पुरुष को सायङ्काल और प्रातःकाल दोनो समयो मे होम करना चाहिए । विवस्वान् (सूर्यदेव) को उदय काल मे तथा अस्तमन समय मे नही देखना चाहिए ।।२०।। केशो का प्रसाधन (सम्हाल) –आदर्श (दर्पण) देखना दातुन करना और आँखो मे अञ्जन देना–ये सब शारीरिक कृत्य तथा देवो का तर्पण पूर्वाह्ण काल (दुपहरी के पूर्व) मे करे ।।२१।।

ग्रामावसथतीर्थाना क्षेत्राणा चैव वर्त्मनि ।
न विण्मूत्रमनुष्ठेय न च कृष्टे न गोव्रजे ।।२२
नग्ना परस्त्रिय नेक्षेत्र पश्येदात्मन शकृत् ।
उदक्यादर्शनस्पर्शमेव सभाषण तथा ।।२३
नाप्सु मूत्र पुरीष वा मैथुन वा समाचरेत् ।
नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रे केशभस्मसपालिका. ।।२४
तुषाङ्गारविशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च ।
नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञ पथि वस्त्राणि वा भुवि ।।२५
पितृदेवमनुष्याणा भूताना च तथाऽर्चनम् ।
कृत्वा विभवतः पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति ।।२६
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि स्वाचान्तो वाग्यत शुचि ।
भुञ्जीत चाऽन्न तच्चित्तो ह्यन्तर्जानु. सदा नरः ।।२७
उपघातमृते दोषान्नास्योदीरयेद्बुधः ।
प्रत्यक्षलवण वर्ज्यमन्नमुच्छिष्टमेव च ।।२८

ग्राम, निवास के स्थान, तीर्थ, क्षेत्र, मार्ग के मध्य में, जुते हुए भू-भाग में और गायों के स्थित होने के स्थान में मल का त्याग एवं मूत्र का त्याग कभी नहीं करे ॥२२॥ पराई नग्न स्त्री को तथा अपने त्यागे हुए मल को कभी न देखना चाहिए। उदकी अर्थात् रजस्वला स्त्री के दर्शन, स्पर्श और उसके साथ भाषण का त्याग कर देवे। जल में जो जलाशय में है मूत्र और पुरीष (मल) और मैथुन नहीं करना चाहिए। मल और मूत्र में तथा केश, भस्म, सपालिका पर कभी स्थित नहीं होवे। तुष की अग्नि, विशीर्ण रज्जु, वस्त्र आदिक, भूमि, मार्ग में प्राज्ञ पुरुष को कभी अपना अधिष्ठान नहीं करना चाहिए ॥२३-२५॥ पितृगण, देव, मनुष्य और भूतों का अभ्यर्चन वैभव के अनुसार करने के पीछे ही गृहस्थाश्रमी को भोजन करना उचित होता है ॥२६॥ पूर्व दिशा तथा उत्तर दिशा की ओर मुख वाला होकर आचमन करके शुचि एवं मौनी होकर अन्न का भोजन करे। भोजन के समय में ही भोजन में अपना चित्त रक्खे और मनुष्य को सदा उस समय में घुटनों के अन्दर ही हाथ रखने चाहिए ॥२७॥ बुध पुरुष को चाहिए कि उपघात के बिना कभी भी अन्न के दोषों को मुख से नहीं कहे। प्रत्यक्ष लवण और उच्छिष्ट (झूठा) अन्नादि का त्याग कर देवे ॥२८॥

न गच्छन्न च तिष्ठन्वे विण्मूत्रोत्सर्गमात्मवान् ।
कुर्वीत चैवमुच्छिष्टं न किंचिदपि भक्षयेत् ॥२६

उच्छिष्टो नालपेत्किंचित्स्वाध्यायं न विवर्जयेत् ।
न पश्येच्च रविं चेन्दुं नक्षत्राणि च कामतः ॥३०

भिन्नासनं च शय्यां च भाजनं च विवर्जयेत् ।
गुरूणामासमं देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ॥३१

अनुकूलं तथाऽऽलापमभिकुर्वीत बुद्धिमान् ।
तत्रानुगमनं कुर्यात्प्रतिकूलं न संचरेत् ॥३२

नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम् ।
नाऽऽवाहयेद्द्विजानग्नौ होमं कुर्वीत बुद्धिमान् ॥३३

न स्नायीत नरो नग्नो न शयीत कदाचन ।
न पाणिभ्यामुभाभ्या तु कण्डूयेत शिरस्तथा ॥३४
न चाभीक्ष्ण शिर स्नान कार्यं निष्कारण बुधै. ।
शिर स्नातश्च तैलेन नाङ्ग किंचिदुपस्पृशेत् ॥३५

मार्ग मे गमन करते हुए या कहीं पर स्थित होकर मल और मूत्र का त्याग न करे । आत्मवान् पुरुष को कभी भी किसी उच्छिष्ट पदार्थ का भक्षण नहीं करना चाहिए ॥२६॥ जब भक्षण करने से मुख उच्छिष्ट हो जावे तो आलाप तथा स्वध्याय का वर्णन कर देवे । ऐसी उच्छिष्ट अवस्था मे सूर्य-चन्द्र और नक्षत्रो को स्वेच्छा से नहीं देखना चाहिए भिन्न आसन शय्या और पात्र का भी त्याग कर देवे जब कि उच्छिष्ट मुख होवे । गुरु वर्ग जब कभी समागत होवें तब उनको आसन देवे और उनके समागमन होने पर खडे होकर उनका सत्कार आदि करे ॥३०-३१॥ गुरुगणो के साथ अनुकूल आलाप बुद्धिमान् पुरुष को करना चाहिए । वे लोग जब गमन करें तो उनके पीछे २ चले और कभी भी उनके प्रतिकूल आचरण नही करना चाहिए ॥३२॥ एक ही वस्त्र धारण करके भोजन न करे अर्थात् भोजन करने क समय मे शरीर पर दो वस्त्र होने चाहिए । देवार्चन के समय मे भी दो वस्त्रो का होना आवश्यक होता है । बुद्धिमान् पुरुष द्विजो का आवाहन न करे तथा अग्नि मे होम करना चाहिए ॥३३ । बिल्कुल नग्न होकर कभी भी स्नान और शयन नहीं करना चाहिए । दोनो हाथो से अपने शिर को कभी नही खुजलाना चाहिए ॥३४॥ बुध पुरुषो को बिना किसी खास कारण के बारम्बार शिर से स्नान नही करना चाहिए और शिर से स्नान करके तैल से अपने अङ्गो का स्पर्श न करे ॥३५॥

अनध्यायेषु सर्वेषु स्वाध्याय च विवर्जयेत् ।
ब्राह्मणानलगोसूर्यान्नावमन्येत्कदाचन ॥३६
उदङ्मुखो दिवा रात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुख. ।
आबाधासु यथाकाम कुर्यान्मूत्रपुरीषयो. ॥३७
दुष्कृत न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्ध चैन प्रसादयेत् ।
परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् ॥३८

पन्था देयो ब्राह्मणानां राज्ञो दुःखातुरस्य च ।
विद्याधिकस्य गर्भिण्या रोगार्तस्य महीयतः ॥३९

मूकान्धबधिराणां च मत्तस्योन्मत्तकस्य च ।
देवालयं चैत्यतरुं तथैव च चतुष्पथम् ॥४०

विद्याधिकं गुरुं चैव बुधः कुर्यात्प्रदक्षिणम् ।
उपानद्वस्त्रमाल्यादि धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥४१

चतुर्दश्यां तथाऽष्टम्यां पञ्चदश्यां च पर्वसु ।
तैलाभ्यङ्गं तथा भोगं योषितश्च विवर्जयेत् ॥४२

जितने अनध्याय शास्त्र में बताये गये हैं उन दिनों में सब में स्वा-को वर्जित कर देना चाहिए । ब्राह्मण अग्नि, गौ, सूर्य, और अन्न का कभी भी अपमान नहीं करे ॥३६॥ दिन में उत्तर की ओर मुख करके और रात्रि में दक्षिण की ओर मुँह करके मलादि का त्याग करे तथा बाधा रहित कालों में मूत्र-पुरीष का त्याग स्वेच्छा से करे ॥३७॥ कोई भी दुष्कृत हो जावे तो उसको गुरु वर्ग के आगे नहीं बोले तथा यदि गुरु क्रुद्ध हो जावें तो उनको प्रसन्न करे । किसी की भी निन्दा होती हो तो उसको तथा निन्दा करने वालों अन्यों की बातों का श्रवण न करे ॥३८॥ मार्ग में चलने के समय में यदि सामने से ब्राह्मण आवें तो उनको, राजा को, दुःख से आतुर को, विद्या में जो अधिक विद्वान् हो उसको, गर्भवती स्त्री को, रोगों से जो आर्त्त हो उसको महापुरुष को, मूक (गूंगा) को, अन्धे पुरुष को, बधिर को, मत्त और उन्मत्त मनुष्य को मार्ग पहिले गमन करने के लिये दे देना चाहिए और स्वयं रुककर एक ओर हो जाना चाहिए । देवालय, चैत्य वृक्ष, चतुष्पथ (चौराहा) की परिक्रमा करे ॥३९-४०॥ जो विद्या में अधिक हो गुरु हों उनकी भी बुध पुरुष को प्रदक्षिणा करनी चाहिए जूते, वस्त्र और माला आदि वस्तुएँ अन्यों के द्वारा जो धारण की हुई हों उनको स्वयं धारण नहीं करे ॥४१॥ चतुर्दशी अष्टमी, पञ्चदशी (अमावस्या और पूर्वों में तैल की मालिश तथा स्त्रियों का उपभोग नहीं करे ॥४२॥

नोत्क्षिप्तबाहुजङ्घश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ।
न चापि विक्षिपेत्पादौ पाद पादेन नाऽऽक्रमेत् ॥४३

पुंश्चल्याः कृतकार्यस्य बालस्य पतितस्य च ।
मर्माभिघातमाक्रोश पैशुन्य च विवर्जयेत् ॥४४

दम्भाभिमान तैक्ष्ण्य च न कुर्वीत विचक्षण. ।
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपानपि वा तथा ॥४५
न्यूनाङ्गाश्चाधनाश्चैव नोपहासेन दूषयेत् ।
परस्य दण्ड नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं शिष्यपुत्रयोः ॥४६

तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाऽऽकृष्य चाऽऽसनम् ।
सयाव कृशर मास नाऽऽत्मार्थमुपसाधयेत् ॥४७
साय प्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा चातिथिपूजनम् ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि वाग्यतो दन्तधावनम् ॥४८
कुर्वीत सतत विप्रा वर्जयेद्वर्ज्यवीरुधम् ।
नोदक्शिरा स्वपेज्जातु न च प्रत्यक्शिरा नर ॥४९

प्राज्ञ पुरुष को ऊपर की ओर अपनी बाहु तथा जङ्घाओं को उत्क्षिप्त न करे तथा इनको उत्क्षिप्त करके कभी स्थित न होना चाहिए। अपने पैरों को कभी भी विक्षिप्त न करे और पैर को अपने ही पैर से आक्रान्त नहीं करना चाहिए ॥४३॥ पुन्श्चली स्त्री (दुराचारिणी) कार्य कर लेने वाले पुरुष का, बालक, पतित का मर्मों का अभिघात-आक्रोश और पैशुन्य वर्जित कर देवे ॥४४॥ विचक्षण पुरुष को दम्भ, अभिमान, तीक्ष्णता नहीं करना चाहिए। मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, विकृत रूप वाला, न्यून अङ्गों वाला, निर्धन इनका उपहास करके दूषित न करे। दूसरे किसी को दण्ड न देवे। शिष्य और पुत्र को शिक्षा देने के लिये उसी तरह से पैर से आसन को खींचकर प्राज्ञ पुरुष को नहीं बैठना चाहिए ॥४५-४६॥ सयाव, कृशर, मांस को अपने आत्मा के लिये उपसाधित नहीं करे ॥४७॥ अतिथियों का पूजन करके ही सायकाल तथा प्रात काल मे भोजन करना चाहिए। पूर्व की ओर या उत्तर की

ओर मुख करके मौन होकर दाँतुन करे ॥४८॥ हे विप्रो ! जो लता एवं वृक्ष की दाँतुन शास्त्र में वर्जित बताई गई है उनको वर्जित कर देवे । उत्तर की ओर पश्चिम की ओर शिर करके मनुष्य को कभी नहीं सोना चाहिए ॥४९॥

शिरस्त्वागस्त्यमाधाय शयीताथ पुरंदरीम् ।
न तु गन्धवतोष्वप्सु शयीत न तथोषसि ॥५०
उपरागे परं स्नानमृते दिनमुदाहृतम् ।
अरमृज्यान्न वस्त्रान्तैर्गात्राण्यम्बरपाणिभिः ॥५१
न चावधूनयेत्केशान्वाससी न च निर्धुनेत् ।
अनुलेपनमादद्यान्नास्नातः कर्हिचिद्बुधः ॥५२
न चापि रक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा ।
न च कुर्याद्विपर्यासं वाससोर्नापि भूषयोः ॥५३
वर्ज्यं च विदशं वस्त्रमत्यन्तोपहतं च यत् ।
कीटकेशावपन्नं च तथा श्वभिरवेक्षितम् ॥५४
अवलीढं शुना चैव सारोद्धरणदूषितम् ।
पृष्टमांसं वृथामांसं वर्ज्यमांसं च वर्जयेत् ॥५५
न भक्षयेच्च सततं प्रत्यक्षं लवणं नरः ।
वर्ज्यं चिरोषितं विप्राः शुष्कं पर्युषितं च यत् ॥५६

अपने शिर को अगस्त्य दिशा में करके पुरन्दरी में शयन करे जो जल गन्ध युक्त हों उनमें और प्रातः काल में शयन न करे ॥५०॥ दिन के विना भी उपराग (ग्रहण) के समय में परम स्नान कहा गया है । स्नान करके वस्त्र के छोरों से अस्वर पाणियों के द्वारा शरीर के अङ्गों को अपमृजित नहीं करना चाहिए । अपने केशों को अवधूनित न करे और वस्त्रों को निर्धुनित नहीं करना चाहिए । वुध पुरुष को विना किये हुए कभी भी अनुलेपन ग्रहण न करे ॥५१-५२॥ कभी भी रक्त वर्ण का वस्त्र चित्रित-काला वस्त्र कभी धारण नहीं करे वस्त्रों का और भूषणों का कभी विपर्यास नहीं करना चाहिए ॥५३॥ जो वस्त्र विदिश हो और जो अत्यन्त उपहत हो तथा कीड़ों और केशों से अवपन्न हो

एव कुत्तो के द्वारा अवेक्षित हो कुत्ते के द्वारा चाटा हुआ हो सार के उद्धरण से दूषित हो ऐसे वस्त्र को वर्जित कर देवे। पृष्ठ का मास वृथा मास-वर्जित मास इन सबका वर्जन कर देवे ॥५४ ५५॥ मनुष्य को प्रत्यक्ष रूप से लवण का भक्षण निरन्तर नही करना चाहिए। हे विप्रो! जो भोज्य पदार्थ चिरोषित अर्थात् बहुत समय से बनाकर रक्खा हुआ हो या शुष्क एव पर्युषित बासी हो उसको भी नही खाना चाहिए ॥५६॥

पिष्टशाकेक्षुपयसा विकारा द्विजसत्तमा ।
तथा मासविकाराश्च नैव वर्ज्याश्चिरोषिता ॥५७
उदयास्तमने भानो शयन च विवर्जयेत् ।
नास्नातो नव सविष्टो न चैवान्यमना नर ॥५८
न चैव शयन नोर्व्यामुपविष्टो न शब्दकृत् ।
प्रेष्याणामप्रदायाथ न भुञ्जीत कदाचन ॥५९
भुञ्जीत पुरुष स्नात सायप्रातर्यथाविधि ।
परदारा गन्तव्या पुरुषेण विपश्चिता ॥६०
इष्टापूर्तायुषा हन्त्री परदारगतिर्नृणाम् ।
न हीदृशमनायुष्य लोके किचन विद्यते ॥६१
यादृश पुरुषस्येह परदाराभिमर्शनम् ।
देवाग्निपितृकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् ॥६२
कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम् ।
अफेनशब्दगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ॥६३

हे द्विजश्रेष्ठो! पिष्ट-ईख-शाक और पय जो विकार होते हैं तथा जो मास के विकार होते हैं वे यदि चिरोषित भी हो तो भी वर्जन करने के योग्य नही होते हैं ॥५७॥ सूर्य देव के उदय और अस्त होने के समय मे शयन नही करे। मनुष्य बिना स्नान किये हुए-सविष्ट और अन्य मन वाला होकर भी शयन न करे शय्या पर भूमि मे बैठे हुए-शब्दोच्चारण करते हुए-भृत्यों को न देकर भी कभी स्वय भोजन नही करना चाहिए ॥५८-५९॥ सायङ्काल और प्रात काल मे विधि पूर्वक स्नान किये हुए पुरुष को ही भोजन करना चाहिए। विद्वान् पुरुष के द्वारा पराई स्त्री के

साथ गमन कभी नहीं करना चाहिए पराई स्त्री के साथ अभिगमन करना मनुष्यों की इष्टापूर्त और आयु का हनन करने वाला ही हुआ करता है। पराई नारी के गमन के समान यहाँ पर लोक में आयु की क्षीणता करने वाला अन्य कोई भी दुष्कर्म नहीं है ॥६०-६१॥ जैसा आयु के क्षय करने वाला इस लोक में पुरुष के लिये पराई स्त्री को अभिमर्शन होता है वैसा अन्य कुछ भी नहीं होता है। देवता-अग्नि और पितृगण का कार्य एवं गुरु वर्ग के लिये अभिवादन करना चाहिए। भलीभाँति आचमन करके उसी तरह से अन्नादि के भोजन की क्रिया भी करे। फेन-शब्द और गन्ध से रहित अति स्वच्छ जल से आदर के साथ आचमन करावे ॥६२-६३॥

आचामेच्चैव तद्वच्च प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा।
अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकास्थलात् ॥६४
कृतशौचावशिष्टाश्च वर्जयेत्पञ्च वै मृदः।
प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च समभ्युक्ष्य समाहितः ॥६५
अन्तर्जानुस्तथाऽऽचामेत्त्रिश्चतुर्वाऽपि वै नरः।
परिमृज्य द्विरावर्त्य खानि मूर्धानमेव च ॥६६
सम्यगाचम्य तोयेन क्रियां कुर्वीत वै शुचिः।
क्षुतेऽवलीढे वाते च तथा निष्ठीवनादिषु ॥६७
कुर्यादाचमनं स्पर्शं वाऽस्पृष्टस्यार्कदर्शनम्।
कुर्वीताऽऽलभनं चापि दक्षिणश्रवणस्य च ॥६८
यथाविभवतो ह्येतत्पूर्वाभावे ततः परम्।
न विद्यमाने पूर्वोक्त उत्तरप्राप्तिरिष्यते ॥६९
न कुर्याद्दन्तसंघर्षं नाऽऽत्मनो देहताडनम्।
स्वापेऽध्वनि तथा भुक्त्वा स्वाध्यायं च विवर्जयेत् ॥७०

यह आचमन भी पूर्व की ओर या उत्तर की ओर मुख करके ही आचमन करना चाहिए। अब मृत्तिका के विषय में बतलाते हैं कि कहाँ की मृत्तिका विशुद्ध होती है तथा कहाँ की वर्जित है। जल के अन्दर से-आवसथ से-वल्मीक से-मृत्तिकाओं के रहने के स्थल से-शौच करने के

पश्चात् अवशिष्ट मे मृत्तिकाऐं पाँच सर्वदा वर्जित होती हैं इनको नहीं ग्रहण करना चाहिए। हाथो और पैरो को धोकर तथा मभ्युक्षण करके समाहित हो जावे और घुटनों के अन्दर हाथो को करके तीन या चार बार मनुष्य को आचमन करना चाहिए और अपने अङ्गों को तथा मूर्धा को दो बार शुद्ध करे ॥६४-६६॥ शुद्ध होकर जल से आचमन करके क्रिया करनी चाहिए। जँभाई और छींक लेने पर तथा थूक आदि निकालने पर आचमन शुद्धि के लिये करना चाहिए। जो स्पर्श करने के योग्य न हो उसके स्पर्श हो जाने पर शुचिता प्राप्त करने के लिये सूर्य का दर्शन करे तथा दक्षिण श्रवण का भी आलम्भन करना चाहिए ॥६७-६८॥ विभव के अनुसार ही यह करे। पूर्व निर्दिष्ट के अभाव मे दूसरा करे। पूर्व मे कथित के विद्यमान न होने पर उत्तर की प्राप्ति अभीष्ट होती है ॥६९॥ अपने दांतो का संघर्ष (रगडना या दांत बजाना) न करे और अपने शरीर की स्वयं ताडना भी नहीं करनी चाहिए। शयन करने के समय मे मार्ग मे और भोजन करते हुए स्वाध्याय कभी न करे ॥७०॥

सध्यायां मैथुनं चापि तथा प्रस्थानमेव च।
तथाऽपराह्णे कुर्वीत श्रद्धया पितृतर्पणम् ॥७१
शिरःस्नानं च कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि च।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि श्मश्रुकर्म च कारयेत् ॥७२
व्यङ्गिनीं वर्जयेत्कन्यां कुलजां वाऽप्यरोगिणीम्।
उद्वहेत्पितृमात्रोश्च सप्तमीं पञ्चमीं तथा ॥७३
रक्षेद्दारांस्त्यजेदीर्ष्यां तथाऽह्नि स्वप्नमैथुने।
परोपतापकं कर्म जन्तुपीडां च सर्वदा ॥७४
उदक्यां सर्ववर्णानां वर्ज्या रात्रिचतुष्टयम्।
स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमीं चापि वर्जयेत् ॥७५
ततः षष्ठ्यां व्रजेद्रात्र्यां ज्येष्ठयुग्मासु रात्रिषु।
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥७६

विधर्मिणो वै पर्वादौ संध्याकालेषु षण्ढकाः ।
क्षुरकर्मणि रिक्तां व वर्जयीत विचक्षणः ।।७७।।

सन्ध्या के समय में मैथुन तथा प्रस्थान कभी नहीं करना चाहिए। ये सभी नियम सदाचरण के हैं उनके विपरीत कर्म करने को वर्जित बतलाया गया है। दोपहर के पश्चात् ही बहुत श्रद्धा से पितृगण का तर्पण करे क्योंकि मध्याह्न के पूर्व पितृगण कभी श्राद्ध तर्पण आदि ग्रहण नहीं किया करते हैं ।।७१।। दैव अर्थात् देवताओं के कर्म और पितृगण के निमित्त किये जाने वाले कर्म को करने के पूर्व शिर से स्नान करना चाहिए। श्मश्रुकर्म अर्थात् क्षौर (हजामत) पूर्वमुख अथवा उत्तर मुख होकर ही कराना चाहिए ।।७२।। जो कन्या व्यङ्गिनी अर्थात् किसी अङ्ग से हीन या अधिक अङ्ग वाली हो उसका त्याग कर देवे तथा जो कुलजा और रोग रहित हो उसके साथ ही विवाह करे। पिता और माता की सप्तमी और पंचमी की रक्षा करे। अपनी दाराओं की सर्वदा रक्षा कर और ईर्ष्या कर देवे। दिन के समय में भूलकर भी शयन तथा मैथुन नहीं करना चाहिए। दूसरों को उपताप देने वाला कर्म एवं जन्तुओं की पीड़ा जिससे हो उस कर्म को सर्वदा नहीं करे ।।७३-७४।। सभी वर्णों में अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों में एवं शूद्रों ने भी चार रात्रि तक उदकी (रजस्वला) नारी का त्याग कर देना चाहिए। कन्या के जन्म के परिहार के लिये पाँचवीं रात्रि का भी त्याग कर देवे ।।७५।। फिर छठवीं रात्रि में स्त्री के साथ अभिगमन करे तात्पर्य यह है कि ज्येष्ठ युग्म रात्रियों में ही नारी गमन करना चाहिए। जो युग्म रात्रियों में ही गमन करने से पुत्रों की उत्पत्ति हुआ करती है। जो रात्रियाँ अयुग्म हों अर्थात् पाँचवी-सातवीं आदि हों उनमें गमन करने से लड़कियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं ।।७६।। पर्व दिनों में अभिगमन करने से विधर्मी एवं एवं षण्ढ (नपुंसक) सन्ध्या कालों में करने से उत्पन्न होते हैं। विचक्षण पुरुष को क्षौर कर्म में (हजामत कर्म में) रिक्ता तिथि को वर्जित कर देना चाहिए ।।७७।।

ब्रुवतामविनीतानां न श्रोतव्यं कदाचन ।
न चोत्कृष्टासनं देयमनुत्कृष्टस्य चाऽऽदरात् ॥७८
क्षुरकर्मणि चा (वा) न्ते च स्त्रीसंभोगे च भो द्विजाः ।
स्नायीत चैलवान्प्राज्ञः कूटभूमिमुपेत्य च ॥७९
देववेदद्विजातीनां साधुसत्यमहात्मनाम् ।
गुरोः पतिव्रतानां च ब्रह्मयज्ञतपस्विनाम् ॥८०
परिवादं न कुर्वीत परिहासं च भो द्विजाः ।
धवलाम्बरसंवीतः सितपुष्पविभूषितः ॥८१
सदा मांगल्यवेषः स्यान्न वाऽमङ्गल्यवान्भवेत् ।
नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च नाविनीतैश्च पण्डितः ॥८२
गच्छेन्मैत्रीमशीलेन न वयोजातिदूषितैः ।
न चातिव्ययशीलैश्च पुरपैर्नैव वैरिभिः ॥८३
कार्याक्षमैर्निन्दितैर्न न चैव विटमङ्गिभिः ।
निस्वैर्न वादैः परैर्नरैश्चान्यैस्तथाऽधमैः ॥८४

जो पुरुष अविनीत हो और विनय हीन होकर बोल रहे हैं। उनकी बातों को कभी भी नहीं सुनना चाहिए। जो आदमी उत्कर्ष हीन हो उसको आदर पूर्वक कभी भी उत्कृष्ट आसन नहीं देवे ॥७८॥ हे द्विजो! क्षुर कर्म में अथवा इसके अन्त में और स्त्री सम्भोग के अन्त में प्राज्ञ पुरुष को वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए कूट भूमि में प्राप्त होकर देव, वेद, द्विजाति, साधु सत्य महान् आत्मा वाले, गुरु, पतिव्रता, ब्रह्म, यज्ञ, तपस्वी, इनके परिवाद को कभी न करे अर्थात् निन्दा या बुराई नहीं करनी चाहिए। हे द्विजो! इनके साथ परिहास भी न करे। सर्वदा सदा चरण के अनुसार धवल (श्वेत, वस्त्र धारी रहे और श्वेत पुष्पों से ही भूषित होकर रहना चाहिए ॥७९-८१॥ सदा मङ्गलमय वेष वाला रहे और अमङ्गल वेष है उनसे रहित ही रहना चाहिए। पण्डित को जो उद्धत हो, उन्मत्त, मूढ, अविनीत हो तथा वय और जाति से दूषित हों उनके साथ और शील हीन के साथ कभी मैत्री नहीं करे। जो अत्यधिक व्यय करने के स्वभाव वाले तथा वैरी पुरुष हो, कार्य करने में असमर्थ

निन्दित, विरों के सङ्ग करने वाले, निर्धन, विवाद में तत्पर रहने वाले और अधमों के साथ भी कभी मैत्री नहीं करनी चाहिए ॥८२-८४॥

सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैः सह ।
उत्तिष्ठेद्विभवाच्चैनानानर्चयेद्गृहमागतान् ॥८५
यथाविभवतो विप्राः प्रतिसंवत्सरोषितान् ।
सम्यग्गृहेऽर्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् ॥८६
संपूजयेत्तथा वह्नौ प्रदद्याच्चाऽऽहुतीः क्रमात् ।
प्रथमां ब्रह्मणे दद्यात्प्रजानां पतये ततः ॥८७
तृतीयां चैव गृह्येभ्यः कश्यपाय तथाऽपराम् ।
ततोऽनुमतये दद्याद्द्याद्बहु(द्गृह)बलिं ततः ॥८८
पूर्वं ख्याता मया या तु दित्यक्रमविधौ क्रिया ।
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्वदत शृणुत द्विजाः ॥८९
यथास्थानविभागं तु देवानुद्दिश्य वै पृथक् ।
पर्जन्यापोधरित्रीणां दद्यात्तु मणिके त्रयम् ॥९०
वायवे च प्रतिदिशं दिग्भ्यः प्राच्यादिषु क्रमात् ।
ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय सूर्याय च यथाक्रमात् ॥९१

सुहृद्, दीक्षित, नृप, स्नातक, श्वशुर, इनके साथ होने पर गात्रोत्थान करना चाहिए और जिस समय में ये अपने घर पर आवें तो अपने वैभव के अनुसार ही इनका अभ्यर्चन करना चाहिए ॥८५॥ हे विप्रो ! अपने वैभव के अनुसार प्रत्येक वर्ष में उषितों का भली भाँति अर्चन करके अनुक्रम से यथा स्थान पर अर्चन करे ॥८६॥ वह्नि में पूजन करे और क्रम से आहुतियां देवे । प्रथम से आहुति ब्रह्माजी को देवे और फिर दूसरी प्रजापति को देनी चाहिए ॥८७॥ तीसरी गृह्यों को और दूसरी कश्यप के लिये देवे । इसके उपरान्त अनुमति के लिये देवे और फिर गृह वलि देनी चाहिए ॥८८॥ हे द्विजो ! जो पूर्व में मैंने नित्य क्रम की विधि में क्रिया कही है । इसके पश्चात् वैश्व देव करना चाहिए उसके विषय में वोलो और श्रवण करो ॥८९॥ स्थान और विभाग के अनुसार

पृथक् देवा को उद्देश्य करके पर्जन्य-जल और धरित्री को तीन मणिक देवे ॥९०॥ वायु को देवे तथा प्रत्येक दिशा म प्राची आदि के क्रम से दिशाओं को दना चाहिए। यथा क्रम से ब्रह्माजी के लिये और अन्तरिक्ष क लिये एव सूय देव के लिये अपित करे ॥९१॥

विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च ।
उषसे भूतपतये दद्याद्वोत्तरत शुचि ॥९२
स्वधा च नम इत्युक्त्वा पितृभ्यश्चैव दक्षिणे ।
कृत्वाऽपसव्य वायव्या यक्ष्मैतत्ते ति सवदन् ॥९३
अन्नावशेषमिश्र वै तोय दद्याद्यथाविधि ।
देवाना च तत कुर्याद्ब्राह्मणाना नमस्क्रियाम् ॥९४
अङ्गुष्ठोत्तरतो रेखा पाण्यर्या दक्षिणस्य च ।
एतद्ब्राह्ममिति ख्यात तीर्थमाचमनाय वै ॥९५
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्त पित्र्य तीर्थमुदाहृतम् ।
पितृणा तेन तोयानि दद्यान्नान्दीमुखादृते ॥९६
अङ्गुल्यग्रे तथा दैव तेन दिव्यक्रियाविधि ।
तीर्थं कनिष्ठिकामूले काय तत्र प्रजापत ॥९७
एवमेभि सदा तीर्थैर्विधान पितृभि सह ।
सदा कार्याणि कुर्वीत नान्यतीर्थे कदाचन ॥९८

उत्तर दिशा म शुचि होकर विश्वे देवाओ के लिये और विश्व भूतो के लिये-उष और भूत पति के लिये भी अर्पित करे ॥९२॥ 'स्वधा' और 'नम'-यह उच्चारण करके दक्षिण दिशा मे पितृगण के लिये अप-सव्य होकर वायव्य कोण म "यक्ष्मैतत्ते"-यह बोलते हुए अन्न के अवशेष से मिला हुआ जल यथा विधि देना चाहिए। इसके उपरान्त देवो की तथा ब्राह्मण की नमस्क्रिया करे ॥९३ ९४॥ दाहिने हाथ के अगूठे उत्तर भाग मे जो रेखा है यह आचमन क लिय ब्रह्म तीथ विख्यात है ॥९५॥ तर्जनी और अगूठे के मध्य म पित्र्य (पितृगण का) तीर्थ होता है-ऐसा कहा गया है। नान्दी मुख श्राद्ध के अतिरिक्त पितृगणों के लिये उसी भाग से जल दान दना चाहिए ॥९६॥ अङ्गुली के अग्रभाग मे दैव तीथ

होता है उसी से दिव्य क्रिया की विधि होती है। कनिष्ठिका अङगुली के मूल में वहां पर प्रजापति का काम तीर्थ होता है। इस प्रकार से इन उपर्युक्त तीर्थों के द्वारा पितृगणों के साथ विधान है और उन्हीं से सदा करने चाहिए अन्य तीर्थों से कभी भी न करे ॥६७-६८॥

ब्राह्मणाऽऽचमनं शस्तं पैत्र्यं पित्र्येण सर्वदा ।
देवतीर्थे देवानां प्रजापत्यं जिते(त्यजले)न च ॥६६
नान्दीमुखानां कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम् ।
प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किंचित्प्रजापतेः ॥१००
युगपंज्जलमग्निं च बिभृयान्न विचक्षणः ।
गुरुदेवपितृन्विप्रान्न च पादौ प्रसारयेत् ॥१०१
नाऽऽचक्षीत धयन्तीं गां जल नाज्जलिना पिबेत् ।
शौचकालेषु सर्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः ।
न बिलम्बेत मेधावी न मुखेनानलं धमेत् ॥१०२
तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ।
ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी ॥१०३
जितभृत्यो नृपो यत्र बलवान्धर्मतत्परः ।
तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कुतः कुनृपतौ सुखम् ॥१०४
पौराः सुसंहता यत्र सततं न्यायवर्तिनः ।
शान्तामत्सरिणो लोकास्तत्र वासः सुखोदयः ॥१०५

पित्र्य तीर्थो से सर्वदा ब्राह्मण के द्वारा पैत्र्य आचमन प्रशस्त होता है—देव तीर्थ से देवों का एवं प्राजापत्य जित से करे ॥६६॥ प्राज्ञ पुरुष को नान्दी मुखों की पिण्डोदक क्रिया करनी चाहिए। प्रजापति का जो कुछ भी हो प्रजापत्य तीर्थ के द्वारा करे ॥१००॥ विचक्षण पुरुष को एक साथ जल और अग्नि को ग्रहण या वहन नहीं करना चाहिए। गुरु, देवता, पितृगण और विप्र इनकी ओर पैरों को नहीं फैलाना चाहिए ॥१०१॥ महिषोई गौ अपने बछड़े को दूध पिला रही हो तो उसे किसी को नहीं बतलाना चाहिए। अञ्जलि से कभी जल नहीं पीना चाहिए।

समस्त शौच वालों मे चाहे वे सामान्य हो या विशेष हों मेधावी पुरुष को विलम्ब नहीं करना चाहिए। मुख से अग्नि का धमन नहीं करे ॥१०२॥ विप्रो का वहाँ पर निवास नहीं करना चाहिए जहा पर ये चार वस्तुएँ नही। एक ऋण देने वाला, दूसरा वैद्य, श्रोत्रिय और चौथी सजल नही ॥१०३॥ जहा पर भृत्यो पर विजय पाने वाले, वलशाली और धर्म मे तत्पर राजा रहता हो वही पर प्राज्ञ पुरुष को नित्य निवास करना चाहिए। जहा पर बुरा नृप हो उसके राज्य मे सुख कैसे हो सकता है ? ॥१०४॥ जहा पर पुरवासी सुसघटित हो और निरन्तर न्याय का वरताव करने वाले, परम शान्त, मत्सरता से रहित लोग वास करते हों वही पर सुख के उदय वाला निवास हुआ करता है ॥१०५॥

यस्मिन्कृपीवला राष्ट्रे प्रायशो नातिमानिनः।
यत्रौपधान्यशेषाणि वसेत्तत्र विचक्षणः ॥१०६
तत्र विप्रा न वस्तव्य यत्रतत्त्रितय सदा।
जिगीपु पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सव ॥१०७
वसेन्नित्य सुशीलेपु सहचारिपु पण्डितः।
यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र सस्यप्रदा मही ॥१०८
इत्येतत्कथित विप्रा मया वो हितकाम्यया।
अत पर प्रवक्ष्यामि भक्ष्यभोज्यविधिक्रियाम् ॥१०९
भोज्यमन्न पर्युपित स्नेहाक्त चिरसभृतम्।
अस्नेहा वपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥११०
शशक. कच्छपो गोधा श्वाविन्मत्स्योऽथ शल्यकः।
भक्ष्याश्चैते तथा वर्ज्यौ ग्रामशूकरकुक्कुटौ ॥१११
पितृदेवादिशेप च श्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया।
प्रोक्षित चौपधार्थं च खान्दन्मास न दुष्यति ॥११२

जिस राष्ट्र मे बहुधा किसान लोग अत्यधिक मानी नही होते हैं और जहा पर समस्त ओषधियाँ होती हैं वही पर विचक्षण पुरुष को वास करना चाहिए ॥१०६॥ विप्रो को उस स्थान मे कभी नही रहना चाहिए ये तीन सदा रहते हों एक जिगीपु (जीत की इच्छा रखने वाला, पूर्व का

वैर रखने वाला जन और तीसरा निरन्तर उत्सव करते रहने वाला हो ॥१०७॥ पण्डित पुरुष को सुशील सहचारियों में नित्य वास करना चाहिए। जहां पर राजा प्रधर्षण करने के अयोग्य हो और भूमि सस्यों के प्रदान करने वाली हो वहां पर ही वास करे ॥१०८॥ हे विप्रो ! यह मैंने आपके हित की कामना से यह बतला दिया है। अब इससे आगे मैं भक्ष्य तथा भोज्य की विधि क्या है तथा उसकी कैसी क्रिया शास्त्र में हैं—उसे बतलाऊँगा ॥१०९॥ भोज्य अन्न पर्युषित-स्नेह (चिकनाई) से अक्त और चिरकाल से संभृत हुआ करता है। स्नेह से शून्य भी गेंहूँ-जौ गोरस की विक्रिया वाले हैं ॥११०॥ शशक-कच्छप-गोधा-श्वाचित-मत्स्य-शल्यक ये भक्ष्य कहे गये हैं किन्तु ग्राम सूकर और कुक्कुट (मुर्गा) ये दोनों वर्जित हैं। पितृगण और देवता आदि का जो शेष भाग बच जाता है जो ब्राह्मणों की काम्या से श्राद्ध में प्रोक्षित होता है। औषध के लिये मनुष्य मांस का भक्षण करते हुए भी दोष युक्त नहीं होता है ॥१११-११२॥

शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां रज्जूनामण वाससाम् ।
शाकमूलफलानां च तथा विदलचर्मणाम् ॥११३
मणिवस्त्रप्रवालानां च तथा मुक्ताफलस्य च ।
पात्राणां चमसानां च अम्बुना शौचमिष्यते ॥११४
तथाऽश्मकानां तोयेन अश्मसंघर्षणेन च ।
सस्नेहानां च पात्राणां शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥११५
शूर्पाणामजिनानां च मुशलोलूखलस्य च ।
संहतानां च वस्त्राणां प्रोक्षणात्संचयस्य च ॥११६
वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते ।
आविकानां समस्तानां केशानां चैवमिष्यते ॥११७
सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः ।
शोधनं चैव भवति उपघातवतां सदा ॥११८
तथा कार्पासिकानां च शुद्धिः स्याज्जलभस्मना ।
दारुदन्तास्थिशृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥११९

शङ्ख, पाषाण, सुवर्ण, रूप्यक (चाँदी) रस्सी, वस्त्र, शाक, मूल, फल, विदृत चर्म, मणि, वस्त्र, प्रवाल, मोती, पात्र, चमस—इनकी शुद्धि जल से हो जाती है ॥११३-११४॥ अश्मक (प्रस्तर) की जल से और पाषाण के संघर्षण करने से तथा चिकनाई से युक्त जो पात्र हैं उनकी शुद्धि गर्म पानी से हो जाती है ॥११५॥ सूप, अजिन, मुशल, उलूखल, संहत (एक स्थान पर एकत्रित) पात्रों की शुद्धि भी गर्म जल के प्रोक्षण से होती है। जो भी किसी का बड़ा भारी संचय है तो उसकी शुद्धि प्रोक्षण मात्र से हो जाया करती है। सब वल्कलों की शुद्धि जल और मृत्तिका से होती है। इसी प्रकार से समस्त आविक और केशों का भी शौच होता है ॥११६-११७॥ सिद्धार्थकों का कल्क से अथवा पुनः तिल कल्क से सदा उपधान वालों का शोधन हुआ करता है ॥११८॥ उसी भाँति कपास से निर्मित पदार्थों की शुद्धि जल और भस्म से होती है। लकड़ी दाँत अस्थि और शृङ्गों की शुद्धि छिलाई करने से हो जाया करती है ॥११९॥

पुनः पाकेन भाण्डानां पार्थिवानाममेध्यता ।
शुद्धं भैक्ष्यं कारुहस्तं पण्यं योषिन्मुखं तथा ॥१२०
रथ्यागमनविज्ञानं दासवर्गेण संस्कृतम् ।
प्राक्प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु ॥१२१
अन्तः प्रभूतं बालं च वृद्धान्तरविचेष्टितम् ।
कर्मान्तागारशालाश्च स्तनद्वयं शुचि स्त्रियाः ॥१२२
शुचयश्च तथाऽऽपः स्रवन्त्यो गन्धवर्जिताः ।
भूमिर्विशुध्यते कालदाहमार्जनादिनगोकुलैः ॥१२३
लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्म समार्जनादिना ।
केशकीटावपन्ने च गोघ्राते मक्षिकान्विते ॥१२४
मृदम्बु भस्म चाप्यत्र प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये ।
औदुम्बराणामम्लेन वारिणा त्रपुसीसयोः ॥१२५
भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च ।
अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च ॥१२६

जो पार्थिव (पृथ्वी अर्थात् मिट्टी के) पात्र होते हैं उनकी पवित्रता दुवारा पाक कर देने से हो जाती है। कारु (कारीगर) के हाथ से निर्मित भैक्ष्य (खाने के योग्य) पदार्थ जो पण्य (बाजार की बनी हुई) वस्तु है वह तथा स्त्री का मुख शुद्ध हुआ करता है ॥१२०॥ विज्ञान से रहित जो रथ्या का गमन है वह दास वर्ग के द्वारा संस्कार किया हुआ प्रथम ही प्रशस्त-चिरातीत-एकान्तरित-लघु-अन्तः प्रभूत-बाल-अन्य वृद्ध का विचेष्टित-कर्म का अन्तागार-शाला तथा स्त्री के दोनों स्तन सदा शुचि होते हैं।।१२१-१२२॥ जो जल स्रवण करने वाले और गन्ध से रहित होते हैं वे शुद्ध माने जाया करते हैं। भूमि की विशुद्धि दाह-मार्जन (बुहारी लगाना) और गौओं के वहां पर बैठने से हो जाया करती है ॥१२३॥ भूमि का शोधन लीपने से, लेखन से, सेक से, और संमार्जन से वेश्य की शुद्धि होती है। केश कीटों से अवपन्न होने पर, गौ के घ्रात में, मक्खियों से युक्त में और अन्न में विशुद्धि के लिये मृत्तिका-जल और भस्म का प्रक्षेप कर देना चाहिए। औदुम्बरों का खटाई से, त्रयु और शीशा के पात्रों का जल से, कांसे के पात्रों का भस्म और जल से तथा द्रव की जल में डुबा देने से शुद्धि होती है। जो अपवित्र और अक्त हो उसकी शुद्धि मिट्टी और जल से होती है और गन्ध के अपहरण से हो जाया करती है ॥१२४-१२६॥

अन्येषां चैव द्रव्याणां वर्णगन्धांश्च हारयेत् ।
शुचि मांसं तु चाण्डालक्रव्यादैर्विनिपातितम् ॥१२७
रथ्यागतं च तैलादि शुचि गोतृप्तिदं पयः ।
रजोऽग्निरश्वागोच्छायारश्मयः पवनो मही ॥१२८
विप्लुषो मक्षिकाद्याश्च दुष्टसङ्गाददोषिणः ।
अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गोर्वत्सस्य चाऽऽननम् ॥१२९
मातुः प्रस्रवणे(णं)मेध्यं शकुनिः फलपातने ।
आसनं शयनं यानं तटौ नद्यास्तृणानि च ॥१३०
सोमसूर्यांशुपवनैः शुध्यन्ते तानि पण्यवत् ।
रथ्यापसर्पणे स्नाने क्षुत्पानानां च कर्मसु ॥१३१

आचामेत यथान्याय वासस. परिधापने ।
स्पृष्टानामथ ससपर्शाद्धिरथ्याकर्दमाम्भासि ॥१३२
पक्वेष्टकचिताना च मेध्यता वायुसश्रयात् ।
प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्य सत्यजेत् ॥१३३

अन्य जो द्रव्य हैं उनके वर्ण और गन्ध को दूर कर देना चाहिए। चाण्डाल और क्रव्यादों के द्वारा विनियातिन मास शुद्ध होता है ॥१२७॥ रथ्यागत तैलादि शुद्ध है और गौ की तृप्ति के देने वाला पय शुद्ध होता है। रज, अग्नि, अश्व, गौ, छाया रश्मि, पवन, भूमि, विप्रप, (जल के छोटे कण) मक्षिका आदि दुष्ट सङ्ग से भी दोपी नहीं होते हैं। बकरी और अश्व मुख से शुद्ध होता है और गौ के वत्स का आनन (मुख) शुद्ध नहीं होता है ॥१२८-१२६॥ यही वत्स का मुख माता के प्रस्रवण के समय मे पवित्र होता है तथा फल के गिराने मे पक्षी भी पवित्र माना गया है। आसन-शयन (शय्या) यान-नदी के दोनो तट तृण चन्द्र और सूर्य की किरणो से तथा पवन म पण्य की भाँति विशुद्ध हो जाते हैं। रथ्या (गली) के अपसर्पण मे, स्नान मे, क्षुत, पान इन कर्मों के अनन्तर और वस्त्रो के परिधायन मे यथा न्याय आचमन करना चाहिए। दूसरी गली के कीच युक्त जल मे स्पृष्टो के भी सम्पर्श होने से आचमन करे ॥१३०-१३२॥ पकी हुई ईटो के चुने हुओ की पवित्रता वायु के सश्रय से ही हो जाया करती है। बहुत अधिक अन्न की राशि यदि उपहृत हो जावे तो उसके ऊपर के भाग का समुद्धरण करके त्याग कर देने से उसकी शुद्धि हो जाया करती है ॥१३३॥

शेपस्य प्रोक्षण कुर्यादाचम्याद्भिस्तथा मृदा ।
उपवासस्त्रिरात्र तु दुष्टभक्ताशिनो भवेत् ॥१३४
अज्ञाने ज्ञानपूर्वे तु तद्दोपोपशमे न तु ।
उदक्या वावलग्ना च सूतिकान्त्यावसायिन. ॥१३५
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थ तथैव मृतहारिण. ।
नार स्पृष्ट्वाऽस्थि सस्नेह स्नात्वा विप्रो विशुध्यति ॥१३६

आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ।
न लङ्घयेत्तथैवाथ ष्ठीवनोद्वर्तनानि च ॥१३७
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रं पादाम्भस्तत्क्षिपेद्बहिः ।
पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणि ॥१३८
स्नायीत देवखातेषु गङ्गाह्रदसरित्सु च ।
नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥१३९
नाऽऽलपेज्जनविद्विष्टान्वीरहीनास्तथा स्त्रियः ।
देवतापितृसच्छास्त्रयज्विसंन्यासिनिन्दकैः ॥१४०

शेष जो उस अन्न की राशि में अन्न बचे उसका प्रोक्षण आचमन करके जल तथा मिट्टी से कर देना चाहिए । इससे विशुद्धता होती है । दुष्ट अर्थात् दोष युक्त भक्त के अशन करने वाले को तीन रात्रि तक उपवास करना चाहिए ॥१३४॥ चाहे दोष युक्त भात का अशन अज्ञान पूर्वक हो या ज्ञान पूर्वक होवे उसके दोष का उपशय हो जाता है । उदक्या अवलग्ना, और सूतिका के अन्त्य में अवशायी का स्पर्श करके तथा मृत मनुष्य को वहन करके शुद्धि के लिये स्नान करना चाहिए । नर के अस्थियों का स्नेह से स्पर्श करके भी विप्र स्नान करके ही विशुद्ध होता है ॥१३५-१३६॥ निःस्नेह स्पर्श करके केवल आचमन करके ही अथवा गौ तथा सूर्य का दर्शन करके शुद्ध हो जाता है । निष्ठीवन, वुद्वर्त्तन (वान्त) का कभी उल्लङ्घन न करे ॥१३७॥ घर से उच्छिष्ट, मल, मूत्र और पदों के धोने का जल वाहिर प्रक्षिप्त कर देवे । पञ्च पिण्डों का उद्धरण न करके दूसरे जल में स्नान नहीं करना चाहिए ॥१३८॥ देव खात (देवों के समीप का जलाशय)-गङ्गा-ह्रद और सरिताओं में स्नान करे । विकाल समय में उद्यान आदि स्थलों में प्राज्ञ पुरुष को कभी भी नहीं रहना चाहिए ॥१३९॥ जनों से विशेष द्वेष रखने वाला, वीर दीन स्त्रियाँ और देव, पिता, सत्, शास्त्र, यज्वा और संन्यासियों की निन्दा करने वालों के साथ भाषण नहीं करना चाहिए ॥१४०॥

कृत्वा तु स्पर्शनालापं शुध्यत्यर्कावलोकनात् ।
अवलोक्य तथोदक्यां सन्यस्तं पतितं शवम् ॥१४१

विधर्मिसूतिकापण्डविवस्त्रान्त्यावसायिनः ।
मृतनिर्यातिकाश्चैव परदाररताश्च ये ॥१४२
एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः ।
अभोज्यभिक्षुपाखण्डमार्जारखरकुक्कुटान् ॥१४३
पतितापविद्धचाण्डालमृताहाराश्च धर्मवित् ।
सस्पृश्य शुध्यते स्नानादुदक्याग्रामशूकरौ ॥१४४
तद्वच्च सूतिकाशौचदूषितौ पुरुषावपि ।
यस्य चानुदिन हानिर्गृहे नित्यस्य कर्मण ॥१४५
यश्च ब्राह्मणसत्यक्तः किल्विषाशी नराधम ।
नित्यस्य कर्मणो हानि न कुर्वीत कदाचन ॥१४६
तस्य त्वकरण वक्ष्ये केवल मृतजन्मसु ।
दशाह ब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमविवर्जितः ॥१४७

यदि उपर्युक्त पुरुषो के साथ कभी आलाप या स्पर्श हो भी जावे तो सूर्य के दर्शन से ही शुद्धि हो जाया करती है। उदक्या (रजस्वला)-सन्यस्त पतित शव विधर्मी-सूतिका-पण्ढ-वस्त्र रहित नग्न-अन्त्यावसायी-मृत के निर्यातक और जो पराई स्त्री मे रति रखने वाले हैं उनके साथ आलाप एव स्पर्श करने पर भी प्राज्ञ पुरुषो को अपनी आत्मा के शोधन के लिये भी यही करना चाहिए। अभोज्य, भिक्षु, पाषण्डी, मार्जार, गधा मुर्गा, पतित, अपविद्ध, चाण्डाल और मृत पुरुष को हरण करने वाले अर्थात् ले जाने वालो का स्पर्श करके भी धर्म के वेत्ता की शुद्धि स्नान करने से हो जाती है । इसी भाँति रजस्वला और ग्राम्य शूकर तथा सूतिका के आशौच से दूषित पुरुषों के भी स्पर्श से स्नान द्वारा विशुद्धि हुआ करती है। जिसको अनुदित हानि होती है अर्थात् नित्य कर्म की हानि हुआ करती हैं और ब्राह्मणों से सत्यक्त, किल्विष के अशन करने वाला नराधम होता है। अतएव नित्य कर्म की हानि कभी भी नही करनी चाहिए ॥१४१-१४६॥ उस नित्य कर्म का अपकरण तो-मृत का शौच और जात का शौच मे ही करे। दश दिन पर्यन्त ब्राह्मण दान होम से रहित रहे ॥१४७॥

क्षत्रियो द्वादशाहं च वैश्यो मासधर्ममेव च ।
शूद्रश्च मासमासीत निजकर्मविवर्जितः ॥१४८

ततः परं निजं कर्म कुर्युः सर्वे यथोचितम् ।
प्रेताय:सलिलं देयं बहिर्गत्वा तु गोत्रकैः ॥१४९
प्रथमेऽह्नि चतुर्थे च सप्तमे नवमे तथा ।
तस्यास्थिसंचयः कार्यश्चतुर्थेऽहनि गोत्रकैः ॥१५०

ऊर्ध्वं संचयमात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते ।
गोत्रकैस्तु क्रियाः सर्वाः कार्याः संचयनात्परम् ॥१५१
स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तथोभयोः ।
अन्वर्थमिच्छया शस्त्ररज्जुबन्धनवह्निषु ॥१५२

विषप्रतापादिमृते प्रायानाशकयोरपि ।
बाले देशान्तरस्थे च तथा प्रव्रजिते मृते ॥१५३
सद्यः शौचं मनुष्याणां त्र्यहमुक्तमशौचकम् ।
सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि ॥१५४
पूर्वशौचं समाख्यातं कार्यास्तत्र दिनक्रियाः ।
एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सूतके ॥१५५

जैसे ब्राह्मण की दश दिन में शुद्धि होती है उसी तरह क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है अतः उतने ही दिन तक इनको नित्य कर्म से वर्जित रहना चाहिए ॥१४८॥ इस उक्त समय के पश्चात् सबको समुचित नित्य कर्म करना चाहिए । गोत्र वाले पुरुषों को बाहिर जाकर प्रेत के लिये जलदान करना चाहिए ॥१४९॥ प्रथम दिन में, चतुर्थ, सप्तम, अथवा नवम दिन में उस प्रेत की अस्थियों का सञ्चय करना चाहिए । गोत्र वाले पुरुषों को चौथे दिन में करना चाहिए ॥१५०॥ अस्थि सञ्चयन के बाद में अनेक अङ्गों का स्पर्श किया जाता है । सञ्चयन करने के पश्चात् ही गोत्र वाले लोगों को सब क्रिया करनी चाहिए ॥१५१॥ सपिण्ड जो हों उनको स्पर्श में ही होता है और मृत के दिन में दोनों को होता है । शस्त्र, रज्जु, बन्धन,

अग्नि, विष प्रताप आदि से मृत हो जावेगा तथा प्रायानाशकों को भी पातक, दूसरे देश में स्थित और प्रवृज्ति (गृह त्याग कर जाने वाले) के मृत हो जाने पर अन्वर्थ इच्छा से तुरन्त ही मनुष्यो की शुद्धि होती है और तीन दिन का आशौच भी कहा गया है। सपिन्डो के मृत होने पर सपिण्ड की शुद्धि है। यदि अन्य में मृत हो तो पूर्व शौच बता दिया गया है उन्ही में दिन क्रिया करनी चाहिए। जन्म हो या मृत्यु हो दोनो में अशौच तथा शुद्धि की एक ही सी विधि देखी गयी है ॥१५२-१५५॥

सपिण्डाना सपिण्डेपु यथावत्सोदकेपु च ।
पुत्रे जाते पितु स्नान सचैलस्य विधीयते ॥१५६
तत्रापि यदि वाऽऽन्यस्मिन्ननुयातस्ततः परम् ।
तत्रापि शुद्धिरुदिता पूर्वजन्मवतो दिनं. ॥१५७
दशद्वादशमासार्धमाससख्यैर्दिनैर्गते ।
स्वा· स्वा. कर्मक्रिया कुर्युः सर्वे वर्णा यथाविधि ॥१५८
प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यमेकोद्दिष्टमत· परम् ।
दानानि चैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभि ॥१५६
यद्यदिष्टतम लोके यच्चास्य दयित गृहे ।
तत्तद्गुणवते देय तदेवाक्षयमिच्छता ॥१६०
पूर्णैस्तु दिवसै· स्पृष्ट्वा सलिल वाहनायुधं ।
दत्तप्रेतोदपिण्डाश्च सर्वे वर्णाः कृतक्रिया ॥१६१

सपिण्डो के सपिण्डो में और यथावत् सोदकोमें पुत्र के समुत्पन्न होने पर पिता को वस्त्रो सहित स्नान करने का विधान होता है ॥१५६॥ उसमें भी यदि अन्य में अनुयात हो या उससे भी पर हो उसमे भी शुद्धि कही गयी है। पूर्व जन्म वाले की दिनो मे शुद्धि होती है। जैसे पहिले बताया गया है दश, द्वादश, पक्ष और मास के दिनो मे शुद्धि हो जाने पर सभी वर्णो वाले लोग विधि पूर्वक अपनी २ क्रियाऐ करें ॥१५७-१५८॥ इसके अनन्तर प्रेत का उद्देश्य ग्रहण करके एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए। मनीषी लोगो के द्वारा ब्राह्मणो को दान देना चाहिए ॥१५६॥ जो जो भी पदार्थ अधिक इष्ट हो और घर में जो जो लोक मे प्रिय हो वही वही

वस्तु उन-उन गुणों वाले विप्रों को अक्षय होने की इच्छा वाले को दान में देना चाहिए ॥१६०॥ पूर्ण दिवसों के होने पर वाहन और आयुधों से जल का स्पर्श करके प्रेत को जल और पिण्ड दिये जाने वाले सब वर्णों के लोग सफल क्रिया वाले हुआ करते हैं ॥१६१॥

कुर्युः समग्राः शुचिनः परत्रेह च भूतये ।
अध्येतव्या त्रयी नित्यं भवितव्यं विपश्चिता ॥१६२

धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि यत्नतः ।
येन प्रकुपितो नाऽऽत्मा जुगुप्समेति भो द्विजाः ॥१६३

तत्कर्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्यं महाजनैः ।
एवमाचरतो विप्राः पुरुषस्य गृहे सतः ॥१६४

धर्मार्थकामं संप्राप्य परत्रेह च शोभनम् ।
इदं रहस्यमायुष्यं धन्यं बुद्धिविवर्धनम् ॥१६५

सर्वपापहरं पुण्यं श्रीपुष्ट्यारोग्यदं शिवम् ।
यशःकीर्तिप्रदं नृणां तेजोबलविवर्धनम् ॥१६६

इस लोक में और परलोक में भूति के लिये सब को शुचि होकर ही करना चाहिए। विद्वान् पुरुष को नित्य ही त्रयी का अध्ययन करना चाहिए ॥१६२॥ धर्म पूर्वक न्यायोचित रीति से धन का अर्जन करे और यत्न पूर्वक यजन करना चाहिए। हे द्विजगण ! जिससे प्रकुपित हुआ आत्मा जुगुप्सा को प्राप्त नहीं होता है ॥१६३॥ निःशङ्क होकर वही कार्य करना चाहिए जो कार्य महाजनों के द्वारा छिपाने के योग्य न हो। हे विप्रो ! इस उक्त रीति से आचरण करने वाले पुरुष के घर में ही रहते हुए धर्म-अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थों की सम्प्राप्ति हो जाती है और इस लोक तथा परलोक दोनों में भला होता है। यह परम रहस्य युक्त है—आयु का बढ़ाने वाला है, धन्य तथा बुद्धि का वर्धक है ॥१६४-१६५॥ यह समस्त पापों का हरण करने वाला-पुण्यपूर्ण-श्री-पुष्टि और आरोग्य का देने वाला है तथा शिव है। मनुष्यों को यश और कीर्त्ति

देने वाला एवं तेज बल का वर्धन करने वाला यह सदाचरण होता है ॥१६६॥

अनुष्ठेयं सदा पुंभिः स्वर्गसाधनमुत्तमम् ।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च मुनिसत्तमाः ॥१६७
ज्ञातव्यं सुप्रयत्नेन सम्यक्श्रेयोभिकाङ्क्षिभिः ।
ज्ञात्वैव य सदा कालमनुष्ठान करोति वै ॥१६८
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ।
सारात्साररतर चेदमाख्यात द्विजसत्तमाः ॥१६९
श्रुतिस्मृत्युदित धर्मं न देयं यस्य कस्यचित् ।
न नास्तिकाय दातव्य न दुष्टमतये द्विजा ॥
न दाम्भिकाय मूर्खाय न कुतर्कप्रलापिने ॥१७०

मनुष्यों को इस सदाचरण का सदा ही अनुष्ठान करना चाहिए। यह परमोत्तम स्वर्ग का साधन है। हे मुनिश्रेष्ठो ! यह ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र सभी को करना चाहिए ॥१६७॥ श्रेय की आकांक्षा वालो को भली भांति सुप्रयत्न पूर्वक इसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। जो सदा जानकर ही समय पर इसका अनुष्ठान किया करता है वह सब पापो से छुटकारा पाकर स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित होता है। हे द्विजसत्तमो ! यह सार का भी सार मैंने वर्णित कर बता दिया है ॥१६८-१६९॥ यह धर्म की बातें जो हमने अभी वर्णित की हैं वे सब श्रुति और स्मृति मे कही हुई हैं। इस धर्म को चाहे जिस किसी को नही बताना चाहिए। जो ईश्वर के अस्तित्व को नही मानने वाला नास्तिक हो या दुष्ट बुद्धि वाला हो हे द्विजगण ! उसको कभी न बतावे। जो दाम्भिक मूर्ख एवं कुतर्क के प्रलाप करने वाले को कभी न देवे ॥१७०॥

—:※:—

वर्णाश्रमधर्मवर्णन

श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्वर्णधर्मान्विशेषतः ।
चतुराश्रमधर्मांश्च द्विजवर्य ब्रवीहि तान् ॥१
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाक्रमम् ।
शृणुध्वं संयता भूत्वा वर्णधर्मान्मयोदितान् ॥२
दानदयातपोदेवयज्ञस्वाध्यायतत्परः ।
नित्योदकी भवेद्विप्रः कुर्याच्चाग्निपरिग्रहम् ॥३
वृत्त्यर्थं याजयेत्त्वन्यान्द्विजानध्यापयेत्तथा ।
कुर्यात्प्रतिग्रहादानं यज्ञार्थं ज्ञानतो द्विजाः ॥४
सर्वलोकहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद्द्विजाः ।
मैत्री समस्तसत्वेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम् ॥५
गवि रत्ने च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद्द्विजाः ।
ऋतावभिगमः पत्न्यां शस्यते वाऽस्य भो द्विजाः ॥६
दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्यः क्षत्रियोऽपि हि ।
यजेच्च विविधैर्यज्ञै रधीयीत च भो द्विजाः ॥७

मुनिगण ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हम लोग विशेष रूप से वर्णों के धर्मों का श्रवण करना चाहते हैं । हे द्विज वर्ग ! चारों आश्रमों के धर्मों को हमको बतलाइये बड़ी कृपा होगी ॥१॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—आप लोग सब संयत होकर श्रवण करिए । मैं यथाक्रम से ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रों के वर्ण धर्मों का वर्णन करता हूँ ॥२॥ एक विप्र को दान-दया-तप-देवयज्ञ और स्वाध्याय में तत्पर होना चाहिए तथा नित्य उदकी होकर अग्नि का परिग्रह करना चाहिए ॥३॥ अन्य द्विजों को वृत्ति के लिये यजन करावे तथा अध्यापन कराना चाहिए । हे द्विजो ! ज्ञान से यज्ञ के लिये प्रतिग्रह ग्रहण करे तथा दान देवे ॥४॥ हे द्विजगण ! ब्राह्मण को सब लोगों के हित के लिये किसी का भी अहित न करे और सब लोगों का सदा हित ही करे । समस्त जीवों में मैत्री का भाव ही

ब्राह्मण का सर्वोत्तम धन होता है ॥५॥ हे द्विजो ! ब्राह्मण को गौ मन्दरत्न म और पाखण्ड में समान बुद्धि वाला होना चाहिए। ऋतुकाल म ही विप्र को अपनी पत्नी का अभिगमन करना प्रशस्त होता है ॥६॥ इच्छा पूर्वक क्षत्रिय को द्विजा क लिय दान देना चाहिए। विप्र को अध्ययन करना चाहिए और विविध यज्ञो के द्वारा यजन करना चाहिये ॥७॥

शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका ।
तस्यापि प्रथमे कल्प पृथिवीपरिपालनम् ॥८
धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या निराधिपा ।
भवन्ति नृपते रक्षा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ॥९
दुष्टाना शासनाद्राजा शिष्टाना परिपालनात् ।
प्राप्नोत्यभिमतांल्लोकान्वर्णसंस्थापको नृप ॥१०
पाशुपाल्य वणिज्या च कृषि च मुनिसत्तमा ।
वैश्याय जीविका ब्रह्मा ददौ लोकपितामह ॥११
तस्याप्यध्ययन यज्ञो दान धर्मश्च शस्यते ।
नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठान च कर्मणाम् ॥१२
द्विजातिसश्रय कर्म तदर्थं तेन पोषणम् ।
क्रयविक्रयजैर्वाऽपि धन कारुभवैस्तु वा ॥१३
दान दद्याच्च शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च ।
पित्र्यादिक च व सर्वं शूद्र कुर्वीत तेन व ॥१४

अब क्षत्रियो क धर्म को बतलाया जाता है-क्षत्रिय को शस्त्रों की आजीविका वाला, भूमि का रक्षण, य ही दो क्षत्रिय की श्रेष्ठ जीविका हैं। उसका भी प्रथम कल्प म पृथिवी का परिपालन करना है ॥८॥ नराधिप भूमि क परिपालन स ही कृतकृत्य हो जाया करते हैं क्योंकि यज्ञ आदि कर्मों की सुरक्षा राजा स ही हुआ करती है ॥९॥ राजा दुष्टों को शासन करके दण्ड देता है और जो शिष्ट पुरुष होते हैं उनका परिपालन करने वाला होता है। इस रीति स वर्णों का सस्थापन करने वाला राजा अपने अभिमत लोको की प्राप्ति किया करता है ॥१०॥ पशुओ

का पालन-वाणिज्य और कृषि कर्म हे मुनिश्रेष्ठो ! लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने वैश्य के लिये जीविका दी थीं। वैश्य का भी यज्ञ-दान-अध्ययन और धर्म प्रशस्त कहा जाता है और नित्य एवं नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान भी वैश्य करता है ॥११-१२॥ द्विजातियों के संश्रय में जो कुछ कर्म है उसी के लिये उससे पोषण होता है। क्रय और विक्रय से समुत्पन्न धनों से तथा कारीगरी हस्त कला से अर्जित धनों से शूद्र भी दान देवे और पाक यज्ञों के द्वारा यजन कर्म करे। पितृ सम्बन्धी आदि सभी कर्म शूद्र को उसी से करना चाहिये ॥१३-१४॥

भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषां च परिग्रहाः।
ऋतुकालाभिगमनं स्वदारेषु द्विजोत्तमाः ॥१५
दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नाभिमानिता।
सत्यं शौचमनायासो मङ्गलं प्रियवादिता ॥१६
मैत्री चैवास्पृहा तद्वदकार्पण्यं द्विजोत्तमाः।
अनसूया च सामान्या वर्णानां कथिता गुणाः ॥१७
आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः।
गुणास्तथोपधर्माश्च विप्रादीनामिमे द्विजाः ॥१८
क्षात्रं कर्म द्विजस्योक्तं वैश्यकर्म तथाऽऽपदि।
राजन्यस्य च वैश्योक्तं शूद्रकर्माणि चैतयोः ॥१९
स(अ सामर्थ्ये सति त्याज्यमुभाभ्यामपि च द्विजाः।
तदेवाऽऽपदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसंकरम् ॥२०
इत्येते कथिता विप्रा वर्णधर्मा मयाऽद्य वै।
धर्मामाश्रमिणां सम्यग्ब्रुवतोऽपि निबोधत ॥२१

भृत्य आदि के भरण के लिये सबका परिग्रह होता है। हे द्विजोत्तमो ! अपनी दाराओं का ऋतुकाल में ही अभिगमन करना चाहिये ॥१५॥ समस्त प्राणियों पर दया का भाव-तितिक्षा (कष्टों को सहन करना)-अभिमान की अधिकता का अभाव-सत्य-शौच (पवित्रता)-आयासन करना-मङ्गल-प्रिय भाषण करना-मैत्रीभाव-अस्पृहा (विशेष इच्छा किसी के लिये न रखना)-अकार्पण्य (कंजूसी का अभाव)-

अनसूया (किसी की निन्दा न करना)—ये सभी वर्णों के सामान्य धर्म कहे गये हैं ॥१६-१७॥ सभी आश्रमो के भी ये सामान्य लक्षण होते हैं। हे द्विजो ! गुण तथा उपधम विप्रादि के ये होते हैं ॥१८॥ आपत्ति काल जब उपस्थित हो जाता है तो उस समय मे द्विज के लिये क्षात्र धर्म भी कहा गया है और वैश्य का कर्म भी ऐसे समय मे बतला दिया है। क्षत्रिय को वैश्य का कम कह दिया गया है तथा क्षत्रिय-वैश्य दोनो को आपत्ति काल मे शूद्रो के कम भी बताये गय है अर्थात् शूद्रो के कर्म भी कर सकते हैं ॥१९॥ हे द्विजो ! जब सामर्थ्य से युक्त हो जावे तो दोनो ही वर्णों को दूसरे वर्णों के कर्म का त्याग कर दना चाहिये क्योंकि ऐसा विधान शास्त्र ने विपत्ति काल मे ही बतलाया है। यह धर्म तो आपदा के समय मे करना चाहिये और कर्मों का सङ्कर कभी भी न करे ॥२०॥ हे विप्रो ! आज ये वर्णों के धर्म मैंन वर्णन करके बतला दिये हैं। अब आश्रमो म रहने वाले लोगो के धर्म को भी मैं बोलता हूँ उनको मुझसे आप भली भाँति से समझ लो ॥२१॥

> बाल कृतापनयनो वेदाहरणतत्पर ।
> गुरोर्गेहे वसन्विप्रा ब्रह्मचारी समाहित ॥२२
> शौचाचाररतस्तत्र कार्यं शुश्रूषण गुरो ।
> व्रतानि चरता ग्राह्यो वेदश्च कृतबुद्धिना ॥२३
> उभे सन्ध्ये रविं विप्रास्तथैवाग्नि समाहित. ।
> उपतिष्ठेत्तथा कुर्याद्गुरोरप्यभिवादनम् ॥२४
> स्थिते तिष्ठेद्व्रजेद्याति नीचैरासीत चाऽऽसिते ।
> शिष्यो गरो द्विजश्रेष्ठा प्रतिकूल च सत्यजेत् ॥२५
> तेनैवोक्त प ठेद नान्यचित्त पुरस्थित ।
> अनुज्ञात च भिक्षान्नमश्नीयाद्गुरुणा तत ॥२६
> अवगाहेदप पूवमाचार्येणावगाहिता. ।
> समिज्जलादिक चास्य कल्यकल्यमुपानयेत् ॥२७
> गृहीतग्राह्यवेदश्च ततोऽनुज्ञामवाप्य वै ।
> गार्हस्थ्यमावसेत्प्राज्ञो निष्पन्नगुरुनिष्कृतिः ॥२८

उपनयन हो जाने वाला बालक जो वेदों के समाहरण में तत्पर हो। हे विप्रो ! गुरु के गृह में निवास करते हुए समाहित होकर ब्रह्मचारी रहे ॥२२॥ शौच और आचार में रति रखते हुए वहाँ पर गुरुकुल में गुरुदेव की शुश्रूषा करनी चाहिए। व्रतों का समाचरण करते हुए कृत-बुद्धि के द्वारा वेद का ग्रहण करना चाहिये ॥२३॥ परम समाहित होकर हे विप्रो ! रवि देव का तथा अग्नि का दोनों सन्ध्या कालों में उपस्थान करना चाहिये और दोनों सन्धि कालों में गुरु का भी अभिवादन करे ॥२४॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! गुरुदेव की सेवा में गुरु की पूर्णतया अनुसरणता होनी चाहिये। गुरु के स्थित होने पर स्वयं भी स्थित हो जाना चाहिए। जब गुरु गमन करें तो उनके पीछे स्वयं भी गमन करे। जब गुरुदेव बैठें तो स्वयं भी बैठ जाना चाहिए। शिष्य को प्रतिकूल कभी नहीं रहना चाहिए। जो प्रतिकूल शिष्य हो उसका त्याग कर देवे ॥२५॥ गुरु के द्वारा बताये हुए वेद को पढ़ना चाहिए और गुरु के सामने स्थित होकर अन्यमनस्क नहीं रहना चाहिए। जो भी भिक्षा का अन्न लावे उसको गुरु के सामने रक्खे और जब गुरु द्वारा अनुज्ञा प्राप्त हो जावे तो फिर उसका भक्षण करना चाहिये ॥२६॥ पूर्व में गुरु के द्वारा अवगाहित जलों में स्वयं अवगाहन करे। गुरु के लिये प्रतिदिन प्रातः काल में नित्य समिधा और जल आदिक शिष्य ब्रह्मचारी को लाकर अर्पित कर देना चाहिए ॥२७॥ ग्रहण करने के योग्य वेद को ग्रहण करके फिर गुरुदेव की अनुज्ञा प्राप्त करे तथा गुरुदेव की निष्कृति को पूर्ण करके अर्थात् उनकी भेंट पूजा करके दक्षिणा देकर प्राज्ञपुरुष को गार्हस्थ आश्रम में आकर वास करना चाहिए ॥२८॥

विधिनाऽवाप्तदारस्तु धनं प्राप्य स्वकर्मणा।
गृहस्थकार्यमखिलं कुर्याद्विप्राः स्वशक्तितः ॥२९
निर्वापेण पितॄनर्च्य यज्ञैर्देवांस्तथाऽतिथीन्।
अन्नैर्मुनींश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ॥३०
वलिकर्मणा भूतानि वाक्सत्येनाखिलं जगत्।
प्राप्नोति लोकान्पुरुषो निजकर्मसमार्जितान् ॥३१

भिक्षाभुजश्च ये केचित्परिव्राट्ब्रह्मचारिणः ।
तेऽप्यत्र प्रतितिष्ठन्ति गार्हस्थ्य तेन वै परम् ॥३२
वेदाहरणकार्येण तीर्थस्नानाय च द्विजाः ।
अटन्ति वसुधा विप्रा हृथिवीदर्शनाय च ॥३३
अनिकेता ह्यनाहारा ये तु साय गृहास्तु ते ।
तेषा गृहस्थ सतत प्रतिष्ठा योनिरुच्यते ॥३४
तेषा स्वागतदानानि वक्तव्यमधुर सदा ।
गृहागताना दद्याच्च शयनसनाभोजनम् ॥३५

विधिपूर्वक पत्नी को ग्रहण करने वाला अपने ही शास्त्रोक्त कर्म के द्वारा धन को प्राप्त करे और हे विप्रो ! अपनी शक्ति से सम्पूर्ण गृहास्याश्रम कार्य करना चाहिए ॥२९॥ निर्वाप के द्वारा पितृगण का अर्चन कर—यज्ञा के द्वारा देवो का अभ्यर्चन करे—अन्न के द्वारा अतिथियो का और स्वाध्याय क द्वारा मुनियों का एव सन्तति समुत्पादन के द्वारा प्रजापति का अभ्यर्चन करे ॥३०॥ बलि कर्म के द्वारा भूतो का—वाणी की सत्यता के द्वारा सम्पूर्ण जगत् का अर्चन करे । इस विधि से गार्हस्थ्य आश्रम में रहते हुए मनुष्य अपने ही कर्मों द्वारा समार्जित लोकों को प्राप्त कर लिया करता है ॥३१॥ जो कोई भिक्षा वृत्ति भोजन करने वाले परिव्राट् (सन्यासी) तथा ब्रह्मचारी हैं वे भी तब इसी गार्हस्थ्य आश्रम म प्रतिष्ठित हुआ करते हैं अर्थात् उनका निर्वाह गृहस्थ के द्वारा चला करता है इसी लिये गार्हस्थ्य आश्रम सबसे श्रेष्ठ एव पर माना जाता है ॥३२॥ हे द्विजो ! विप्रगण वेदो के ग्रहण करने के कार्य से—तीर्थों म अवगाहन करने के लिये और समग्र पृथिवी के दर्शन प्राप्त करने के लिये सम्पूर्ण वसुधा पर पर्यटन किया करते हैं ॥३३॥ जो बिना घर द्वार वाले हैं और जिनको दिनभर आहार नही मिलता है उन लोगो के गृहस्थी ही सायकाल म गृह होते हैं । गृहस्थ निरन्तर उनकी प्रतिष्ठा की योनि (कारण) होता है—ऐसा कहा जाता है ॥३४॥ उन लोगो के लिये स्वागत करना, दान देना, सदा मधुर भाषण करके गृह मे समागत हुए लोगो को गृहस्थ द्वारा शयन-आसन और भोजन देना चाहिए ॥३५॥

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥३६
अवज्ञानमहंकारो दम्भश्चापि गृहे सतः ।
परिवादोपघातौ च पारुष्यं च न शस्यते ॥३७
यश्च सम्यक्करोत्येव गृहस्थः परमं विधिम् ।
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोति चोत्तमान् ॥३८
वयःपरिणतौ विप्राः कृतकृत्यो गृहाश्रमी ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥३९
पर्णमूलफलाहारः केशश्मश्रुजटाधरः ।
भूमिशायी भवेत्तत्र मुनिः सर्वातिथिर्द्विजाः ॥४०
चर्मकाशकुशैः कुर्यात्परिधानोत्तरीयके ।
तद्वत्त्रिषवणं स्नानं शस्तमस्य द्विजोत्तमाः ॥४१
देवताभ्यर्चनं होमः सर्वाभ्यागतपूजनम् ।
भिक्षा बलिप्रदानं तु शस्तमस्य प्रशस्यते ॥४२

जिस गृहस्थ के घर से भग्न आशा वाला अतिथि वापिस निराश लौट जाया करता है। वह उस गृहस्थ के सम्पूर्ण पुण्य को लेकर तथा पाप देकर ही चला जाया करता है। अतिथि-सत्कार की बड़ी महिमा होती है अतः इसका त्याग कभी नहीं करना चाहिए। इसके करने से महान् पुण्य होता है ॥३५॥ गृह में रहने वाले गृहाश्रमी को अवज्ञान, अहङ्कार, दम्भ, परिवाद, उपघात और कठोरता, इन सब का होना प्रशस्त नहीं कहा जाता है अर्थात् अवगुण गृहस्थ में नहीं होने चाहिए क्योंकि परिणाम अच्छा नहीं होता है ॥३७॥ जो कोई गृहस्थ इस रीति से परम विधि का परिपालन अच्छी तरह से करके गार्हस्थ्य आश्रम में रहता है वह सभी प्रकार के बन्धनों से छुटकारा पाकर अन्त में अति उत्तम लोकों को प्राप्त किया करता है ॥३८॥ हे विप्रो ! जब गृहस्थ की अवस्था परिपक्व हो जाती है तो वह कृत कृत्य हो जाया करता है। फिर उसका कर्त्तव्य यही है कि अपनी भार्या की देख-भाल पुत्रों को सौंप कर स्वात्म कल्याण

के लिये वन में चले जाना चाहिए या भार्या को साथ ही में ले जाना चाहिए। यह तृतीय वानप्रस्थ आश्रम होता है जिसका पालन करना आवश्यक है ॥३९॥ हे द्विजो ! वहाँ वन में पत्ते, मूल, कन्द और फलो का आहार करे और केश, श्मश्रु और जटा धारण करे। भूमि में शयन करने वाला, सबका अतिथि मुनि होकर निवास करे ॥४०॥ चर्म, कुशा और कांस से अपने शरीर के आवरण करने वाला परिधान और उत्तरीयक बनावे तथा वहा पर भी हे द्विजगणो ! त्रिकाल स्नान, तीनो काल की सन्ध्योपासना करना ही परम प्रशस्त है ॥४१॥ देवो का पूजन, होम, सभी समागत अभ्यागतों का सत्कार, भिक्षा, बलि प्रदान कर्म ही उसको प्रशस्त बताये गये हैं ॥४२॥

वन्यस्नेहेन गात्राणामभ्यङ्गश्चापि शस्यते ।
तपस्या तस्य विप्रेन्द्रा. शीतोष्णादिसहिष्णुता ॥४३
यस्त्वेता नियतश्चर्या वानप्रस्थश्चरेन्मुनिः ।
स दहत्यग्निवद्दोषाञ्जयेल्लोकाश्च शाश्वतान् ॥४४
चतुर्थश्चाऽऽश्रमो भिक्षो प्रोच्यते यो मनीषिभिः ।
तस्य स्वरूप गदतो बुध्यध्व मम सत्तमाः ॥४५
पुत्रद्रव्यकलत्रेषु त्यजेत्स्नेह द्विजोत्तमा' ।
चतुर्थमाश्रमस्थान गच्छेन्निर्धूतमत्सरः ॥४६
त्रैवर्णिकास्त्यजेत्सर्वानारम्भान्द्विजसत्तमा ।
मित्रादिषु समो मैत्र. समस्तेष्वेव जन्तुषु ॥४७
जरायुजाण्डजादीना वाङ्मनःकर्मभि. क्वचित् ।
तुक्त कुर्वीत न द्रोह सर्वसङ्गाश्च वर्जयेत् ॥४८
एकरात्रस्थितिर्ग्रामे पञ्चरात्रस्थिति. पुरे ।
तथा प्रीतिर्न तिर्यक्षु द्वेषो वा नास्य जायते ॥४९

वन में होने वालो के स्नेह से (चिकनाई से) अपने अङ्गो का अभ्यङ्ग भी प्रशस्त बताया जाता है। हे विप्रेन्द्रो ! उसकी शीत, उष्ण और वर्षा आदि का सहन करना ही बडा भारी वन मे तपश्चर्या है ॥४३॥ जो वानप्रस्थ धर्म में रहने वाला मनुष्य (मुनि) इन उपर्युक्त तप

स्याओं का समाचरण किया करता है वह अग्नि के समान ही सब दोषों को जला देता है और जो शाश्वत लोक हैं उन पर विजय प्राप्त कर लेता है ॥४४॥ चौथा आश्रम मनीषीयों के द्वारा भिक्षु का आश्रम ही कहा जाया करता है। हे श्रेष्ठ पुरुषो ! उस चौथे संन्यास आश्रम का स्वरूप भी मैं बोल रहा हूं। मुझसे आप लोग उसे भी समझ कर जान लो ॥४५॥ संसार में महान् बन्धन स्वरूप पुत्र-द्रव्य और स्त्री इनमें जो स्नेह होता है उसे सर्वथा त्याग देना चाहिए और मत्सरता को एक दम छोड़कर चौथे आश्रम में गमन करना चाहिए ॥४६॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! फिर तो तीनों वर्णों के जो भी नियम और कर्म हैं उन सवका आरम्भों का त्याग कर देवे। समस्त प्राणियों के प्रति मित्रों के ही समान मैत्री भाव रक्खे ॥४७॥ चार प्रकार की जल वृष्टि होती है उन जरायुज और अण्डज आदि का मन-वचन कर्म से युक्त होकर कहीं पर भी द्रोह नहीं करे और सब प्रकार के सङ्गों का वर्णन कर देना चाहिए ॥४८॥ संन्यासी एक ग्राम में अपनी स्थिति एक रात्रि तक ही करे और किसी भी पुर में पाँच रात्रि पर्यन्त संन्यासी को निवास करना चाहिए। इससे अधिक रहना संन्यासी को वर्जित होता है। तिर्यक् गणों में उस प्रकार की अधिक प्रीति अथवा द्वेष इसको नहीं करना चाहिए ॥४९॥

प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्गारेऽभुक्तज्जने।
काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थी पर्यटेद्गृहान् ॥५०॥
अलाभे न विषादो स्याल्लाभे नैव च हर्षयेत्।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥५१॥
अतिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सं चै(प्सेचै)व सर्वतः।
अतिपूजितलाभैस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥५२॥
कामः क्रोधस्तथा दर्पो लोभमोहादयश्च ये।
तांस्तु दोषान्परित्यज्य परिव्राण्निर्ममो भवेत् ॥५३॥
अभयं सर्वसत्वेभ्यो दत्वा यश्चरते महीम्।
तस्य देहाद्विमुक्तस्यु भयं नोत्पद्यते क्वचित् ॥५४॥

कृत्वाऽग्निहोत्र स्वशरीरसस्थ,
शारीरमग्नि स्वमुखे जुहोति ।
विप्रस्तु भिक्षोपगतैर्हविर्भि-
श्चिताग्निना स व्रजति स्म लोकान् ॥५५
मोक्षाश्रम यश्चरते यथोक्त,
शुचिश्च सकल्पितबुद्धियुक्त: ।
अनिन्धन ज्योतिरिव प्रशान्त,
स ब्रह्मलोक व्रजति द्विजाति· ॥५६

सन्यासी को अपनी प्राण यात्रा के लिये प्रशस्त वर्णों के घर मे उस काल मे जाना चाहिए जब चूल्हो की अग्नि बुझ जावे और घर के लोग भोजन न कर पावें। ऐसे समय मे भिक्षा की याचना वाले को गृहस्थो के गृहो मे पर्यटन करना चाहिए ॥५०॥ यदि लाभ न हो तो हृदय में विषाद करने वाला न बने और भिक्षा के प्राप्त होने पर हर्षित भी नही होना चाहिए। केवल प्राण यात्रा के निमित्त जितना आवश्यक हो उतना ही ग्रहण करे तथा मात्रा के सङ्ग से विनिर्गत होना चाहिए ॥५१॥ सभी ओर से अति अधिक पूजित होकर प्राप्त होने वाले लाभो को तथा जुगुप्सा का भी त्याग कर देना चाहिए। अत्यधिक समाज मे पूजा होने वाले सन्यासी मुक्त होकर भी बद्ध हो जाया करते हैं। तात्पर्य यह है कि समाज मे सन्यासी को अधिक सम्मान तथा पूजा कभी प्राप्त नही करनी चाहिए क्यो कि ऐसा करने से बन्धन ही होता है ॥५२॥ परिव्राड् (सन्यासी अथवा यति) को काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह मात्सर्य आदि जो महान् मानसिक दोष शत्रु के स्वरूप मे रहते है उन सब का परित्याग कर देना चाहिए और यति को पूर्णतया ममता से रहित होकर काल यापन करना चाहिए ॥५३॥ जो सन्यासी समस्त जीवो को अभय का दान करके इस भूमि पर विचरण किया करता है वह इस पच-भौतिक शरीर से विमुक्त हो जाया करता है और फिर उसको कही भी किसी प्रकार का भय नही होता है ॥५४॥ अपने ही शरीर मे रहने वाले अग्निहोत्र को करके उस शारीरिक अग्नि की अपने मुख मे आहुति दिया

करता है वह विप्र भिक्षा से प्राप्त हवियों के द्वारा चिताग्नि से लोकों को गमन कर गया था ।।५५।। यह चतुर्थ आश्रम मोक्ष प्राप्त करने का आश्रम है । जैसा इसका विधान बताया गया है उसी प्रकार से जो इसका समाचरण करता है-शुचि और संकल्पित बुद्धि से युक्त होता है तथा बिना ईंधन वाली ज्योति के समान प्रशान्त रहता है वह द्विजाति सीधा ब्रह्म लोक को गमन किया करता है ।।५६।।

—:※:—

संकरजातिलक्षणवर्णन

सर्वज्ञस्त्वं महाभाग सर्वभूतहिते रतः ।
भूतं भव्यं भविष्यं च न तेऽस्त्यविदितं मुने ।।१
कर्मणा केन वर्णानामधमा जायते गतिः ।
उत्तमा च भवेत्केन ब्रूहि तेषां महामते ।।२
शूद्रस्तु कर्मणा केन ब्राह्मणत्वं च गच्छति ।
श्रोतुमिच्छामहे केन ब्राह्मणः शूद्रतामियात् ।।३
हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविभूषिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानाश्चर्यसमन्विते ।।४
तत्र स्थितं महादेवं त्रिपुरघ्नं त्रिलोचनम् ।
शैलराजसुता देवी प्रणिपत्य सुरेश्वरम् ।।५
इमं प्रश्नं पुरा विप्रा अपृच्छच्चारुलोचना ।
तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मम सत्तमाः ।।६

मुनिगण ने कहा--हे महाभाग ! आप तो सर्वज्ञ हैं और सब प्राणियों के हित में रति रखने वाले हैं । हे मुने ! आपको भूत-भव्य (वर्त्तमान) और भविष्य में कुछ भी अविदित नहीं है अर्थात् आप तीनों लोकों की बात जानते हैं ।।१।। हे महामते ! इन चारों वर्णों की ऐति किस तरह के कर्म से अधम हो जाया करती है और कौन सा कर्म पास है जिससे इनकी गति उत्तम होती है-यही आप अब हम लोगों को

बताने की कृपा कीजिए ॥२॥ कौन सा ऐसा कर्म है जिसे करके शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाया करता है ? हम अब यही श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं कि कौन सा वह कर्म है जिसके करने से ब्राह्मण भी शूद्रता को प्राप्त हो जाया करता है ? ॥ ॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—हे विप्रो ! पुरातन काल में सुन्दर नेत्रों वाली जगदम्बा ने ऐसा ही प्रश्न हिमालय गिरि के सुरम्य शिखर पर जो अनेक प्रकार की धातुओं से शोभित विविध वृक्ष और लताओं से भूषित एवं अनेक आश्चर्यों से संयुत था, श्री त्रिपुरासुर के हनन करने वाले-तीन नेत्रों वाले महादेवजी पूछा था। सर्व प्रथम शैल राज की पुत्री पार्वती देवी ने सुरेश्वर प्रभु को प्रणाम किया था और इसके अनन्तर ऐसा प्रश्न पूछा था ॥४-५॥ उसी को मैं अब आपको बतलाता हूँ। हे श्रेष्ठतमो ! उसका आप लोग श्रवण कीजिए ॥६॥

भगवन्भगनेत्रघ्न पूष्णो दन्तविनाशन ।
दक्षक्रतुहर त्र्यक्ष संशयो मे महानयम् ॥७
चातुर्वर्ण्यं भगवता पूर्वं सृष्टं स्वयंभुवा ।
केन कर्मविपाकेन वैश्या गच्छति शूद्रताम् ॥८
वैश्यो वा क्षत्रियः केन द्विजो वा क्षत्रियो भवेत् ।
प्रतिलोमे कथं देव शक्यो धर्मो निवर्तितुम् ॥९
केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनौ प्रजायते ।
क्षत्रियः शूद्रतामेति केन वा कर्मणा विभो ॥१०
एतं मे संशयं देव वद भूतपतेऽनघ ।
त्रयो वर्णा प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः ॥११
ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्रापं निसर्गाद्ब्राह्मणः शुभे ।
क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा निसर्गादिति मे मतिः ॥१२
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यति स द्विजः ।
श्रेष्ठं वर्णमनुप्राप्य तस्मादाक्षिप्यते पुनः ॥१३
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति ।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥१४

उमा देवी ने कहा था--हे भगवन् ! आप तो भग के नेत्रों के हनन करने वाले हैं और पूषा के दाँतों को भग्न कर देने वाले हैं। आप दक्ष के यज्ञ का ध्वंस कर देने वाले तथा तीनों नेत्रों से संयुत हैं। मेरे हृदय में एक बड़ा भारी संशय है उसे आपकी सेवा में निवेदित करती हूँ ॥७॥ भगवान् स्वयम्भू ने पूर्व काल में चारों वर्णों का सृजन किया था। उस कर्मों के विपाक से वैश्य शूद्रता को प्राप्त हो जाया करता है ॥८॥ वैश्य अथवा क्षत्रिय किस से द्विज हो जाता है या द्विज क्षत्रिय हो जाया करता है ? हे देवेश्वर ! प्रतिलोम होने पर धर्म कैसे निर्वत्तित किया जा सकता है ? ॥९॥ कौन सा कर्म है जिससे विप्र भी शूद्र योनि में समुत्पन्न हो जाता है ? हे विभो ! किस कर्म से क्षत्रिय शूद्रता को प्राप्त कर लिया करता है ॥१०॥ हे भूतों के स्वामिन् ! हे अनघ ! हे देव ! इस मेरे हार्दिक संशय के विषय में आप निराकरण कीजिए। इस लोक में तीनों वर्ण किस प्रकार से प्रकृति से ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥११॥ भगवान् महेश्वर ने कहा—हे देवि ! हे शुभे ! ब्राह्मण्य को प्राप्त करना बहुत ही कठिन है क्योंकि निसर्ग से ही ब्राह्मण हुआ करता है। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये सब स्वभाव से ही हुआ करते हैं—ऐसी मेरी मति हैं ॥१२॥ वह द्विज यहाँ पर दुष्कृत कर्म्म के द्वारा ही अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाया करता है। श्रेष्ठ वर्ण की प्राप्ति करके उससे पुनः आक्षिप्त किया जाता है ॥१३॥ ब्राह्मण का जो धर्म होता है उसी धर्म में स्थित रहने वाला पुरुष ब्राह्मण को उप जीवित रखता करता है। क्षत्रिय हो या वैश्य हो वह ब्रह्म भूतता को प्राप्त कर लेता है ॥१४॥

यश्च विप्रत्वमुत्सृज्य क्षत्रधर्मान्निषेवते।
ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्त्रयोनौ प्रजायते ॥१५
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ॥१६
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात्।
स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्माप्नुयात् ॥१७

तत्रासौ निरयं प्राप्तो वर्णभ्रष्टो बहिष्कृतः ।
ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः शूद्रयोनौ प्रजायते ॥१८
क्षत्रियो वा महाभागो वैश्यो वा धर्मचारिणि ।
स्वानि कर्माण्यपाकृत्य शूद्रकर्म निषेवते ॥१६
स्वस्थानात्स परिभ्रष्टो वर्णसंकरतां गतः ।
॥२०
।

जो विप्रत्व का त्याग करके क्षत्रिय के धर्मों का सेवन किया करता है वही ब्राह्मणत्व से परिभ्रष्ट होकर क्षत्रियाणी की योनि मे समुत्पन्न होता है ॥१५॥ लोभ और मोह के विशेष आश्रय के करने वाले विप्र जो वैश्य के कर्मों को किया करते हैं और इस दुर्लभ ब्राह्मणत्व को प्राप्त करके भी अल्प बुद्धि वाला विप्र सदा वैश्य के ही कर्म करता है । वही द्विज वैश्यता को प्राप्त कर लेता है और शूद्र कर्म करने से विप्र शूद्रता को पा जाया करता है क्यो कि जो विप्र अपने धर्म से च्युत हो जाता है वही शूद्रत्व को पाता है ॥१६-१७॥ वहा पर वर्ण से भ्रष्ट होकर नरक को प्राप्त हो जाता है और बहिष्कृत होकर ब्रह्म लोक से भ्रष्ट होकर शूद्र योनि मे उत्पन्न हो जाता है ॥१८॥ हे महाभागे ! आप तो धर्म का आचरण करने वाली हैं । जो अपने कर्मों का त्याग करके शूद्र के कर्मों का सेवन किया करते हैं वे अपने स्थान से परिभ्रष्ट होकर वर्णसङ्करता को प्राप्त कर लिया करते हैं । इसी तरह का ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य शूद्रता को प्राप्त किया करते हैं ॥१६-२०॥ जो शूद्र अपने ही धर्म से ज्ञान और विज्ञान वाला तथा परम पवित्र होता है एवं धर्म का ज्ञाता और धर्म मे विशेष रति रखने वाला होता है वही धर्म के फल को प्राप्त करता है ॥२१॥

इदं चैवापरं देवि ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।
अध्यात्मं नैष्ठिकी सिद्धिर्धर्मकामैर्निषेव्यते ॥२२

उग्रान्नं गर्हितं देवि गणान्नं श्राद्धसूतकम् ।
घुष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव वा क्वचित् ॥२३

शूद्रान्नं गर्हितं देवि सदा देवैर्महात्मभिः ।
पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः ॥२४

शूद्रान्नेनावशेषेण जठरे म्रियते द्विजः ।
आहिताग्निस्तथा यज्वा स शूद्रगतिभाग्भवेत् ॥२५
तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः ।
ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा ॥२६

यस्यान्नेनावशेषेण जठरे म्रियते द्विजः ।
तां तां योनिं व्रजेद्विप्रो यस्यान्नमुपजीवति ॥२७
ब्राह्मणत्वं सुखं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते ।
अभोज्यान्नानि वाऽश्नाति स द्विजत्वात्पतेत वै ॥२८

दे देवि ! यह दूसरी वात ब्रह्माजी ने कही थी । अध्यात्मक नैष्ठिकी सिद्धि है जो कर्म और काम के द्वारा निषिद्ध की जाया करती है ॥२२॥ हे देवि ! उग्र अन्न, गर्हित अन्न, गणान्न, श्राद्धान्न, सूतकान्न तथा घुष्टान्न एवं शूद्र का अन्न कभी नहीं खाना चाहिए और कहीं पर भी नहीं खावे ॥२३॥ हे देवि ! शूद्र का अन्न सदा ही गर्हित महात्माओं देवों ने बताया है । यह पितामह के भी मुख से उत्सृष्ट है इसीलिये यह प्रमाण होता है–ऐमी मेरी मति है ॥२४॥ द्विज शूद्र का अन्न यदि पेट में अव-शिष्ट रह जाता है और वह मर जाता है तो वह चाहे आहित अग्नि वाला हो या यज्वा हो निश्चित् रुप से शूद्र की गति को भोगने वाला होता है ॥२५॥ उस शूद्र के अन्न के शेष से ब्रह्म स्थान से अपाकृत हुआ ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होता है इसमें कुछ भी विचारणा नहीं होती है ॥२६॥ जिसके भी अन्न के अवशेष से द्विज उदर में रखते हुए मृत्युगत हो जाता है उसी-उसी योनि को विप्र गमन किया करते हैं जिसके अन्न से वह उपजीवित हुआ करता है ॥२७॥ इस दुर्लभ ब्राह्मणत्व के सुख को प्राप्त करके जो इस ब्राह्मणत्व के सुख का अपमान किया करता है

अथवा न भोजन के योग्य अन्नों का खाता है वह द्विजत्व से निश्चय ही पतित हो जाया करता है ॥२८॥

सुरापो ब्रह्महा स्तेयी चौरो भग्नव्रतोऽशुचि. ।
स्वाध्यायवर्जित. पापो लुब्धो नैकृतिकः शठः ॥२६
अव्रती वृपलीभर्ता कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
विहीनसेवी विप्रो हि पतते ब्रह्मयोनित ॥३०
गुरुतल्पी गुरुद्वेषी गुरुकुत्सारतिश्च यः ।
ब्रह्मद्विड्वाऽपि पतति ब्राह्मणो ब्रह्मयोनित: ॥३१
एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा ।
शूद्रो ब्रह्मणता गच्छेद्वैश्य' क्षत्रियता व्रजेत् ॥३२
शूद्र कर्माणि सर्वाणि यथान्याय यथाविधि ।
सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्शेषान्नकृतभोजन. ॥३३
शुश्रूषा परिचर्या यो ज्येष्ठवर्णे प्रयत्नतः ।
कुर्यादविमना श्रेष्ठ सतत सत्पथे स्थित. ॥३४
देवद्विजातिसत्कर्ता सर्वातिथ्यकृतव्रत ।
ऋतुकालाभिगामी च नियतो नियताशनः ॥३५

जो सुरा का पान करने वाला, ब्राह्मण का हनन करने वाला, चोर, व्रत को भङ्ग करने वाला, अशुचि, स्वाध्याय (वेदाध्ययन) से रहित, पापी, लोभी, नैकृतिक, शठ, व्रत न करने वाला, वृपली (शूद्रा स्त्री) का स्वामी, कुण्डाशी (कुण्ड के यहाँ खाने वाला) स्वामी के रहते हुए जो जार से उत्पन्न होता है वह कुण्ड कहा जाता है। सोम का विक्रय करने वाला विहीन पुरुष की सेवा (चाकरी) करने वाला—जो विप्र होता है वह ब्रह्म योनि से गिर जाया करता है ॥२६-३०॥ गुरु की शय्या पर गमन करने वाला—गुरु से द्वेष रखने वाला, जो गुरु की निन्दा मे रति रखता है तथा ब्राह्मणों का शत्रु जो होता है वह ब्राह्मण ब्रह्म योनि से पतित हो जाया करता है ॥३१॥ हे देवि ! इन कर्मों से विप्रत्व का पतन हो जाया करता है और परम शुभ आचरणों के करने से शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है। तथा वैश्य क्षत्रियत्व को प्राप्त

करता है ॥३२॥ शूद्र विधिपूर्वक नियमानुसार समस्त कर्मों को करता हुआ सबके आतिथ्य को करने वाला हो और शेष अन्न से भोजन करता है ॥३३॥ जो शूद्र अपने से बड़े वर्ण वालों की शुश्रूषा एवं परिचर्या करने वाला होकर प्रयत्न के साथ उत्साह पूर्वक करे वह निरन्तर श्रेष्ठ और सन्मार्ग में स्थित रहा करता है ॥३४॥ जो शूद्र देव और द्विजातियों के सत्कार के करने वाला है तथा सबके आतिथ्य करने के व्रत को धारण करने वाला है एवं ऋतुकाल में ही गमन किया करता है–नियत और नियमित भोजन करने वाला है वह श्रेष्ठ होता है ॥३५॥

दक्षः शिष्टजनान्वेषी शेषान्नकृतभोजनः ।
वृथा मांसं न भुञ्जीत शूद्रो वैश्यत्वमृच्छति ॥३६
ऋतवागनहंवादी निर्द्वन्द्वः सोमकोविदः ।
यजते नित्ययज्ञैश्च स्वाध्यायपरमः शुचिः ॥ ७
दान्तो ब्राह्मणसत्कर्ता सर्ववर्णानसूयकः ।
गृहस्थव्रतमातिष्ठन्द्विकालकृतभोजनः ॥३८
शेषाशी विजिताहारो निष्कामो निरहंवदः ।
अग्निहोत्रमुपासानो जुह्वानश्च यथाविधि ॥३९
सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्शेषान्नकृतभोजनः ।
त्रेताग्निमात्रविहितं वैश्यो भवति च द्विजः ॥४०
स वैश्यः क्षत्रियकुले शुचिर्महति जायते ।
स वैश्यः क्षत्रियो जातो जन्मप्रभृति संस्कृतः ॥४१
उपनीतो व्रतपरो द्विजो भवति सस्कृतः ।
ददाति यजते यज्ञैः समृद्धै राप्तदक्षिणैः ॥४२

जो शूद्र दक्ष, शिष्टजनों के अन्वेषी, शेष अन्न से भोजन करने वाला है तथा जो वृथा मांस का भोजन नहीं करता है वह वैश्यत्व को प्राप्त कर लिया करता है ॥३६॥ जो वैश्य ऋत वाणी बोलने वाला, अहङ्कार पूर्वक भाषण न करने वाला, निर्द्वन्द्व, सोम का कोविद, नित्य ही यज्ञों के द्वारा यजन करने वाला, स्वाध्याय में तत्पर और शुचि होता

है ॥३७॥ जो वैश्य दमन शील, ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला, सब वर्णों की निन्दा न करने वाला, गृहस्थ के व्रत को करने वाला और दो ही कालों मे भोजन करने वाला होता है ॥३८॥ जो वैश्य शेषान्न का अशन करने वाला है—आहार पर विजय प्राप्त करने वाला है, कामना से रहित, अहङ्कार की बात न बोलने वाला होता है, नित्य अग्निहोत्र की उपासना करने वाला और विधि के साथ हवन किया करता है ॥३९॥ समस्त अतिथियो के स्वागत-सत्कार को करता हुआ त्रेताग्नि भाव विहिन, आतिथ्य के शेष अन्न से भोजन करने वाला वैश्य दूसरे जन्म मे द्विज हो जाया करता है ॥४०॥ वह वैश्य महान् उच्च क्षत्रिय के कुल मे जन्म ग्रहण किया करता है और परम शुचि होता है। वह वैश्य जन्म प्रभृति से सस्कार वाला होता है तथा क्षत्रिय कुल मे पैदा हुआ होता है ॥४१॥ उपनयन सस्कार वाला होकर व्रत परायण सस्कारो से युक्त द्विज होता है तथा दान दिया करता है और प्राप्त दक्षिणा वाले समृद्ध यज्ञो के द्वारा यजन करता है ॥४२॥

अधीत्य स्वर्गमन्विच्छस्त्रेताग्निशरण' सदा ।
आर्द्रहस्तप्रदो नित्य प्रजा धर्मेण पालयन् ॥४३
सत्य सत्यानि कुरुते नित्य यः शुद्धिदर्शनः ।
धर्मदण्डेन निर्दग्धा धर्मकामार्थसाधक ॥४४
यन्त्रितः कार्यकरणै षड्भागकृतलक्षण. ।
ग्राम्यधर्मान्न सेवेत स्वच्छन्देनार्थकोविद ॥४५
ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नीमुपाश्रयेत्सदा ।
सदोपवासी नियतः स्वाध्यायनिरत शुचिः ॥४६
वहिस्कान्तरिते(?) नित्य शयानोऽस्ति सदा गृहे ।
सर्वातिथ्य त्रिवर्गस्य कुर्वाण. सुमना' सदा ॥४७
शूद्राणा चान्नकामाना नित्य सिद्धमिति ब्रुवन् ।
स्वार्थाद्वा यदि वा कामान्न किंचिदुपलक्षयेत् ॥४८
पितृदेवातिथिकृते साधन कुरुते च यत् ।
स्ववेश्मनि यथान्यायमुपास्ते भैक्ष्यमेव च ॥४९

अध्ययन करके त्रेताग्नि की रक्षा वाला सदा स्वर्ग की इच्छा करता हुआ नित्य ही गीले हाथों से प्रदान करने वाला होता है और अपनी प्रजा का धर्म पूर्वक परिपालन किया करता है ॥४३॥ स्वयं सच्चा होता है और सत्यों का करता है जो नित्य ही शुद्धि का दर्शन करता है। वह धर्म के दण्ड से निर्दग्ध होता है तथा धर्म-काम और अर्थ की साधना वाला है ॥४४॥ वह कार्य करणों से यन्त्रित रहता है तथा षड् भागों से कृत लक्षण है। उसे ग्राम्य धर्मों का सेवन नहीं करना चाहिए और वह स्वच्छता से अर्थ का पण्डित होता है ॥४५॥ वह सदा ही ऋतुकाल में अपनी पत्नी का धर्मात्मा उपाश्रय किया करता है। यह सदा उपवास करने वाला, नियत, शुचि और स्वाध्याय में निरत रहता है ॥४६॥ वह सदा गृह में बाहिर एकान्त में नित्य शयन किया है तथा त्रिवर्ग का सदा सुन्दर मन वाला सम्पूर्ण आतिथ्य करने वाला होता है ॥४७॥ अन्न की कामना वाले शूद्रों का नित्य ही सिद्ध है—ऐसा बोलता है तथा स्वार्थ से अथवा काम से कुछ भी उपलक्षित नहीं करना चाहिए ॥४८॥ पितृगण और अतिथियों के एवं देवताओं के लिये जो साधन किया करता है अपने घर में न्यायपूर्वक भैक्ष्य की ही उपासना करता है ॥४९॥

द्विकालमग्निहोत्रं च जुह्वानो वै यथाविधि ।
गोब्राह्मणहितार्थाय रणे चाभिमुखो हतः ॥५०
त्रेताग्निमन्त्रपूतेन समाविश्य द्विजो भवेत् ।
ज्ञानविज्ञानसपन्नः संस्कृतो वेदपारगः ॥५१
वैश्यो भवति धर्मात्मा क्षत्रियः स्वेनकर्मणा ।
एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः ॥५२
शूद्रोऽप्यागमसंपन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ।
ब्राह्मणो वाऽप्यसद्वृत्तः सर्वसकरभोजनः ॥५३
स ब्राह्मण्यं समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः ।
कर्मभिः शुचिभिर्देवी शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः ॥५४
शूद्रोऽपि द्विजवत्सेव्य इति ब्रह्माऽब्रवीत्स्वयम् ।
स्वभावकर्मणा चैव यत्र (श्र) शूद्रोऽधितिष्ठति ॥५५

विशुद्धः स द्विजातिभ्यो विज्ञेय इति मे मतिः ।
न योनिर्नापि सस्कारो न श्रुतिर्न च सततिः ॥५६

दोनों समयों में प्रातः साय यथाविधि अग्निहोत्र की आहुतियाँ देता है और गौ तथा ब्राह्मणों के हित के लिये रण में युद्ध करते हुए सम्मुख में हत होता है ॥५०॥ त्रेताग्नि के मन्त्रों से पवित्र समाविष्ट होकर वह द्विज हो जाता है। वह ज्ञान एवं विज्ञान से समन्वित होकर सस्कारों वाला वेदों का पारगामी होता है ॥५१॥ वैश्य इन कर्मों के फलों से अपने कर्म द्वारा धर्मात्मा क्षत्रिय हो जाता है और हे देवि ! न्यून जाति और कुल में भी उत्पन्न होकर समुच्च वर्ण वाला हो जाया करता है ॥५२॥ उसी तरह से शूद्र भी आगम से सम्पन्न होकर संस्कारों वाला द्विज हो जाता है। ब्राह्मण भी यदि असत् आचरण वाला है तथा सब सङ्करों का भोजन करने वाला होता है तो वह ब्राह्मणत्व का त्याग करके उसी प्रकार का शूद्र हो जाया करता है। हे देवि ! ब्रह्माजी ने स्वय ऐसा बतलाया है कि जो पवित्र कर्मों के द्वारा विशुद्ध आत्मा वाला और अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाला शूद्र भी हो तो उसकी भी सेवा द्विज की ही भाँति करनी चाहिए। स्वभाव और कर्म से जहाँ पर शूद्र अधिष्ठित होता है वह द्विजातियों से भी विशुद्ध होता है ऐसा ही समझना चाहिए—मेरी ऐसी ही बुद्धि है। जन्म से द्विजाति होते हैं किन्तु वास्तविक रूप से इस द्विजत्व के कारण केवल योनि-सस्कार-श्रुति और सन्तति नहीं होते हैं ॥५३-५६॥

कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ।
सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ॥५७
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च गच्छति ।
ब्रह्मस्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतः ॥५८
निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः ।
एते ये विमला देवि स्थानाभावनिदर्शकाः ॥५९
स्वयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजाः ।
ब्रह्मणो हि महत्क्षेत्रं लोके चरति पादवत् ॥६०

यत्तत्र बीजं पतति सा कृषिः प्रेत्य भाविनी ।
संतुष्टेन सदा भाव्यं सत्पथालम्बिना सदा ॥६१
ब्राह्मं हि मार्गमाक्रम्य वर्तितव्यं बुभूषता ।
संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वै गृहमेधिना ॥६२
नित्यं स्वाध्याययुक्तेन न चाध्ययनजीविना ।
एवंभूतो हि यो विप्रः सततं सत्पथे स्थितः ॥६३
आहिताग्निरधीयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।
ब्राह्मण्यं देवि सप्राप्य रक्षितव्यं यतात्मना ॥६४
योनिप्रतिग्रहादानैः कर्मभिश्च शुचिस्मिते ।
एतत्ते गुह्यमाख्यातं यथा शूद्रो भवेद्द्विजः ॥
ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शद्रत्वमाप्नुयात् ॥६५

इस महत्त्व पूर्ण द्विजत्व का कारण एक मात्र चरित्र ही होता है । इस लोक में सब वृत्त (सच्चरित्र) से ब्राह्मण हो जाया करते हैं ॥५७॥ यदि कोई शूद्र भी है और चरित्र में स्थित रहता है तो निश्चित रूप से वह ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाया करता है । हे सुश्रोणि ! सर्वत्र ब्रह्म के स्वभाव वाला मेरे मन में समान होता है ॥५८॥ जहाँ पर अर्थात् जिस व्यक्ति के अन्तःकरण में निर्गुण और निर्मल ब्रह्म की स्थिति होती है वही वस्तुतः द्विज होता है । हे देवि ! जो ये सब विमल हैं वे सब स्थान और भाव के निदर्शक हैं ॥५९॥ वरदान प्रदान करने वाले ब्रह्माजी ने प्रजाओं का सृजन करते हुए स्वयं अपने मुख से इनको वतलाया है । ब्रह्म का महान् क्षेत्र लोक में पाद की भाँति चरण किया करता है ॥६०॥ जो बीज जहाँ पर गिरता है मरकर वह होने वाली कृषि है । अतएव सबका निष्कर्ष (निचोड़) यही है कि सदा सत्यमार्ग के अवलम्बन करने वाला होता हुआ सन्तुष्ट रहना चाहिए ॥६१॥ भविष्य में कुछ प्राप्ति करने के लिये ब्राह्म मार्ग का आक्रमण करके ही रहना चाहिए क्योंकि ब्रह्मज्ञान का पथ ही वास्तविक श्रेय सम्पादन करने वाला होता है । जो गृहस्थाश्रमी है उसे गृह में संहिता का अध्ययन शील रहना चाहिए ॥६२॥ नित्य ही स्वाध्याय (वेदाध्ययन) से युक्त होना चाहिए तथा अध्ययन

जीवी न होवे। इस प्रकार से रहन-सहन रखने वाला जो विप्र होता है तथा निरन्तर सन्मार्ग में स्थित होता है। आहित अग्नि वाला अध्ययन शील पुरुष ब्रह्म के ही स्वरूप वाला होता है। हे देवि! ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर सयत आत्मा वाले के द्वारा उस ब्राह्मण्य की पूर्ण रूप से रक्षा करनी चाहिए ॥६३-६४॥ हे शुचिस्मित रखने वाली! योनि प्रति ग्रहादान कर्मों से जो होता है वह सब परम गोपनीय बात मैंने तुमको बतला दी है जिस तरह से एक शूद्र भी द्विज हो जाया करता है। तथा ब्राह्मण भी अपने धर्म कर्म से च्युत होकर जिस रीति से शूद्रत्व को प्राप्त कर लिया करता है ॥६५॥

—*—

मनुष्यों के उत्तम गति प्राप्ति का वर्णन

भगवन्सर्वभूतेश सुरासुरनमस्कृत ।
धर्माधर्मे नृणा देव ब्रूहि मे सशय विभो ॥१
कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधैर्देहिनः सदा ।
वध्यन्ते बन्धनै. कैर्वा मुच्यन्ते वा कथ वद ॥२
केन शीलेन वै देव कर्मणा कीदृशेन वा ।
समाचारैर्गुणै कैर्वा स्वर्गं यान्तीह मानवा. ॥३
देवि धर्मार्थतत्त्वज्ञे धर्मनित्य उमे सदा ।
सर्वप्राणहित. प्रश्नः श्रूयता बुद्धिवर्धन. ॥४
सत्यधर्मरता. शान्ताः सर्वलिङ्गविवर्जिताः ।
नाधर्मेण न धर्मेण वध्यन्ते छिन्नसशयाः ॥५
प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञा. सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ।
वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषाः कर्मबन्धनैः ॥६
कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किंचन ।
ये न मज्जन्ति कस्मिश्चित्ते न वध्नन्ति कर्मभिः ॥७

जगदम्बा उमा देवी ने कहा—हे भगवन् ! आप तो समस्त भूतों के स्वामी हैं और सभी सुरों और असुरों के द्वारा वन्द्यमान हैं तथा सभी आपको नमस्कार किया करते हैं। हे विभो ! हे देवेश्वर ! अब आप कृपा करके मुझे मनुष्यों के धर्मों तथा अधर्मों को बतलाइये। मेरे हृदय में बड़ा भारी इस विषय में संशय विद्यमान है ॥१॥ इस देह धारी मनुष्य का मन-वाणी और कर्म के द्वारा तीन प्रकार के किन किन बन्धनों से ये बद्ध हुआ करते हैं और किन कर्मों से मुक्त हो जाया करते हैं—यही मुझे आप स्पष्ट रूप से बतला दीजिए ॥२॥ हे देवेश्वर ! किस प्रकार के शील स्वभाव से अथवा कैसे कर्म से एवं किस समाचरणों से अथवा गुणों से मनुष्य यहाँ से स्वर्ग लोक को गमन किया करते हैं ? ॥३॥ महेश्वर भगवान् ने कहा—हे देवि ! हे उमे ! आप तो स्वयं धर्म के तत्त्वों की जानने वाली हैं और सदा एवं नित्य ही धर्म में रत रहने वाली हैं आपका यह प्रश्न तो सभी प्राणियों के हित करने वाला भी है ॥४॥ जो सत्य धर्म में रति रखने वाले हैं—परम शान्त हैं तथा समस्त संशयों को छिन्न कर देने वाले हैं वे कभी भी अधर्म और धर्म से बद्ध नहीं हुआ करते हैं। बन्धनों से विमुक्त रहने के लिये सत्य धर्म में रति-संशयों का छेदन और परमाधिक शान्ति ये ही तीन प्रमुख कारण होते हैं ॥५॥ महा प्रलय और उत्पत्ति के तत्त्वों का ज्ञाता सभी कुछ के जानने एवं समझने वाले-सर्व दर्शी-सांसारिक राग से रहित पुरुष कर्मों के बन्धनों से विमुक्त हो जाया करते हैं ॥६॥ जो प्राणी कर्मों-मन और वचनों से किसी को भी हिंसित नहीं किया करते हैं अर्थात् पीड़ा नहीं दिया करते हैं और जो किसी में भी मज्जित नहीं होते हैं अर्थात् जिनके चित्त में किसी भी सांसारिक भावनाओं में मग्नता नहीं होती है वे कर्मों से बद्ध नहीं हुआ करते हैं ॥७॥

प्राणातिपाताद्विरताः शीलवन्तो दयान्विताः।
तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनैः ॥८
सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु।
त्यक्तहिंस्रसमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥९

परस्वनिर्ममा नित्य परदारविवर्जिताः ।
धर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१०

मातृवत्स्वसृवच्चैव नित्य दुहितृवच्च ये ।
परदारेपु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिन ॥११

स्वदारनिरता ये च ऋतुकालाभिगामिन ।
अग्राम्यसुखभोगाश्च ते नरा. स्वर्गगामिन. ॥१२
स्तैन्यान्निवृत्ताः सतत संतुष्टाः स्वधनेन च ।
स्वभाग्यान्युपजीवन्ति ते नरा. स्वर्गगामिनः ॥१३

परदारेपु ये नित्य चारित्रावृतलोचनाः ।
जितेन्द्रिया शीलपरास्ते नरा. स्वर्गगामिनः ॥१४

जो प्राणा के अतिपात स भी विरत होते हैं, शील वाले और दया से युक्त हुआ करते हैं। जो शत्रु तथा मित्र दोनो को समान भाव से देखने हैं अर्थात् जिनका न कोई शत्रु होता है और न कोई मित्र ही होता है–जो दमन शील होते हैं वे कर्मों के बन्धनो से छुटकारा पा जाया करते हैं ॥८॥ जो समस्त भूतो पर दया रखने वाले हैं–विश्वास करने के योग्य हैं तथा सब जन्तुओ पर हिंसा का समाचरण करना जिन्होंने त्याग दिया है वे मनुष्य स्वर्ग मे गमन करने वाले होते हैं ॥९॥ जो मनुष्य पराये धन मे ममता बिल्कुल भी नही रखते हैं और नित्य ही पराई स्त्रियो से बहुत दूर रहा करता है और न्यायोचित मार्ग के द्वारा धर्म पूर्वक अर्थ के भोग करने वाले होते हैं वे मनुष्य स्वर्ग लोक मे जाया करते हैं ॥१०॥ जो मानव सर्वदा पराई स्त्रियो के विषय मे माता के समान–भगिनी के तुल्य और पुत्री के सदृश मानकर बरताव किया करते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग मे जाने के अधिकारी होते है ॥११॥ जो मनुष्य अपनी ही भार्या में रति रखने वाले तथा उनका भी गमन केवल ऋतु काल मे ही किया करते हैं और ग्राम्य सुखों के उपभोगो से रहित होने हैं वे ही लोग स्वर्गगामी होते हैं ॥१२॥ जो निरन्तर स्तैन्य वृत्ति अर्थात् चोरी के कर्म से निवृत्त होते हैं और जितना भी दैव वश अपना धन प्राप्त

होता है उसी में सन्तोष करके रहा करते हैं तथा जैसा भी अपना भाग्य में वदा है उसी से उपजीवित रहा करते हैं वे ही मानव स्वर्ग लोक के निवासी हुआ करते हैं ।।१३।। जो मनुष्य पराई दारा (स्त्रियों) में नित्य ही चरित्र के दारा समावृत लोचनों वाले होते हैं अर्थात् अपने सच्चरित्र के वल से नेत्रों को हटाये रखते हैं और अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके जितेन्द्रिय रहते हैं जो शील (शान्त स्वभाव) में सदा तत्पर रहते हैं वे मनुष्य स्वर्ग में गमन किया करते हैं ।।१४।।

एष दैवकृतो मार्गः सवितव्यः सदा नरैः ।
अकषायकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदाबुधैः ।।१५
अवृथापकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः ।
दानकर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः ।।
स्वर्गमार्गमभीप्सद्भिर्न सेव्यस्त्वत उत्तरः ।।१६
वाचा तु बध्यते येन मुच्यते ह्यथवा पुनः ।
तानि कर्माणि मे देव वद भूतपतेऽनघ ।।१७
आत्महेतोः परार्थे वा अधर्माश्रितमेव च ।
ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः ।।१८
वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकारात्तथैव च ।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ।।१९
श्लक्ष्णां वाणीं स्वच्छवर्णां मधुरां पापवर्जिताम् ।
स्वगतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ।।२०
परुष ये न भाषन्ते कटुकं निष्ठुरं तथा ।
न पैशुन्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ।।२१

यह मार्ग दैव के द्वारा वनाया हुआ है अतएव इसका ही सेवन मनुष्यों को सर्वदा करना चाहिए । जो कषाय से रहित अर्थात् दोषों से वर्जित है वही मार्ग वुध पुरुषों को सर्वदा सेवन करना चाहिए ।।१५।। जो अवृथा तथा अपकृत मार्ग है वही वुध जनों के द्वारा सेवन करने के योग्य होता है । जो दान-कर्म और तप से युक्त है और जो शील-शौच एवं दया के स्वरूप वाला है उसी मार्ग को स्वर्ग मार्ग की इच्छा रखने

वाले लोकों के द्वारा सेवन करना चाहिए। इससे भिन्न असत् पथ का कभी भी सेवन नहीं करना चाहिए ॥१६॥ उमा देवी ने कहा—हे भूतों के स्वामिन् ! हे अनघ ! जिस वचन से मनुष्य बद्ध हो जाता है अथवा जिस वचन से फिर छुटकारा पा जाता है अब आप कृपया मुझे उन्हीं कर्मों के विषय में हे देवेश्वर ! मुझे बतलाइये ॥१७॥ भगवान् शिव ने कहा—असत्य भाषण बहुत बडा वाणी का दोष है। अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये अथवा दूसरों के स्वार्थ के लिये अधर्म का आश्रय ग्रहण करके कभी मिथ्या नहीं बोलते हैं वे ही मनुष्य वाचिक दोष से रहित होते हुए स्वर्ग गामी होते हैं ॥१८॥ अपनी वृत्ति (जीविका) के लिये अथवा धर्म के कारण से तथा काम वार से कभी भी झूठ नहीं बोलते हैं। वे ही मनुष्य स्वर्ग मे गमन करने वाले होते हैं ॥१९॥ जो श्लक्ष्ण-स्वच्छ वर्णों से युक्त मधुर और पापों से वर्जित स्वागत पूर्वक वाणी का अभिभाषण किया करते हैं। वे मनुष्य स्वर्ग गामी होते हैं ॥२०॥ जो मनुष्य कभी भूलकर भी कठोर वचन अपने मुँह से नहीं बोला करते हैं और जो दूसरे सुनने वालों के कानों में कटु (कडुवे) लगें एवं निष्ठुरता से भरे हुए हों ऐसे वचन कभी नहीं कहते हैं और पैशुन्य (चुगली-बुराई-निन्दा) में रति नहीं रखने वाले हैं वे ही महान् सन्त महा पुरुष स्वर्ग मे गमन किया करते हैं ॥२१॥

पिशुनं न प्रभाषन्ते मित्रभेदकरं तथा।
परपीडाकरं चैव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२२
ये वर्जयन्ति परुषं परद्रोहं च मानवाः।
सर्वभूतसमा दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२३
शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः।
सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२४
न कोपाद्व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारिणीम्।
शान्तिं विन्दन्ति ये क्रुद्धास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२५
एष वाणीकृतो देवि धर्मः सेव्यः सदा नरैः।
शुभसत्यगुणैर्नित्यं वर्जनीया मृषा बुधैः ॥२६

मनसा बध्यते येन कर्मणा पुरुषः सदा ।
तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिनाकधृक् ॥२७

वाणी के द्वारा जो कुछ किया जाता है इसका बड़ा महत्त्व होता है अतएव बहुत समझ-बूझकर और तोलकर ही मुख से समुचित वचन निकालने चाहिए। इसीलिये महा पुरुष मौन रखते हैं या मित भाषण किया करते हैं। अधिक प्रलाप से शक्ति का भी निरर्थक ह्रास होता है। जो मनुष्य पिशुनता का भाषण नहीं करते हैं—मित्रों से जो भेद नहीं करते हैं और जो दूसरों को कभी भूलकर भी पीड़ा नहीं दिया करते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग वासी हुआ करते हैं ॥२२॥ जो मानव कठोर वचन का त्याग कर देते हैं और दूसरों के साथ द्रोह नहीं किया करते हैं। जो समस्त प्राणियों को अपने ही समान समझते हैं और दमन शील होते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग लोक को गमन करते हैं ॥२३॥ जो लोग शठ लोगों जैसा या शठों के साथ प्रलाप करने से विरत होते हैं तथा जो धर्म के विरुद्ध आचरण नहीं करते हैं और नित्य ही सौम्य संलाप करने वाले हैं वे ही नर स्वर्ग गामी होते हैं ॥२४॥ जो कोण से भी हृदय को विदारण करने वाली वाणी का व्याहरण नहीं करते हैं अर्थात् किसी के दिल को विदीर्ण करने वाले वचन नहीं बोलते हैं और जो क्रुद्ध होकर भी शान्ति को प्राप्त करते हैं वे ही मानव स्वर्ग में जाया करते हैं। हे देवि ! यह ही वाणी के द्वारा किये जाने वाला धर्म है जिसका सेवन मनुष्यों को नित्य ही करना आवश्यक है। बुध पुरुषों के द्वारा शुभ और सत्य गुणों से नित्य ही मृषा का परिवर्जन कर देना चाहिए ॥२५-२६॥ उमा देवी ने कहा—हे महाभाग ! हे देवों के भी देव देवेश्वर ! आप तो पिनाक धनुप के धारण करने वाले हैं। अव आप मुझे यह वतलाइये कि पुरुष सदा मन के द्वारा किस कर्म से वद्ध हुआ करते हैं ? ॥२७॥

मानसेनेह धर्मेण संयुक्ताः पुरुषाः सदा ।
स्वर्गं गच्छन्ति कल्याणि तन्मे कीर्तयतः शृणु ॥२८
दुष्प्रणीतेन मनसा दुष्प्रणीतान्तराकृतिः ।
नरो वध्येत येनेह शृणु वा तं शुभानने ॥२६

अरण्ये विजने न्यस्त परस्व दृश्यते सदा ।
मनसाऽपि न गृह्णन्ति ते नरा. स्वर्गगामिन. ॥३०
तथैव परदारान्ये कामवृत्ता रहोगताः ।
मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिन. ॥३१
शत्रु मित्र च ये नित्य तुल्येन मनसा नरा. ।
भजन्ति मैत्र्य सगम्य ते नरा स्वर्गगामिनः ॥३२
श्रुतवन्तो दयावन्त शुचयः सत्यसगरा ।
स्वर्थै. परिसतुष्टास्ते नरा· स्वर्गगामिन· ॥३३
अवैरा ये त्वनायासा मैत्रचित्तरता सदा ।
सर्वभूतदयावन्तस्ते नरा स्वर्गगामिन ॥३४
ज्ञानवन्तः क्रियावन्त क्षमावन्त सुहृत्प्रिया ।
धर्माधर्मविदो नित्य ते नरा स्वर्गगामिन ॥३५

महेश्वर भगवान् ने कहा—हे कल्याणी ! इस लोक मे मानस धर्म से सयुक्त पुरुष सदा ही स्वर्ग को जाया करते हैं। मैं उस मानस धर्म को बतलाता हूँ उसका मुझसे श्रवण करो ॥२८॥ हे शुभ आनन वाली ! दुष्प्रणीत मन से दुष्प्रणीत अन्तराकृति वाला पुरुष जिससे बद्ध हो जाता है। उसका तुम अब श्रवण करो ॥२९॥ वियावान मे नितान्त एकान्त स्थल मे रक्खा हुआ पराया धन जब भी कभी दिखलाई देता है जो जो मनुष्य उसकी ओर अपना मन भी नहीं चलाते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग मे गमन करने के अधिकारी होते हैं ॥३०॥ उसी भाँति जो पराई दाराओं को एकान्त में काम से आविष्ट होकर मन से भी हिंसित नही किया करते हैं अर्थात् अपने मन मे भी उनसे भोग करने की इच्छा नही करते हैं वे ही नर स्वर्ग गामी होते हैं ॥३१॥ जो नर शत्रु और मित्र को भी तुल्य रूप से नित्य देखा करते हैं या व्यवहार किया करते हैं और मन म भी दुर्भाव नही रखते हैं और समागम होने पर मैत्री भावना रखते हैं वे ही मानव स्वर्ग मे जाने के योग्य होते हैं ॥३२॥ जो श्रुत वाले-दया से युक्त-शुचि-सत्यसगर तथा अपने पास प्राप्त होने वाले धन से ही सन्तुष्ट रहा करते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग मे गमन किया करते हैं ॥३३॥ जो वैर

भाव से रहित-विना आयास वाले-सदा मैत्री भाव से चित्त में रति रखने वाले एवं सब प्राणियों में दया रखने वाले होते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग गामी हुआ करते हैं। जो ज्ञान वाले-क्रिया वाले-क्षमा से युक्त-सुहृदों के प्यारे और धर्म क्या है तथा अधर्म क्या है—इसको नित्य जानने वाले हैं वे मानव स्वर्ग में गमन करते हैं ॥३४-३५॥

शुभानामशुभानां च कर्मणां फलसंचये ।
निराकाङ्क्षाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३६
पापोपेतान्वर्जयन्ति देविद्विजपराः सदा ।
समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३७
शुभैः कर्मफलैर्देवि मयैते परिकीर्तिताः ।
स्वर्गमार्गपरा भूयः किं त्वं श्रोतुमिहेच्छसि ॥३८
महान्मे संशयः कश्चिन्मर्त्यान्प्रति महेश्वर ।
तस्मात्त्वं निपुणेनाद्य मम व्याख्यातुमर्हसि ॥३९
केनाऽऽयुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरुषः प्रभो ।
तपसा चापि देवेश केनाऽऽयुर्लभते महत् ॥४०
क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानवः ।
विपाकं कर्मणां देव वक्तुमर्हस्यनिन्दित ॥४१
अपरे च महाभाग्या मन्दभाग्यास्तथा परे ।
अकुलीनाः कुलीनाश्च संभवन्ति तथा परे ॥४२

हे देवि ! जो शुभ और अशुभ कर्मों के फल के संचय में आकांक्षा रहित होते हैं वे ही नर स्वर्ग वासी होते हैं ॥३६॥ हे देवि ! पापों से उपेत जनों को जो वर्जित कर दिया करते हैं और सदा द्विजों की सेवा में परायण होते हैं तथा समुत्थान के अनुप्राप्त होते हैं वे मनुष्य स्वर्ग-गामी हुआ करते हैं ॥३७॥ हे देवि ! शुभ कर्मों के फलों से मैंने इनका वर्णन कर दिया है जो स्वर्ग के मार्ग में जाने वाले हैं। अब फिर तुम क्या श्रवण करना चाहती हो ? ॥३८॥ उमा देवी ने कहा—हे महेश्वर ! इन मनुष्यों के विषय में एक महान् संशय विद्यमान है। अतएव आप बहुत ही अच्छी तरह से आज मेरे सामने उस विषय में व्याख्या करने के

योग्य होते हैं ॥३९॥ हे प्रभो ! कौन सा वह कर्म है जिससे मनुष्य सुदीर्घ आयु को प्राप्त किया करता है ? हे देवेश्वर ! वह तप भी कौन सा है जिससे मानव महान् आयु का लाभ किया करता है ? ॥४०॥ किस कर्म से मनुष्य क्षीण आयु वाला हो जाता है ? इस भूमण्डल में हे अनिन्दित ! मनुष्यो के कर्मों के विपाक आप बतलाने के योग्य हैं ॥४१॥ कुछ लोग महान् भाग्य वाले होते हैं तथा दूसरे इस लोक में बहुत ही मन्द भाग्य वाले हुआ करते हैं और कुछ अकुलीन तो कतिपय लोग कुलीन उत्पन्न हुआ करते हैं ॥४२॥

दुर्दर्शा. केचिदाभान्ति नरा काष्ठमया इव ।
प्रियदर्शास्तथा चान्ये दर्शनादेव मानवा. ॥४३
दुष्प्रज्ञा. केचिदाभान्ति केचिदाभान्ति पण्डिता. ।
महाप्रज्ञास्तथा चान्ये ज्ञानविज्ञानभाविन ॥४४
अल्पवाचास्तथा केचिन्महावाचास्तथा परे ।
दृश्यन्ते पुरुषा देव ततो व्याख्यातुमर्हसि ॥४५
हन्त तेऽह प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम् ।
मर्त्यलोके नर. सर्वो येन स्व फलमश्नुते ॥४६
प्राणातिपाती योगीन्द्रो दण्डहस्तो नर सदा ।
नित्यमुद्यतशस्त्रश्च हन्ति भूतगणान्नर. ॥४७
निर्दय सर्वभूतेभ्यो नित्यमुद्वेगकारक ।
अपि कीटपतङ्गानामशरण्य सुनिर्घृण ॥४८
एवभूतो नरो देवि निरय प्रतिपद्यते ।
विपरीतस्तु धर्मात्मा स्वरूपेणाभिजायते ॥४९

इस भूमि मे कुछ लोग देखन मे बहुत ही बुरे प्रतीत होते हैं जैसे वे काष्ठमय ही होवें और कुछ ऐसे भी होते हैं जो देखने में बहुत प्रिय लगते हैं और दर्शन मात्र से ही उनके दर्शकों को हर्ष हो जाता है ऐसे प्यारे हैं ॥४३॥ कुछ मनुष्य बड़े ही दुष्ट बुद्धि वाले होते हैं और कुछ पण्डित और सद्-असत् के विवेक रखने वाले दिखलाई दिया करते हैं । कतिपय ऐसे भी लोग हैं जो महान् प्राज्ञ और ज्ञान विज्ञान की भावना

रक्खा करते हैं ॥४४॥ कुछ मनुष्य बहुत ही कम बोलते ही रहा करते हैं। हे देव ! यह क्या कारण है ? इस विषय में आप कृपा कर व्याख्या करने के लिये परम योग्य हैं ॥४५॥ भगवान् शिव ने कहा—बहुत ही खेद का विषय है। हे देवि ! मैं आपके समक्ष में कर्मों के फल का उदय जैसे हुआ करता है उसे बतलाऊँगा जिससे इस मनुष्य लोक में सभी मनुष्य अपने कर्म-फल को भोगा करते हैं ॥४६॥ प्राणों का अति पातन करने वाला, योगीन्द्र, हाथ में दण्ड लेकर नित्य ही सदा मनुष्य उद्यत शस्त्र वाला होकर भूतगणों का हनन किया करता है ॥४७॥ दया से रहित और समस्त प्राणियों को नित्य ही उद्वेग करने वाला-कीट और पतङ्गों को भी रक्षा न देने वाला बहुत निर्घृणित जो इस प्रकार का मनुष्य है वह हे देवि ! नरक में गमन किया करता है। इन उपर्युक्त दुर्गुणों से जो रहित होता है वह धर्मात्मा होता है और सुन्दर रूप वाला होकर ही उत्पन्न हुआ करता है ॥४८-४९॥

निरयं याति हिंसात्मा याति स्वर्गमहिंसकः ।
यातनां निरये रौद्रां सकृच्छ्रां लभते नरः ॥५०
यः कश्चिन्निरयात्तस्मात्समुत्तरति कर्हिचित् ।
मनुष्यं लभते चाऽपि हीनायुस्तत्र जायते ॥५१
पापेन कर्मणा देवि युक्तो हिंसादिभिर्यतः ।
अहितः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ॥५२
शुभेन कर्मणा देवि प्राणिघातविवर्जितः ।
निक्षिप्तशस्त्रो निर्दण्डो न हिंसति कदाचन ॥५३
न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं नैवानुमोदते ।
सर्वभूतेषु सस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथा परे ॥५४
ईदृशः पुरुषो नित्यं देवि देवत्वमश्नुते ।
उपपन्नान्सुखान्भोगान्सदाऽश्नाति मुदा युतः ॥५५
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते ।
एष दीर्घायुषां मार्गः सुवृत्तानां सुकर्मणाम् ॥
प्राणिहिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः ॥५६

निष्कर्षार्थ यही है कि जो इस लोक में हिंसा करने वाला मनुष्य होता है वह नरक मे गमन निश्चित रूप से किया करता है और जो किसी भी प्राणी की कायिक एव मानसिक हिंसा नही करता है वही स्वर्गगामी होता है। हिंसक प्राणी नरक मे भी महान् रौद्र और कृच्छ्र यातना भोगा करता है ॥५०॥ जो कोई भी किसी प्रकार से चिरकाल तक नारकीय यातनाएँ भोग कर उससे उत्तीर्ण होता है तो फिर वह मनुष्य योनि को प्राप्त करता है तो उसमें भी हीन आयु वाला हो जाया करता है ॥५१॥ हे देवि ! पाप पूर्ण कर्मों से सयुत-हिंसा आदि से सबका अहित करने वाला होता है इसीलिये वह हीन आयु वाला हो जाया करता है और बहुत कम दिन तक ही जीवित रहता है ॥५२॥ हे देवि ! परम शुभ कम के द्वारा प्राणियों के घात से रहित होने वाला–शस्त्रों को एक ओर डाल देने वाला, दण्ड रहित मनुष्य कभी भी हिंसा नही किया करता है। तात्पय यह है कि अहिंसक पुरुष को कभी भी हाथ मे शस्त्र और दण्ड नहीं रखना चाहिए तथा सर्वदा अशुभों का त्याग कर शुभ कर्म ही करने चाहिए ॥५३॥ मनुष्य का कर्त्तव्य यह है कि किसी पर कभी भी भूलकर भी आघात नही करे और न किसी भी प्राणी का हनन करे और यदि कोई किसी पर आघात करता हो या हनन कर रहा हो तो उसके कर्म का अनुमोदन नहीं करना चाहिए। सब प्राणियो पर स्नेह से युक्त रहता है जैसा अपनी आत्मा और शरीर होता है वैसा ही दूसरो का भी समझना चाहिए ॥५४॥ हे देवि ! इस प्रकार से रहने वाला जो नित्य ही उपर्युक्त सदाचरण से रहता है वह देवत्व को प्राप्त कर लिया करता है और वह आनन्द से युक्त होकर सर्वदा उपपन्न सुखों के उपभोगो का लाभ प्राप्त करता है ॥५५॥ इसके पश्चात् यदि किसी समय मे वह इस मनुष्य लोक मे समुत्पन्न होता है तो यही दीर्घ आयु वालो का सदाचारियो का और सुन्दर शुभ कर्म करने वालो का मार्ग है। ब्रह्माजी ने प्राणियो की हिंसा के विमोक्ष से ही यह सुन्दर सुख और मोक्ष का मार्ग बतलाया था ॥५६॥

———

देवलोकप्राप्तिकारणकथन

किंशीलः किंसमाचारः पुरुषः कैश्च कर्मभिः ।
स्वर्गं समभिपद्येत संप्रदानेन केन वा ॥१
दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनार्तकृपणादिषु ।
भक्षभोज्यान्नपानानां वाससां च महामतिः ॥२
प्रतिश्रयान्सभाः कुर्यात्प्रपाः पुष्करिणीस्तथा ।
नित्यकादीनि कर्माणि करोति प्रयतः शुचिः ॥३
आसनं शयनं यानं गृहं रत्नं धनं तथा ।
सस्यजातानि सर्वाणि सक्षेत्राण्यथ योषितः ॥४
सुप्रशान्तमना नित्यं यः प्रयच्छति मानवः ।
एवंभूतो नरो देवि देवलोकेऽभिजायते ॥५
तत्रोष्य सुचिरं कालं भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ।
सहाप्सरोभिर्मुदितो रमित्वा नन्दनादिषु ॥६
तस्माच्च्युतो महेशानि मानुषेषूपजायते ।
महाभागकुले देवि धनधान्यसमाचिते ॥७

जगदम्बा उमादेवी ने कहा—हे भगवन् ! अब आप यह बतलाइये कि किस शील-स्वभाव वाला पुरुष किस आचरण से युक्त मानव, किन कर्मो से अथवा किसके दान करने से स्वर्ग को प्राप्त किया करता है ? ॥१॥ महेश्वर प्रभु ने कहा—भक्ष्य भोज्य-अन्न और पानों वस्त्रों का दीन-आर्त्त और कृपण आदि के लिये दान करने वाला तथा सर्वदा ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला महान् बुद्धिमान् पुरुष देवलोक में समुत्पन्न हुआ करता है ॥२॥ प्रतिश्रय सभा की रचना करावे अर्थात् धर्मशाला बनवावे—प्याऊ तथा पुष्करिणी का निर्माण जो कराता है । जो प्रयत एवं शुचिता धारण कर नित्य नैमित्तिक आदि कर्मो को जो किया करता है, जो आसन, शय्या, पान, गृह, रत्न, धन सभी सस्य-क्षेत्र-योपित् का परम प्रशान्त मन वाला होकर दान में दिया करता है—इस प्रकार का

मनुष्य हे देवि ! देवलोक मे जाकर समुत्पन्न हुआ करता है ॥३-५॥ वहाँ स्वर्ग मे निवास करके बहुत समय तक अत्युत्तम सुखोपभोगो को भोग कर तथा अप्सराओ के साथ नन्दन आदि वनों मे प्रसन्न होते हुए रमण करता है। हे महेशानि ! उससे च्युत होकर वह फिर मनुष्यो मे जन्म ग्रहण करता है। हे देवि ! वहाँ पर भी धन धान्य से संयुत महान् भाग वालो के कुल मे उत्पन्न होता है ॥६-७॥

तत्र कामगुणै. सर्वै समुपेतो मुदाऽन्वित: ।
महाकार्यो महाभागो धनी भवति मानवः ॥८
एते देवि महाभागा प्राणिनो दानशालिन. ।
ब्रह्मण वं पुरा प्रोक्ता सर्वस्य प्रियदर्शना: ॥९
अपरे मानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजा. ।
येऽन्नानि न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धय ॥१०
दीनान्धकृपणान्दृष्ट्वा भिक्षुकानतिथीनपि ।
याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोभसमान्विता ॥११
न धनानि न वासासि न भोगान्न च काञ्चनम् ।
न गाश्च नान्नविकृति प्रयच्छन्ति कदाचन ॥१२
अप्रलुब्धाश्च ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिता ।
एवभूता नरा देवि निरय यान्त्यबुद्धय ॥१३
ते वै मनुष्यता यान्ति यदा कालस्य पर्ययात् ।
धनरिक्ते कुले जन्म लभन्ते स्वल्पबुद्धय ॥१४

वहाँ पर उस कुल मे भी समस्त कामनाओ के गुणो से समन्वित होकर आनन्द से युक्त, महान् कार्यों वाला, महान् भोगो वाला और धनवान् होता है ॥८॥ हे देवि ! ये प्राणी दानशाली महान् भाग वाले होते हैं। ब्रह्माजी ने पहिले ही इनको सबके प्रिय दर्शन वाले बता दिया है ॥९॥ दूसरे लोग हे देवि ! प्रदान करने मे कृपण द्विज होते हैं। ऐसे भी बुद्धि हीन मानव होते हैं कि वे सब कुछ विद्यमान रहते हुए भी अन्न का दान नही किया करते हैं ॥१०॥ दीन, अन्धे, कृपण, भिक्षुक और भी देख कर जिह्वा के लोभ से युक्त होकर याचना करते

हुए लौट जाया करते हैं और धन-वस्त्र-भोग्यवस्तु-सुवर्ण-गौ-अन्न की विकृति इनमें से कभी कुछ भी नहीं किया करते हैं ॥११-१२॥ जो अप्रलुब्ध-लोभी-नास्तिक और दान से वर्जित होते हैं हे देवि ! इस प्रकार के बुद्धि से रहित नर नरक को गमन किया करते हैं ॥१३॥ वे कभी भी जब काल के परिवर्तित होने पर मनुष्यता को प्राप्त करते हैं तो अल्प बुद्धि वाले वे धनहीन कुल में ही जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥१४॥

क्षुत्पिपासापरीताश्च सर्वलोकबहिष्कृताः ।
निराशाः सर्वभोगेभ्यो जीवन्त्यधर्मजीविकाः ॥१५
अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः ।
अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः ॥१६
अपरे दम्भिनो नित्यं मानिनः परतो रताः ।
आसनार्हस्य ये पीठं न यच्छन्त्यल्पचेतसः ॥१७
मार्गार्हस्य च ये मार्गं न प्रयच्छन्त्यबुद्धयः ।
अर्घार्हान्न च संस्कारैरर्चयन्ति यथाविधि ॥१८
पाद्यमाचमनीयं वा प्रयच्छन्त्यभिबुद्धयः ।
शुभं चाभिमतं प्रेम्णा गुरुं नाभिवदन्ति ये ॥१९
अभिमानप्रवृद्धेन लोभेन सममास्थिताः ।
संमान्यांश्चावमन्यन्ते वृद्धान्परिभवन्ति च ॥२०
एवंविधा नरा देवि सर्वे निरयगामिनः ।
ते चेद्यदि नरास्तस्मान्निरयादुत्तरन्ति च ॥२१

ऐसे मनुष्य क्षुधा-पिपासा से दुःखित हुए सभी लोगों के द्वारा समाज में बहिष्कृत होकर निराश सभी प्रकार के भोगों से निराश अधर्म से पूर्ण जीविका करते हुए जीवन यापन किया करते हैं ॥१५॥ हे देवि ! बहुत ही कम भोगों के प्राप्त होने वाले कुल में जन्मे हुए और अत्यन्त अल्प भोगों में रत मनुष्य इस कर्म से धन रहित ही मनुष्य होते हैं ॥१६॥ दूसरे दम्भ युक्त, नित्य ही बड़े भारी मानी-पराये धनजनों में रति रखने वाले मनुष्य जो होते हैं वे अल्प चित्त वाले आसन के योग्य

पीठ को कभी भी नहीं गमन करते हैं ॥१७॥ योग्य मार्ग के पथ को जो अल्प बुद्धि वाले नहीं दिया करते हैं और पूजा के योग्य पुरुषों का सत्कार हीनता के कारणों से विधि पूर्वक अभ्यर्चन नहीं किया करते हैं ॥१८॥ अभिमान से भरी हुई बुद्धि वाले महापुरुषों के लिये पाद्य और आचमन भी नहीं दिया करते हैं तथा परम शुभ एवं अभिमत गुरुदेव को भी प्रणाम जो लोग नहीं करते हैं ॥१९॥ जो लोग अभिमान से बढ़े हुए लोभ के साथ आन्वित हैं और सम्मान करने के योग्य वृद्धों का भी अपमान किया करते हैं ॥२०॥ हे देवि ! इस तरह के जो मनुष्य इस लोक में होते हैं वे सभी नरकों में गमन करने वाले ही हुआ करते हैं। वे नर यदि कभी चिरकाल के पश्चात् उस नरक से उद्धार भी पाते हैं तो नीच कुल में यहाँ आकर जन्म लिया करते हैं ॥२१॥

वर्षपूगैस्ततो जन्म लभन्ते कुत्सिते कुले ।
श्वपाकपुल्कसादीनां कुत्सितानामचेतसाम् ॥२२
कुलेषु तेऽभिजायन्ते गुरुवृद्धोपतापिनः ।
न दम्भी न च मानी यो देवतातिथिपूजकः ॥२३
लोकपूज्यो नमस्कर्ता प्रसूतो मधुरं वचः ।
सर्वकर्मप्रियकरः सर्वभूतप्रियः सदा ॥२४
अद्वेषी सुमुखः श्लक्ष्णः स्निग्धवाणीप्रदः सदा ।
स्वागतेनैव सर्वेषां भूतानामविहिंसकः ॥२५
यथार्हं सत्क्रियापूर्वमर्चयन्नवतिष्ठते ।
मार्गार्हाय ददन्मार्गं गुरुमभ्यर्चयन्सदा ॥२६
अतिथिप्रग्रहरस्तथाऽभ्यागतपूजकः ।
एवंभूतो नरो देवि स्वर्गतिं प्रतिपद्यते ॥२७
ततो मानुष्यमासाद्यविशिष्टकुलजो भवेत् ।
तत्रासौ विपुलैर्भोगैः सर्वरत्नसमायुतः ॥२८

ऐसे नरकों से समागत पुरुष बहुत से वर्षों के बाद ही श्वपच और पुल्कस आदि अत्यन्त नीच कुलों में जो महान् कुत्सित एवं चेतनाहीन होते हैं जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥२२॥ गुरु और वृद्धों के उपताप

पहुंचाने वाले कुल में जन्मते हैं। जो न तो कभी दम्भ ही करता है, न मान ही किया करता है और जो देव तथा अतिथियों का पूजन करता है ॥२३॥ वह लोकों का पूज्य नमस्कार करने वाला समुत्पन्न होता है तथा सर्वदा मधुर वचन मुंह से बोला करता है। सभी प्रिय कर्मों के करने वाला और सदा ही समस्त प्राणियों का प्रिय होता है ॥२४॥ द्वेष न करने वाला, सुन्दर मुख से युक्त, श्लक्ष्ण, सदा स्नेह से सनी हुई वाणी बोलने वाला होता है तथा सदा सभी प्राणियों का स्वागत करते हुए अहिंसा (किसी भी प्रकार का कष्ट , न करने वाला होता है ॥२५॥ यथार्थ वास्तविक जो सत्कार है उसी के अनुसार सबका अर्चन करते हुए इस लोक में अवस्थित रहा करता है। जो मार्ग देने के योग्य हो उसे मार्ग देता हुआ तथा गुरुजनों का अभ्यर्चन करने वाला होता है ॥२६॥ जो कोई भी अतिथि आवे तो उसके स्वागत में रति रखने वाला और अभ्यागतों का पूजन करने वाला रहता है। हे देवि ! इस तरह से जैसा मैं अभी बता चुका हूं रहने वाला मनुष्य निश्चित रूप से स्वर्गति को प्राप्त किया करता है ॥२७॥ फिर वह जब कभी भी मनुष्य की योनि प्राप्त करता है तो किसी विशिष्ट ही कुल में जन्म लेने वाला होता है और उसमें वह बहुत से भोगों से संयुत तथा सभी प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण हुआ करता है ॥२८॥

यथार्हदाता चार्हेषु धर्मचर्यापरो भवेत् ।
संमतः सर्वभूतानां सर्वलोकनमस्कृतः ॥२९
स्वकर्मफलमाप्नोति स्वयमेव नरः सदा ।
एष धर्मो मया प्रोक्तो विधात्रा स्वयमीरितः ॥३०
यस्तु रौद्रसमाचारः सर्वसत्त्वभयंकरः ।
हस्ताभ्यां यदि वा पद्भ्यां रज्ज्वा दन्डेन वा पुनः ॥३१
लोष्टैः स्तम्भैरुपायैर्वा जन्तून्बाधेत शोभने ।
हिंसार्थं निष्कृतिप्रज्ञः प्रोद्वेजयति चैव हि ॥३२
उपक्रामति जन्तूंश्च उद्वेगजननः सदा ।
एवं शीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते ॥३३

स चेन्मनुष्यता गच्छेद्यदि कालस्य पर्ययात् ।
बह्वाबाधापरिक्लिष्टे कुले जयति सोऽधमे ॥३४
लोकद्विष्टोऽधम. पुंसा स्वय कर्मकृतं: फलं ।
एप देवि मनुष्येपु बोद्धव्यो ज्ञातिबन्धुपु ॥३५

जो जिस प्रकार के योग्य हो उसी का योग्य जनो को दान देने वाला तथा धर्म के समाचरण मे परायण होता है। ऐसा मनुष्य समाज मे सभी प्राणियो का सम्मत होता है तथा सभी जनो का वन्दित होता है ॥२६॥ ऐसा नर स्वय ही सर्वदा सब कर्मों के फलो को प्राप्त किया करता है। यह धर्म मैंने जो आपको बतलाया है वह विधाता ने स्वय ही अपने मुख से कहा है ॥३०॥ जो मनुष्य परमाधिक रौद्र समाचरण करने वाला है एव सभी जीवो के लिये महान् भयङ्कर होता है—अपने हाथो से पैरो से-रस्सी से अथवा दण्ड से, ढेलो से, स्तम्भो से और इसी तरह के अन्य उपायो से जो हे शोभने! सभी जन्तुओ को बाधा दिया करता है बदला लेने की बुद्धि वाला हिंसा के लिये जो सबको उद्विग्न किया करता है—जो जन्तुओ पर आक्रमण करता है और सदा ही उद्वेग उत्पन्न करता रहता है इस प्रकार क शील स्वभाव एव आचरण करने वाला मनुष्य नरक मे गमन किया करता है ॥३१-३३॥ यदि ऐसा प्राणी कभी काल के पर्यय (बदलाव) होने पर मनुष्यता को प्राप्त भी कर लेता है तो वह बहुत ही बाधाओ से युक्त एव परिक्लिष्ट किसी अधमाधम कुल मे ही जन्म लिया करता है ॥३४॥ हे देवि! वह लोको का द्वेषी पुरुषो मे अधम और स्वय ही किये हुए कर्मों के फलो से दु खित मनुष्यों मे और ज्ञाति तथा बन्धुओ मे महान् नीच ही समझने के योग्य होता है ॥३५॥

अपर सर्वभूतानि दयावाननुपश्यति ।
मैत्री दृष्टि पितृसमो निर्वैरो नियतेन्द्रिय ॥३६
नोद्वेजयति भूतानि न च हन्ति दयापर ।
हस्तपादैश्च नियतैर्विश्वास्य सर्वजन्तुपु ॥३७

न रज्ज्वा न च दण्डेन न लोष्टैर्नाऽऽयुधेन च ।
उद्वेजयति भूतानि शुभकर्मा दयापरः ॥३८

एवं शीलसमाचारः स्वर्गे समुपजायते ।
तत्रासौ भवने दिव्ये मुदा वसति देववत् ॥३९
स चेत्स्वर्गक्षयान्मर्त्यो मनुष्येषूपजायते ।
अल्पायासो निरातङ्कः स जातः सुखमेधते ॥४०

सुखभागी निरायासो निरुद्वेगः सदा नरः ।
एष देवि सतां मार्गो बाधा यत्र न विद्यते ॥४१

दूसरी तरह का मनुष्य वह है जो सब प्राणियों पर दया वाला होकर कृपा की दृष्टि से सभी को देखा करता है । जिसकी सबके साथ मित्रता से परिपूर्ण दृष्टि होती है-पिता के तुल्य-वैर से रहित-नियत इन्द्रियों वाला होता है ॥३६॥ ऐसा मनुष्य प्राणियों को उद्वेग नहीं देता है और दया से परम परायण रहकर किसी का हनन भी नहीं करता है । अपने हाथ तथा पैरों से न सता कर सभी जन्तुओं में परम विश्वास के योग्य होता है ॥३७॥ यह शुभ कर्मों के करने वाला दया में परायण रज्जु-दण्ड लोष्ठ और आयुधों से प्राणियों को उद्वेग नहीं किया करता है ॥३८॥ इस प्रकार के शील स्वभाव तथा आचरण वाला मनुष्य स्वर्ग में जाकर समुत्पत्ति प्राप्त किया करता है । वहीं पर यह देवों के दिव्य भवन में आनन्द के साथ देवताओं की ही तरह से निवास किया करता है ॥३९॥ यदि स्वर्ग वास की अवधि पुण्य-फलों के समाप्त होने पर क्षीण हो जाती है तो यह मनुष्य योनि में उपजात होता है । वह अल्प आयास वाला-आतङ्क से रहित समुत्पन्न होकर सुख प्राप्त किया करता है ॥४०॥ आयास से रहित और उद्वेग से हीन होकर सुखों के भोगने वाला सदा ऐसा मनुष्य रहा करता है । हे देवि ! यही सत्पुरुषों का मार्ग है जहां पर कोई भी बाधा नहीं होती है ॥४१॥

इमे मनुष्या दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदाः ।
ज्ञानविज्ञानसंपन्नाः प्रज्ञावन्तोऽर्थकोविदाः ॥४२

दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिताः ।
केन कर्मविपाकेन प्रज्ञावान्पुरुषो भवेत् ।।४३
अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथ भवति मानवः ।
एव त्व सशय छिन्धि सर्वधर्मभृता वर ।।४४
जात्यन्धाश्चापरे देव रोगार्ताश्चापरे तथा ।
नराः क्लीबाश्च दृश्यन्ते कारण ब्रूहि तत्र वै ।।४५
ब्राह्मणान्वेद विदुष. सिद्धान्धर्मविदस्तथा ।
परिपृच्छन्त्यहरहः कुशलाकुशल सदा ।।४६
वर्जयन्तोऽशुभ कर्म सेवमानाः शुभ तथा ।
लभन्ते स्वर्गति नित्यमिह लोके यथासुखम् ।।४७
स चेन्मनुष्यता याति मेधावी तत्र जायते ।
श्रुत यज्ञानुग यस्य कल्याणमुपजायते ।। ८
परदारेषु ये चापि चक्षुर्दुष्ट प्रयुञ्जते ।
तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति हि ।।४६

उमा देवी ने कहा—ये मनुष्य ऊहापोह मे अर्थात् बुरा-भला विचार करने मे विशारद होते हैं और ज्ञान तथा विज्ञान से सम्पन्न होते हैं। ये प्रज्ञा वाले तथा अर्थ के भी जानने वाले हैं ।।४२।। हे देव ! दूसरे प्रकार के मनुष्य दुष्ट बुद्धि वाले तथा ज्ञान और विज्ञान से रहित होते हैं। अब आप कृपा कर मुझे यह बता दीजिए कि किस तरह के कर्मों के विपाक से यह मनुष्य प्रज्ञा वाला हुआ करता है ।।४३।। हे विरूपाक्ष ! यह मानव अल्प बुद्धि वाला कैसे हो जाया करता है ? आप तो सभी धर्मों के ज्ञाताओ मे परम श्रेष्ठ हैं। अब कृपया मेरे इस सशय का छेदन कर दीजिए ।।४४।। हे देव ! दूसरे लोग जाति से ही अन्धे होते हैं और कुछ रोगो से आर्त्त हुआ करते है। कतिपय लोग इस ससार मे क्लीव (नपुसक) दिखलाई दिया करते हैं इसमे क्या कारण होता है-यह मुझे बतलाइये ।।४५।। महेश्वर प्रभु ने कहा—जो मनुष्य वेदो के विद्वान् ब्राह्मणो से-सिद्धो से, धर्म के ज्ञाताओ से अहर्निश सदा कुशल और अकुशल कर्मों के विषय मे पूछा करते हैं ।।४६।। और बुरे-भले कर्मों का

ज्ञान प्राप्त करके जो अशुभ कर्मों का त्याग कर दिया करते हैं तथा शुभ कर्मों का सेवन किया करते हैं वे ही पुरुष यहां लोक में नित्य ही सुख पूर्वक स्वर्गति को प्राप्त करते है ॥४७॥ यदि वह पुरुष स्वर्गीय पुण्य फलों के भोग की अवधि समाप्त हो जाने पर मनुष्य लोक में आकर मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करते हैं तो परम मेधावी उत्पन्न होते हैं। जिसका श्रुत यथानुग होता है और कल्याण ही हुआ करता है ॥४८॥ जो लोग पराई स्त्रियों पर दोष युक्त नजर डालते हैं उसी दुष्ट स्वभाव के कारण से वे जाति (जन्म) से ही अन्धे होकर जन्म लिया करते हैं ॥४९॥

मनसाऽपि प्रदुष्टेन नग्नां पश्यन्ति ये स्त्रियम् ।
रोगार्तास्ते भवन्तीह नरा दुष्कृतकारिणः ॥५०

ये तु मूढा दुराचारा त्रियोनौ मैथुने रताः ।
पुरुषेषु सुदुष्प्रज्ञाः क्लीबत्वमुपयान्ति ते ॥५१

पशूंश्च ये वै बध्नन्ति ये चैव गुरुतुल्पगाः ।
प्रकीर्णमैथुना ये च क्लीबा जायन्ति वै नराः ॥५२

अवद्यं किं तु वै कर्म निरवद्यं तथैव च
श्रेयः कुर्वन्नवाप्नोति मानवो देवसत्तम ॥५३

श्रेयांस मार्गमन्विच्छन्सदा यः पृच्छति द्विजान् ।
धर्मान्वेषी गुणाकाङ्क्षी स स्वर्गं समुपाश्नुते ॥५४

यदि मानुष्यतां देवि कदाचित्संनियच्छति ।
मेधावी धारणायुक्तः प्राज्ञस्तत्रापि जायते ॥५५

एष देवि सतां धर्मो गन्तव्यो भूतिकारकः ।
नृणां हितार्थाय सदा मया चैवमुदाहृतः ॥५६

जो दुष्ट मन से भी कभी किसी स्त्री को नग्न देखा करते हैं वे ही मनुष्य यहां पर आकर रोगों से दुःखित हुआ करते हैं। ऐसे मनुष्य दुष्कृतों के ही करने वाले होते हैं ॥५०॥ जो मूढ़ दुष्ट आचरण वाले तथा वियोनि में मैथुन करने में रति रखने वाले होते हैं वे पुरुषों में बहुत ही अधिक दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्य क्लीवत्व को प्राप्त हो जाया करते हैं अर्थात्

पुरुत्व से हीन होते हैं ॥५१॥ जो मनुष्य पशुओं का बन्धन किया करते हैं और जो गुरु की भार्या के साथ गमन करते है तथा जो प्रकीर्ण मैथुन वाले होते हैं वेही मनुष्य यहा पर नपुसक होकर जन्म ग्रहण किया करते हैं अर्थात् जन्म जात क्लीब होते हैं ॥५२॥ उमा देवी ने कहा—हे देवों मे परम श्रेष्ठ ! क्या कारण है यह मानव श्रेय करता हुआ अवद्य तथा निरवद्य (बुरे-भले) कर्म को प्राप्त किया करता है ? ॥५३॥ महेश्वर भगवान् ने कहा—जो परम श्रेय सम्पादन करने वाले मार्ग की अभिलाषा रखता हुआ सर्वदा द्विजो से उस विषय की जिज्ञासा किया करता है वह धर्म का सदा अन्वेषण करने वाला-गुणो की हृदय मे आकांक्षा रखने वाला पुरुष स्वर्ग का भोग भोगा करता है ॥५४॥ हे देवि ! किसी समय मे यदि यह ऐसा पुरुष मनुष्यता प्राप्त कर लेता है तो मनुष्य योनि में भी परम मेधावी-धारणा से समन्वित और प्राज्ञ होकर ही जन्मता है ॥५५॥ हे देवि ! यह ही सत्पुरुषो का धर्म है जो भूति के करने वाला होता है और उसी का गमन करना भी चाहिए। मनुष्यो के हित–सम्पादन करने के लिये ही सदा मैंने इसको बताया है और इस प्रकार से व्याख्या की है ॥५६॥

अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेषिणो नराः ।
ब्राह्मणान्वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसर्पितुम् ॥५७
व्रतवन्तो नरा. केचिच्छ्रद्धादमपरायणाः ।
अव्रता भ्रष्टनियमास्तथाऽन्ये राक्षसोपमाः ॥५८
यज्वानश्च तथैवान्ये निर्होमाश्च तथा परे ।
केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे ॥५९
आगमालोकधर्माणा मर्यादा. पूर्वनिर्मिता. ।
प्रमाणेनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते ह दृढव्रताः ॥६०
अधर्मं धर्ममित्याहुर्ये च मोहवश गताः ।
अव्रता नष्टमर्यादास्ते नरा ब्रह्मराक्षसाः ॥६१
ये वै कालकृतोद्योगात्सम्भवन्तीह मानवाः ।
निर्होमा निर्वषट्कारास्ते भवन्ति नराधमाः ॥६२

एष देवि मया सर्वसंशयच्छेदनाय ते ।
कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः ॥६३

उमा देवी ने कहा—दूसरे ऐसे ही मनुष्य भी होते हैं जिनका विज्ञान बहुत ही स्वल्प होता है तथा धर्म के विद्वेषी होते हैं। ऐसे लोग वेदों के पण्डित ब्राह्मणों के समीप में कभी गमन करने की तथा धर्म विषयक जिज्ञासा करने की इच्छा ही नहीं किया करते हैं ॥५७॥ कुछ मनुष्य व्रतों वाले तथा श्रद्धा-दमन में तत्पर होते हैं। तथा कुछ पुरुष व्रतों से रहित-भ्रष्ट नियमों वाले और राक्षसों के ही तुल्य हुआ करते हैं ॥५८॥ अन्य पुरुष ऐसे होते हैं जो नित्य ही यजन करने वाले हैं। कुछ ऐसे मनुष्य हैं जो मोह रहित होते हैं। हे भगवन् ! ये विभिन्न प्रकार के शील स्वभाव वाले मनुष्य इस संसार में किस कर्म विपाक से हुआ करते हैं ? यही मुझे प्राय कृपा करके बतला दीजिए ॥५९॥ महेश्वर प्रभु ने कहा—हे देवि ! आगम और लोकों के धर्म तथा किसकी क्या मर्यादा होनी चाहिए—यह सभी पूर्व में ही निर्मित कर दी गई हैं। जो उन्हीं के अनुसार प्रमाण मानकर अनुवर्त्तन किया करते हैं वे ही लोग दृढ़ व्रतों वाले दिखलाई दिया करते हैं ॥६०॥ जो मनुष्य अधर्म को ही धर्म है—ऐसा कहा करते हैं और मोह के वश में प्राप्त हो गये हैं वे व्रतों से रहित नष्ट मर्यादा वाले साक्षात् ब्रह्म राक्षस ही मनुष्य होते हैं ॥६१॥ जो काल कृत उद्योग से अर्थात् समय की अवधि पूर्ण हो जाने पर मानव जन्म प्राप्त किया करने हैं वे विना होम वाले-वष्ट् कार से रहित नरों में महान् अधम ही होते हैं ॥६२॥ हे देवि ! मैंने यह सव आपके समस्त संशयों के छेदन करने के लिये ही मनुष्यों के कुशल-अकुशल वाला धर्मों का सागर व्याख्यात् (वर्णित) कर दिया है ॥६३॥

—:※:—

मुनिमहेश्वरसंवादमेंवासुदेवमहिमावर्णन

श्रुत्वैव सा जगन्माता भर्तुर्वचनमादितः ।
हृष्टा बभूव सुप्रीता विस्मिता च तदा द्विजा ॥१
ये तत्राऽऽसन्मुनिवरास्त्रिपुरारे समीपत ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन गतास्तस्मिंगिरौ द्विजा ॥२
तेऽपि संपूज्य तं देवं शूलपाणिं प्रणम्य च ।
पप्रच्छु संशयं चैव लोकानां हितकाम्यया ॥३
त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु दक्षक्रतुविनाशन ।
पृच्छामस्त्वां जगन्नाथ संशयं हृदि संस्थितम् ॥४
संसारेऽस्मिन्महाघोरे भैरवे लोमहर्षणे ।
भ्रमन्ति सुचिरं कालं पुरुषाश्चाल्पमेधस ॥५
येनोपायेन मुच्यन्ते जन्मसंसारबन्धनात् ।
ब्रूहि तच्छ्रोतुमिच्छाम. परं कौतूहलं हि न ॥६

श्री व्यास देवजी ने कहा—उस जगदम्बा ने इस प्रकार से अपने स्वामी के वचनो को आदि से श्रवण करके हे द्विजो ! वह बहुत ही हर्षित हुई परम प्रीति युक्त और उस समय मे बहुत ही विस्मित भी हो गयी थी ॥१॥ हे द्विजगण ! जो भगवान् त्रिपुरारि के समीप मे मुनिवर थे वे सभी तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग मे उस गिरि पर चले गये थे ॥२॥ उन्होने भी उन शूलपाणि प्रभु की भली भाँति पूजा करके तथा प्रणाम करके लोको की हित कामना से अपने हृदय मे स्थित संशय के विषय मे प्रभु महेश्वर से पूछा था ॥३॥ मुनिगण ने कहा—हे त्रिलोचन प्रभो ! आपने प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर दिया था आपकी सेवा मे हम सबका प्रणाम समर्पित है । हे जगत् के नाथ ! हम इस समय मे अपने हृदय मे स्थित संशय के विषय में उसके छेदन करने के लिये ही आप से कुछ पूछ रहे हैं ॥४॥ यह संसार महान् घोर है—परमाधिक भीषण है और लोमहर्षण अर्थात् रोमाञ्चित कर देने वाला है । इसमे अत्यल्प मेधावाले

पुरुष जिनको इसका कुछ भी ज्ञान नहीं होता है बहुत अधिक समय तक चक्कर काटा करते हैं ॥५॥ वह कौन सा उपाय है जिसके द्वारा जन्म-मरण रूपी संसार के महान् दुस्सह बन्धन से मुक्त हो सकते हैं उसी को आप हम लोगों को बतलाइये। आपकी महती दया होगी। हमारे हृदय में इस सम्बन्ध में बड़ा भारी कौतूहल होता है ॥६॥

कर्मपाशनिबद्धानां नराणां दुःखभागिनाम्।
नान्योपायं प्रपश्यापि वासुदेवात्परं द्विजाः ॥७
ये पूजयन्ति तं देवं शङ्खचक्रगदाधरम्।
वाङ्मनःकर्मभिः सम्यक्ते यान्ति परमां गतिम् ॥८
किं तेषां जीवितेनेह पशुवच्चेष्टितेन च।
येषां न प्रवणं चित्तं वासुदेवे जगन्मये ॥९
पिनाकिन्भगनेत्रघ्न सर्वलोनमस्कृत।
माहात्म्यं वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छाम शङ्कर ॥१०
पितामहादपि वरः शाश्वतः पुरुषो हरिः।
कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य इवोदितः ॥११
दशबाहुर्महातेजा देवतारिनिषूदनः।
श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतयूथपः ॥१२
ब्रह्मा तस्योदरभवस्तस्याहं च शिरोभवः।
शिरोरुहेभ्यो ज्योतींषि रोमभ्यश्च सुरासुराः ॥१३
ऋषयो देहसंभूतास्तस्य लोकाश्च शाश्वताः।
पितामहगृहं साक्षात्सर्वदेवगृहं च सः ॥१४

महेश्वर भगवान् ने कहा—हे द्विजो! इस संसार में कर्मों का पाश बड़ा बलवान् है उसी से निबद्ध समस्त प्राणी रहा करते हैं अतएव महान् दुःखों के वे भागी नरों के लिये छुटकारा दिलाने वाले भगवान् वासुदेव से परम अन्य कोई भी उपाय मैं नहीं देखता हूँ ॥७॥ जो भगवान् शङ्ख-चक्र और गदा को धारण करने वाले उनका अर्चन किया करते हैं और मन-वचन तथा कर्म द्वारा भली भांति ध्यान करते हैं वे लोग परम गति को प्राप्त करते हैं ॥८॥ ऐसे जो पुरुष हैं जिनका चित्त

जगन्मय भगवान् वासुदेव में प्रवण (झुका हुआ) नहीं होता है उनके एक पशु की भाँति चेष्टा करने वाले जीवन से इस संसार में क्या लाभ है ? अर्थात् ऐसा जीवित व्यर्थ ही होता है ॥९॥ ऋषियों ने कहा—हे पिनाक के धारण करने वाले ! आपने तो भग के नेत्रों का हनन कर दिया था और हे शङ्कर ! आप सभी लोकों के द्वारा नमस्यमान हैं। हम लोग अब आपके मुखारविन्द से भगवान् वासुदेव के माहात्म्य के श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं ॥१०॥ महेश्वर भगवान् ने कहा—परमेष्ठी पितामह से भी श्रेष्ठ एवं शाश्वत पुरुष श्री हरि भगवान् हैं। भगवान् श्रीकृष्ण जाम्बूनद की आभा के समान आभा वाले हैं और उगते हुए सूर्य के तुल्य भ्राजमान हैं ॥११॥ दश बाहुओं वाले, महान् तेज से युक्त, देवों के शत्रु असुरों के निहनन करने वाले, श्री वत्स के चिह्न से संयुत भगवान् हृषीकेश समस्त देवों के यूथ के स्वामी हैं ॥१२॥ यह ब्रह्माजी भी उनके ही उदर से समुत्पन्न हुए हैं और हम भी उनके ही शिर से उद्भूत हुए थे। उन्हीं हृषीकेश भगवन् के मस्तक के केशों से समस्त ज्योतिर्गण उत्पन्न हुए हैं तथा रोमों से सब सुर और असुर प्रसूत हुए हैं ॥१३॥ सब ऋषिगण उन्हीं के देह से सम्भूत हुए हैं और ये शाश्वत लोक भी उन्हीं से समुत्पन्न हुए हैं। वे भगवान् पितामह के गृह हैं और सब देवों के भी गृह हैं ॥१४॥

सोऽस्याः पृथिव्याः कृत्स्नायाः स्रष्टा त्रिभुवनेश्वरः ।
संहर्ता चैव भूतानां स्थावरस्य चरस्य च ॥१५
स हि देवदेवः साक्षाद्देवनाथः परंतपः ।
सर्वज्ञः सर्वसंस्रष्टा सर्वगः सर्वतोमुखः ॥१६
न तस्मात्परमं भूतं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
सनातनो महाभागो गोविन्द इति विश्रुतः ॥१७
स सर्वान्पार्थिवान्संख्ये घातयिष्यति मानदः ।
सुरकार्यार्थमुत्पन्नो मानुष्यं वपुरास्थितः ॥१८
न हि देवगणाः शक्तास्त्रिविक्रमविनाकृताः ।
भुवने देवकार्याणि कर्तुं नायकवर्जिताः ॥१९

नायकः सर्वभूतानां सर्वभूतनमस्कृतः ।
एतस्य देवनाथस्य कार्यस्य च परस्य च ॥२०
ब्रह्मभूतस्य सततं ब्रह्मर्षिशरणस्य च ।
ब्रह्मा वसति नाभिस्थः शरीरेऽहं च संस्थितः ॥२१

वे ही त्रिभुवन के ईश्वर इस समग्र पृथिवी के सृजन करने वाले हैं और स्थावर तथा जङ्गम सम्पूर्ण भूतों के संहार करने वाले भी वे ही हैं ॥१५॥ वही निश्चित रूप से देवों के भी देव हैं—साक्षात् देवों के नाथ हैं, परन्तप सर्वज्ञ, सबके संस्रष्टा सर्व में गमन करने वाले और सब ओर मुख वाले हैं ॥१६॥ उन हृषीकेश भगवान् से परम भूत तीनों लोकों में कोई भी नहीं है । वे सनातन (सर्वदा से चले आने वाले) महान् भाग से संयुत हैं और गोविन्द इस नाम से विश्रुत हैं ॥१७॥ वे मान के प्रदान करने वाले प्रभु युद्ध में सभी पार्थिवों का हनन कर देंगे । हृषीकेश प्रभु सुरों के कार्यों के पूर्ण करने के लिये ही इस मनुष्य के शरीर में समास्थित हुए हैं ॥१८॥ भगवान् त्रिविक्रम के बिना किये हुए, नायक से विरहित देवगण देवों के कार्यों को करने में भुवन में समर्थ नहीं होते हैं ॥१९॥ इस देवों के नाथ के तथा पर के कार्य के नायक हैं और समस्त भूतों के भी वे नायक हैं एवं सब प्राणियों के द्वारा वन्दित हैं ॥२०॥ ब्रह्मभूत और निरन्तर ब्रह्मर्षियों के रक्षक के नाभि में स्थित ब्रह्माजी निवास किया करते हैं और मैं भी उनके शरीर में संस्थित रहता हूँ ॥२१॥

सर्वाः सुखं संस्थिताश्च शरीरे तस्य देवताः ।
स देवः पुण्डरीकाक्षः श्रीगर्भः श्रीसहाषितः ॥२२
शार्ङ्गचक्रायुधः खड्गी सर्वनागरिपुध्वजः ।
उत्तमेन सुशीलेन शौचेन च दमेन च ॥२३
पराक्रमेण वीर्येण वपुषा दर्शनेन च ।
आरोहणप्रमाणेन वीर्येणार्जवसंपदा ॥२४
आनृशंस्येन रूपेण बलेन च समन्वितः ।
अस्त्रैः समुदितः सर्वैर्दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥२५

योगमायासहस्राक्षो विरूपाक्षो महामना. ।
वाचा मित्रजनश्लाघी ज्ञातिबन्धुजनप्रिय. ।।२६
क्षमावाश्चानहवादी स देवो ब्रह्मदायक ।
भयहर्ता भयार्तानां मित्रानन्दविवर्धन ।।२७
शरण्य सर्वभूताना दीनाना पालने रतः ।
श्रुतवानथ सपन्न. सर्वभूतनमस्कृतः ।।२८

उन हृषीकेश भगवान् के शरीर सब देवता सुख पूर्वक सस्थित रहा करते हैं । वे देवेश्वर पुण्डरीकाक्ष हैं–श्रीगर्भ हैं–श्री (महालक्ष्मी देवी) के साथ विराज मान हैं ।।२२।। भगवान् शार्ङ्ग धनुष और सुदर्शन चक्र के आयुधो वाले हैं–खड्ग धारण किये हुए हैं–सब नागो के शत्रु गरुड की ध्वजा से सयुत हैं । भगवान् हृषीकश मे अत्युत्तम शील है शुचिता है दम है आरोह का परिमाण के अनुसार ही तीर्थ है तथा सरलता की सम्पदा है एव अनृणसता-रूप और बल से युक्त हैं । सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र एव देखने मे अद्भुत शस्त्रों से समुदित हैं ।।२३-२५।। योग माया से युक्त सहस्र नेत्रो वाले विरुपाक्ष और वे भगवान् महान् मन वाले हैं । वाणी से अपने मित्र जनो की श्लाघा करन वाले हैं तथा ज्ञाति और बन्धुजना के परम प्रिय हैं ।।२६।। वे देवेश्वर परम क्षमा वाले तथा अहङ्कार से नहीं बोलने वाले हैं और ब्रह्म के दायक हैं । भगवान् भय स दुःखित पुरुषों के भय को हरण किया करते हैं तथा मित्रो के आनन्द को बढाने वाले हैं ।।२७।। वे समस्त जीवा शरण्य हैं भगवान् सर्वदा दीनो क परिपालन में रति रखने वाले है । वे परम श्रुतवान् सम्पन्न एव समस्त भूतो के द्वारा नमस्कृत होत हैं ।।२८।।

समाश्रितानामुपकृच्छत्रूणा भयकृत्तथा ।
नीतिज्ञो नीतिसपन्नो ब्रह्मवादी जितेन्द्रिय ।।२९
भवार्थमेव देवाना बुद्ध्या परमया युत. ।
प्राजापत्ये शुभे मार्गे मानवे धर्मसस्कृते ।।३०
समुत्पत्स्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मन ।
अंशो नाम मनो पुत्रो ह्यन्तर्धामा तत. परम् ।।३१

अन्तर्धाम्नो हविर्धामा प्रजापतिरनिन्दितः ।
प्राचीनबर्हिर्भविता हविर्धाम्नः सुतो द्विजाः ॥३२
तस्य प्रचेतःप्रमुखा भविष्यन्ति दशाऽऽत्मजाः ।
प्राचेतसस्तथा दक्षो भवितेह प्रजापतिः ॥३३
दाक्षायण्यस्तथाऽऽदित्यो मनुरादित्यतस्ततः ।
मनोश्च वंशज इला सुद्युम्नाश्च भविष्यति ॥३४
वुधात्पुरूरवाश्चापि तस्मादायुर्भविष्यति ।
नहुषो भविता तस्माद्ययातिस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥३५

जो भगवान् के समाश्रय ग्रहण कर लेते हैं उन अपने आश्रित भक्त-जनों के उपकार करने वाले हैं तथा जो भगवान् के शत्रुता का भाव रखते हैं उनको भय देने वाले हैं। वे वहुत वड़े नीति के ज्ञाता-नीति से सुसम्पन्न ब्रह्म वादी-और जितेन्द्रिय हैं ॥२६॥ देवों के भव के ही लिये परम वुद्धि से युक्त होकर शुभ प्राजापत्य एवं धर्म संस्कृत मानव मार्ग में महात्मा मनु के वंश में भगवान् गोविन्द समुत्पन्न होंगे। मनु के पुत्र अंशनाम वाले हैं। इसके पश्चात् अन्तर्धामा होगा ॥३०-३१॥ अन्तर्धामा के पुत्र अनिन्दित प्रजापति हविर्धामा होगा। फिर हे द्विजो ! हविर्धामा का पुत्र प्राचीन वर्हि होगा ॥३२॥ उस प्राचीन वर्हि के प्रचेत प्रमुख दश पुत्र होंगे। यहां पर प्राचेतस दक्ष प्रजापति होगा ॥३३॥ दाक्षायण्य तथा आदित्य और फिर आदित्य से मनु होगा। मनु के वश में उत्पन्न होने वाले इला और सुद्युम्न होंगे ॥३४॥ वुध से पुरुरवा भी होगा। उससे आयु होगा। उससे नहुप उत्पन्न होगा और इस का आत्मज ययाति होगा ॥३५॥

यदुस्तस्मान्महासत्त्वः क्रोष्टा तस्माद्भविष्यति ।
क्रोष्टुश्चैव महान्पुत्रो वृजिनीवान्भविष्यति ॥३६
वृजिनीवतश्च भविता उपङ्गुरपराजितः ।
उपङ्गोर्भविता पुत्रःशूरश्चित्ररथस्तथा ॥३७
स्य त्ववरजः पुत्रः शूरो नाम भविष्यति ।
तेषां विख्यातवीर्याणां चारित्रगुणशालिनाम् ॥३८

यज्विनां च विशुद्धाना वंशे ब्राह्मणसत्तमाः ।
स शूर. क्षत्रियश्रेष्ठो महावीर्यो महायशाः ॥३९
स्ववंशविस्तारकर जनयिष्यति मानदम् ।
वसुदेवमिति ख्यात पुत्रमानकदुन्दुभिम् ॥४०
तस्य पुत्रश्चतुर्बाहुर्वासुदेवो भविष्यति ।
दाता ब्राह्मणसत्कर्ता ब्रह्मभूतो द्विजप्रिय. ॥४१
राज्ञो बद्धान्स सर्वान्वै मोक्षयिष्यति यादवः ।
जरासंध तु राजान निर्जित्य गिरिगह्वरे ॥४२

उस ययाति से महान् सत्व वाला यदु होगा फिर उसका पुत्र क्रोष्टा होगा। इस क्रोष्टा का महान् पुत्र वृजिनीवान् होगा। वृजिनीवान् का का पुत्र अपराजित उपङ्गु होगा। उपङ्गु का पुत्र शूर तथा चित्ररथ होगा ॥३६-३७॥ उसका अवरज पुत्र शूर नाम धारी होगा। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! चरित्र और गुणशाली-परम विशुद्ध-विख्यात् वीर्य पराक्रम वाले और यजन कर्त्ताओं के वंश में वह शूर क्षत्रियों में श्रेष्ठ-महान् यश वाला और महान् वीर्य वाला था ॥३८-३९॥ वह अपने वंश के विस्तार को करने वाले-मान के प्रदाता 'वसुदेव"-इस नाम से विख्यात आनक दुन्दुभि पुत्र को जन्म ग्रहण करायेगा ॥४०॥ उन वसुदेवजी के चार भुजाओं वाले वासुदेव पुत्र होगे। यह दाता-ब्राह्मणो के सत्कार करने वाले-ब्रह्मभूत और द्विजो पर प्यार करने वाले होंगे ॥४१॥ वह यादव बद्ध हुए सब. नृपो को मुक्त कर देंगे। जो जरासन्ध राजा होगा उसको गिरि की गुफा मे निर्जित कर दिया था ॥४२॥

सर्वपार्थिवरत्नाढ्या भविष्यति स वीर्यवान् ।
पृथिव्यामप्रतिहतो वीर्येणापि भविष्यति ॥४३
विक्रमेण च सपन्न सर्वपार्थिवपार्थिवः ।
शूरः सहननो भूतो द्वारकाया वसन्प्रभुः ॥४४
पालयिष्यति गा देवी विनिर्जित्य दुराशयान् ।
तं भवन्त समासाद्य ब्राह्मणैरर्हणैर्वरैः ॥४५

अर्चयन्तु यथान्यायं ब्रह्मणमिव शाश्वतम् ।
यो हि मां द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम् ॥४६
द्रष्टव्यस्तेन भगवान्वासुदेवः प्रतापवान् ।
दृष्टे तस्मिन्नहं दृष्टो न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥४७
पितामहो वासुदेव इति वित्त तपोधनाः ।
स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतियुक्तो भविष्यति ॥४८
तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति ।
यस्तु तं मानवो लोके संश्रयिष्यति केशवम् ॥४९

वह सभी पार्थिव रत्नों से आढ्य और वीर्यवान् होंगे । इस पृथिवी में बल वीर्य के द्वारा भी अप्रतिहत होंगे ॥४३॥ विक्रम भी बहुत अधिक होगा और सब राजाओं के भी राजा होंगे । संहनन भूत शूर प्रभु द्वारकापुरी में निवास करते हुए दुष्ट आशय वालों को निर्जित करके पृथिवी देवी का परिपालन करेंगे । आप लोग उनके पास जाकर योग्य एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणों के द्वारा शाश्वत ब्रह्माजी की भाँति न्याय पूर्वक अभ्यर्चन करें । जो कोई भी मुझे देखने की इच्छा करे और ब्रह्माजी के दर्शन करने की अभिलाषा रक्खे उसको प्रतापवान् भगवान् वासुदेव का दर्शन करना चाहिए । उनके दर्शन कर लेने पर मेरे दर्शन भी हो गये हैं-ऐसा ही समझ लो । इस विषय में मेरी कुछ भी विचारणा नाम मात्र को भी नहीं है ॥४४-४७॥ हे तपोधनो ! जिसके चित्त में यह है कि भगवान् वासुदेव ही पितामह है उस पर भगवान् पुण्डरीकाक्ष प्रीति से युक्त हो जांयगे ॥४८॥ जो मानव इस लोक में उन भगवान् केशव का समाश्रय ग्रहण करेगा उस पर ब्रह्म पूर्व देवगण प्रसन्न हो जायगा ॥४९॥

तस्य कीर्तिर्यशश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति ।
धर्माणां देशिकः साक्षाद्भविष्यति स धर्मवान् ॥५०
धर्मविद्भिः स देवेशो नमस्कार्यः सदाऽच्युतः ।
धर्म एव सदा हि स्यादस्मिन्नभ्यर्चिते विभौ ॥ १
स हि देवो महातेजाः प्रजाहितचिकीर्षया ।
धर्मार्थं पुरुषव्याघ्र ऋषिकोटीः ससर्ज च ॥५२

ताः सृष्टास्तेन विधिना पर्वते गन्धमादने ।
सनत्कुमारप्रमुखास्तिष्ठन्ति तपसाऽन्विता. ॥५३
तस्मात्स वाग्मी धर्मज्ञो नमस्यो द्विजपुंगवाः ।
वन्दितो हि स वन्देत मानितो मानयीत च ॥५४
दृष्ट· पश्येदहरहः सश्रित प्रतिसश्रयेत् ।
अर्चितश्चार्चयेन्नित्य स देवो द्विजसत्तमा· ॥५५
एव तस्यानवद्यस्य विष्णोर्वै परम तपः ।
आदिदेवस्य महतः सज्जनाचरितं सदा ॥५६

केशव भगवान् के समाश्रित पुरुष की कीर्त्ति-यश और स्वर्ग भी होगा । वह पुरुष धर्मों का साक्षात् देशिक (आचार्य) और धर्म वाला हो जायेगा ॥५०॥ धर्म के वेत्ताओ के द्वारा वह देवेश्वर भगवान् अच्युत सदा नमस्कार करने के योग्य हैं । इन विभु के समर्चित करने पर सदा धर्म ही होता है ॥५१॥ वह देव महान् तेज वाले हैं और पुरुष व्याघ्र उनने प्रजाजनो के हित सम्पादन के करने की इच्छा से धर्म के ही लिये ऋषियों के समुदाय का सृजन किया था ॥५२॥ उस विधाता ने गन्ध-मादन पर्वत पर उन प्रजाओ का सृजन किया था । वहा पर सनत कुमार जिनमे प्रमुख है वे तप से समन्वित होते हुए वहा पर स्थित हुआ करते है ॥५३॥ हे द्विज पुङ्गवो ! इसी कारण से वह वाग्मी और धर्मज्ञ नम-स्कार करने के योग्य हैं वन्दित वह वन्दना करते हैं और मानित वह मान करते है ॥५४॥ जो उनका दर्शन किया करते हैं वह दृष्ट होकर अहर्निश उनकी ओर अपनी दृष्टि रखते हैं । जो उनका समाश्रय ग्रहण किया करते हैं उनका वह प्रति सश्रय किया करते हैं। वे स्वय अर्चित होकर नित्य ही सबका अर्चन किया करते हैं । हे द्विज श्रेष्ठो ! वह देव अपने अर्चको भी समर्चित करने वाले हैं ॥५५॥ इस प्रकार से निर्दोष उन भगवान् विष्णु का यह परम तप है । उन महान् आदि देव का सदा सज्जनो का सा आचरित होता है ॥५६॥

भुवनेऽभ्यर्चितो नित्य देवैरपि सनातन. ।
अभयेनानुरूपेण प्रपद्य तमनुव्रता ॥५७

कर्मणा मनसा वाचा स नमस्यो द्विजैः सदा ।
यत्नवद्भिरुपस्थाय द्रष्टव्यो देवकीसुतः ॥५८
एष वै विहितो मार्गो मया वै मुनिसत्तमाः ।
तं दृष्ट्वा सर्वदेवेशं दृष्टाः स्युः सुरसत्तमाः ॥५९
महावराहं तं देव सर्वलोकपितामहम् ।
अहं चैव नमस्यामि नित्यमेव जगत्पतिम् ॥६०
तत्र च त्रितयं दृष्टं भविष्यनि न संशयः ।
समस्ता हि वयं देवास्तस्य देहे वसामहे ॥६१
तस्यैव चाग्रजो भ्राता सिताद्रिनिचयप्रभः ।
हली बल इति ख्यातो भविष्यति धराधरः ॥६२
त्रिशिरास्तस्य देवस्य दृष्टोऽनन्त इति प्रभोः ।
सुपर्णो यस्य वीर्येण कश्यपस्याऽऽत्मजो बली ॥६३

वह सनातन प्रभु भुवन में नित्य ही देवों के द्वारा अभ्यर्चित हुआ करते हैं। अनुरूप अभय के द्वारा अनुव्रत लोग उनकी शरणागति में प्राप्त होते हैं ॥५७॥ वह सदा द्विजगणों के द्वारा कर्म-वचन और मन से नमस्कार करने के योग्य हैं। यत्नशीलों के द्वारा उपस्थान करके देवकी देवी के पुत्र भगवान् वासुदेव का दर्शन अवश्य ही करना चाहिए ॥५८॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! मैंने यह मार्ग विदित किया है। उन सब देवों के स्वामी का दर्शन करके समस्त सुरों में श्रेष्ठ देखे हुए हो जाया करते हैं अर्थात् उन एक के ही दर्शन से सब देवों का दर्शन हो जाता है ॥५९॥ सब लोकों के पितामह महावराह उन देव को जो नित्य ही जगत् के स्वामी हैं मैं भी नमस्कार करता हूं ॥६०॥ वहां पर तीनों का दर्शन हो जाया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है। क्योंकि हम लोग सब देवगण उनके ही देह में वास किया करते हैं ॥६१॥ उन्हीं वासुदेव भगवान् के एक बड़े भाई हैं जो श्वेत गिरि के समुदाय के प्रभा के समान प्रभा वाले हैं। वह हली और बलराम-इन नामों से विख्यात हैं और धराधर होंगे ॥६२॥ उन प्रभु देव को त्रिशिरा और अनन्त देखा गया है। जिस कश्यप के वीर्य से बली सुपर्ण आत्मज हुआ था ॥६३॥

अन्त नैवाशकद्द्रष्टु देवस्य परमात्मन ।
स च शेपो विचरते परया वै मुदा युत ॥६४
अन्तर्वसति भोगेन परिरभ्य वसु धराम् ।
य एप विष्णु सोऽनन्तो भगवान्वसुधाधर. ॥६५
यो राम स हृपीकेशोऽच्युत सर्वधराधर ।
ताबुभौ पुरुपव्याघ्रौ दिव्यौ दिव्यपराक्रमौ ॥६६
द्रष्टव्यौ माननीयौ च चक्रलाङ्गलधारिणौ ।
एप वोऽनुग्रह प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधनाः ॥
तद्भवन्तो यदुश्रेष्ठ पूजयेयु प्रयत्नत. ॥६७

उन परमात्मा देव के अन्त को देख नहीं सका था । और वह शेप परम प्रसन्नता से युक्त होकर विचरण किया करते हैं ॥६४॥ वसुधरा का परि रम्भण करके भोग से अन्दर वास किया करते हैं । जो यह भगवान् विष्णु हैं वही अनन्त वसुधा के धारण करने वाले हैं ॥६५॥ जो राम हैं वही समस्त धरा को धारण करने वाले अयुत हृपीकेश हैं । वे दोनों पुरुप व्याघ्र दिव्य पराक्रम वाले परम दिव्य हैं ॥६६॥ ये दोनों ही दर्शन करने के योग्य-माननीय और सुदर्शन चक्र तथा लाङ्गल के धारण करने वाले हैं । हे तपो धन तपस्वियो ! मैंने अपना अनुग्रह करके ही यह सब वर्णित आप लोगो के समक्ष में कर दिया है जो परम पुण्यमय है । इसलिये आप लोग यदुवश मे परम श्रेष्ठ उन भगवान् का प्रयत्न पूर्वक अभ्यर्चन करें ॥६७॥

मुनिव्याससवाद में विष्णुपूजाकथन

अहो कृष्णस्य माहात्म्य श्रुतमस्माभिरद्भुतम् ।
सर्वपापहर पुण्य धन्य ससारनाशनम् ॥१

संपूज्य विधिवद्भक्त्या वासुदेवं महामुने ।
कां गतिं यान्ति मनुजा वासुदेवार्चने रताः ।।२
किं प्राप्नुवन्ति ते मोक्षं किंवा स्वर्गं महामुने ।
अथवा किं मुनिश्रेष्ठ प्राप्नुवन्त्युभयं फलम् ।।३
छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ संशयं नो हृदि स्थितम् ।
छेत्ता नान्योऽस्ति लोकेऽस्मिंस्त्वदृते मुनिसत्तम ।।४
साधु साधु मुनिश्रेष्ठा भवद्भिर्यदुदाहृतम् ।
शृणुध्वमानुपूर्व्येण वैष्णवानां सुखावहम् ।।५
दीक्षामात्रेण कृष्णस्य नरा मोक्षं व्रजन्ति वै ।
किं पुनर्ये सदा भक्त्या पूजयन्त्यच्युतं द्विजाः ।।६
न तेषां दुर्लभः स्वर्गो मोक्षश्च मुनिसत्तमाः ।
लभन्ते वैष्णवाः कामान्यान्यान्वाञ्छन्ति दुर्लभान् ।।७

मुनिगण ने कहा—अहो ! भगवान् श्रीकृष्ण का माहात्म्य हमने सुन लिया है जो बहुत ही अद्भुत, समस्त पापों के हरण करने वाला, पुण्यमय, परम धन्य और संसार के आवागमन के महान् बन्धन को नष्ट कर देने वाला है ।।१।। हे महामुने ! विधिपूर्वक भक्ति की भावना से भगवान् वासुदेव के अर्चन में निरत मनुष्य किस गति को प्राप्त किया करते हैं ? ।।२।। हे महामुने ! क्या वे मानव मोक्ष प्राप्त किया करते हैं अथवा स्वर्ग का लाभ करते हैं या हे मुनिश्रेष्ठ ! क्या वे दोनों ही फल प्राप्त कर लेते हैं ? ।।३।। हे सर्वज्ञ ! हमारे हृदय में स्थित इस संशय को आप छिन्न करने की योग्यता रखते हैं । हे मुनिसत्तम ! आपके बिना इस लोक में अन्य कोई भी संशय का छेदन करने वाला नहीं है ।।४।। श्रीव्यास देव जी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, जो कुछ भी आपने कहा है यह बहुत ही उत्तम मुक्त का प्रश्न है । अब आप वैष्णवों का अतिशय सुख देने वाला जो है उसको आनुपूर्वी से श्रवण करिए ।।५।। भगवान् श्रीकृष्ण का केवल दीक्षा से ही नर मोक्ष को प्राप्त कर लिया करते हैं । हे द्विजो ! उनके विषय में फिर क्या कहना है जो सर्वदा भक्ति की भावना से भगवान् अच्युत की पूजा किया करते

हैं ॥६॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उन भक्तों के लिये न तो स्वर्ग का प्राप्त करना दुर्लभ है और न मोक्ष की प्राप्ति ही दुर्लभ होती है। वैष्णव लोग अन्य भी जो कल्पनाएँ दुर्लभ हैं जिनकी वे इच्छा किया करते हैं उनको प्राप्त कर लेते हैं ॥७॥

रत्नपर्वतमारुह्य नरो रत्नं यथाऽऽददेत् ।
स्वेच्छया मुनिशार्दूलास्तथा कृष्णान्मनोरथान् ॥८
कल्पवृक्षं समासाद्य फलानि स्वेच्छया यथा ।
गृह्णाति पुरुषो विप्रास्तथा कृष्णान्मनोरथान् ॥९
श्रद्धया विधिवत्पूज्य वासुदेवं जगद्गुरुम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति नराः फलम् ॥१०
आराध्य तं जगन्नाथं विशुद्धेनान्तरात्मना ।
प्राप्नुवन्ति नराः कामान्सुराणामपि दुर्लभान् ॥११
येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या वासुदेवाख्यमव्ययम् ।
न तेषां दुर्लभं किंचिद्विद्यते भुवनत्रये ॥१२
धन्यास्ते पुरुषा लोके येऽर्चयन्ति सदा हरिम् ।
सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम् ॥१३
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः ।
संपूज्य तं सुरवरं प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥१४

हे मुनिशार्दूलो ! नर रत्न पर्वत पर समारूढ होकर जिस प्रकार से रत्नों को ग्रहण किया करता है और स्वेच्छा पूर्वक प्राप्त कर लेता है ठीक उसी प्रकार से भगवान् कृष्ण से मनुष्य मनोरथों को भी स्वेच्छा से प्राप्त कर लेता है ॥८॥ हे विप्रो ! जिस तरह से कल्पवृक्ष के समीप में पहुँच कर मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार फलों को प्राप्त कर लेता है उसी भाँति भगवान् श्री कृष्ण से मनोरथों की प्राप्ति कर लिया करता है ॥९॥ श्रद्धा से विधि पूर्वक जगत् के गुरु वासुदेव का पूजन करके मनुष्य धर्म अर्थ-काम और मोक्ष के फलों को प्राप्त कर लेते हैं ॥१०॥ परम विशुद्ध अन्तरात्मा के द्वारा उन प्रभु जगन्नाथ की

समाराधना करके मानव देवों को भी दुर्लभ कामनाओं को प्राप्त कर लेते हैं ॥११॥ जो मनुष्य सदा ही भक्ति से वासुदेव नाम वाले अविनाशी भगवान् का अर्चन करते हैं उनको तीनों भुवनों में कुछ भी दुर्लभ पदार्थ नहीं है ॥१२॥ वे पुरुष इस लोक में परम धन्य हैं जो सदा ही श्री हरि भगवान् की अर्चना किया करते हैं। यह भगवान् समस्त पापों के हरण करने वाले और सम्पूर्ण कामनाओं के फलों को प्रदान करने वाले देव हैं ॥१३॥ चाहे ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य स्त्रीगण शूद्र और अन्त्यज कोई भी क्यों न हों उन सुरों में, परम श्रेष्ठ भगवान् श्रीहरि की पूजा करके परमगति का लाभ ग्रहण किया करते हैं ॥१४॥

तस्माच्छृणुध्वं मुनयो यत्पृच्छत ममानघाः।
प्रवक्ष्यामि समासेन गतिं तेषां महात्मनाम् ॥१५
त्यक्त्वा मानुष्यकं देहं रोगायतनमध्रुवम्।
जरामरणसंयुक्तं जलबुद्‌बुदसंनिभम् ॥१६
मांसशोणितदुर्गन्धं विष्ठामूत्रादिभिर्युतम्।
अस्थिस्थूणममेध्यं च स्नायुचर्मशिरान्वितम् ॥१७
कामगेन विमानेन दिव्यगन्धर्वनादिना।
तरुणादित्यवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥१८
उपगीयमाना गन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृताः।
व्रजन्ति लोकपालानां भवनं तु पृथक्पृथक् ॥१९
मन्वन्तरप्रमाणं तु भुक्त्वा कालं पृथक्पृथक्।
भुवनानि पृथक्तेषां सर्वभोगैरलंकृताः ॥२०
ततोऽन्तरिक्षं लोकं ते यान्ति सर्वसुखप्रदम्।
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्दशमन्वन्तरं द्विजाः ॥२१

इसीलिते हे मुनिगणो ! हे अनघो ! मुझ से जो आप पूछ रहे हैं उसका श्रवण कीजिए। मैं उन महान् आत्मा वालों की जो गति होती है उसको संक्षेप से बतलाऊँगा ॥१५॥ मनुष्य का यह शरीर रोगों का घर और विनाशशील अस्थिर है। भक्तों का भी वैसा ही मनुष्य-देह होता है। इसका त्याग करके ही भगवद्भक्त परागति प्राप्त किया करते

है। मानवीय शरीर जरा (बुढापा) और मरणशील होता है तथा एक जल के बुलबुले के ही तुल्य ही बहुत ही अस्थिर होता है ॥१६॥ यह मनुष्य का शरीर मास और रक्त की दुर्गन्ध वाला है और इसमे मलमूत्र आदि भरे रहते हैं। यह एक अस्थियो का ही ढांचा है- अपवित्र और स्नायु-चर्म और शिराओ से युक्त है ॥१७॥ ऐसे महान् दूषित शरीर का त्याग कर देने के पश्चात् इच्छानुकूल गमन करने वाले, दिव्य गन्धर्वों के नाद से सयुत तरुणसूर्य के समान वर्ण युक्त किङ्कणी जालो की माला वाले विमान के द्वारा गन्धर्वों के द्वारा गान किये गये अप्सराओ से अलकृत भगवद्भक्त जन पृथक् २ लोकपालो के भवन को जाया करते हैं ॥१८ १६॥ एक मनु के अन्तर का जितना काल होता है उतने प्रमाण वाले समय तक अलग २ भोगो का उपभोग करके उनके पृथक् भुवनो मे निवास करते। और फिर समस्त भोगो से अलकृत होकर सभी सुखो के प्रदाता *अन्तरिक्ष लोक मे वे गमन करते हैं। हे द्विजो ! वहा पर भी* वे दश मन्वन्तरो के काल पर्यन्त परमाधिक श्रेष्ठ भोगो के सुखो का उपभोग किया करते हैं ॥२०-२१॥

तस्माद्गन्धर्वलोक तु यान्ति वै वैष्णवा द्विजा· ।
विंशन्मन्वन्तर काल तत्र भुक्त्वा मनोरमान् ॥२२

भोगानादित्यलोक नु तस्माद्यान्ति सुपूजिता: ।
त्रिशन्मन्वन्तर तत्र भोगान्भुक्त्वाऽतिदैवतान् ॥२३

तस्माद्व्रजन्ति ते विप्राश्चन्द्रलोक सुखप्रदम् ।
मन्वन्तराणा ते तत्र चत्वारिंशद्गुणान्वितम् ॥२४
काल भुक्त्वा शुभान्भोगाञ्जरामरणवर्जिता ।
तस्मान्नक्षत्रलोक तु विमानैः समलकृतम् ॥२५

व्रजन्ति ते मुनिश्रेष्ठा गुणै सर्वैरलकृता. ।
मन्वन्तराणा पञ्चाशद्भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥२६
तस्माद्व्रजन्ति ते विप्रा देवलोक सुदुर्लभम् ।
षष्टि मन्वन्तर यावत्तत्र भुक्त्वा सुदुर्लभान् ॥२७

भोगान्नानाविधान्विप्रा ऋग्व्यष्टकसमन्वितान् ।
शक्रलोकं पुनस्तस्माद्गच्छन्ति सुरपूजिताः ॥२८

हे द्विजो ! वे वैष्णव वहां से फिर गन्धर्व लोक को जाया करते हैं। बीस मन्वन्तर के काल पर्यन्त वहां भोग के मनोरम सुखों का उपभोग करते हैं ॥२१॥ वहां से भी सुपूजित होते हुए फिर सूर्य लोक में जाते हैं। वहां पर भी बीस मन्वन्तर तक अति दैवत भोगों को भोग किया करते हैं। हे विप्रो ! वहां से फिर चन्द्र लोक में जाते हैं जो बहुत सुख प्रद है। वहां पर चालीस मन्वन्तर पर्यन्त काल तक भोग प्राप्त करते हैं ॥२२-२४॥ इतने लम्बे समय तक शुभ भोगों का आनन्द प्राप्त कर जरा-मरण से रहित होते हुए विमानों से अलङ्कृत नक्षत्रों के लोक को सब गुणगणों से समलंकृत होते हुए हे मुनिश्रेष्ठो वे गमन करते हैं ॥२५॥ वहां पर पचास मन्वन्तर तक यथेप्सित भोगों का सुख भोगा करते हैं ॥२६॥ वहां से फिर वे वैष्णव भक्त जन परम दुर्लभ देव लोक को जाते हैं ॥२७॥ वहां साठ मन्वन्तरों के काल के प्रमाण तक सुदुर्लभ भोगों का उपभोग किया करते हैं। हे विप्रो ! ऋग्व्यष्टक समन्वित नाना प्रकार के भोगों का सुख प्राप्त किया करते हैं। फिर देवों के द्वारा समर्पित होते हुए इन्द्रलोक में गमन करते हैं ॥२८॥

मन्वन्तराणां तत्रैव भुक्त्वा कालं च सप्ततिम् ।
भोगानुच्चावचान्दिव्यान्मनसः प्रीतिवर्धनान् ॥२९
तस्माद्व्रजन्ति ते लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम् ।
भुक्त्वा तत्रेप्सितान्भोगान्सर्वकामगुणान्वितान् ॥३०
मन्वन्तरमशीतिं च कालं सर्वसुखप्रदम् ।
तस्मात्पैतामहं लोकं यान्ति ते वैष्णवा द्विजाः ॥३१
मन्वन्तराणां नवतिं क्रीडित्वा तत्र वै सुखम् ।
इहाऽऽगत्य पुनस्तस्माद्विप्राणां प्रवरे कुले ॥३२
जायन्ते योगिनो विप्रा वेदशास्त्रार्थपारगाः ।
एवं सर्वेषु लोकेषु भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥३३
इहाऽऽगत्य पुनर्यान्ति उपर्युपरि च क्रमात् ।

सम्भवे सम्भवे ते तु शतवर्षं द्विजोत्तमाः ॥३४
भुक्त्वा यथेप्सितान्भोगान्यान्ति लोकान्तरं ततः ।
दशजन्म यदा तेषा कर्मणैव प्रपूर्यते ॥३५

सत्तर मन्वन्तरो के समय तक वहा पर उच्चावच दिव्य और मन की प्रीति को वर्धन करने वाले भोगो का सुख प्राप्त करते हैं ॥२६॥ वहा से भी अत्युत्तम प्राजापत्य लोक मे गमन करते हैं और वहा सब काम और गुणों से समन्वित ईप्सित भोगो का उपभोग प्राप्त करते हैं ॥३०॥ अस्सी मन्वतरो के काल पर्यन्त सब सुखो के देने वाले उस लोक मे निवास करके वैष्णव गण वहा से पितामह के लोक में जाते हैं ॥३१॥ नब्बे मन्वन्तर तक वहा पर सुख पूर्वक आनन्द क्रीडा करके पुन वे लोग यहा पर इस लोक मे जो वास्तविक कर्म भूमि है आया करते हैं। तथा किसी विप्र के परम श्रेष्ठ कुल मे जन्म ग्रहण करते हैं ॥३२॥ हे विप्रो ! यहा पर वे योगी होते हैं और वेदो तथा शास्त्रो के अर्थ के पारगामी विद्वान् होते हैं इस तरह से सब लोको मे यथेप्सित भोगो का उपभोग करते हैं ॥३३॥ यहा आकर वे पुन ऊपर २ क्रम से जाते हैं। हे द्विजो-त्तमो ! प्रत्येक जन्म मे सौ-सौ वर्ष तक अपने अभीष्ट भोगो का उपभोग करके फिर दूसरे लोको को गमन किया करते हैं। ऐसे ही क्रम से जब दश जन्म उनके पूर्ण हो जाया करते हैं ॥३४ ३५॥

तदा लोक हरेर्दिव्य ब्रह्मलोकाद्व्रजन्ति ते ।
गत्वा तत्राक्षयान्भोगान्भुक्त्वा सर्वगुणान्वितान् ॥३६
मन्वन्तरशत यावज्जन्ममृत्युविवर्जिताः ।
गच्छन्ति भुवन पश्चाद्वाराहस्य द्विजोत्तमा ॥३७
दिव्यदेहा कुण्डलिनो महाकाया महाबला ।
क्रीडन्ति तत्र विप्रेन्द्रा कृत्वा रूप चतुर्भुजम् ॥३८
दश कोटिसहस्राणि वर्षाणां द्विजसत्तमाः ।
तिष्ठन्ति शाश्वते भावे सर्वदेवैर्नमस्कृताः ॥३९
ततो यान्ति तु ते धीरा नरसिंहगृहं द्विजाः ।
क्रीडन्ते तत्र मुदिता वर्षकोट्ययुतानि च ॥४०

तदन्ते वैष्णवं यान्ति पुरं सिद्धनिषेवितम् ।
क्रीडन्ते तत्र सौख्येन वर्षाणामयुतानि च ॥४१

ब्रह्मलोके पुनर्विप्रा गच्छन्ति साधकोत्तमाः ।
तत्र स्थित्वा चिरं कालं वर्षकोटिशतान्बहून् ॥४२

इसके पश्चात् उस समय में वे उस ब्रह्म लोक से श्रीहरि भगवान् के दिव्य लोक को गमन करते हैं। वहां पर जाकर सब गुणों से समन्वित अक्षय भोगों का उपभोग किया करते हैं और जब तक सौ मन्वन्तरों का काल पूर्ण होता है जन्म-मृत्यु से रहित होकर निवास करते हैं। हे द्विजोत्तमो ! इसके पश्चात् वाराह भगवान् के भुवन में जाते हैं ॥३६-३७॥ वहां पर वे दिव्य देह वाले-कुण्डल धारी-महान् काया वाले-महान् बल से युक्त चार भुजाधारी स्वरूप करके क्रीड़ा किया करते हैं ॥३८॥ दश करोड़ सहस्र वर्षों के समय तक उस शाश्वत भाव में सब देवों से नमस्कृत होते हुए स्थित रहा करते हैं ॥३९॥ हे द्विजो ! वहां से वे धीर पुरुष नरसिंह भगवान् के भुवन में गमन किया करते हैं और वहां पर परम मुदित होते हुए दश हजार करोड़ वर्षों तक क्रीड़ा किया करते हैं ॥४०॥ इसके अन्त में सिद्ध गणों से सेवित विष्णु भगवान् के पुर में जाते हैं वहां पर दश सहस्र वर्षों तक सुख से क्रीड़ा करते हैं ॥४१॥ हे विप्रो ! वे साधकों में परमोत्तम पुनः ब्रह्म लोक में गमन करते हैं। वहां पर बहुतसे करोड़ों सौ वर्षों तक चिरकाल पर्यन्त स्थित रहते हैं ॥४२॥

नारायणपुरं यान्ति ततस्ते साधकेश्वराः ।
भुक्त्वा भोगांश्च विविधान्वर्षकोट्यर्बुदानि च ॥४३
अनिरुद्धपुरं पश्चाद्दिव्यरूपा महाबलाः ।
गच्छन्ति साधकवराः स्तूयमानाः सुरासुरैः ॥४४
तत्र कोटिसहस्राणि वर्षाणां च चतुर्दश ।
तिष्ठन्ति वैष्णवास्तत्र जरामरणवर्जिताः ॥४५

प्रद्युम्नस्य पुरं पश्चाद्गच्छन्ति विगतज्वराः ।
तत्र तिष्ठन्ति ते विप्रा लक्षकोटिशतत्रयम् ॥४६

स्वच्छन्दगामिनो हृष्टा बलशक्तिसमन्विता ।
स्वच्छन्ति योगिन पश्चाद्यत्र सकर्षण प्रभु ॥४७
तत्रोषित्वा चिर काल भुक्त्वा भोगान्सहस्रश ।
विशन्ति वासुदेवेति विरूपाख्ये निरञ्जने ॥४८
विनिर्मुक्ता परे तत्त्वे जरामरणवर्जिते ।
तत्र गत्वा विमुक्तास्ते भवेयुर्नात्र सशय ॥४९
एव क्रमेण भुक्ति त प्राप्नुवन्ति मनीषिण ।
मुक्ति च मुनिशार्दूला वासुदेवार्चने रता ॥५०

इसके अनन्तर वे साधना करने वालो के शिरोमणि वहाँ से नारायण के पुर म जाते हैं। वहा पर अर्बुद करोड वर्षों तक नाना भाति के भोगो का उपभोग करते हैं। इसके पश्चात् वे दिव्य स्वरूप धारी महान् बल से युक्त साधक वर सुर और असुरो से स्तुत होते हुए अनिरुद्ध भगवान् के पुर को गमन किया करते हैं ॥४३ ४४॥ वहा चौदह करोड सहस्र वर्षों तक जरा मरण स रहित होते हुए वैष्णव गण समवस्थित रहा करते हैं ॥४५। पीछे प्रद्युम्न प्रभु के पुर म विगत ज्वर वाले होकर गमन करते हैं। वहा पर एक लाख करोड तीन सौ वर्षों तक स्थिति किया करते हैं ॥४६॥ स्वच्छन्दता पूर्वक गमन करने वाले-बल और शक्ति से समन्वित परम प्रसन्न वे योगिजन इसके पश्चात् वहा जाते हैं जहा पर सङ्कर्षण प्रभु विराजमान रहा करते है ॥४७॥ वहा पर भी चिरकाल पर्यन्त निवास करके और सहस्रो ही भोगो का उपभोग करके निरपाख्य निरन्जन भगवान् वासुदेव मे प्रवेश कर जाया करते हैं ॥४८॥ जरा-मरण स वर्जित उस परात्पर तत्त्व मे पहुँच कर सब बन्धनो एव भोगो से छुटकारा पाये हुए पूर्णत । विमुक्त हो जाया करते हैं—इस विषय मे लेशमात्र भी सशय नही है ॥४९॥ इसी प्रकार के क्रम से मनीषीगण सुखो की भुक्ति को प्रथम प्राप्त करके हे मुनि शार्दूलो ! व भगवान् वासुदेव के अर्चन मे रति रखने वाले वैष्णव जन मोक्ष का लाभ लिया करते हैं। भगवान् वासुदेव के चरणो की भक्ति और उनकी अर्चना करने की ऐसी महिमा है ॥५०॥

व्यासमुनिसंवाद में विष्णुपूजाकथन [२]

एकादश्यामुभे पक्षे निराहारः समाहितः ।
स्नात्वा सम्यग्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रियः ॥१

संपूज्य विधिवद्विष्णुं श्रद्धया सुसमाहितः ।
पुष्पैर्गन्धैस्तथा दीपैर्धूपैर्नैवेद्यकैस्तथा ॥२
उपहारैर्बहुविधैर्जप्यैर्होमप्रदक्षिणैः ।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः ॥३

दण्डवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमैः ।
एवं संपूज्य विधिवद्रात्रौ कृत्वा प्रजागरम् ॥४
कथां वा गीतिकां विष्णोर्गायन्विष्णुपरायणः ।
याति विष्णोः परं स्थानं नरो नास्त्यत्र संशयः ॥५

प्रजागरे गीतिकायाः फलं विष्णोर्महामुने ।
ब्रूहि तच्छ्रोतुमिच्छामः परं कौतूहलं हि नः ॥६

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
गीतिकायाः फलं विष्णोर्जागरे यदुदाहृतम् ॥७

श्री महा मुनीन्द्र व्यास देवजी ने कहा—मास के कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षों में जो दो एकादशी तिथियां आती हैं उनमें आहार न करके समाहित रहना चाहिए । भली रीति से स्नान करके इन्द्रियों को जीत कर धौत वस्त्र धारण करके ॥१॥ परमाधिक श्रद्धा से सुसमाहित होकर विधि-विधान के साथ भगवान् विष्णु का अच्छी तरह से पूजन करना चाहिए । उस अर्चन में सभी उपचारों को ग्रहण करे । धूप-दीप-पुष्प-गन्ध और नैवेद्य आदि सबके द्वारा पूजन करना चाहिए ॥२॥ बहुत प्रकार के उपहार, जप्य, होम, प्रदक्षिणा, अनेक स्तोत्र, दिव्य गीत, मनोहर वाद्य, दण्ड की भाँति प्रणिपात तथा उत्तम जय शब्दों के द्वारा भगवान् की अर्चना करे और रात्रि में विधि पूर्वक जागरण करना चाहिए ॥३-४॥ भगवान् विष्णु की भक्ति में परायण होकर विष्णु के गीतों का तथा भग-

वान् की कथा का गान करना चाहिए । इस प्रकार से दोनों मास की एकादशी मे करने वाले विष्णु परायण मनुष्य भगवान् विष्णु का जो परमपद है उसमे अन्त में गमन किया करता है—इसमें कुछ भी संशय नही है ॥५॥ मुनिगण ने कहा—हे महामुने ! एकादशी की रात्रि में प्रजागण करने में और भगवान् विष्णु के गुणानुवादों के गीतों का फल हे महामुने ! अब आप बतलाइये । उनके श्रवण करने की हम लोग इच्छा करते हैं। हमारे हृदय में इस विषय के ज्ञान प्राप्त करने का बड़ा भारी कौतूहल विद्यमान है ॥६॥ श्री महामुनि व्यास देव जी ने कहा—हे मुनि शार्दूलो ! आपने जो मुझसे पूछा है उस विषय का मैं आनुपूर्वी से वर्णन करूंगा आप लोग श्रवण कीजिए। भगवान् विष्णु के गुणों के गान करने का तथा भगवान् विष्णु के समक्ष में एकादशी के दिन रात्रि मे जागरण करने में जो फल बताया गया है उसको मैं बतलाऊंगा ॥७॥

अवन्ती नाम नगरी बभूव भुवि विश्रुता ।
तत्राऽऽस्ते भगवान्विष्णु. शङ्खचक्रगदाधरः ॥८
यस्या नगर्या पर्यन्ते चाण्डालो गीतिकोविद ।
सद्वृत्त्योपादितधनो भृत्यानां भरणे रत. ॥९
विष्णुभक्तः स चाण्डालो मासि मासि दृढव्रतः ।
एकादश्यां समागम्य सोमवासोऽथ गायति ॥१०
गीतिका विष्णुनामाङ्का प्रादुर्भावसमाश्रिता. ।
गान्धारषड्जनैषादस्वरपञ्चमधैवते ॥११
रात्रिजागरणे विष्णु गाथाभिरुपगायति ।
प्रभाते च प्रणम्येशं द्वादश्यां गृहमेत्य च ॥१२
जामातृभागिनेयांश्च भोजयित्वा सकन्यका. ।
तत. सपरिवारस्तु पश्चाद्भुङ्क्ते द्विजोत्तमा. ॥१३
एवं तस्याऽऽसतस्तत्र कुर्वतो विष्णुप्रीणनम् ।
गीतिकाभिर्विचित्राभिर्वय. प्रतिगतं बहु ॥१४

इस भूमण्डल में एक अवन्ती नाम वाली परम प्रसिद्ध नगरी हुई थी। वहाँ पर शङ्ख-चक्र और गदा के धारण करने भगवान् विष्णु विराजमान रहते हैं ॥८॥ उस महानगरी के पर्यन्त भाग में गीति शास्त्र का महान् पण्डित एक चाण्डाल निवास किया करता था जो कि सद्वृत्ति से धन का अर्जन करने वाला था और सर्वदा अपने भृत्यों के पालन-पोषण में निरत रहा करता था ॥९॥ वह चाण्डाल तो जाति से था किन्तु भगवान् विष्णु का पूर्वार्जित संस्कारों के अधीन परम भक्त था। वह प्रत्येक मास में दृढ़ व्रत वाला होकर एकादशी तिथि में उपवास किया करता था और इसके अनन्तर भगवान् के गुणों की गीतिकाओं का गान भी किया करता था ॥१०॥ वे समस्त गीतिकाऐं भगवान् विष्णु के शुभ नामों से युक्त थीं तथा विष्णु भगवान् के जो-जो प्रादुर्भाव हुए हैं उनका भी उन गीतिकाओं में वर्णन था। उन गीतिकाओं में षडज-गान्धार-निषाद-ऋषभ-मध्यम-पञ्चम और धैवत ये सातों स्वर समाविष्ट थे ॥११॥ एकादशी तिथि में रात्रि के समय में जागरण में भगवान् विष्णु के चरित्र की गाथाओं का वह गान किया करता था। प्रभात के समय हो जाने पर वह भगवान् को प्रणाम करके द्वादशी के दिन गृह में आ जाया करता था। यह नियम प्रत्येक एकादशी में वह करता था ॥१२॥ अपने घर में आकर वह जामाता-भागिनेय और कन्याओं को प्रथम भोजन कराकर हे द्विजोत्तमो ! इसके पश्चात् वह अपने सम्पूर्ण परिवार के सहित भोजन किया करता था ॥१३॥ इसी रीति से वहाँ पर वह चाण्डाल निवास करता हुआ भगवान् विष्णु को प्रसन्नता किया करता था और अनेक गीतिकाओं के द्वारा उनको रिझाया करता था जो कि गीतिकाऐं बहुत ही अद्भुत होती थीं। ऐसे रहते हुए उसकी बहुत-सी आयु व्यतीत हो गयी थी ॥१४॥

एकदा चैत्रमासे तु कृष्णैकादशिगोचरे।
विष्णुशुश्रूषणार्थाय ययौ वनमनुत्तमम् ॥१५
वनजातानि पुष्पाणि ग्रहीतुं भक्तितत्परः।
क्षिप्रातटे महारण्ये विभीतकतरोरधः ॥१६

दृष्टः स राक्षसेनाथ गृहीतश्चापि भक्षितुम् ।
चाण्डालस्तमथोवाच नाद्य भक्ष्यस्त्वया ह्यहम् ॥१७
प्रातर्भोक्ष्यसि कल्याण सत्यमेष्याम्यहं पुनः ।
अद्य कार्यं मम महत्तस्मान्मुञ्चस्व राक्षस ॥१८
श्वः सत्येन समेष्यामि ततः खादसि मामिति ।
विष्णुशुश्रूषणार्थाय रात्रिजागरणं मया ॥
कार्यं न व्रतविघ्नं मे कर्तुमर्हसि राक्षस ॥१९
तं राक्षसः प्रत्युवाच दशरात्रमभोजनम् ।
ममाभूदद्य च भवान्मया लब्धो मतङ्गज ॥२०
न मोक्ष्ये भक्षयिष्यामि क्षुधया पीडितो भृशम् ।
निशाचरवचः श्रुत्वा मातङ्गस्तमुवाच ह ॥
सान्त्वञ्श्लक्ष्णया वाचा स सत्यवचनैर्दृढः ॥२१

एक बार चैत्र मास मे कृष्ण पक्ष की एकादशी के आने पर वह भगवान् विष्णु की शुश्रूषा करने के लिये एक परम श्रेष्ठ वन में नगर से बाहिर चला गया था ॥१५॥ वहाँ पर भक्ति मे परायण होकर वह वन मे समुत्पन्न पुष्पों को लेने के लिये महान् अरण्य मे क्षिप्रा नदी के तीर पर विभीषण नाम वाले वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था। वहाँ पर एक राक्षस ने उसको देखा था और उसे भक्षण करने के लिये राक्षस ने उसे पकड लिया था। उस समय मे उस चाण्डाल ने उस राक्षस से कहा था कि आप आज मेरा भक्षण न करें ॥१६-१७॥ हे कल्याण ! कल प्रातः काल के समय मे आप मुझे खा लेना। मैं सर्वथा सच २ निवेदन करता हूँ कि मैं यहाँ पर ही कल सुबह के समय मे उपस्थित हो जाऊँगा। हे राक्षस ! आज मेरा एक महान् कार्य है अतएव आप इस समय मे मुझको छोड दीजिए ॥१८॥ कल प्रातः काल मे मैं निश्चित रूप से आ जाऊँगा यह मेरी प्रार्थना सर्वथा सत्य है फिर आप मेरा भक्षण कर लेना। भगवान् विष्णु की शुश्रूषा करने के लिये मुझे रात्रि मे आज एकादशी के दिन जागरण करना है। हे राक्षस ! मेरा यह व्रत है अतएव इसमे आप

कोई भी विघ्न न करने के योग्य हैं ॥१९॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—उस समय में उस राक्षस ने उससे यह कहा था कि मुझे दश रात्रि पर्यन्त भोजन न किये हुए हो गया है। हे मतङ्गज ! दश दिन के पश्चात् आज तू मुझको प्राप्त हुआ है ॥२०॥ मैं तो आज भूख से अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ इसलिवे अब मैं तुझको नहीं छोड़ूँगा और खा ही जाऊँगा। उस निशाचर के इस वचन का श्रवण कर वह मातङ्ग उससे बोला था और परमाधिक श्लक्ष्ण वाणी से अति सुदृढ़ वचनों के द्वारा उसे सान्त्वना देते हुए उसने कहा था ॥२१॥

सत्यमूलं जगत्सर्वं ब्रह्मराक्षस तच्छृणु ।
सत्येनाहं शपिष्यामि पुनरागमनाय च ॥२२
आदित्यश्चन्द्रमा वह्निर्वायुर्भूर्द्यौर्जलं मनः ।
अहोरात्रं यमः संध्ये द्वे विदुर्नरचेष्टितम् ॥२३
परदारेषु यत्पापं यत्परद्रव्यहारिषु ।
यच्च ब्रह्महनः पापं सुरापे गुरुतल्पगे ॥२४
वन्ध्यापतेश्च यत्पापं यत्पापं वृषलीपतेः ।
यच्च देवलके पापं मत्स्यमांसाशिनश्च यत् ॥२५
कोडमांसाशिनो यच्च कूर्ममांसाशिनश्च यत् ।
वृथा मांसाशिनो यच्च पृष्ठमांसाशिनश्च यत् ॥२६
कृतघ्ने मित्रघातके यत्पाप दिधिषूपतौ ।
सूतकस्य च यत्पापं यत्पापं क्रूरकर्मणः ॥२७

वह मातङ्ग बोला—हे ब्रह्म राक्षस ! यह सम्पूर्ण जगत् सत्य के मूल वाला है—यह आप श्रवण कीजिए। मैं उसी सत्य से शपथ खाकर कहता हूँ यदि मेरा वचन गलत हो तो मैं उस सत्य से गिर जाऊँगा। मैं पुनः कल यहाँ पर ही आने की बात पूर्णतया सत्य निवेदन कर रहा हूं ॥२२॥ सूर्य, चन्द्र, वह्नि, वायु, भू, द्यौ, जल, मन, अहोरात्र, यम, दोनों सन्ध्या काल ये सभी मनुष्य की समस्त चेष्टाओं को देखते और जानते हैं ॥२३॥ पराई स्त्रियों के अभिगमन करने में जो पाप होता है—पराये धन के अपहरण करने में जो पाप होता है, किसी ब्राह्मण के हनन करने में जो

पाप है, सुरा के पान करने में जो पाप होता है, गुरु पत्नी की शय्या पर गमन करने में जो महा पाप होता है ॥२४॥ वांझ स्त्री के पति होने का का जो पाप है-वृषली (शूद्रा) स्त्री को घर में रख लेने से जो महा पाप होता है, देवलक (देवों की पूजा कर जीविका करने वाला) के होने में जो पाप होता है और जो मत्स्य के मास खाने में जो पाप होता है ॥२५॥ क्रोड के माम का भक्षन करने वाले को जो पाप होता है-वृथा ही मास के खान से और पृष्ठ भाग के मास खाने से जो पाप होता है ॥२६॥ किये हुए उपकार को न मानने वाले को, मित्र के साथ घात करने वाले को, दिधिपूपपति को, सूतकी को और क्रूर कर्म करने वाले को जो पाप लगता है ॥२७॥

कृपणस्य च यत्पाप यच्च वन्ध्यातिथेरपि ।
अमावास्याऽष्टमी षष्ठी कृष्णशुक्लचतुर्दशी ॥२८
तासु यद्गमनात्पाप यद्विप्रो व्रजति स्त्रियम् ।
रजस्वला तथा पश्चाच्छ्राद्ध कृत्वा स्त्रिय व्रजेत् ॥२९
सर्वस्वस्नातभोज्याना यत्पाप मलभोजने ।
मित्रभार्या गच्छता च यत्पाप पिशुनस्य च ॥३०
दम्भमायानुरक्ते च यत्पाप मधुघातिन. ।
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यत्पाप तदयच्छत. ॥३१
यच्च कन्यानृते पाप यच्च गोश्वतरानृते ।
स्त्रीबालहन्तुर्यत्पाप यच्च मिथ्याभिभाषिण' ॥३२
देववेदद्विजनृपपुनमित्रसतीस्त्रियः ।
यच्च निन्दयता पाप गुरुमिथ्यापचारतः ॥३३
अग्नित्यागिषु यत्पापमग्निदायिषु यद्वने ।
गृहेष्टया पातके यच्च यद्गोघ्ने यद्द्विजाधमे ॥३४
यत्पाप परिवित्ते च यत्पाप परिवेदिनः ।
तयोदातृग्रहीत्रोश्च यत्पाप भ्रूणघातिनः ॥३५

कृपण को जो पाप होता है और वन्ध्या तिथि को जो पाप लगता है- अमावस्या, अष्टमी, षष्ठी, दोनों पक्षों की चतुर्दशी के दिन स्त्री का

गमन करने से विप्र को जो पाप होता है, रजस्वला पत्नी तथा श्राद्ध करने के पश्चात् गमन करने से जो पाप होता है, सर्वस्व स्नान भोज्यों के एवं मल के भोजन में जो पाप लगता है ॥२८-२९॥ मित्र की भार्या के साथ अभिगमन से, पिशुनता से, दम्भ तथा माया में अनुरक्तता से और मधुघाती को जो पाप लगता है, ब्राह्मण को कुछ वचन देकर प्रदान करने से जो पाप हुआ करता है ॥३०-३१॥ जो कन्यानृत में एवं गोश्वतरानृत में पाप होता है, स्त्री एवं बालक को हनन करने वाले को तथा मिथ्या भाषण करने वाले को जो पाप होता है ॥३२॥ देवता, द्विज, वेद, नृप, पुत्र, मित्र और सती स्त्री की निन्दा करने वाले को एवं गुरुजन के साथ मिथ्या अपचार से जो पाप होता है ॥३३॥ अग्नि का त्याग करने वालों को तथा वन में अग्नि लगाने वालों को, गृह की ईंटों के पातक में, गौ के हनन करने में और अधम द्विज में जो पाप होता है ॥३४॥ परवित्ति करने वाले को तथा परिवेदी को एवं इन दोनों के दाता और गृहीता को तथा भ्रूणघाती को जो पाप होता है ॥३५॥

किं चात्र बहुभिः प्रोक्तैः शपथैस्तव राक्षस ।
श्रूयतां शपथं भीमं दुर्वाच्यमपि कथ्यते ॥३६
स्वकन्याजीविनः पापं गूढसत्येन साक्षिणः ।
अयाज्ययाजके षण्ढे यत्पापं श्वपचेऽधमे ॥३७
प्रव्रज्यावसिते यच्च ब्रह्मचारिणि कामुके ।
एतैस्तु पापैर्लिप्येऽहं यदि नैष्यामि तेऽन्तिकम् ॥३८
मातङ्गवचनं श्रुत्वा विस्मितो ब्रह्मराक्षसः ।
प्राह गच्छस्व सत्येन समयं चैव पालय ॥३९
इत्युक्तः कुणपाशेन श्वपाकः कुसुमानि तु ।
समादायागमच्चैव विष्णोः स निलयं गतः ॥४०
तानि प्रादाद्‌ब्राह्मणाय सोऽपि प्रक्षाल्य चाम्भसा ।
विष्णुमभ्यर्च्य निलयं जगाम स तपोधनाः ॥४१
सोऽपि मातङ्गदायादः सोपवासस्तु तां निशाम् ।
गायन्हि बाह्यभूमिष्ठः प्रजागरमुपाकरोत् ॥४२

हे राक्षस ! यहाँ पर बहुत अधिक शपथों के करने से क्या लाभ है मैं आपसे यही निवेदन करता हूं कि वही मुझे लगेगा । अब आप सबसे भीषण और न कहने के योग्य भी शपथ मैं कहता हूँ ॥३६॥ अपनी कन्या के द्वारा जीविका को चलाने वाले को तथा सचाई को गूढ रखकर गवाही देन वाले को, जो यजन न करान के योग्य हो उससे यजन कराने वाले को, षण्ढ को, श्रवण करन मे भी अधम को जो पाप होता है प्रव्रज्या (सन्यास) को समाप्त करने वाले को, मामुब ब्रह्मचारी को जो भी पाप हुआ करते हैं इन सभी उपर्युक्त पापो से मैं लिप्त हो जाऊँ यदि कल प्रात काल मे मैं आपके समीप म उपस्थित न होऊँ ॥३७-३८॥ श्री व्यास दव जी न कहा—मातङ्ग के इन वचनो का श्रवण करके वह ब्रह्म राक्षस बहुत अधिक विस्मय मे भर गया था और कहा—चले जाओ और अपने सत्य वचन का परिपालन करना ॥३९॥ कुण पाश के द्वारा इस तरह से कहा हुआ । वह श्वपाक कुसुमो को लाकर वहाँ से आ गया था तथा भगवान् विष्णु के आयतन मे चला गया था ॥४०॥ उन कुसुमों को ब्राह्मण के लिये दे दिया था और उसन भी उनको जल से प्रक्षालित किया था । वह तपोधन भगवान् विष्णु का अभ्यर्चन करके अपने घर को चला गया था ॥४१॥ वह मातङ्ग दायाद भी उस रात्रि मे उपवास वाला रहा था और बाहिर की भूमि मे स्थित होकर भगवान् के गुणगणो का गान करता हुआ रात्रि मे उसने जागरण किया था ॥४२॥

प्रभातायां तु शर्वर्यां स्नात्वा देव नमस्य च ।
सत्य स समय कर्तुं प्रतस्थे यत्र राक्षसः ॥४३

त व्रजन्त पथि नरः प्राह भद्र क्व गच्छसि ।
स तथाऽकथयत्सर्वन सोऽप्ये पुनरब्रवीत् ॥४४

धर्मार्थकाममोक्षाणा शरीर साधन यतः ।
महता तु प्रयत्नेन शरीर पालयेद्बुध ॥४५

जीवधर्मार्थसुख नरस्तथाऽऽप्नोति मोक्षगतिमग्र्याम् ।
जीवन्कीर्तिमुपैति च भवति मृतस्य का कथा लोके ॥४६

मातङ्गस्तद्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाचाथ हेतुमत् ।।४७
भद्र सत्यं पुरस्कृत्य गच्छामि शपथाः कृताः ।।४८
तं भूयः प्रत्युवाचाथ किमेवं मूढधीर्भवान् ।
किं न श्रुतं त्वया साधो मनुना यदुदीरितम् ।।४९

प्रातःकालीन रात्रि में स्नान करके देवेश्वर को प्रणाम किया था और इसके अनन्तर अपनी की हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिये वहां पर रवाना हो गया था जहां पर वह राक्षस विद्यमान था ।।४३।। मार्ग में गमन करते हुए उससे किसी मनुष्य ने कहा—हे भद्र ! कहां पर जा रहे हो ? उसने भी फिर उससे कहा था ।।४४।। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का साधन यह शरीर होता है इसीलिये महान् प्रयत्न से बुध पुरुष को अपने शरीर का पालन करना चाहिए ।।४५।। उस प्रकार से मानव जीव के धर्मार्थ सुख को प्राप्त करता है और अनन्य (उत्तम) मोक्ष की गति को भी पा जाता है । जीवित रहते हुए मनुष्य कीर्त्ति का लाभ पाता है । जो मृत हो जाता है उसकी लोक में क्या कथा है ? अर्थात् मरने पर तो फिर कुछ भी नहीं कर पाता है ।।४६।। मातङ्ग ने उसके वचन को सुनकर हेतु से युक्त उत्तर दिया था ।।४७।। मातङ्ग ने कहा—हे भद्र ! मैं तो सत्य को ही सबसे आगे रखकर वहां जा रहा हूँ क्योंकि मैंने शपथ ग्रहण की हैं ।।४८।। श्रीव्यास देवजी ने कहा—उसने पुनः उससे कहा था कि आप इस प्रकार से मूढ़ बुद्धि वाले क्यों हो रहे हैं ? हे साधो ! क्या आपने यह नहीं सुना है जो महामुनि मनु ने कहा था ।।४९।।

गोस्त्रीद्विजानां परिरक्षणार्थं,
विवाहकाले सुरतप्रसङ्गे ।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे,
पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ।।५०
धर्मवाक्यं न च स्त्रीषु न विवाहे तथा रिपौ ।
वञ्चने चार्थहानौ च स्वनाशेऽनृतके तथा ।।
एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्गः प्रत्युवाच ह ।।५१

मैव वदस्व भद्र ते सत्य लोकेषु पूज्यते ।
सत्येनावाप्यते सौख्य यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ॥५२
सत्येनार्क. प्रतपति सत्येनाऽऽपो रसात्मिका. ।
ज्वलत्यग्निश्च सत्येन वाति सत्येन मारुतः ॥५३
धर्मार्थकामसम्प्राप्तिर्मोक्षप्राप्तिश्च दुर्लभा ।
सत्येन जायते पु सा तस्मात्सत्य न सत्यजेत् ॥५४
सत्य ब्रह्म पर लोके सत्य यज्ञेषु चोत्तमम् ।
सत्य स्वर्गसमायात तस्मात्सत्य न सत्यजेत् ॥५५

गौ-स्त्री द्विज इनके परिरक्षण के लिये-विवाह के समय मे-सुरत प्रसङ्ग मे प्राणो के विनाश मे और सब धन के अपहरण मे इन पाच स्थानों पर मिथ्या भाषण करना पातक नही हुआ करता है ऐसा कहा गया है॥५०॥ स्त्रियो के विषय म विवाह मे-शत्रु के विषय मे-वञ्चन मे अर्थ की हानि होने पर और अपन नाश होने पर अनृत बोल दिया जाया करता है और पाप नही होता है। इस प्रकार के उसके वाक्य को सुनकर मातङ्ग ने प्रत्युत्तर दिया था ॥५१॥ मातङ्ग ने कहा—आप इस प्रकार से मत बोलो। आपका कल्याण होवे। सत्य ही लोको मे पूजा जाया करता है। इस जगती तल मे जो कुछ भी सौख्य है वह सत्य से ही प्राप्त किया जाता है ॥५२॥ सत्य से ही सूर्य ताप देता है—सत्य स जल रसात्मक है—अग्नि सत्य से जला करती है और वायु भी सत्य से वहन करता है ॥५३॥ धर्म अर्थ-काम और मोक्ष की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है, वह भी पुरुषो को सत्य से ही प्राप्त हो जाती है। इस कारण से सत्य का त्याग कभी नही करना चाहिए ॥५४॥ सत्य ही लोक मे परब्रह्म है—यज्ञो मे सत्य उत्तम होता है, सत्य स्वर्ग समायात है अतएव सत्य का कभी भी त्याग नही करना चाहिए ॥५५॥

इत्युक्त्वा सोऽथ मातङ्गस्त प्रक्षिप्य नरोत्तमम् ।
जगाम तत्र यत्राऽऽस्ते प्राणिहा ब्रह्मराक्षस. ॥५६
तमागत समीक्ष्यासौ चाण्डाल ब्रह्मराक्षस. ।
विस्मयोत्फुल्लनयन. शिर कम्पं तमब्रवीत् ॥५७

साधु साधु महाभाग सत्यवाक्यानुपालक ।
न मातङ्गमहं मन्ये भवन्तं सत्यलक्षणम् ॥५८

कर्मणाऽनेन मन्ये त्वां ब्राह्मणं शुचिमव्ययम् ।
यत्किंचित्त्वां भद्रमुखं प्रवक्ष्ये धर्मसंश्रयम् ॥
किं तत्र भवता रात्रौ कृतं विष्णुगृहे वद ॥५९

तमभ्युवाच मातङ्गः शृणु विष्णुगृहे मया ।
यत्कृतं रजनीभागे यथातथ्यं वदामि ते ॥६०
विष्णोर्देवकुलस्याधः स्थितेनाऽऽनम्रमूर्तिना ।
प्रजागरः कृतो रात्रौ गायता विष्णुगीतिकाम् ॥६१

तं ब्रह्मराक्षसः प्राह कियन्तं कालमुच्यताम् ।
प्रजागारो विष्णुगृहे कृतं (तो) भक्तिमता वद ॥६२
तमभ्युवाच प्रहसन्विंशत्यब्दानि राक्षस ।
एकादश्यां मासि मासि कृतस्तत्र प्रजागरः ॥
मातङ्गवचनं श्रुत्वा प्रोवाच ब्रह्मराक्षसः ॥६३

श्रीव्यासदेवजी ने कहा- —इसके अनन्तर उस मातङ्ग ने उस नरोत्तम को प्रक्षिप्त करके वह वहाँ पर ही चला गया था जहां पर वह प्राणियों के हनन करने वाला ब्रह्मराक्षस विद्यमान था ॥५६॥ वह ब्रह्मराक्षस उस आये हुए चाण्डाल को देखकर विस्मय से उत्फुल्ल लोचनों वाला हो गया था और अपना शिर कंपाते हुए उससे बोला ॥५७॥ ब्रह्म राक्षस ने कहा—हे महाभाग ! बहुत अच्छा बहुत उत्तम है । आप तो पूर्णतया सत्य वचनों के अनुपालन करने वाले हैं । मैं सत्य के लक्षण से युक्त आपको मातङ्ग नहीं मानता हूँ ॥५८॥ आपके इस कर्म से तो मैं आपको परम पवित्र और अव्यय ब्राह्मण ही समझता हूँ । मैं आप भद्र मुख से जो कुछ धर्म का संश्रय कहूँगा । आपने वहां पर रात्रि में भगवान् विष्णु के मन्दिर में क्या किया था ?—यही मुझको बतला दो ॥५९॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—मातङ्ग ने उस ब्रह्मराक्षस से कहा था· —सुनिये, मैंने रात्रि के भाग में जो भी कुछ किया था उसको ठीक २ आपको

बतलाता हूँ ॥६०॥ देव कुल के भगवान् विष्णु के नीचे भाग में विनम्र होकर स्थित हुए मैंने विष्णु देव के गुणों के गीतों का गान करते हुए रात्रि में जागरण किया था ॥६१॥ उस ब्रह्मराक्षस ने उससे कहा—कितने समय तक किया था—उसे बतलाओ। मतिमान् आपने जागरण विष्णु के मन्दिर में किया था यह बोलो ॥६२॥ उस मातङ्ग ने हँसते हुए कहा था—हे राक्षस ! बीस वर्ष हो गये हैं। प्रत्येक मास में एकादशी के दिन वहाँ पर प्रजागरण किया करता हूँ। मातङ्ग के इस वचन का श्रवण कर वह ब्रह्मराक्षस बोला ॥६३॥

यदद्य त्वां प्रवक्ष्यामि तद्भवान्वक्तुमर्हति ।
एकरात्रिकृतं साधो मम देहि प्रजागरम् ॥६४
एवं त्वां मोक्षयिष्यामि मोक्षयिष्यामि नान्यथा ।
त्रिः सत्येन महाभाग इत्युक्त्वा विरराम ह ॥६५
मातङ्गस्तमुवाचाथ मयाऽऽत्मा ते निशाचर ।
निवेदितः किमुक्तेन खादस्व स्वेच्छयाऽपि माम् ॥६६
तमाह राक्षसो भूयो यामद्वयप्रजागरम् ।
संगीतं मे प्रयच्छस्व कृपां कर्तुं त्वमर्हसि ॥६७
मातङ्गो राक्षसं प्राह किमसम्बद्धमुच्यते ।
खादस्व स्वेच्छया मां त्वं न प्रदास्ये प्रजागरम् ॥
मातङ्गवचनं श्रुत्वा प्राह तं ब्रह्मराक्षसः ॥६८
को हि दुष्टमतिर्मन्दो भवन्तं द्रष्टुमुत्सहेत् ।
धर्षयितुं पीडयितुं रक्षितं धर्मकर्मणा ॥६९
दीनस्य पापग्रस्तस्य विपर्ययैर्मोहितस्य च ।
नरकार्तस्य मूढस्य साधवः स्युर्दयान्विताः ॥७०
तन्मम त्वं महाभाग कृपां कृत्वा प्रजागरम् ।
यामस्यैकस्य मे देहि गच्छ वा निलयं स्वकम् ॥७१

ब्रह्मराक्षस ने कहा—मैं आज जो भी कुछ कहूँगा वह क्या आप बोलने के योग्य होते हैं ? हे साधो ! केवल एक रात्रि का किया हुआ जागरण आप मुझे दे दीजिए ॥६४॥ इसी प्रकार से मैं आपको मुक्त कर

दूंगा अन्यथा मैं आपको मारे बिना नहीं छोड़ूंगा । हे महाभाग ! तीन. वार सत्यता से स्वीकार करो–इतना कह कर वह फिर चुप हो गया था ॥६५॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—मातङ्ग ने कहा था—हे निशाचर ! मैंने अपना शरीर आपकी सेवा में निवेदित कर दिया है । इसके कथन से क्या लाभ है । स्वेच्छा से आप मुझको खा लीजिए ॥६६॥ उस राक्षस ने पुनः उस मातङ्ग से कहा था–केवल दो ही प्रहर का जागरण और संगीत मुझको दे दो । आप मुझ पर कृपा करने के योग्य होते हैं ॥६७॥ मातङ्ग ने राक्षस से कहा—यह क्या असंबद्ध आप कहते हैं ? आप स्वेच्छा से मुझे खा लीजिए । मैं आपको अपना प्रजागरण नहीं दूंगा । मातङ्ग के इस वचन का श्रवण कर वह ब्रह्मराक्षस उससे बोला था । ब्रह्मराक्षस ने कहा––कौन दुष्ट बुद्धि वाला–मन्द है जो आपको देखने की हिम्मत कर सके क्योंकि आप तो धर्म के कर्म द्वारा स्वयं सुरक्षित हैं । आपका धर्षण और पीड़न करने की किसी में भी हिम्मत तक नहीं है ॥६९॥ जो दीन है-आर्त्त है-पापों से ग्रस्त है-विषयों से मोहित है और नारकीय यातनाओं से दुःखित हैं तथा मूढ़ है उन पर साधु लोग दया युक्त हुआ करते हैं ॥७०॥ हे महाभाग ! आप मुझ पर कृपा करके एक प्रहर का जागरण दे दीजिए अथवा अपने घर पर चले जाइये ॥७१॥

तं पुनः प्राह चाण्डालो न यास्यामि निजं गृहम् ।
न चापि तव दास्यामि कथं चिद्यामजागरम् ॥
तं प्रपस्याथ चाण्डालं प्रोवाच ब्रह्मराक्षसः ॥७२

रात्र्यवसाने या गीता गीतिका कौतुकाश्रया ।
तस्याः फलं प्रयच्छस्व त्राहि पापात्समुद्धर ॥७३
एवमुच्चारिते तेन यातङ्गस्तमुवाच ह ॥७४

किं पूर्वं भवता कर्म विकृतं कृतमञ्जसा ।
येन त्वं दोषजातेन संभूतो ब्रह्मराक्षसः ॥७५

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्गं ब्रह्मराक्षसः ।
प्रोवाच दुःखसंतप्तः संस्मृत्य स्वकृतं कृतम् ॥७६

महा मुनीन्द्र व्यासदेव जी ने कहा—वह चाण्डाल मातङ्ग उस ब्रह्म राक्षस से पुन बोला—मैं अपने घर पर भी नहीं जाऊँगा और मैं अपना एक प्रहर का भी प्रजागरण किसी भी तरह से आपको नहीं दूँगा। इसके पश्चात् वह ब्रह्म राक्षस हँसकर उस चाण्डाल से बोला ॥७२॥ ब्रह्म राक्षस ने कहा—रात्रि के अवसान में जो गीता और कौतुक के आश्रय वाली गीतिका है जिनका गान तुमने किया था उसका ही पुण्य-फल मुझको दे दो और मेरे पाप से मेरी रक्षा करो तथा मेरा उद्धार कर दो ॥७३॥ श्री व्यासदेव जी ने कहा—उस ब्रह्म राक्षस के द्वारा इस प्रकार से उच्चारण करने पर मातङ्ग ने उससे कहा ॥७४॥ मातङ्ग बोला—आपने पहिले जन्म में अचानक ऐसा विकृतरूपा कर्म किया है जिस दोष-जात के कारण से तुम ब्रह्म राक्षस होकर सम्भूत हुए हो ॥७५॥ व्यास-देव जी ने कहा—उसके इस वाक्य को सुन कर वह ब्रह्म राक्षस उस मातङ्ग से बोला था और अपने किये हुए कर्म का स्मरण करके वह दुख से बहुत अधिक सतप्त हो गया था ॥७६॥

श्रूयतां योऽहमासं वै पूर्वं यच्च मया कृतम् ।
यस्मिन्कृते पापयोनिं गतवानस्मि राक्षसीम् ॥७७

सोमशर्मं इति ख्यातः पूर्वमासमहं द्विज. ।
पुत्रोऽध्ययनशीलस्य देवशर्मस्य यज्वन. ॥७८

कस्यचिद्यजमानस्य सूत्रमन्त्रबहिष्कृत ।
रूपस्य कर्मसक्तेन यूपकर्ममनुतिष्ठितः ॥७९

आग्नीध्र चाकरोद्यज्ञे लोभमोहप्रपीडितः ।
तस्मिन्परिसमाप्ते तु मौर्यहिम्भमनुष्ठित. ॥८०

—— ——— ———

। ॥८१

सपूर्ण दशरात्रे तु न समाप्ते तथा कृतौ ।
विरूपाक्षस्य दीयन्त्यामाहुत्या राक्ष न क्षणे ॥८२

मृतोऽहं तेन दोषेण सभूतो ब्रह्मराक्षस ।
मूर्खेण मन्त्रहीनेन सूत्रस्वरविवर्जितम् ॥८३

अजानता यज्ञविद्यां यदिष्टं याजितं च यत् ।
तेन कर्मविपाकेन संभूतो ब्रह्मराक्षसः ॥८४

तन्मां पापमहाम्भोधौ निमग्नं त्वं समुद्धर ।
प्रजागरे गीतिकैकां पश्चिमां दातुमर्हसि ॥८५

ब्रह्मराक्षस ने कहा—हे मातङ्ग ! तुम अब सुनो मैं जो पहिले था और जो मैंने किया था जिसके करने पर मैं इस राक्षसी पाप योनि को प्राप्त हो गया हूँ ॥७७॥ पहिले जन्म में मैं सोम शर्मा नाम वाला विप्र था । मेरे पिता अध्ययन शील और यजन करने वाले देव शर्मा थे जिनका मैं पुत्र था ॥७८॥ किसी यजमान नृप के कर्म में सक्त ने सूत्र मन्त्र से वहिष्कृत भूपकर्म सुनिश्चित किया था ॥७९॥ लोभ के मोह में प्रपीड़ित होकर यज्ञ में आग्नीध्रु किया था । उसके परि समाप्त होने पर मूर्खता से दम्भ अनुष्ठित किया था ॥८०॥ मैंने वारह दिन का महा क्रतु यजन करने का आरम्भ किया था । उसके प्रवृत्त मान होने पर मुझे कुक्षि शूल हो गया था ॥८१॥ दश रात्रियों के संमाप्त होने पर वह क्रतु पूर्ण हो गया था । राक्षस गण में विरूपाक्ष की दी हुई आहुति में मैं उसी दोष से मृत हो गया था और ब्रह्म राक्षस होकर मैंने जन्म ग्रहण किया है । मैं तो मूर्ख था और मन्त्रों से भी हीन था अर्थात् मन्त्रों का ज्ञान बिल्कुल नहीं था जो भी मैं करता कराता था वह सूत्र एवं स्वर से रहित ही होता था ॥८२-८३॥ यज्ञादि कराने की विद्या को न जानते हुए मैंने जो भी यजन किया था या यजन कराया था उसी कर्मों के विपाक से मैं ब्रह्मराक्षस होकर उत्पन्न हुआ हूँ ॥८४॥ सो इस पापों के महासागर में निमग्न मुझको आप अद्धृत कीजिए । तुम अपने प्रजागर की एक आखिरी गीतिका को प्रदान करने योग्य होते हैं ॥८५॥

तमुवाचाथ चाण्डालो यदि प्राणिवधाद्भवान् ।
निवृत्तिं कुरुते दद्यां ततः पश्चिमगीतिकाम् ॥८६

बाढमित्यवदत्सोऽपि मातङ्गोऽपि ददौ तदा ।
गीतिकाफलमामन्त्र्यमुहूर्तार्धप्रजागरम् ॥८७

तस्मिन्गीतिफले दत्ते मातङ्गं ब्रह्मराक्षस. ।
प्रणम्य प्रययौ हृष्टस्तीर्थवर्यं पृथूदकम् ॥८८
तत्रानशनसंकल्प कृत्वा प्राणाञ्जहौ द्विजाः ।
राक्षसत्वाद्विनिर्मुक्तो गीतिकाफलबृंहित. ॥८९
पृथूदकप्रभावाच्च ब्रह्मलोकं च दुर्लभम् ।
दश वर्षसहस्राणि निरातङ्कोऽवसत्तत ॥९०
तस्यान्ते ब्राह्मणो जातो बभूव स्मृतिमान्वशी ।
तस्याहं चरित भूय. कथयिष्यामि भो द्विजाः ॥९१

श्रीव्यासदेवजी ने कहा—इसके उपरान्त वह चाण्डाल उस ब्रह्म-राक्षस से बोला यदि आप प्राणियों के वध से अपनी निवृत्ति करते हैं तो मैं अपनी पश्चिम गीतिका को दे दूँगा ॥८६॥ उसने भी 'बहुत अच्छा' अर्थात् ऐसा ही करूँगा कह दिया था और उस समय में मातङ्ग ने भी दे दी थी। गीतिका के फल को आमन्त्रित करके आधे मुहूर्त का प्रजागरण दे दिया था ॥८७॥ उस गीतिका के फल के देने पर उस ब्रह्मराक्षस ने मातङ्ग को प्रणाम किया था और परम हर्षित होकर पृथूदक तीर्थ वर्य को वहाँ से चला गया था ॥८८॥ हे द्विजगणो! वहाँ पर अनशन का संकल्प करके उसने प्राणों का त्याग कर दिया था उस गीतिका के पुण्य फल से बृंहित होकर वह राक्षसत्व से निर्मुक्त हो गया था ॥८९॥ पृथूदक तीर्थ के प्रभाव से उसने दश सहस्र वर्ष पर्यन्त निरातङ्क होकर परम दुर्लभ ब्रह्म लोक में निवास किया था ॥९०॥ उसके अन्त में वह ब्राह्मण होकर समुत्पन्न हुआ था और वशी तथा स्मृतिमान् हो गया था। हे द्विजो! मैं फिर उसके चरित को आपके समक्ष में वर्णन करूँगा ॥९१॥

मातङ्गस्य कथाशेष शृणुध्व गदतो मम ।
राक्षसे तु गते धीमान्गृहमेत्य यतात्मवान् ॥९२
तद्विप्रचरितं स्मृत्वा निर्विण्ण. शुचिरप्यसौ ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य ददौ भूम्या. प्रदक्षिणाम् ॥९३
कोकामुखात्समारभ्य यावद्दृष्टं स्कन्ददर्शनम् ।
दृष्ट्वा स्कन्द ययौ धाराचक्रे चापि प्रदक्षिणम् ॥९४

ततोऽद्रिवरमागम्य विन्ध्यमुच्चशिलोच्चयम् ।
पापप्रमोचनं तीर्थमाससाद स तु द्विजाः ॥९५

स्नानं पापहरं चक्रे स तु चाण्डालवंशजः ।
विमुक्तपापः सस्मार पूर्वजातीरनेकशः ॥९६

स पूर्वजन्मन्यभवद्भिक्षुः संयतवाङ्मनाः ।
यतकायश्च मतिमान्वेदवेदाङ्गपारगः ॥९७

एकदा गोषु नगराद्ध्रियमाणासु तस्करैः ।
भिक्षाऽवधूता रजसा मुक्ता तेनाथ भिक्षुणा ॥९८

अब तो मातङ्ग की जो शेष कथा है उसको मैं बतलाता हूं। आप लोग कहने वाले मुझसे उसका श्रवण कर लो। उस राक्षस के वहां से चले जाने पर वह परम धीमान् मातङ्ग जो यत आत्मा वाला था अपने गृह में आ गया था ॥९२॥ यह परम पवित्र भी था किन्तु उस विप्र के चरित का स्मरण करके ब्रह्म को बड़ा निर्वेद हो गया था। उसने अपने पुत्रों के ऊपर अपनी भार्या का भार सोंप दिया था और फिर समग्र पृथिवी की प्रदक्षिणा दी थी ॥९३॥ कोका मुख से आरम्भ करके जहां तक स्कन्द का दर्शन है वह गया था। स्कन्द प्रभु के दर्शन करके धारा चक्र में भी प्रदक्षिणा की थी ॥९४॥ इसके अनन्तर गिरियों में श्रेष्ठ-उच्च शिलाओं के उच्चय वाले विन्ध्य पर्वत पर पहुँच कर वह फिर हे द्विजो ! पाप प्रमोचन तीर्थ पर प्राप्त हो गया था ॥९५॥ वह चाण्डाल वंश में जन्म लेने वाला था और उसने वहां पर पापों के हरण करने वाला स्नान किया था। जब समस्त पापों से विमुक्त हो गया तो अपनी अनेक पूर्व की जातियों का स्मरण किया था ॥९६॥ वह अपने पूर्व में होने वाले जन्म में संयत वाणी और मन वाला भिक्षु हुआ था जो मत काया वाला-मतिमान् और वेदों तथा षट् वेदों के अङ्ग शास्त्रों का पार गामी विद्वान् था ॥९७॥ एक समय की बात है जब नगर से तस्करों के द्वारा गौओं का हरण किये जाने पर रज से भिक्षा अवधूत हो गयी थी और उस भिक्षु ने उन गायों को मुक्त किया था ॥९८॥

स तेनाधर्मदोषेण चाण्डाली योनिमागत ।
पापप्रमोचने स्नात स मृतो नर्मदातटे ॥९९
मूर्खोऽभूद्ब्राह्मणवरो वाराणस्या च भो द्विजा ।
तत्रास्य वसतोऽब्दैस्तु त्रिशद्भि सिद्धपूरुष ॥१००
विरूपरूपी बभ्राम योगमायाबलान्वित ।
त दृष्ट्वा सोपहासार्थमभिवाद्याभ्युवाच ह ॥१०१
कुशल सिद्धपुरुष कुतस्त्वागम्यते त्वया ॥१०२
एव सभाषितस्तेन ज्ञातोऽहमिति चिन्त्य तु ।
प्रत्युवाचाथ वन्द्यस्त स्वर्गलोकादुपागत ॥१०३
त सिद्ध प्राह मूर्खोऽसौ कि त्व वेत्सि त्रिविष्टपे ।
नारायणोरुप्रभवामुर्वशीमप्सरोवराम् ॥१०४
सिद्धस्तमाह ता वेद्मि शक्रचामरधारिणीम् ।
स्वर्गस्याऽऽभरण मुख्यमुर्वशी साधुसभवाम् ॥१०५

वह उस अधर्म के दोष से चाण्डाल की योनि को प्राप्त होगया था। जब ब्रह्म ने पाप प्रमोचन नामक तीर्थ मे स्नान किया था और नर्मदा के तट पर मृत होगया था ॥९९॥ हे द्विजो ! वह फिर ब्राह्मणो मे श्रेष्ठ किन्तु मूर्ख वाराणसी में हुआ था। वहाँ पर निवास करते हुए तीस वर्षों म विरूप रूपी एक सिद्ध पुरुष योग माया के बल से अन्वित होता हुआ भ्रमण किया करता था। उसको देखकर उपहास के लिये प्रणाम करके उससे कहा था और कुशल उस सिद्ध पुरुष से पूछते हुए आप कहाँ से आरहे है ॥१००-१०२॥ श्री व्यासदेवजी ने कहा—उसके द्वारा इसलिए सभाषण किये गये उसने यह सोच कर कि मैं जान लिया गया हूँ। इसके अनन्तर उस वन्दना करने के योग्य ने उससे कहा था। मैं स्वर्ग लोक से उपागत हुआ हूँ ॥१०३॥ वह मूर्ख उस सिद्ध से बोला था कि क्या आप स्वर्ग मे भगवान् नारायण के गुरु से समुत्पन्न हुई श्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी को जानते है ? ॥१०४॥ सिद्ध ने उससे कहा था कि चक्र और चामर धारिणी उस उर्वशी को मैं जानता हूँ। वह

उर्वशी तो साधु से सम्भव होने वाली है और उस स्वर्ग लोक की मुख्य भूषण स्वरूपा है ॥१०५॥

विप्रः सिद्धमुवाचाथ ऋजुमार्गविवर्जितः ।
तन्मित्र मत्कृते वार्तामुर्वश्या भवताऽऽदरात् ॥१०६
कथनीया यच्च सा ते ब्रूयादाख्यास्यते भवान् ।
बाढमित्यब्रवीत्सिद्धः सोऽपि विप्रो मुदाऽन्वितः ॥१०७
बभूव सिद्धोऽपि ययौ मेरुपृष्ठं सुरालयम् ।
समेत्य चोर्वशीं प्राह यदुक्तोऽसौ द्विजेन तु ॥१०८
सा प्राह तं सिद्धवरं नाहं काशिपतिं द्विजम् ।
जानामि सत्यमुक्तं ते न चेतसि मम स्थितम् ॥१०९
इत्युक्तः प्रययौ सोऽपि कालेन बहुना पुनः ।
वाराणसीं ययौ सिद्धो दृष्टो मूर्खेण वै पुनः ॥११०
दृष्टः पृष्टः किल भूयः किमाहोरुभवा तव ।
सिद्धोऽब्रवीन्न जानामि मामुवाचोर्वशी स्वयम् ॥१११
सिद्धवाक्यं ततः श्रुत्वा स्मितभिन्नौष्ठसंपुटः ।
पुनः प्राह कथं वेत्सीत्येवं वाच्या त्वयोर्वशी ॥११२

सरल सीधे मार्ग से रहित वह विप्र इसके अनन्तर उस सिद्ध से बोला था कि हे मित्र ! आपको मेरे लिये आदर से उस उर्वशी से कुछ वार्त्ता कह देनी चाहिए । और जो वह बोले उसे आप मुझ को कह देंगे । उस सिद्ध ने कहा बहुत अच्छा ऐसा ही करूँगा और वह विप्र भी आनन्द से संयुत होगया था ॥१०६-१०७॥ वह सिद्ध भी मेरू पृष्ठ सुरालय को चला गया था । वहाँ पर उर्वशी के समीप में पहुंच कर उसने वह कह दिया था । जो कुछ उस द्विज के द्वारा उससे कहा गया था ॥१०८। वह उर्वशी उस श्रेष्ठ सिद्ध से बोली कि मैं काशिपति द्विज को नहीं जानती हूँ । आपने तो सत्य कहा है किन्तु मेरे चित्त में कुछ भी स्थित नहीं है ॥१०९॥ इस रीति से कहे गये वह सिद्ध पुरुष पुनः बहुत काल के पश्चात् वाराणसी पुरी में समागत हुआ था और फिर उस मूर्ख ने सिद्ध को देखा था ॥११०॥ उस सिद्ध को जब

उस मूर्ख द्विज ने देखा था तो उसी समय मे उससे फिर पूछा था कि उस नारायण के ऊरुओ से समुत्पन्न हुई उर्वशी ने आपको क्या उत्तर दिया था। उस सिद्ध ने कहा था कि उर्वशी ने स्वय मुझ से यही कह दिया था कि मैं उस विपु को नही जानती हूँ ॥१११॥ इसके उपरान्त सिद्ध के कहे हुए वाक्य को सुनकर स्मित (धीमी हँसी) से समित ओष्ठो वाले उस सिद्ध ने पुन. उस सिद्ध से कहा था कि आप को उस उर्वशी से यह कहना चाहिए कि वह किस प्रकार से मुझको जानेगी ॥११२॥

बाढमेव करिष्यामीत्युक्त्वा सिद्धो दिव गतः।
ददर्श शक्रभवनान्निष्क्रामन्तीमथोर्वशीम् ॥११३
प्रोवाच ता सिद्धवर सा च त सिद्धमब्रवीत्।
नियम कञ्चिदपि हि करोतु द्विजसत्तमः ॥११४
येनाह कर्मणा सिद्ध त जानामि न चान्यथा।
तदुर्वशीवचोऽभ्येत्य तस्मै मूर्खद्विजाय तु ॥११५
कथयामास सिद्धस्तु सोऽपोम नियम जगौ।
तवाग्रे सिद्धपुरुष नियमोऽय कृतो मया ॥११६
न भोक्ष्येऽद्यप्रभृति वै शकट सत्यमीरितम्।
इत्युक्त प्रययौ सिद्ध. स्वर्गे दृष्ट्वोर्वशीमथ ॥११७
प्राहासौ शकट भोक्ष्ये नाद्यप्रभृति कर्हिचित्।
त सिद्धमुर्वशी प्राह ज्ञातोऽसौ साप्रत मया ॥११८
नियमग्रहणादेव मूर्खो मा(ऽय)मुपहासक.।
इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्र वास नारायणात्मजा ॥११९

अच्छा ऐसा ही करूँगा—यह कह कर वह सिद्ध स्वर्ग लोक को चला गया था और वहाँ पर उस उर्वशी को इन्द्र देव के भवन से निष्क्रमण करती हुई को उसने देखा था ॥११३॥ उस श्रेष्ठ सिद्ध ने उससे कहा था और उर्वशी ने उस सिद्ध को यही उत्तर मे कहा था कि वह श्रेष्ठ द्विज किसी भी नियम का पालन करे जिस कर्म के द्वारा हे सिद्ध ! मैं उसको जान सकूँ अन्यथा बिना नियम का पालन किये

जाने पर मैं नहीं जाना करती हूँ। उर्वशी के द्वारा कहे हुए उत्तर-वचन को सिद्ध ने आकर उस मूर्ख द्विज से कह दिया था ॥११४-११५॥ वह मूर्ख भी उसी नियम का गान करने लगा था और उसने कहा था कि हे सिद्ध पुरुष तुम्हारे ही आगे यह नियम मैंने पूर्ण तया कर लिया है ॥११६॥ आज से लेकर मैं शकट का उपभोग नहीं करूँगा यह मैंने सर्वथा सत्य कह दिया है। इस प्रकार से उस मूर्ख द्विज के द्वारा कहे गये वह सिद्ध पुरुष पुनः स्वर्ग लोक में चले गये थे और इसके अनन्तर स्वर्ग में उस उर्वशी को देखा था ॥११७॥ इस सिद्ध ने कहा कि उसने यह कहा है कि आज से लेकर मैं शकट का कभी भी उपभोग नहीं करूँगा। तब तो उर्वशी ने उस सिद्ध पुरुष से कहा था कि अब मैंने उसको जान लिया है ॥११८॥ यह मूर्ख केवल एक नियम के ग्रहण करने ही से मेरा उपहास करने वाला होगया है। यह कह कर वह नारायण की आत्मजा शीघ्र ही अपने आवास स्थान को चली गयी थी ॥११९॥

सिद्धोऽपि विचचारासौ कामचारी महीतलम् ।
उर्वश्यपि वरारोहा गत्वा वाराणसीं पुरीम् ॥१२०

मत्स्योदरीजले स्नानं चक्रे दिव्यवपुर्धरा ।
अथासावपि मूर्खस्तु नदीं मत्स्योदरीं मुने ॥१२१
जगामाथ ददर्शासौ स्नायमानामथोर्वशीम् ।
तां दृष्ट्वा ववृधेऽथास्य मन्मथः क्षोभकृद्दृढम् ॥१२२
चकार मूर्खश्चेष्टाश्च तं विवेदोर्वशी स्वयम् ।
तं मूर्खं सिद्धगदितं ज्ञात्वा सस्मितमाह तम् ॥१२३
किमिच्छसि महाभाग मत्तः शीघ्रमिहोच्यताम् ।
करिष्यामि वचस्तुभ्यं त्वं विश्रब्धं करिष्यसि ॥१२४
आत्मप्रदानेन मम प्राणान्रक्ष शुचिस्मिते ॥१२५

वह सिद्ध भी काम चारी था और स्वेच्छा से इस मही तल पर विचरण किया करता था। वह श्रेष्ठ आरोह वाली उर्वशी भी वाराणसी

पुरी मे चली गयी थी ॥१२०॥ वहाँ पर मत्स्योदरी के जल मे स्नान किया था और परम दिव्य शरीर के धारण करने वाली होगयी थी। हे मुने ! इसके पश्चात् वह मूर्ख द्विज भी उस मत्स्योदरी नदी पर पहुच गया। वहा पर जाकर उसने स्नान की हुई या स्नान करती हुई उर्वशी को देख लिया था। उसको देखकर अधिक दृढ क्षोभ करने वाला काम देव इसका बढ गया था ॥१२१ १२२॥ उस मूर्ख ने बहुत सी चेष्टाएँ की थी और उर्वशी उसको स्वय ही जान गयी थी। सिद्ध पुरुष के द्वारा बतलाये हुए उस महा मूर्ख द्विज को जान कर उर्वशी ने मन्द मुस्कराहट के साथ उस द्विज से कहा था ॥१२३॥ उर्वशी बोली—हे महा भाग ! आप मुझ से क्या अभिलाषाएँ रखते हैं। यह मुझ को शीघ्र ही बतलाइये। मैं तेरे लिये वही करूँगी और तू भी विश्वस्तता के साथ करेगा ॥१२४॥ मूर्ख ब्राह्मण ने कहा—हे शुचि स्मित वाली ! अपनी आत्मा का प्रदान करके अर्थात् स्वय अपने आप को मुझे समर्पित करके इस समय मे मेरे प्राणो की रक्षा करो ॥१२५॥

त प्राहाथोर्वशी विप्र नियमस्याऽस्मि साम्प्रतम् ।
त्व तिष्ठस्व क्षणमय प्रतीक्षस्वाऽऽगम मम ॥१२६
स्थिताऽस्मीत्यब्रवीद्विप्र साऽपि स्वर्ग जगाम ह ।
मासमानेण साऽऽयाता ददर्श त कृश द्विजम् ॥१२७
स्थिय मास नदीतीरे निराहार सुराङ्गना ।
त दृष्ट्वा निश्चययुत भूत्वा वृद्धवपुस्तत ॥१२८
सा चकार नदीतीरे शकट शर्करावृतम् ।
घृतेन मधुना चैव नदी मत्स्योदरी गता ॥१२९
स्नात्वाऽथ भूमौ वसन्ती शकट च यथार्थत ।
त ब्राह्मण समाहूय वाक्यमाह सुलोचना ॥१३०
मया तीव्र व्रत विप्र चीर्ण सौभाग्यकारणात् ।
व्रतान्ते निष्कृति दत्ता प्रतिगृह्णीष्व भो द्विज ॥१३१
स प्राह किमिद लोके दीयते शर्करावृतम् ।
क्षुत्क्षामकण्ठ पृच्छामि साधु भद्रे समीरय ॥१३२

सा प्राह शकटो विप्र शर्करापिष्टसंयुतः ।
इमं त्वं समुपादाय प्राणं तर्पय मा चिरम्

श्रीव्यासदेवजी ने कहा—इसके अनन्तर उस विप्र से कहा था कि मैं इस समय में नियम में स्थित यहां पर स्थित रहिए और मेरे समागमन की प्रतिक्षा करिए ॥१२६॥ वह विप्र बोला था कि मैं यहीं पर स्थित हूं। और वह भी पुनः स्वर्ग लोक को चली गयी थी। एक मास के समय के बाद वह वहां पर समागत हुई थी और उसने उस अत्यन्त कृश द्विज को देखा था। वह एक मास तक बिना आहार किए हुए उस नदी के तट पर स्थित था और बद्ध शरीर वाले निश्चय से युक्त उसको देखा था ॥१२७-१२८॥ उस उर्वशी ने उस नदी के तीर पर एक शर्करा से आवृत्त शकर की रचना कर दी थी और वह शकर घृत तथा मधु से भी समावृत्त था। इसके उपरान्त वह मत्स्योदरी नदी में चली गयी थी ॥१२९॥ उस नदी में स्नान करके फिर भूमि में निवास करती हुई और यथार्थ रूप से शकर पर स्थित होकर उस मूर्ख ब्राह्मण को बुलाया था तथा उस सुलोचना ने उससे वाक्य कहा था ॥१३०॥ उर्वशी बोली—हे विप्र ! मैंने सौभाग्य प्राप्त करने के कारण से एक परम तीव्र व्रत को चीर्ण किया था। हे द्विज ! इस व्रत के अन्त में मैं कुछ निष्कृति दूंगी। उसे आप ग्रहण कीजिए ॥१३१॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—उस विप्र ने कहा था कि लोक में शर्करा से समावृत यह क्या दिया जाया करता है ? हे भद्रे ! क्षुधा से क्षाम कण्ठ वाला मैं आपसे यह पूछ रहा हूँ। आप मुझे यह बतलाइए ॥१३२॥ उस उर्वशी ने कहा था कि हे विप्र ! यह शकट शर्करा-किष्ट से समन्वित है। अब आप इसका ग्रहण करके अपने प्राणों की तृप्ति करो और इसमें विलम्ब मत करो ॥१३३॥

स तच्छ्रुत्वाऽथ संस्मृत्य क्षुधया पीडितोऽपि सन् ।
प्राह भद्रे न गृह्णामि नियमो हि कृतो मया ॥१३४
पुरतः सिद्धवर्गस्य न भोक्ष्ये शकटं त्विति ।
परिज्ञानार्थमुर्वश्या ददस्वान्यस्य कस्यचित् ॥१३५

साऽब्रवीन्नियमो भद्र कृतः काष्ठमये त्वया ।
नासौ काष्ठमयो भुङ्क्ष्व क्षुधया चातिपीडितः ॥१३६
स ब्राह्मण. प्रत्युवाच न मया तद्विशेषणम् ।
कृत भद्रेऽय नियम सामान्येनैव मे कृतः ॥१३७
स भूय' प्राह सा तन्वी न चेद्भोक्ष्यसि ब्राह्मण ।
गृह गृहीत्वा गच्छस्व कुटुम्ब तव भोक्ष्यति ॥१३८
स तामुवाच सुदति न तावद्यामि मन्दिरम् ।
इहाऽऽयाता वरारोहा त्रैलोक्येप्यधिका गुणै. ॥१३९
सा मया मदनार्तेन प्रार्थिताऽऽश्वासितस्तया ।
स्थीयता क्षणमित्येव स्थास्यामीति मयोदितम् ॥१४०

इसके अनन्तर उर्वशी के द्वारा कथित इस वचन का श्रवण करके तथा पूर्व सकल्पित वचन का स्मरण करके क्षुधा से पीडित होते हुए भी उस विप्र ने उस उर्वशी से कहा था कि हे भद्रे ! मैं इसका ग्रहण नही करूगा क्योकि मैंने पहिले ही शकट न ग्रहण करने का नियम धारण किया है ॥१३४॥ यह नियम भी सिद्धो के समक्ष मे धारण किया था सो मैं तो इस शकट का उपभोग नही करूगा । उर्वशी के परिज्ञान के लिये किसी अन्य को ही दे दीजिए ॥१३५॥ उस उर्वशी ने कहा था कि हे भद्र ! तूने यह नियम काष्ठमय शकट के विषय मे ही किया था और यह शकट काष्ठमय नही है अत इसका उपभोग आप कीजिए इसके उपभोग से आपके किये हुए नियम मे कोई भी बाधा नही होगी क्योकि आप इस समय मे क्षुधा से भी अत्यन्त पीडित हो रहे हैं ॥१३६॥ वह ब्राह्मण उससे बोला था कि हे भद्रे ! मैंने यह नियम करने के समय मे कोई भी विषयता का ध्यान करके नही किया था अपितु यह नियम सामान्य रूप से ही धारण किया था ॥१३७॥ फिर वह उर्वशी उस ब्राह्मण से कहने लगी कि हे ब्राह्मण ! यदि आप इसका उपभोग नही करेंगे तो आप इसका ग्रहण कर अपने घर पर चले जाइये । आपका कुटुम्ब ही इसका उपभोग करेगा ॥ १३८॥ वह विप्र उससे बोला था कि हे सुन्दर दाँतो वाली ! मैं तब तक अपने घर भी नही जाता हूँ । आप इस त्रिलोक

में गुणगणों के द्वारा सबसे अधिक हैं और श्रेष्ठ आरोह वाली हैं। आप इस समय में यहां पर समागत हो गई हैं ऐसी आपकी मैंने मदन से पीड़ित होकर उपभोग करने की प्रार्थना की थी और आपने मुझको पूर्ण रूप से सम्भोग कराने का आश्वासन भी प्रदान किया था कि क्षण भर यहां पर ही ठहरिए और मैंने उत्तर दिया था कि मैं यहीं पर स्थित रहूँगा ॥१३९-१४०॥

मासामात्रं गतायास्तु तस्या भद्रे स्थितस्य च।
मम सत्यानुरक्तस्य संगमाय धृतव्रते ॥१४१
तस्य सा वचनं श्रुत्वा स्वं रूपमुत्तमम्।
विहस्य भावगम्भीरमुर्वशी प्राह तं द्विजम् ॥१४२
साधु सत्यं त्वया विप्र व्रतं निष्ठितचेतसा।
निष्पादितं हठादेव मम दर्शनमिच्छता ॥१४३
अहमेवोर्वशा विप्र त्वां जिज्ञासार्थमागता।
परीक्षितो निश्चितवान्भवान्सत्यतपा ऋषिः ॥१४४
गच्छ शूकरकोद्देशं रूपतीर्थेति विश्रुतम्।
सिद्धिं यास्यसि विप्रेन्द्र ततस्त्वं मामवाप्स्यसि ॥१४५
इत्युक्त्वा दिवमुत्पत्य सा जगामोर्वशी द्विजाः।
स च सत्यतपा विप्रो रूपतीर्थं जगाम ह ॥१४६
तत्र शान्तिपरो भूत्वा नियमव्रतधृक्शुचिः।
देहोत्सर्गे जगामासौ गान्धर्वं लोकमुत्तमम् ॥१४७

हे भद्रे! उस आपके चले जाने पर एक मास का समय व्यतीत हो गया था और मैं यहीं पर स्थितवन्त रहा था। हे धृतव्रते! मैं तुम्हारे साथ सङ्गम करने के लिये सत्य अनुराग वाला था ॥१४१॥ उस उर्वशी ने उस विप्र के इस वचन का श्रवण करके अपना अत्युत्तम रूप धारण कर लिया था। उस उर्वशी ने गम्भीर भाव के साथ विहँस कर उस द्विज से कहा था ॥१४२॥ उर्वशी बोली—हे विप्र! आपने बहुत ही अच्छा और सत्य व्रत निष्ठित चित्त वाले होकर पूर्ण किया था और बहुत हठ के साथ

ही मेरे दर्शन की अभिलाषा भी आपने की थी ॥१४३॥ हे विप्र ! मैं उर्वशी भी आपके पास आपकी जिज्ञासा के ही लिये आपके समीप में समागत हो गई थी । मैंने आपकी परीक्षा भी अच्छी तरह से करली थी और आप पूर्ण निश्चय वाले परम सत्य तप से युक्त ऋषि हैं ॥१४४॥ अब आप शूकर कोद्देश मे चले जाइये वह रूप तीर्थ–इस नाम से विश्रुत है । हे विप्रेन्द्र ! वहाँ पर आप सिद्धि को प्राप्त होंगे और फिर आप मेरी प्राप्ति कर लेंगे ॥१४५॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—हे द्विजो ! इतना कहकर वह उर्वशी ऊपर की ओर उड़कर दिवलोक को चली गयी थी और वह सत्य तप वाला विप्र रूप तीर्थ को चला गया था ॥१४६॥ वहाँ पर परम शान्ति परायण होकर वह नियम व्रत धारण करते हुए पवित्र हो गया था और वह अपने शरीर के त्याग करने पर अत्युत्तम गान्धर्व लोक को चला गया था ॥१४७॥

तत्र मन्वन्तरशतं भोगान्भुक्त्वा यथार्थतः ।
बभूव सुकुले राजा प्रजारञ्जनतत्पर ॥१४८
स यज्वा विविधैर्यज्ञै. समाप्तवरदक्षिणैः ।
पुत्रेषु राज्य निक्षिप्य ययौ शौकरव पुन. ॥१४९
रूपतीर्थे मृतो भूयः शक्रलोकमुपागत. ।
तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युत' ॥१५०
प्रतिष्ठाने पुरवरे बुधपुत्रः पुरूरवा ।
बभूव तत्र चोर्वश्या सगमाय तपोधना ॥१५१
एव पुरा सत्यतपा द्विजाति-
स्तीर्थे प्रसिद्धे स हि रूपसञ्ज्ञे ।
आराध्य जन्मन्यथ चार्च्य विष्णु-
मवाप्य भोगानथ मुक्तिमेति ॥१५२

वहाँ पर एक सौ मन्वन्तर पर्यन्त यथार्थ रूप से भोगों को भोगकर फिर इसके पश्चात् एक परम सुन्दर कुल में अपनी प्रजा के मनुष्यों के रञ्जन करने मे परायण होने वाला राजा हुआ था ॥१४८॥ वह राजा के घर में जन्म ग्रहण करके बहुत ही नृपति हुआ था और अनेक यज्ञो के

द्वारा यजन किया था जिनमें परम श्रेष्ठ दक्षिणा दी गयी थी। इसके पश्चात् वह अपने पुत्रों को राज्य शासन का भार सौंप कर पुनः उसी शौकरन स्थल को चला गया था ॥१४६॥ उस रूप तीर्थ में ही तपश्चर्या करते हुए पुनः उसने वहीं पर अपने देह को त्याग कर मृत्यु की प्राप्ति की थी और फिर इन्द्र के लोक में प्राप्त हो गया था। वहाँ पर एक सौ मन्वन्तर तक भोगों का उपभोग उसने किया था और दिव्यभोग भोगने की अवधि समाप्त हो जाने पर वहाँ से भी च्युत हो गया था ॥१५०॥ फिर वह पुरवर प्रतिष्ठान में प्रध का पुत्र पुरूरवा हुआ था और वह तपोधन उर्वशी के साथ सङ्गम करने के लिये वहाँ पर हुआ था ॥१५१॥ इस प्रकार से पूर्वकाल में सत्य तप वाला वह द्विज रूप नाम वाले परम प्रसिद्ध तीर्थ में जीवन में समाराधना करके तथा भगवान् विष्णु का अभ्यर्चन करके मूर्ख होते हुए भी उसने भोगों की प्राप्ति की थी और इसके पश्चात् मुक्ति को भी प्राप्त कर लिया था ॥१५२॥

--:※:--

व्यासमुनिसंवादमेंविष्णुभक्तिहेतुकथन

श्रुतं फलं गीतिकाया अस्माभिः सुप्रजागरे।
कृष्णस्य येन चाण्डालो गतोऽसौ परमां गतिम् ॥१
यथा विष्णौ भवेद्भक्तिस्तन्नो ब्रूहि महामते।
तपसा कर्मणा येन श्रोतुमिच्छाम सांप्रतम् ॥२
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।
यथा कृष्णे भवेद्भक्तिः पुरुषस्य महाफला ॥३
संसारेऽस्मिन्महाघोरे सर्वभूतभयावहे।
महामोहकरे नृणां नानादुःखशताकुले ॥४
तिर्यग्योनिसहस्रेषु जायमानः पुनः पुनः।
कथंचिल्लभते जन्म देही मानुष्यकं द्विजाः ॥५

मानुपत्वेऽपि विप्रत्व विप्रत्वेऽपि विवेकिता ।
विवेकाद्धर्मबुद्धिस्तु बुद्ध्या तु श्रेय सा ग्रहः ॥६
यावत्पापक्षय पुंसा न भवेज्जन्म सचितम् ।
तावन्न जायते भक्तिर्वासुदेवे जगन्मये ॥७

मुनिगण ने कहा—हे भगवन् ! भगवान् श्रीकृष्ण के प्रजागण मे जो गीतिका का गान किया जाता है उसका पुण्य फल हमने भली-भाँति श्रवण कर लिया है जिसके प्रभाव के द्वारा चाण्डाल भी परम गति को प्राप्त हो गया था ॥१॥ हे महामने ! अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि किस प्रकार से भगवान् विष्णु मे भक्ति का भाव समुत्पन्न हो जावे । हम लोग तप और कर्म से इसके सुनने की बडी भारी उत्कृष्ट अभिलाषा रखते हैं ॥२॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे मुनियो मे शार्दूलो ! मैं आनुपूर्वी से अर्थात् आरम्भ से अन्त पर्यन्त पूर्ण बतलाऊँगा आप लोग श्रवण करने मे सावधान हो जाइये कि जिस रीति से मनुष्य को महान् फल प्रदान करने वाली श्रीकृष्ण मे भक्ति हुआ करती है ॥३॥ यह ससार बडा घोर स्वरूप वाला है और समस्त प्राणियो को भय देने वाला है। इस ससार मे महान् मोह भरा हुआ है जो कि मनुष्यो को फँसा लिया करता है और यह ससार सैकडो ही दुःखो से घिरा हुआ है ॥४॥ इस ससार मे तिर्यकों की सहस्र योनियाँ हैं उनमे यह बारम्बार जन्म लिया करता है। हे द्विजो ! यह देही बहुत ही कठिनाई के पश्चात् किसी प्रकार से मनुष्य का शरीर प्राप्त किया करता है ॥५॥ इस दुर्लभ मनुष्य देह मे भी विप्रत्व प्राप्त करना महान् कठिन है और विप्र होकर भी विवेकशीलता कठिन है। विवेक मे धर्म की बुद्धि का होना तथा उस बुद्धि के बल से श्रेय का ग्रहण होना महान् कठिन होता है ॥६॥ जब तक मनुष्यो के पूर्व जन्मो मे किये हुए पापो का क्षय नही होता है तब तक जगन्मय भगवान् वासुदेव मे भक्ति नही हुआ करती है ॥७॥

तस्माद्वक्ष्यामि भो विप्रा भक्तिः कृष्णे यथा भवेत् ।
अन्यदेवेषु या भक्तिः पुरुषस्येह जायते ॥८

कर्मणा मनसा वाचा तद्गतेनान्तरात्मना ।
तेन तस्य भवेद्भक्तिर्यजने मुनिसत्तमाः ।।९
स करोति ततो विप्रा भक्तिं चाग्नेः समाहितः ।
तुष्टे हुताशने तस्य भक्तिर्भवति भास्करे ।।१०
पूजां करोति सततमादित्यस्य ततो द्विजाः ।
प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति शंकरे ।।११
पूजां करोति विधिवत्स तु शंभोः प्रयत्नतः ।
तुष्टे त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवतिः केशवे ।।१२
संपूज्य तं जगन्नाथं वासुदेवाख्यमव्ययम् ।
ततो भुक्तिं च मुक्तिं च स प्राप्नोति द्विजोत्तमाः ।।१३

हे विप्रो ! इसी कारण-से मैं वही उपाय अब बतलाता हूँ जिससे भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति समुत्पन्न होवे । जो अन्य देवों में भक्ति होती है वह भी इस लोक में पर पुरुष की ही हुआ करती है ।।८।। हे मुनिश्रेष्ठो ! तद्गत अन्तरात्मा से कर्म-मन और वचन के द्वारा भगवान् के भजन करने में ही उनकी भक्ति हुआ करती है ।।९।। हे विप्रो ! इसके पश्चात् अग्नि से समाहित होकर वह मनुष्य भगवान् की भक्ति किया करता है । भगवान् हुताशन के सन्तुष्ट होने पर उसकी भगवान् भास्कर देव में भक्ति होती है ।।१०।। हे द्विजो ! जो मनुष्य निरन्तर भगवान् आदित्य की पूजा किया करता है उस पर भगवान् भास्कर प्रसन्न हुआ करते हैं और उनके प्रसन्न होने पर भगवान् शङ्कर में भक्ति हो जाया करती है ।।११।। वह मनुष्य जो प्रयत्न पूर्वक विधि विधान के साथ भगवान् शम्भु की पूजा किया करता है उस पर शम्भु प्रसन्न हो जाते हैं और त्रिलोचन प्रभु के सन्तुष्ट हो जाने पर भगवान् केशव में भक्ति भाव उत्पन्न हो जाया करता है ।।१२।। अव्यम (अविनाशी) वासुदेव नाम धारी उन जगत् के नाथ की भली-भाँति पूजा करके हे द्विजोत्तमो ! वह मनुष्य मुक्ति और भुक्ति दोनों की प्रा। . ता है ।।१३।।

अवैष्णवा नरा ये तु दृश्यन्ते च महामुने ।
किं ते विष्णुं नार्चयन्ति ब्रूहि तत्कारणं द्विज ।।१४

द्वौ भूतसर्गौ विख्यातौ लोकेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः ।
आसुरश्च तथा दैव. पुरा सृष्ट स्वयम्भुवा ॥१५

दैवी प्रकृतिमाश्रित्य पूजयन्ति ततोऽच्युतम् ।
आसुरी योनिमापन्ना दूषयन्ति नरा हरिम् ॥१६

मायया हृतविज्ञाना विष्णोस्ते तु नराधमाः ।
अप्राप्य त हरिं विप्रास्ततो यान्त्यधमा गतिम् ॥१७

तस्य या वैष्णवी माया दुर्विज्ञेया सुरासुरैः ।
महामोहकरी नृणा दुस्तरा चाकृतात्मभिः ॥१८

इच्छामस्ता महामाया ज्ञातु विष्णोः सुदुस्तराम् ।
वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ पर कौतूहल हि नः ॥१९

स्वप्नेन्द्रजालसकाशा माया सा लोककर्षणी ।
क शक्नोति हरेर्माया ज्ञातु ता केशवादृते ॥२०

या वृत्ता ब्राह्मणस्याऽऽसीन्मायार्थे नारदस्य च ।
विडम्बना तु ता विप्रा. शृणुध्व गदतो मम ॥२१

मुनियो ने कहा—हे महामुने ! इस ससार मे बहुत-से अवैष्णव अर्थात् भगवान् विष्णु को नही मानने वाले मनुष्य दिखलाई दिया करते है। हे द्विज ! क्या और क्यो वे भगवान् विष्णु का अर्चन नही किया करते हैं ? इसका क्या कारण है कि वे विष्णु भगवान् को नही पूजते हैं ? उसे ही अब आप बतलाइये ॥१४॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे मुनि सत्तमो ! इस लोक मे दो प्रकार के प्राणियो की सृष्टि विख्यात है। एक तो आसुरी भावना वाले प्राणी होते हैं और दूसरे दैवी प्रकृति वाले जीव हुआ करते हैं। भगवान् स्वयम्भू ने आरम्भ मे ही पुरातन काल मे इन दोनो प्रकार के प्राणियो का सृजन किया था ॥१५॥ जो प्राणी दैवि प्रकृति को प्राप्त करते हैं भगवान् अच्युत की पूजा किया करते हैं और जो आसुरी योनि को प्राप्त हुए हैं वे नर श्री हरि को दूषित किया करते हैं अर्थात् उनमे दोष बता कर बुराई किया करते हैं ॥१६॥ भगवान् विष्णु की माया से वे हृत विज्ञान् वाले होते हैं और नरो मे महान् अधम

ही हुआ करते हैं। हे विप्रो ! ऐसे अज्ञान दुष्ट आसुरी प्रकृति वाले उन श्रीहरि को न पाकर अन्त में परमाधम गति को प्राप्त किया करते हैं ॥१७॥ उन भगवान् की माया इतनी गम्भीर है कि सुर और असुर कोई भी नहीं जानते हैं सबके लिये दुर्विज्ञेय होती है। यह भगवान् की माया मनुष्यों को महान् मोह उत्पन्न कर देने वाली होती है और जो आत्म-ज्ञान से रहित है उनके द्वारा वह वहुत ही दुस्तर हुआ करती है ॥१८॥ मुनियों ने कहा—हम लोग भगवान् विष्णु की उसी महा माया के विषय में जानने की इच्छा करते हैं जो कि परम दुस्तर है। हे धर्मज्ञ ! आप उसकी व्याख्या करने के लिये वहुत ही सुयोग्य महा पुरुष हैं। हमारे हृदय में इस सम्वन्ध में वड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥१९॥ महा मुनीन्द्र श्रीव्यासदेवजी ने कहा—वह भगवान् की माया स्वप्न और इन्द्र जाल के ही तुल्य लोकों के हृदय का समाकर्पण करने वाली होती है। भगवान् केशव के विना उनकी उस महा माया को कौन जान सकता है? ॥२०॥ जो ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म वेत्ता नारद को माया के चक्कर में डालने के लिये वृत्त हुई थी हे विप्रो ! उस विडम्वना (गलत विचार धारा) को सुनिये। मैं उसको वतलाता हूँ ॥२१॥

प्रागासीन्नृपतिः श्रीमानाग्नीध्र इति विश्रुतः।
नगरे कामदमनस्तस्याथ तनयः शुचिः ॥२२

धर्मारामः क्षमाशीलः पितृशुश्रूषणे रतः।
प्रजानुरञ्जको दक्षः श्रुतिशास्त्रकृतश्रमः ॥२३

पिताऽस्य त्वकरोद्यन्तं विवाहाय न चैच्छत।
तं पिता प्राह किमिति नेच्छसे दारसंग्रहम् ॥२४

सर्वमेतत्सुखार्थं हि वाञ्छति मनुजाः किल।
सुखमूलाह दाराश्च तस्मात्त्वं समाचर ॥२५

स पितुर्वचनं श्रुत्वा तूष्णीमास्ते च गौरवात्।
मुहुर्मुस्तं च पिता चोदयामास भो द्विजाः ॥२६

अथासौ पितरं प्राह तात नामानुरूपता।
मया समाश्रिता व्यक्ता वैष्णवी परिपालिनी ॥२७

त पिता प्राह सगम्य नैप धर्तोऽस्ति पुत्रक ।
न विधारयितव्या स्यात्पुरुपेण विपश्चिता ॥२८

पहिले परम पुरातन काल मे एक श्रीमान् नृपति था जो आग्नीध्र- इस नाम से नगर मे प्रसिद्ध था । उसका पुत्र वामदमन था और इसका भी तनय परम शुचि क्षमा के शील स्वभाव वाला धर्माराम था जो अपने पिता की सेवा-शुश्रूपा मे रति रखने वाला था । यह अपनी प्रजा के जनो का अनुरञ्जन करने वाला दक्ष और श्रुति तथा शास्त्र मे श्रम करने वाला था ॥२२-२३॥ इसके पिता ने तो किया था किन्तु इसने विवाह करने के लिये इच्छा ही नही की थी । उसके पिता ने उससे पूछा था कि तुम दारा का सग्रह क्यो नही करना चाहते हो ॥२४॥ मनुष्य इम सब कार्य को सुख के लिये ही अभिलापा किया करता है। दाराएँ तो सुख की मूल हुआ करती है । अतएव मेरी आज्ञा है कि इस कार्य का तुम अवश्य ही समाचरण करो ॥२५॥ वह अपने पिता के इस वचन का श्रवण कर गौरव से चुप हो गया था । हे द्विजो ! उसके पिता ने वार-वार प्रेरित किया था ॥२६॥ इसके अनन्तर वह अपने पिता से बोला था कि हे तात ! मैने अपन नाम की अनुरूपता का अर्थात् धर्माराम का जो अर्थ होता है उसी अर्थ के अनुसार रहने का समाश्रय ग्रहण किया है जो कि वैष्णवी परिपालनी व्यक्त है अर्थात् वैष्णवता के परिपालन करने वाली स्पष्ट है ॥२७॥ उसके पिता ने उससे मिलकर कहा था कि हे पुत्र ! यह धर्म नही है और विद्वान् पुरुप को ऐसी धारणा नही करनी चाहिए ॥२८॥

कुरु मद्वचन पुत्र प्रभुरस्मि पिता तव ।
मा निमज्ज कुल मह्य नरके सततिक्षयात् ॥२६

स हि त पितुरादेश श्रुत्वा प्राह सुतो वशी ।
प्रीत सस्मृत्य पौराणी ससारस्य विचित्रताम् ॥३०

शृणु तात वचो मह्य तत्त्वार्थ सहेतुकम् ।
नामानुरूप कर्तव्य सत्य भवति पार्थिव ॥३१

मया जन्मसहस्राणि जरामृत्युशतानि च ।
प्राप्तानि दारसंयोगवियोगानि च सर्वशः ॥३२
तृणगुल्मलतावल्लीसरीसृपमृगद्विजाः ।
पशुस्त्रीपुरुषाद्यानि प्राप्तानि शतशो मया: ॥३३
गणकिंनरगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः ।
यक्षगुह्यकरक्षांसि दानवाप्सरसः सुराः ॥३४
नदीश्वरसहस्रं च प्राप्तं तात पुनः पुनः ।
सृष्टस्तु बहुशः सृष्टौ संहारे चापि संहृतः ॥३५

हे पुत्र ! मेरे वचन का पालन करो । मैं तुम्हारा पिता होने के कारण प्रभु हूँ । सन्तति के क्षय होने से नरक में मेरे कुल को निमग्न मत करो ॥२९॥ उसने पिता के उस आदेश को सुना था और वशी वह सुत परम प्रसन्न होकर इस संसार की पौराणी विचित्रता का स्मरण करके बोला ॥३०॥ पुत्र ने कहा—हे तात ! मेरे तत्त्व से संयुत और हेतु वाले वचन श्रवण करिए । हे राजन् ! नाम के अनुरूप ही कर्त्तव्य सत्य होता है ॥३१॥ मैंने सहस्रों वार जन्म लिया है और सैकड़ों ही वार जरा और मृत्यु को प्राप्त किया है ॥३२॥ मैंने तृण-गुल्य-लता-वल्ली-सरीसृप-मृग-पक्षी-पशु-स्त्री और पुरुष आदि का जन्म सैकड़ों ही बार प्राप्त किया है ॥३३॥ हे तात ! इसके अतिरिक्त गण-किन्नर-गन्धर्व-विद्याधर-महोरग-यक्ष गुह्यक-राक्षस-दानव-अप्सरा-सुर और नदीश्वरों के मैंने हे तात ! बार-म्बार सहस्रों जन्म प्राप्त किये हैं । मेरा बहुत वार इस सृष्टि में सृजन हुआ है और संहार में संहृत हुआ हूँ ॥३४-३५॥

दारसंयोगयुक्तस्य तातेदृङ्मे विडम्बना ।
इतस्तृतीये यद्वृत्तं मम जन्मनि तच्छृणु ॥
कथयामि समासेन तीर्थमाहात्म्यसंभवम् ॥३६
अतीत्य जन्मानि बहूनि तात,
नृदेवगन्धर्वमहोरगाणाम् ।
विद्याधराणां खगकिंनराणां,
जातो हि वंशे सुतपा महर्षिः ॥३७

ततो महाभूदचला हि भक्ति-
र्जनार्दने लोकपतौ मधुघ्ने ।
व्रतोपवासैर्विविधैश्च भक्त्या,
सतोषितश्चक्रगदाब्जधारी ॥३८
तुष्टोऽभ्यगात्पक्षिपतिं महात्मा
विष्णुः समारुह्य वरप्रदो मे ।
प्राहोच्चशब्दं व्रियतां द्विजाते,
वरो हि यं वाञ्छसि तं प्रदास्ये ॥३९
ततोऽहमूचे हरिमीशितारं,
तुष्टोऽसि चेत्केशव तद्वृणोमि ।
या सा त्वदीया परमा हि माया,
तां वेत्तुमिच्छामि जनार्दनोऽहम् ॥४०
अथाब्रवीन्मे मधुकैटभारिः,
किं ते तया ब्रह्मन्मायया वै ।
धर्मार्थकामानि ददानि तुभ्यं,
पुत्राणि मुख्यानि निरामयत्वम् ॥४१
ततो मुरारिं पुनरुक्तवानहं,
भूयोऽर्थधर्मार्थजिगीषितं वत ।
माया तवेमामिह वेत्तुमिच्छे,
ममाद्य तां दर्शय पुष्कराक्ष ॥४२

दारा के सयोग से युक्त मेरी हे तात ! ऐसी ही विडम्बना है । यहाँ से मेरे तीसरे जन्म मे जो कुछ हुआ था उसका श्रवण आप कीजिए । मैं तीर्थ माहात्म्य से सम्भव को अत्यन्त सक्षेप से कहता हूँ ॥३६॥ हे तात ! मनुष्य, देव, गन्धर्व, महोरग, विद्याधर, खग, किन्नरो के बहुत से जन्मों मे उत्पन्न होकर और समाप्त करके एक वश मे मैं सुतपा महर्षि उत्पन्न हुआ था ॥३७॥ इसके पश्चात् मेरी मधु दैत्य के हनन करने वाले लोकों के स्वामी भगवान् जनार्दन मे महती अचला भक्ति हो गयी थी ।

अनेक प्रकार के व्रतों और उपवासों के द्वारा भक्ति की भावना से मैंने सुदर्शन चक्र के धारण करने वाले भगवान् को सन्तुष्ट कर लिया था ॥३८॥ वे महान् आत्मा वाले भगवान् विष्णु पक्षियों के स्वामी गरुड़ पर समारूढ़ होकर परम सन्तुष्ट होते हुए मुझे वरदान देने वाले पधारे थे और बहुत ही ऊंचे स्वर से बोले —हे विप्र ! जो भी कुछ तुम चाहते हो वही वर मुझसे प्राप्त करलो मैं वही वरदान तुमको दे दूँगा ॥३९॥ इसके अनन्तर मैंने ईश श्री हरि से प्रार्थना की थी कि हे केशव ! यदि आप मुझ पर पूर्णतया सतुन्ष्ट हैं तो मैं यही वर चाहता हूं कि जो आपकी यह परम विचित्र माया है हे जनार्दन प्रभु मैं उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ ।।४०।। इसके उपरान्त वे मधु और कैटभ के हनन करने वाले प्रभु मुझसे बोले थे कि हे ब्रह्मन् ! उस माया से तुमको क्या प्रयोजन है। मैं तुमको धर्म, अर्थ, काम, मुख्य पुत्र और निरामयत्व (स्वस्थता) देता हूँ ।।४१।। इसके अनन्तर पुनः मैंने भगवान् मुरारि से कहा था कि पुनः जो धर्म, अर्थ धर्म की जिगीषिता (जीतने की इच्छा) है यही आपकी माया है। मैं इसी के विषय में ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। हे पुष्कराक्ष ! आज आप मुझको उसे दिखा दीजिए ॥४२॥

ततोऽभ्युवाचाथ नृसिंहमुख्यः,
श्रीशः प्रभुर्विष्णुरिदं वचो मे ।
मायां मदीयां न हि वेत्ति कश्चि-
न्न चापि वा वेत्स्यति कश्चिदेव ॥४३

पूर्व सुरर्षिद्विज नारदाख्यो,
ब्रह्मात्मजोऽभून्मम भक्तियुक्तः ।
तेनापि पूर्वं भवता यथैव,
संतोषितो भक्तिमता हि तद्वत् ॥४४

वरं च दत्तं (दातुं) गतवानहं च,
स चापि वव्रे वरमेतदेव ।
निवारितो मामतिमूढभावाद्-
भवान्यथैवं वृतवान्वरं च ॥४५

ततो मयोक्तोऽम्भसि नारद त्वं,
माया हि मे वेत्स्यसि संनिमग्नः।
ततो निमग्नोऽम्भसि नारदोऽसौ,
कन्या बभौ काशिपतेः सुशीला ॥४६
तां यौवनाढ्यामथ चारुधर्मिणे,
विदर्भराजस्तनयाय वै ददौ।
स्व(सु)धर्मणे सोऽपि तया समेतः,
स्त्रियेव कामानतुलान्महर्षिः ॥४७
स्वर्गं गतेऽसौ पितरि प्रतापवा-
न्राज्यं क्रमायातमवाप्य हृष्टः।
विदर्भराष्ट्रं परिपालयान्
पुत्रैः सपौत्रैर्बहुभिर्वृतोऽभूत् ॥४८
अथाभवद्भूमिपतेः सुधर्मणः,
काशीश्वरेणाथ समं सुयुद्धम्।
तत्र क्षयं प्राप्य (प) सपुत्रपौत्रः,
विदर्भराट्काशिपतिश्च युद्धे ॥४९

इसके पश्चात् नृसिंह मुख धीर प्रभु विष्णु भगवान् मुझसे यह वचन बोले। श्री विष्णु भगवान् ने कहा—मेरी माया को कोई भी नहीं जानता है और न कभी कोई जान ही सकेगा ॥४३॥ पहिले देवर्षि नारद नाम-धारी हे द्विज! ब्रह्मा के पुत्र हुए थे जो मेरी भक्ति से युक्त थे। उनने भी पहिले आपके ही समान मुझे सन्तोषित किया था क्योंकि आपके ही तुल्य वह भी पूर्ण भक्तिमान् थे ॥४४॥ मैं उनको भी वरदान देने के लिये उनके समीप मे गया था और उन्होंने भी मुझ से यही वरदान जैसा तुम चाहते हो मांगा था। अत्यन्त मूढभाव से मुझको निवारित किया था जैसा कि आपने वरदान प्राप्त करने का व्रत लिया है ॥४५॥ इसके अनन्तर मैंने उनसे कहा था कि हे नारद! तुम जल मे निमग्न होकर मेरी माया को जान सकोगे। इसके पश्चात् वह नारद जल मे निमग्न हो गये थे और काशी के स्वामी की सुशीला कन्या होकर शोभित

हुए थे ॥४६॥ उस यौवन युक्त कन्या को सुन्दर धर्म वाले विदर्भ देश के राजा के पुत्र सुधर्मा के लिये दे दिया था। उस महर्षि ने भी उसके साथ अतुल कामों का सेवन किया था ॥४७॥ पिता के स्वर्ग में चले जाने पर प्रतापवान् वह क्रम से समागत राज्य को प्राप्त कर बहुत ही हर्षित हो गया था। वह विदर्भ के राज्य का परिपालन करते हुए वह बहुत से पुत्र-पौत्रों से युक्त हो गया था ॥४८॥ इसके अनन्तर भूमिपति उस सुधर्मा का काशी के स्वामी के साथ बड़ा भारी युद्ध हुआ था। उस युद्ध में पुत्र पौत्रों के सहित विदर्भ के राजा और काशीपति दोनों ही क्षय को प्राप्त हो गये थे ॥४९॥

ततः सुशीला पितरं सपुत्रं,
ज्ञात्वा पतिं चापि सपुत्रपौत्रम्।
पुराद्विनिःसृत्य रणावनिं गता,
दृष्ट्वा सुशीला कदनं महान्तम् ॥५०

भर्तुर्बले तत्र पितुर्बले च,
दुखान्विता सा सुचिरं विलप्य।
जगाम सा मातरमार्तरूपा,
भ्रातॄन्सुतान्भ्रातृसुतान्सपौत्रान् ॥५१

भर्तारमेषा पितरं च गृह्य,
महाश्मशाने च महाचितिं सा।
कृत्वा हुताशं प्रददौ स्वयं च,
यदा समिद्धो हुतभुग्वभूव ॥५२

तदा सुशीला प्रविवेश वेगा-
द्धा पुत्र हा पुत्र इति ब्रुवाणा।
तदा पुनः सा मुनिर्नारदोऽभूत,
स चापि वह्निः स्फटिकामलाभः ॥५३

पूर्णं सरोऽभूदथ चोत्ततार,
तस्याग्रतो देववरस्तु केशवः।

प्रहस्य देवर्षिमुवाच नारदम् ॥५४

कस्ते तु पुत्रो वद मे महर्षे,
मृतं च कं शोचसि नष्टबुद्धिः।
व्रीडान्वितोऽभूदथ नारदोऽसौ,
ततोऽहमेन पुनरेव चाऽऽह ॥५५

इतीदृशा नारद कष्टरूपा,
माया मदीया कमलासनाद्यैः।
शक्या न वेत्तुं समहेन्द्ररुद्रैः,
कथं भवान्वेत्स्यति दुर्विभाव्याम् ॥५६

इसके अनन्तर वह सुशीला पुत्रो के सहित पिताओं और पुत्र-पौत्रों के साथ पति को क्षीण समझ कर पुर से निकल कर रणभूमि में चली गई थी और उस सुशीला ने वहाँ पर महान् विनाश देखा था ॥५०॥ अपने पिता की सेना मे और स्वामी के बल मे उस महान् विनाश को देख कर वह सुशीला बहुत भारी दुःखित हुई थी और बहुत समय तक विलाप करके आर्त्त स्वरूप वाली वह माता के समीप मे गई थी। भाइयो को मृतों को, भाइयों के पुत्रो और पौत्रों को, स्वामी को और पिता को लेकर महान् श्मशान मे चली गयी थी तथा वहाँ पर एक बहुत बड़ी चिता बनाकर स्वयं ही अग्नि लगा दी थी। जब वह अग्नि प्रज्वलित हो गई थी उस समय मे 'हा पुत्र! हा पुत्र' यह बोलती हुई वह सुशीला भी उसमे बड़े वेग मे प्रविष्ट हो गई थी। उस समय मे पुन. वह नारद मुनि हो गये थ। वह अग्नि भी स्फटिक के समान अमल आभा वाली हो गई थी ॥५१-५३॥ वह पूर्ण भरा हुआ सरोवर हो गया था और उसके ही आगे देववर भगवान् केशव वहाँ पर उतरे थे। और हँस कर वे देवर्षि नारद से बोले ॥५४॥ हे महर्षे! अब मुझे यह बतला दो कि तुम्हारा पुत्र कौन है और नष्ट बुद्धि वाले होकर किस मृत्युगत का आप शोक कर रहे हैं? वह नारदमुनि इसके उपरान्त लज्जित हो गये थे।

इसके पश्चात् मैंने पुनः भी यही कहा था ॥५५॥ हे नानद ! इस रीति से यह मेरी माया बहुत ही कष्टों के स्वरूप वाली है। यह मेरी माया ब्रह्मा-रुद्र और इन्द्र आदि के द्वारा भी जानी नहीं जा सकती है। इस महान् दुर्विभाव्य (कठिनाई से भी न जानने के योग्य) मेरी माया को आप कि प्रकार से जान लेंगे ॥५६॥

स वाक्यमाकर्ण्य महामहर्षि-
रुवाच भक्ति मम देहि विष्णो।
प्राप्तेऽथ काले स्मरणं तथैव,
सदा च संदर्शनमीश तेऽस्तु ॥५७

यत्राहमार्तश्रितिमद्य रूढ
स्तत्तीर्थ मस्त्वच्युतपापहन्त्रा।
अधिष्ठितं केशव नित्यमेव,
त्वया सहाऽऽसं(हेदं) कमलोद्भवेन ॥५८

ततो मयोक्तो द्विज नारदोऽसौ,
तीर्थं सितोदे [दं] हि चितिस्तवास्तु।
स्थास्याम्यहं चात्र सदैव विष्णु-
र्महेश्वरः स्थास्यति चोत्तरेण ॥५९

यदा विरञ्चेर्वदनं त्रिनेत्रः
स च्छेत्स्यतेयं च ममु ,त्वथ चो] ग्रवाचम्।
तदा कपालस्य तु मोचनाय,
समेष्यते तीर्थमिदं त्वदीयम् ॥६०

स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य,
पतिष्यते भूमितले कपालम्।
ततस्तु तीर्थेति कपालमोचनं,
ख्यातं पृथिव्यां च भविष्यते तत् ॥६१

तदा प्रभृत्यम्बुदवाहनोऽसौ,
न मोक्ष्यते तीर्थवरं सुपुण्यम्।

न चैव तस्मिन्द्विज सम्प्रचक्षते,
तत्क्षेत्रमुग्र स्वयं ब्रह्मवध्या ॥६२
यदा न मोक्षत्यमरारिहन्ता,
तत्क्षेत्रमुख्य महदाप्तपुण्यम् ।
तदा विमुक्तेति सुरैं रहस्यं,
तीर्थं स्तुत पुण्यदमव्ययाख्यम् ॥६३

वह महा महर्षि मेरे इस वाक्य को सुनकर बोले थे कि हे विष्णो ! मुझे अपनी भक्ति प्रदान कीजिए। जब भी समय प्राप्त हो और आपका स्मरण करूँ उसी समय में हे ईश ! सदा ही आपका मुझे दर्शन प्राप्त हो जाया करे ॥५७॥ जहाँ पर मैं अत्यन्त आर्त होकर आज चिता में समारूढ हुआ था। हे अच्युत ! वह पापों का हनन करने वाला तीर्थ हो जावे। हे केशव ! नित्य ही कमलोद्भव आपके साथ अधिष्ठित रहें ॥५८॥ इसके अनन्तर हे द्विज ! मैंने उस देवर्षि नारद से कहा था कि उस श्वेत जल मे तेरी चिता तीर्थ हो जावेगा और मैं सदा ही विष्णु स्वरूप वहाँ पर स्थित रहूँगा और उत्तर भाग मे महेश्वर प्रभु सस्थित रहेंगे ॥५६॥ जिस समय मे भगवान् त्रिनेत्र विरश्चि (ब्रह्मा) के मुख को करेंगे और मुझको उस वाणी कहेंगे तभी कपाल के मोचन करने के लिये तुम्हारे इस तीर्थ मे आयेंगे ॥६०॥ इस तीर्थ मे स्नयन करने वाले त्रिपुरान्तक के कपाल भूमि तल मे गिरेगा। तभी से यह तीर्थ 'कपाल मोचन" नाम से इस पृथिवी मे विख्यात होगा ॥६१॥ तभी से लेकर यह अम्बुदवाहन भी इस परम सुपुण्य तीर्थ को नहीं छोडेंगे। हे द्विज ! उसमें वह क्षेत्र ब्रह्म वध्या नहीं कहा जाता है ॥६२॥ जिस समय मे अमरो (देवो) के शत्रुओ के हनन करने वाले भगवान् विष्णु उस मुख्य क्षेत्र को नहीं छोडेंगे तभी से उस क्षेत्र ने महान् पुण्य को प्राप्त किया है। उस समय मे सुरो के द्वारा यह विमुक्त करने वाला है-यह रहस्य प्रकट हुआ और यह तीर्थ अव्यय नाम वाला पुण्य प्रदाता स्तुत हुआ है ॥६३॥

कृत्वा तु पापानि नरो महान्ति,
तस्मिन्प्रविष्टः शुचिरप्रमादी ।

यदा तू मां चिन्तयते स शुद्धः,
प्रयाति मोक्षं भगवत्प्रसादत् ।।६४
भूत्वा तस्मिन्न्द्रपिथाचसंज्ञो-
योन्यन्तरे दुःखमुपाश्नुतेऽसौ ।
विमुक्तपापो बहुवर्षपूगै-
रुत्पत्तिमायास्यति विप्रगेहे ।।६५
शुचिर्यतात्माऽस्य ततोऽन्तकाले,
रुद्रो हितं तारकमस्य कीर्तयेत् ।
इत्येवमुक्त्वा द्विजवर्य नारद,
गतोऽस्मि दुग्धार्णवमात्मगेहम् ।।६६
स चापि विप्रस्त्रिदिवं चचार,
गन्धर्वराजेन समर्च्यमानः ।
एतवोक्तं ननु बोधनाय
माया मदीया नहि शक्यते सा ।।६७
ज्ञातुं भवानिच्छति चेत्ततोऽद्य,
एवं विशस्वाप्सु च वेत्सि येन ।
एवं द्विजातिर्हरिणा प्रबोधितो,
भाव्यर्थयोगान्निममज्ज तोये ।।६८
कोकामुखे तात ततो हि कन्या,
चाण्डालवेश्मन्यभवद्द्विजः सः ।
रूपान्विता शीलगुणोपपन्ना,
अवाप सा यौवनमाससाद ।।६९
चाण्डालपुत्रेण सुबाहुनाऽपि,
विवाहिता रूपविवर्जितेन ।
पतिर्न तस्या हि मतो बभूव,
सा तस्य चैवाभिमता बभूव ।।७०

मनुष्य महान् से भी महान् पापों का समाचरण करके जिस समय में उस तीर्थ में प्रविष्ट हो जाता है तो परम शुचि और अप्रमादी हो

जाया करता है। जिस समय मे वह विशुद्ध होकर मेरा चिन्तन किया करता है तो वह भगवान् के प्रसाद से मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥६४॥ उसमे रुद्र पिशाच संज्ञा वाला होकर यह दूसरी योनियो मे दुःखो को भोगता है और बहुत से वर्षों के समूह मे पापो से विमुक्त होता हुआ एक विप्र के घर मे उत्पत्ति को प्राप्त करेगा ॥६५॥ फिर इसके अनन्तर अन्त काल मे यह शुचि तथा यतात्मा रुद्र देव इसको परम हित करने वाला और तारक नाम कीर्त्तित किया करते हैं। हे द्विज वर्य ! इस प्रकार से नारद से कह कर मैं अपने निवा संग्रह क्षीर सागर मे चला गया था ॥६६॥ वह विप्र भी फिर त्रिदिव मे सञ्चरण करने लगा था और गन्धर्वों के राजा के द्वारा समर्चित हो गया था। इसी के ज्ञान कराने के लिये मैंने यह कहा है मेरी माया ऐसी है कि वह नही जानी जा सकती है ॥६७॥ यदि अब आज इसका ज्ञान आप प्राप्त करना चाहते हैं तो इस जल मे प्रवेश करिए जिससे आप जान सकते हैं। इस प्रकार से भगवान् श्रीहरि के द्वारा वह द्विज प्रबोधित किया गया था और भावि अर्थ के योग से वह जल मे निमग्न हो गया था ॥६८॥ हे तात ! इसके उपरान्त वह द्विज कोका मुख में कन्या होकर एक चाण्डाल के घर मे उत्पन्न हुआ था। वह कन्या रूप लावण्य से समन्वित और शील के गुणो से उपपन्न थी। इसके पश्चात् उसने यौवन प्राप्त कर लिया था ॥६९॥ एक रूप के सौन्दर्य से रहित सुबाहु नाम धारी चाण्डाल के पुत्र ने उससे विवाह कर लिया था। उस कन्या को वह अपना पति अभिमत नही हुआ था क्योंकि वह रूप से रहित था किन्तु वह पति को बहुत ही अधिक रूप लावण्य युक्त होने के कारण अभिमत हो गयी थी ॥७०॥

पुत्रद्वय नेत्रहीन बभूव,
कन्या च पश्चाद्बधिरा तथाऽन्या ।
पतिर्दरिद्रस्त्वप साऽपि मुग्धा,
नदीगता रोदिति तत्र नित्यम् ॥७१

गता कदाचित्कलशं गृहीत्वा,
साऽन्तर्जलं स्नातुमथ प्रविष्टा ।
यावद्द्विजोऽसौ पुनरेव ताव-
ज्जातः क्रियायोगरतः सुशीलः ॥७२

तस्याः स भार्ताऽथ चिरंगतेति,
द्रष्टुं जगामाथ नदीं सुपुण्याम् ।
ददर्श कुम्भं न च तां तटस्थां,
ततोऽतिदुःखात्प्ररुरोद नादयन् ॥७३

ततोऽन्धयुग्मं वधिरा च कन्या,
दुःखान्विताऽसौ समुपाजगाम ।
ते वै रुदन्तं पितरं च दृष्ट्वा,
दुःखान्विता वै रुरुदुर्भृशार्ताः ॥७४

ततः स पप्रच्छ नदीतटस्था-
न्द्विजान्भवद्भिर्यदि योषिदेका ।
दृष्टा तु तोयार्थमुपाद्रवन्ती,
आख्यात ते प्रोचुरिमां प्रविष्टा ॥७५

नदीं न भूयस्तु समुत्ततार,
एतावदेवेह समीहितं नः ।
स तद्वचो घोरतरं निशम्य,
रुरोद शोकाश्रुपरिप्लुताक्षः ॥७६

तं वै रुदन्तं ससुतं सकन्यं,
दृष्ट्वाऽहमार्तः सुतरां वभूव ।
आर्तिश्च मेऽभूदथ संस्मृतिश्च,
चाण्डालयोषाऽहमिति क्षितीश ॥७७

उसके दो पुत्र नेत्रों से हीन हुए थे और पीछे एक कन्या वधिर समुत्पन्न हुई थी । फिर उसका पति भी वहुत दरिद्र हो गया था और इसके पश्चात् वह मुग्धा भी नदी पर जाकर नित्य ही रुदन किया करती थी

॥७१॥ किसी समय मे वह एक कलश ग्रहण करके वहा पर गयी थी और वह जल के अन्दर स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुई थी। जब तक वह क्रिया योग मे रत सुशील द्विज पुत्र जात हुआ था। तब तक उसका स्वामी वह चाण्डाल पुत्र सुबाहु "बहुत देर की गयी हुई है"—यह विचार कर उस सुपुण्य नदी पर गया था। वहा पर उसने न तो उस कलश को ही देखा था और न नदी के तट पर स्थित उस अपनी पत्नी को ही दखा था। तब तो वह अत्यन्त दु ख से जोर से चिल्लाता हुआ क्रन्दन करने लग गया था ॥७२-७३॥ इसके अनन्तर वे दोनो अन्धे पुत्र और बधिर कन्या दु ख से समन्वित होकर वही पर आ गई थी। उन सबने अपने पिता को रुदन करते हुए देखकर वे सब बहुत ही आर्त्त होकर और दु खान्वित होते हुए रोदन करने लग गये थे ॥७४॥ इसके पश्चात् उसने उस नदी के तट पर स्थित द्विजो से पूछा था कि क्या आप लोगो ने जल ग्रहण करने के लिये आयी हुई कोई एक स्त्री को देखा था तबतो उन्होने उसको यह उत्तर दिता था—कि वह स्त्री इस नदी के जल मे प्रविष्ट हो गई थी ॥७५॥ फिर वह इस नदी से बाहिर नही निकली थी—यही इतना हम सबने देखा था। उस चाण्डाल पुत्र सुबाहु ने उन द्विजो के द्वारा कहे हुए इस अत्यन्त घोर वचन का श्रवण कर वह शोक के आसुओ से परिप्लुत नेत्रो वाला होकर रुदन करने लग गया था ॥७६॥ अपने पुत्रो के और अपनी कन्या के सहित उसको करुणापूर्ण रुदन करते हुए देख कर मैं सुतरा बहुत ही आर्त्त हो गया था। हे क्षितीश ! मुझे उस समय मे आर्ति हुई थी और साथ ही मुझे स्मृति भी हो गई थी कि वह चाण्डाल की कन्या जो इसकी धर्मपत्नी थी वह मैं ही तो था ॥७७॥

ततोऽब्रव स नृपते मतङ्ग,
किमर्थमार्त्तेन हि रुद्यते त्वया।
तस्या न लाभो भविताऽतिमौर्ख्या-
दाक्रन्दितेनेह वृथा हि किं ते ॥७८

स मामुवाचाऽऽत्मजयुग्ममन्धं.
कन्या चैका बधिरेयं तथैव ।
कथं द्विजाते अधुनाऽऽतमेत-
माश्वासयिष्येऽप्यथ पोषयिष्ये ॥७६

इत्येवमुक्त्वा स सुतैश्च सार्धं,
फूत्कृत्य फूत्कृत्य च रोदिति स्म ।
यथा यथा रोदिति स श्वपाक-
स्तथा तथा मे ह्यभवत्कृताऽपि ॥८०

ततोऽहमार्तं तु निवार्य तं वै,
स्ववंशवृत्तान्तमथाऽऽचचक्षे ।
ततः स दुःखात्सह पुत्रकैः-
संविवेश कोकामुखमार्तरूपः ॥८१

प्रविष्टमात्रे सलिले मतङ्ग-
स्तीर्थप्रभावाच्च विमुक्तपापः ।
विमानमारुह्य शशिप्रकाशं,
ययौ दिवं तात ममोपपश्यतः ॥८२

तस्मिन्प्रविष्टे सलिले मृते च,
ममार्तिरासीदतिमोहकर्त्री ।
ततोऽतिपुण्ये नृपवर्य कोका-
जले प्रविष्टस्त्रिदिवं गतश्च ॥८३

भूयोऽभवं वैश्यकुले व्यथार्तो,
जातिस्मरस्तीर्थवरप्रसादात् ।
ततोऽतिनिर्विण्णमना गतोऽहं,
कोकामुखं संयतवाक्यचित्तः ॥८४

हे नृपते ! उसके पश्चात् मैंने उस मतङ्ग से कहा था कि तुम किसलिये इतने आर्त्त होकर रुदन कर रहे हो । उस तुम्हारी पत्नी का तो लाभ अब हो नहीं सकता है । अत्यन्त मूर्खता से यहां पर वृथा आक्रन्दन करने से तुझको क्या लाभ होगा ॥७८॥ वह फिर मुझसे बोला था कि

ये दो मेरे अन्धे पुत्र हैं और यह एक बहिरी कन्या है। हे विप्र ! इन सब परमाधिक आर्त्तों को मैं कैसे समाश्वासन दूँ और मैं किस तरह से इनका पोषण करूँगा ? ॥७६॥ बस, इतना भर इस प्रकार से वह कर वह फूट-फूट कर रुदन करने लग गया था। जैसे जैसे वह श्वपाक (चाण्डाल) रोता था वैसे ही वैसे मुझे भी बहुत वेदना हुई थी ॥८०॥ इसके उपरान्त मैंने उस परमाधिक आर्त्त को निवारित करके फिर मैंने अपने वंश का सारा वृत्तान्त उसको कहा था। इसके उपरान्त वह दुःख से अपने पुत्रों के सहित आर्त्त रूप वाला होकर कोका मुख में प्रवेश कर गया था ॥८१॥ उस तीर्थ में जैसे ही उसने प्रवेश किया था वह मातङ्ग प्रविष्ट होते ही उस तीर्थ के प्रभाव से वह समस्त पापों से विमुक्त हो गया था। हे तात ! वह फिर मेरे देखते देखते हुए चन्द्र के समान प्रकाश वाले एक विमान पर समारूढ होकर दिव्य लोक को चला गया था ॥८२॥ उस सलिल में उसके प्रविष्ट होने पर तथा मृत हो जाने पर मेरी भ्रान्ति अत्यन्त मोह के करने वाली हो गई थी। हे नृपवर्य ! इसके पश्चात् मैं भी उस अत्यन्त पुण्यमय कोका के जल में प्रविष्ट हो गया था और त्रिदिव लोक को चला गया था ॥८३॥ पुनः मैं व्यथा से आर्त्त होता हुआ एक वैश्य के कुल में समुत्पन्न हुआ था। उस श्रेष्ठ तीर्थ के प्रसाद से मुझे अपनी जाति का स्मरण था। इसके अनन्तर मैं निर्वेद युक्त मन वाला तथा संयत वाक्य और चित्त वाला होकर कोका के मुख में चला गया था ॥८४॥

व्रतं समास्थाय कलेवरं स्वं,
संशोषयित्वा दिवमारुरोह।
तस्माच्च्युतस्त्वद्भवने च जातो,
जातिस्मरस्तात हरिप्रसादात् ॥८५

सोऽहं समाराध्य मुरारिदेवं,
कोकामुखे त्यक्तशुभाशुभेच्छः।
इत्येवमुक्त्वा पितरं प्रणम्य,
गत्वा च कोकामुखमग्र्यतीर्थम्।

विष्णुं समाराध्य वराहरूप-
मवाप सिद्धिं मनुजर्षभोऽसौ ॥८६

इत्थं स कालदमनः सहपुत्रपौत्रः,
कोकामुखे तीर्थवरे सुपुण्ये।
त्यक्त्वा तनं दोषमयीं ततस्तु,
गतो दिवं सूर्यमयैर्विमानैः ॥८७

एवं मयोक्ता परमेश्वरस्य,
माया सुराणामपि दुर्विचिन्त्या।
स्वप्नेन्द्रजालप्रतिमा मुरारे-
र्यया जगन्मोहमुपैति विप्राः ॥८८

व्रतों में समास्थित होकर अपने शरीर का शोषण करके देव लोक में पहुँच गया था। उसके भोगों की अवधि समाप्त होने पर वहाँ से च्युत होकर अब इस समय में आपके भवन में मैंने जन्म ग्रहण किया है। हे तात ! भगवान् श्रीहरि के प्रसाद से ही मैं अपनी पूर्वारत जातियों के स्मरण करने वाला हूँ ॥८५॥ वही मैं अब देवेश्वर श्री मुरारि की समाराधना करके उसी कोका के मुख में अपने किये हुए शुभ और अशुभ कर्मों के त्याग करने की इच्छा वाला हूँ। बस, केवल इतना इस प्रकार से कह कर और अपने पिता को प्रणाम करके वहां कोका के मुख उग्र तीर्थ पर पहुँच गया था और वहाँ पर वराह स्वरूप भगवान् विष्णु की समाराधना करके वह मनुष्यों में श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त हो गया था ॥८६॥ इस प्रकार से वह काल दमन अपने पुत्रों तथा पौत्रों के साथ ही सुपुण्य मय श्रेष्ठ तीर्थ कोका मुख में उस दोषों से परिपूर्ण शरीर का त्याग करके उसके अनन्तर सूर्यमय विमानों के द्वारा दिव लोक में चला गया था ॥८७॥ इस रीति से मैंने परमेश्वर प्रभु की माया को जो देवों के द्वारा भी बहुत ही दुर्चिन्तनीय है आप लोगों के समक्ष में वर्णित कर बतला दिया है। यह भगवान् मुरारि की माया स्वप्न और इन्द्र जाल के ही समान है। हे विप्र ! जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् महा मोह को प्राप्त हुआ करता है ॥८८॥

व्यासमुनिसंवाद में महाप्रलयवर्णन

अस्माभिस्तु श्रुतं व्यास यत्त्वया समुदाहृतम् ।
प्रादुर्भावाश्रितं पुण्यं माया विष्णोश्च दुर्विदा ॥१
श्रोतुमिच्छामहे त्वत्तो यथावदुपसंहृतिम् ।
महाप्रलयसंज्ञां च कल्पान्ते च महामुने ॥२
श्रूयतां भो मुनिश्रेष्ठा यथावदनुसंहृतिः ।
कल्पान्ते प्राकृते चैव प्रलये जायते यथा ॥३
अहोरात्रं पितॄणां तु मासोऽब्दं त्रिदिवौकसाम् ।
चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणोऽह्नर्द्विजोत्तमाः ॥४
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
दैवैर्वर्षसहस्रैस्तु तद्द्वादशभिरुच्यते ॥५
चतुर्युगाण्यशेषाणि सदृशानि स्वरूपतः ।
आद्यं कृतयुगं प्रोक्तं, मुनयोऽन्त्यं तथा कलिम् ॥६
आद्ये कृतयुगे सर्गो ब्रह्मणा क्रियते यतः ।
क्रियते चोपसंहारस्तथाऽन्तेऽपि कलौ युगे ॥७

मुनिगण ने कहा—हे व्यास देव जी ! आपने इस समय मे जो भगवान् विष्णु की दुर्विदा (ज्ञान मे न आने वाली) माया और प्रादुर्भाव के आश्रित महापुण्य का भली भाँति वर्णन किया है वह हमने अच्छी तरह से सुन लिया है ॥१॥ हे महामुने ! अब हम लोग आपके मुख से महा प्रलय की संज्ञा वाली जो उपसंहृति है जो कल्प के अन्त मे होती है उसके विषय मे यथावत् श्रवण करने की बड़ी उत्कट अभिलाषा रखते है ॥२॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! जिस तरह से कल्प के अन्त मे तथा प्राकृत प्रलय मे उपसंहार हुआ करता है उसको अब आप लोग सुनिये ॥३॥ पितृगणो का जो अहोरात्र का एक शब्द होता है वही देवो का एक मास हुआ करता है । एक सहस्र सत्ययुग त्रेता-द्वापर-कलियुग इन चारो युगो की चौकड़ी की जब एक सहस्र संख्या पूरी हो

जाती है तभी ब्रह्माजी का एक दिन हुआ करता है। हे द्विजोत्तमो ! कृतादि चार युग ऊपर अभी बता दिये गये हैं। ये चारों युग देवों के बारह वर्षो से कहे जाते हैं ॥४-५॥ ये चारों युग सम्पूर्ण स्वरूप से समान होते हैं। सबसे आदि में होने वाला कृतयुग होता है और अन्त में होने वाला कलियुग इन चारों युगों में हुआ करता है ॥६॥ आदि में होने वाले कृतयुग में ब्रह्माजी के द्वारा सृष्टि की जाया करती है और अन्त में कलियुग में उपसंहार किया जाता है ॥७॥

कलेः स्वरूपं भगवन्विस्तराद्वक्तुमर्हसि ।
धर्मश्चतुष्पाद्भगवान्यस्मिन्वैकल्यमृच्छति ॥८
कलिस्वरूपं भो विप्रा यत्पृच्छध्व ममानघाः ।
निबोधध्वं समासेन वर्त्तते यन्महत्तरम् ॥६
वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर्न कलौ नृणाम् ।
न सामऋग्यजुर्वेदविनिष्पादनहैतुकी ॥१०
विवाहा न कलौ धर्म्या न शिष्या गुरुसंस्थिताः ।
न पुत्रा धार्मिकाश्चैव न च वह्निक्रियाक्रमः ॥११
यत्र तत्र कुले जातो बली सर्वेश्वरः कलौ ।
सर्वेभ्य एव वर्णेभ्यो नरः कन्योपजीविनः ॥१२
येन तेनैव योगेन द्विजाविर्दीक्षितः कलौ ।
यैव सैव च विप्रेन्द्राः प्रायश्चित्तक्रिया कलौ ॥१३
सर्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्वचनं द्विजाः ।
देवताश्च कलौ सर्वाः सर्वः सवस्य चाऽऽश्रमः ॥१४

मुनिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब आप कलि का स्वरूप विस्तार पूर्वक बताने के योग्य हैं। इसमें चारपादों वाला भगवान् धर्म विकलता को प्राप्त हो जाता है ॥८॥ श्री व्यासदेव जी ने कहा—हे विप्रो ! हे अनघो ! कलियुग का स्वरूप जो आप मुझसे पूछ रहे हो उसको संक्षेप से जो महत्तर होता है उसे समझ लो ॥६॥ कलियुग में वर्ण-आश्रम और आचार वाली मनुष्यों की प्रवृत्ति नहीं हुआ करती है और वह साम-ऋक् और यजुर्वेद के निष्पादन के हेतु वाली नहीं हुआ करती है ॥१०॥ इस

कलियुग में विवाह धर्म नहीं माने जाते हैं और विलासिता का ही एक उपभोग सामग्री समझते हैं। शिष्य लोग गुरु की आज्ञा में संस्थित नहीं होते हैं पुत्रगण धर्म के मार्ग में रहने वाले नहीं हैं और कलि में अग्निहोत्र आदि क्रिया का भी कहीं कोई क्रम नहीं हुआ करता है ।।११।। जहाँ सदा किसी भी कुल में समुत्पन्न होने वाला मनुष्य इस कलि में जो बलवान् होता है वही सर्वेश्वर हुआ करता है। सभी वर्णों के लिये मनुष्य कन्योपजीवी होते हैं। जिस किसी भी योग से द्विजाति कलियुग से दीक्षित हो जाता है। हे विप्रेन्द्रो ! इस कलियुग में जो ही हो वह ही प्रायश्चित्त की क्रिया हुआ करती है या मान ली जाया करती है ।।१३।। हे द्विजो ! इस कलियुग में जो भी कुछ कहीं कहा या लिखा होता है तथा कोई किसी का वचन होता है वही शास्त्र मान लिया जाता है। कलियुग में सभी देवता हैं और सभी कुछ सबका आश्रय होता है। तात्पर्य यह है कि वास्तविक आश्रय किसी का नहीं होता है ।।१४।।

उपवासस्तथाऽऽयासो वित्तोत्सर्गस्तथा कलौ ।
धर्मो यथाभिरुचितैरनुष्ठानैरनुष्ठित ।।१५
वित्तेन भविता पुंसा स्वल्पेनैव मद कलौ ।
स्त्रीणा रूपमदश्चैव केशैरेव भविष्यति ।।१६

सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्रे चोपक्षय गते ।
कलौ स्त्रियो भविष्यन्ति तदा केशैरलंकृता. ।।१७
परित्यक्ष्यन्ति भर्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रिय ।
भर्ता भविष्यन्ति कलौ वित्तवानेव योषिताम् ।।१८

यो यो ददाति बहुल स स स्वामी तदा नृणाम् ।
स्वामित्वहेतुसम्बन्धो भविताऽभिजनस्तदा ।।१९
गृहान्ता द्रव्यसघाता द्रव्यान्ता च तथा मतिः ।
अर्थाश्चात्मोपभोगान्ता भविष्यन्ति तदा कलौ ।।२०

स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहा ।
अन्यायावाप्तवित्तेषु पुरुषेषु स्पृहालव. ।।२१

उपवास तथा आयास और वित्त का उत्सर्ग कलियुग में होता है। अपनी रुचि के अनुसार अनुष्ठानों से अनुष्ठित ही धर्म हुआ करता है ॥१५॥ कलियुग में बहुत थोड़े से ही धन से मद हो जाता है। स्त्रियों को रूप का मद केशों से ही होगा ॥१६॥ इस कलियुग में स्वर्ण-मणि और रत्न आदि और वस्त्रों के उपक्षीण हो जाने पर उस समय में स्त्रियाँ केवल अपने केशों से ही अलंकृत हुआ करेंगी ॥१७॥ स्त्रियाँ वित्त से हीन अपने स्वामी को त्याग देंगी और नारियों का भर्त्ता कलि में धनवान् ही हुआ करेंगे ॥१८॥ जो-जो भी अधिक दिया करता है वही उस कलि के समय में मनुष्यों का स्वामी होता है। उस समय में स्वामित्व के हेतु का सम्बन्ध अभिजन ही होगा ॥१९॥ द्रव्य के संघात गृहों के अन्त कर देने वाले होंगे तथा मति द्रव्यों को समाप्त कर देने वाली हो जायगी। जो भी अर्थ होंगे वे वर्णन में सब उपभोग में समाप्त होने-वाले हो जायँगे ॥२०॥ कलियुग में स्त्रियाँ सभी ललित स्पृहा की रखने वाली स्वैरिणी हो जायँगी अर्थात् आजाद स्वभाव वाली और दुराचार में निरत हो जाँयगी। पुरुषों के भी अन्याय से वित्त प्राप्त करने में चित्त हो जायँगे और सर्वदा ऐसी ही स्पृहा उनके मन में रहा करेगी ॥२१॥

अभ्यर्थितोऽपि सुहृदा स्वार्थहानिं तु मानवः।
पणस्यार्धार्धमात्रेऽपि करिष्यति तदा द्विजाः ॥२२
सदा सपौरुषं चेतो भावि विप्र तदा कलौ।
क्षीरप्रदानसंबन्धि भाति गोषु च गौरवम् ॥२३
अनावृष्टिभयात्प्रायः प्रजाः क्षुद्भयकातराः।
भविष्यन्ति तदा सर्वा गगनासक्तदृष्टयः ॥२४
मूलपर्णफलाहारास्तापसा इव मानवाः।
आत्मानं घातयिष्यन्ति ततोऽवृष्ट्याऽभिदुःखिताः ॥२५
दुर्भिक्षमेव सततं सदाक्लेशमनीश्वराः।
प्राप्स्यन्ति व्याहतसुखं प्रमादान्मानवाः कलौ ॥२६
अस्नातभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजनम्।
करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिण्डोदकक्रियाम् ॥२७

लोलुपा ह्रस्वदेहाश्च बह्वन्नादनतत्परा· ।
बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥२८

हे द्विजो ! उस कलियुग के समय में सुहृदो के द्वारा अभ्यर्थित भी मानव पण के अर्द्धार्द्ध मात्र में भी स्वार्थ की हानि करेगा ॥२२॥ हे विप्र ! उस कलियुग के समय मे सदा पौरुष से युक्त चित्त होगा और गौओ मे दूध के प्रदान से सम्बन्ध रखने वाला ही गौरव होता है अर्थात् धार्मिक दृष्टि से गौ की मान्यता कोई नही करेगा ॥२३॥ वर्षा के न होने के भय से प्रजा सर्वदा ही भूखो मरने के डर से कातर रहा करेगी । उस कलियुग के समय मे सभी प्रजाजन गगन मे ही आसक्त दृष्टि वाले रहा करेंगे और वृष्टि होने की प्रतीक्षा करते रहेगे ॥२४॥ मानवगण अन्न के अभाव होने के कारण मूल-पर्ण (पत्ते) और फलो के आहार करने वाले तापसो के ही समान रहा करेंगे । अवृष्टि के होने से अत्यन्त अभिदु खित होते हुए उस कलि मे अपने आप का घात अर्थात् प्राण त्याग किया करेंगे ॥२५॥ कलियुग मे प्रमाद के कारण मनुष्य निरन्तर अकाल को तथा सदा ही क्लेश को मुख को व्याहृत करके असमर्थ होते हुए प्राप्त किया करेंगे ॥२६॥ कलि के प्राप्त हो जाने पर मनुष्य विना ही स्नान किये भोजन करने होकर अग्नि-देवता तथा अतिथियो का भी पूजन नही करेंगे और पिण्डोदक की भी कोई क्रिया नही करेंगे ॥२७॥ कलियुग मे स्त्रियाँ-अत्यन्त लालची-छोटे कद वाली बहुत-से अन्न को खाने मे तत्पर-अधिक सन्तति वाली और अल्प भाग्य वाली होंगी ॥२८॥

उभाभ्यामथ पाणिभ्या शिर कण्डूयन स्त्रिय. ।
कुर्वंत्यो गुरुभर्तृणामाज्ञा भेत्स्यन्त्यनावृता. ॥२९
स्वपोषणपरा. क्रुद्धा देहसस्कारवर्जिता ।
परुषानृतभाषिण्यो भविष्यन्ति कलौ स्त्रिय ॥३०
दु शीला दुष्टशीलेषु कुर्वंत्य सतत स्पृहाम् ।
असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गना ॥३१
वेदादान करिष्यन्ति वडवाश्च तथाऽव्रता. ।
गृहस्थाश्च न होष्यन्ति न दास्यन्त्युचितान्यपि ॥३२

भवेयुर्वनवासा वै ग्राम्याहारपरिग्रहाः ।
भिक्षवश्चापि पुत्रा हि स्नेहसंबन्धयन्त्रकाः ।।३३
अरक्षितारो हर्तारः शुल्कव्याजेन पार्थिवाः ।
हारिणो जनवित्तानां संप्राप्ते च कलौ युगे ।।३४
यो योऽश्वरथनागाढ्यः स स राजा भविष्यति ।
यश्च यश्चाबलः सर्वः स स भृत्यः कलौ युगे ।।३५

स्त्रियाँ अपने दोनों हाथों से अपने मस्तक को करती हुई अनावृत होकर गुरु-भर्त्ता की आज्ञा का भेदन किया करेंगी ।।२९।। कलियुग में स्त्रियाँ अपने पोषण में ही परायण-क्रुद्ध-देह के संस्कार से रहित-कठोर और मिथ्या भाषण करने वाली होंगी ।।३०।। बुरे शील स्वभाव वाली और दुष्ट शील वालों में निरन्तर स्पृहा करती हुई कुलाङ्गनाएं भी पुरुषों के विषय में असत् चरित्र वाली होंगी ।।३१।। बड़वा तथा बिना व्रत वाले गृहस्थ लोग हवन नहीं किया करेंगे और जो उचित पदार्थ होंगे उनको भी नहीं दिया करेंगे ।।३२।। ग्राम्य आहार के परिग्रह वाले वन में निवासी भिक्षुगण होंगे और पुत्र स्नेह के सम्बन्ध यन्त्रक मात्र होंगे ।।३३।। कलियुग में राजा शुल्क के व्याज (मिष) से धन के हरण करने वाले तथा प्रजा की रक्षा न करने वाले होकर मनुष्यों के वित्त का अपहरण किया करेंगे ।।३४।। जिस जिसके समीप में अश्व और रथ होंगे वही-वही राजा हो जायगा और कलियुग के सम्प्राप्त होने पर जो जो भी मनुष्य बलहीन होगा वही वही सब भृत्य अर्थात् परिचर्या करने वाला हो जायगा ।।३५।।

वैश्याः कृषिवणिज्यादि संत्यज्य निजकर्म यत् ।
शूद्रवृत्त्या भविष्यन्ति कारुकर्मोपजीविनः ।।३६
भैक्ष्यव्रतास्तथा शूद्राः प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमाः ।
पाखण्डसंश्रयां वृत्तिमाश्रयिष्यन्त्यसंस्कृताः ।।३७
दुर्भिक्षकरपीडाभिरतीवोपद्रुता जनाः ।
गोधूमान्नयवान्नाद्यान्देशान्यास्यन्ति दुःखिताः ।।३८

वेदमार्गे प्रलीने च पाखण्डाढ्ये ततो जने ।
अधर्मवृद्ध्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ॥३९
अशास्त्रविहितं घोरं तप्यमानेषु वै तपः ।
नरेषु नृपदोषेण बालमृत्युर्भविष्यति ॥४०
भविनी योषिता सूतिः पञ्चषट्सप्तवार्षिकी ।
नवाष्टदशवर्षाणां मनुष्याणां तथा कलौ ॥४१
पलितोद्गमश्च भविता तदा द्वादशवार्षिकः ।
न जीविष्यति वै कश्चित्कलौ वर्षाणि विंशतिम् ॥४२

वैश्य वर्ण वाले मनुष्य कृषि और वाणिज्य तथा पशुओं का पालन आदि अपने कर्मों का परित्याग करके कारु (दस्तकारी द्वारा कारीगर का काम करने वाले) के कर्मों से जीविका करने वाले शूद्रों की वृत्ति से युक्त हो जायँगे ॥३६॥ शूद्रगण भिक्षा से प्राप्त अन्न के खाने वाले साधु सन्यासियों के चिह्नों के धारी-अधम बहुत तरह के पाखण्ड करने वाले संस्कारों से हीन वृत्ति का आश्रय ग्रहण करेंगे ॥३७॥ दुर्भिक्षों (अकाल) और करों (टैक्स) की पीड़ाओं से महान् दुःखित एवं उपद्रवों से युक्त मनुष्य अतीव पीड़ित होते हुए गेहूँ यवान्न आदि को अन्य देशों को ले जायगें ॥३८॥ वेदों के बनाये मार्ग के प्रलीन होजाने तथा मनुष्यों के पाखण्डों से संयुत होने पर अधर्म की वृद्धि हो जायगी और धर्म के अभाव तथा अधर्म के बढ़ जाने से लोगों की आयु बहुत ही कम हो जाया करेगी ॥३९॥ जिसका कहीं भी शास्त्रों में विधान नहीं है ऐसा ही महान् घोर तप मनुष्य कलियुग में करेंगे और नृपों के दोषों के होने से बालकों की बहुत छोटी अवस्था में मृत्यु हो जाया करेगी ॥४०॥ पाँच छै और सात वर्ष की स्त्रियों के ही सन्तति का प्रसव होने लग जायगा तथा मनुष्यों की इस घोर कलियुग में नौ-आठ तथा दश वर्ष की आयु हुआ करेगी ॥४१॥ जब मनुष्य बारह वर्ष का होगा तभी उसके बाल सफेद हो जाया करेंगे अर्थात् वृद्धता के चिह्न उत्पन्न हो जाँयगे इस घोर कलियुग में मनुष्य कोई भी बीस वर्ष तक जीवित नहीं रहा करेगा ॥४२॥

अल्पप्रज्ञा वृथालिङ्गा दुष्टान्तःकरणाः कलौ ।
यतस्ततो विनश्यन्ति कालेनाल्पेन मानवाः ॥४३

यदा यदा हि पाखण्डवृत्तिरत्रोपलक्ष्यते ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४४
यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम् ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४५

प्रारम्भाश्चावसीदन्ति यदा धर्मकृतां नृणाम् ।
तदाऽनुमेयं प्राधान्यं कलेर्विप्रा विचक्षणैः ॥४६
यदा यदा न यज्ञानामीश्वरः पुरुषोत्तमः ।
इज्यते पुरुषैर्यज्ञैस्तदा ज्ञेयं कलेर्बलम् ॥४७

न प्रीतिर्वेदवादेषु पाखण्डेषु यदा रतिः ।
कलेर्वृद्धिस्तदा प्राज्ञैरनुमेया द्विजोत्तमाः ॥४८
कलौ जगत्पतिं विष्णुं सर्वस्रष्टारमीश्वरम् ।
नार्चयिष्यन्ति भो विप्राः पाखण्डोपहता नराः ॥४९

कलि में मनुष्य बहुत ही कम बुद्धि वाले निरर्थक चिह्नों के धारी तथा दूषित अन्तःकरण वाले हो जाँयगे। मनुष्य जहाँ तहाँ थोड़े ही समय में विनष्ट हो जाँयगे ॥४३॥ जब-जब यहाँ पर पाखण्डों से परिपूर्ण वृत्ति दिखलाई देवे तभी-तभी विचक्षण पुरुषों को इस कलियुग की वृद्धि होने का अनुमान लगा लेना चाहिए ॥४४॥ जिस-जिस समय में वेदों के निर्दिष्ट मार्गों के अनुसरण करने वाले सत्पुरुषों की हानि दिखलाई देवे उसी-उसी समय में कुशल और बुद्धिमान्-पुरुषों को अनुमान कर लेना चाहिए कि अब कलियुग का बढ़ाव होता चला आ रहा है ॥४५॥ हे विप्रो ! धर्म करने वाले मनुष्यों के प्रारम्भ जब अवसन्नता को प्राप्त होते हैं तभी यह अनुमान विचक्षण पुरुषों को लगा लेना चाहिए कि कलियुग की प्रधानता हो रही है ॥४६॥ जब-जब यज्ञों के अधिष्ठाता पुरुषोत्तम प्रभु का मनुष्यों के द्वारा यजन नही किया जाया करता है तभी-तभी इस घोर कलियुग के बल को वृद्धि का ज्ञान कर लेना चाहिए ॥४७॥ हे

द्विजोत्तमो ! जिस समय मे वेदो के पादो मे मनुष्यो की प्रीति न होवे और जब पाखण्डपूर्ण कर्मों मे लोग रति करने लगेंगे उसी समय मे प्राज्ञ पुरुषो को कलि की वृद्धि का होना समझ लेना चाहिए ॥४८॥ कलियुग मे सभी का सृजन करने वाले जगत् के स्वामी ईश्वर भगवान् विष्णु का हे विप्रो ! पाखण्डो से उपहृत मनुष्य अभ्यर्चन नही किया करेंगे ॥४९॥

किं देवैः किं द्विजैर्वेदैः किं शौचेनाम्बुजल्प(न्म)ना ।
इत्येवं प्रलपिष्यन्ति पाखण्डोपहृता नराः ॥५०
अल्पवृष्टिश्च पर्जन्य स्वल्प सस्यफल तथा ।
फल तथाऽल्पसार च विप्राः प्राप्ते कलौ युगे ॥५१
जानुप्रायाणि वस्त्राणि शमीप्राया महीरुहा. ।
शूद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥५२
अणुप्रायाणि धान्यानि आजप्राय तथा पयः ।
भविष्यति कलौ प्राप्त औशीर चानुलेपनम् ॥५३
श्वश्रूश्वशुरभूयिष्ठा गुरवश्च नृणा कलौ ।
शालाद्याहारिभार्याश्च सुहृदो मुनिसत्तमाः ॥५४
कस्य माता पिता कस्य यदा कर्मात्मक. पुमान् ।
इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरानुगता नराः ॥५५
वाङ्मन.कायजैर्दोषैरभिभूता. पुनः पुनः ।
नरा पापान्यनुदिन करिष्यन्त्यल्पमेधसः ॥५६

पाखण्डो से उपहृत हुए मनुष्य कलियुग मे इन देवो के पूजन से क्या लाभ है–द्विजो के अर्चन क्यो किये जावें और वेदो से क्या फल होता है तथा जल के द्वारा शुद्धि करना अर्थात् हाथ पैर धोने और स्नानादि करने का कार्य व्यर्थ ही है इनसे क्या लाभ होता है'–इस प्रकार से प्रलाप किया करेंगे ॥५०॥ मेघ बहुत ही थोडी वृष्टि करने वाले होंगे तथा फसल भी बहुत कम फलो के देने वाली हो जायगी हे विप्रो ! कलियुग के प्राप्त हो जाने पर फल भी बहुत ही अल्पसार वाला होगा ॥५१॥ प्राय घुटनो तक वस्त्र हुआ करेंगे और शमी (छोकर) वृक्ष ही अधिकता से होंगे–सभी

वर्णों में शूद्रता भाव हो जायंगे—ऐसा ही सब ओर से ह्रास इस कलियुग में होगा ॥५२॥ सभी धान्य अणुप्राय अर्थात् कणों के रूप वाले होंगे और दूध बहुधा बकरियों का-सा होगा । इस कलियुग के आ जाने पर उशीर का ही अनुलेपन हो जायगा ॥५३॥ कलि में मनुष्यों के गुरुवर्ग वे ही होंगे जिनमें सास-श्वशुर की प्रधानता होगी । हे मुनिश्रेष्ठो ! कलियुग में शालादि के आहरण करने वाली भार्या वाले लोग ही सुहृद हुआ करेंगे ॥५४॥ जब मनुष्य कर्मात्मक अर्थात् काम धाम सँभालने वाले हो जाँयगे तब यही कहा करेंगे कि कौन किसकी मात्य है और कौन किसका पिता है अर्थात् माँ-बाप कुछ भी नहीं हैं—इसी प्रकार से ससुराल में श्वशुर के ही अनुगामी होकर मनुष्य उदाहरण दिया करेंगे अर्थात् अपने मुँह से कहेंगे ॥५५॥ बारम्बार मन-वाणी और शरीर से समुत्पन्न दोषों से अभिभूत हुए मनुष्य अल्प बुद्धि वाले होने के कारण से आधे दिन पाप कर्मों को ही किया करेंगे ॥५६॥

निःसत्यानामशौचानां निर्ह्रीकाणां तथा द्विजाः ।
यद्यद्दुःखाय तत्सर्वं कलिकाले भविष्यति ॥५७

निःस्वाध्यायवषट्कारे स्वधास्वाहाविवर्जिते ।
तदा प्रविरलो विप्रः कश्चिल्लोके भविष्यति ॥५८

तत्राल्पेनैव कालेन पुण्यस्कन्धमनुत्तमम् ।
करोति यः कृतयुगे क्रियते तपसा हि यः ॥५९

कस्मिन्कालेऽल्पको धर्मो ददाति सुमहाफलम् ।
वक्तुमर्हस्यशेषेण श्रोतुं वाञ्छा प्रवर्तते ॥६०

धन्ये कलौ भवेद्विप्रास्त्वल्पक्लेशैर्महत्फलम् ।
तथा भवेतां स्त्रीशूद्रौ धन्यौ चान्यनिबोधत ॥६१

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत् ।
द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ ॥६२

तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः ।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलौ साध्विति भाषितुम् ॥६३

हे द्विजगण ! सत्य से सर्वथा रहित अर्थात् सदा मिथ्या भाषण और व्यवहार करने वाले—शुचिता (पवित्रता) से हीन अर्थात् सर्वदा अपवित्र लज्जा से हीन मनुष्यों के लिये जो-जो भी अत्यन्त दुःख के पाने के लिये हो सकते हैं वे सभी कलि काल में होंगे ॥५७॥ स्वाध्याय (वेदों का पठन-पाठन) से रहित-वषट् कार से हीन और स्वाहा तथा स्वधा वर्जित इस कलियुग में कोई भी विरला विप्र होगा। तात्पर्य यह है कि बहुत कठिनाई से इस कलि में ऐसा विरला विप्र दिखाई दिया करेगा जो अपने कर्म धर्म में निष्ठा रखने तथा उसे करने वाला हो क्योंकि कलियुग एक ऐसा भीषण युग है जब कहीं भी होम-अर्चन-वेदाध्ययन-श्राद्ध आदि नहीं हुआ करेंगे ॥५८॥ किन्तु इस युग में एक ही विशेषता होगी कि कृतयुग में जो बड़े लम्बे समय तक तप करके किया करता है उस उत्तम पुण्य स्कन्ध को मनुष्य बहुत ही थोड़े समय में कर लिया करता है ॥५९॥ मुनियों ने कहा—किस समय में बहुत थोड़ा सा ही किया हुआ धर्म महान् फल का देने वाला हुआ करता है—यह सब आप अब बतलाने के योग्य होते हैं। हम लोगों की यह श्रवण करने के लिये बड़ी भारी इच्छा हो रही है ॥६०॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे विप्र ! इस दृष्टि से यह कलियुग बड़ा ही धन्य है कि बहुत थोड़े ही क्लेशों को सहन करने से बड़ा भारी फल इसमें प्राप्त हो जाया करता है और इसमें स्त्री एवं शूद्र भी परम धन्य हो जाते हैं। उसको भी समझ लो ॥६१॥ दश वर्षों में जो कृतयुग में करने पर—एक वर्ष के समय में त्रेता में जिसके करने पर और द्वापर में एक मास तक करने पर जो पुण्य फल अर्जित हुआ करता है वह इस कलि में एक ही अहोरात्र के समय में करने से स्वल्प काल में ही हो जाया करता है ॥६२॥ हे द्विजो ! तपस्या का ब्रह्मचर्य का और जपादि का जो फल होता है उसको मनुष्य कलि में साधु भाषण से ही प्राप्त कर लिया करता है ॥६३॥

ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्य केशवम् ॥६४

धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरुषः कलौ ।
स्वल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कलौ ॥६५

व्रतचर्यापरैर्ग्राह्या वेदाः पूर्वं द्विजातिभिः ।
ततस्तु धर्मसंप्राप्तैर्यष्टव्यं विधिवद्धनैः ॥६६
वृथा कथा वृथा भोज्यं वृथा स्वं च द्विजन्मनाम् ।
पतनाय तथा भाव्यं तैस्तु संयतिभिः सह ॥६७

असम्यक्करणे दोषास्तेषां सर्वेषु वस्तुषु ।
भोज्यतेयादिकं चैषां नेच्छाप्राप्तिकरं द्विजाः ॥६८

पारतन्त्र्यात्समस्तेषु तेषां कार्येषु वै ततः ।
लोकान्क्लेशेन महता यजन्ति विनयान्विताः ॥६९
द्विजशुश्रूषणेनैव पाकयज्ञाधिकारवान् ।
निजं जयति वै लोकं शूद्रो धन्यतरस्ततः ॥७०

सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञों के द्वारा यजन करने से, द्वापर में अर्चन से जो फल प्राप्त होता है वह सभी फल इस कलियुग में केवल शुद्ध मन से भगवान् केशव के कीर्त्तन करने से ही हो जाया करता है ॥६४॥ कलियुग में पुरुष अत्यधिक धर्म का उत्कर्ष प्राप्त कर लेता है तथा धर्म के ज्ञाता पुरुप बहुत ही थोड़े से आयास के द्वारा धर्म की उत्कृष्ट साधना कर लिया करते हैं। इसीलिये मैं इस कलियुग में तुष्ट होता हूँ ॥६५॥ सबसे पूर्व द्विजातियों के द्वारा ब्रह्मचर्य में तत्पर होकर वेदों का ग्रहण करना चाहिए। इसके पश्चात् धर्म से न्यायोचित रीतियों के द्वारा प्राप्त धनों से विधि विधान के साथ यजन करना चाहिए ॥६६॥ कथा वार्त्ता का करना व्यर्थ ही है—विप्रातिथियों को भोजन कराना भी सब निरर्थक है तथा द्विजन्माओं को दान देने का कोई फल नहीं होता है—ऐसा विचारना संयतिथियों के साथ केवल पतन के ही लिये हुआ करता है ॥६७॥ उनकी सभी वस्तुओं में भली भाँति न करने में दोष ही दोष हुआ करते हैं। हे द्विजो ! इन लोगों का भोज्य और पेय आदि इच्छाओं की प्राप्ति के करने वाले नहीं होते हैं ॥६८॥ उन लोगों के समस्त कार्यों

मे परतन्त्रता से अर्थात् विवशता प्राप्त हो जाने पर ही लोग महान् क्लेश से विनयान्वित होकर लोकों का अर्चन किया करते हैं ।।६६।। पाक यज्ञो के करने का अधिकार वाला शूद्र द्विजो की शुश्रूषा के द्वारा ही अपने लोक पर विजय प्राप्त कर लिया करता है अतएव अन्य द्विजातियो की अपेक्षा वह शूद्र अधिक धन्य होता है ।।७०।।

भक्ष्याभक्ष्येषु नाशा(स्था)स्ति येषा पापेषु वा यत. ।
नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्वितीरितम् ।।७१
स्वधर्मस्याविरोधेन नरैर्लभ्य धन सदा ।
प्रतिपादनीय पात्रेषु यष्टव्य च यथाविधि ।।७२
तस्यार्जने महान्क्लेश पालनेन द्विजोत्तमा ।
तथा सद्विनियोगाय विज्ञेय गहन नृणाम् ।।७३
एभिरन्यैस्तथा क्लेशै पुरुषा द्विजसत्तमा ।
निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ।।७४
योषिच्छुश्रूषणाद्भर्तु. कर्मणा मनसा गिरा ।
एतद्विषयमोप्नोति तत्सालोक्य यतो द्विजा ।।७५
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा ।
तृतीय व्याहृत तेन मया साध्विति योषित ।।७६
एतद्व. कथित विप्रा यन्निमित्तमिहाऽऽगता. ।
तत्पृच्छ व यथाकाममह वक्ष्यामि व स्फुटम् ।।७७

हे मुनिशार्दूला ! भक्ष्यो और अभक्ष्यो मे अथवा जिनके पापो में आशा नही होती है और न कोई नियम ही होना है इसी कारण से यह शूद्र साधु पुरुष इस कलिकाल मे कहा गया है ।।७१।। मनुष्यो को वही धन प्राप्त करना चाहिए जो सदा धर्म का विरोध न करने से होता है । उसी धन के द्वारा पात्र अर्थात् सुयोग्य एव अधिकारी पुरुषो को दान करके धर्म का प्रतिपादन करना चाहिए और विधि पूर्वक यजन भी करना आवश्यक है ।।७२।। हे द्विजोत्तमो ! ऐसे धर्म के समाचरण द्वारा धन के अर्जन करने मे महान् क्लेश होता है तथा उसके पालन अर्थात् रक्षा करने मे भी क्लेश हुआ करता है फिर मनुष्यो को उस धन का

भली भाँति विनियोग करना अर्थात् उचित रीति से सत्पात्रों को देना बहुत ही गहन कार्य है ऐसा जान लेना चाहिए ॥७३॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! मनुष्य इन तथा ऐसे ही अन्य क्लेशों से क्रम से प्राजापत्यादिक अपने लोकों पर विजय प्राप्त कर लिया करते हैं ॥७४॥ हे द्विजों ! स्त्री मन-वाणी और कर्म से अपने स्वामी की शुश्रूषा के द्वारा इस विषय को प्राप्त कर लिया करती है क्योंकि वही उसकी सालोक्य मुक्ति है ॥७५॥ पुरुष उनको जिस प्रकार से अत्यधिक महान् क्लेश से भी नहीं प्राप्त कर पाता है उसको स्त्री केवल अपने भर्त्ता की सच्चे मन से सेवा करके प्राप्त कर लिया करती हैं । इसी कारण से स्त्री का यह तीसरा साधु धर्म मैंने वर्णन करके भली भाँति बतला दिया है ॥७६॥ जिस निमित्त से आप लोग यहाँ पर समागत हुए हैं । वह सब वतला दिया है । अव आप लोग अपनी इच्छा के अनुसार जो कुछ भी मुझसे पूछना हो उसे पूछ लीजिए । मैं स्पष्ट रूप से वह सभी आपको वतलाऊँगा ॥७७॥

अल्पेनैव प्रयत्नेन धर्मः सिध्यति वै कलौ ।
नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिताखिलकिल्विषैः ॥७८
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परैर्मुनिसत्तमाः ।
तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुश्रूषयैव हि ॥७९
ततस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतमं मतम् ।
धर्मसंराधने क्लेशो द्विजातीनां कृतादिषु ॥८०
तथा स्वल्पेन तपसा सिद्धिं यास्यन्ति मानवाः ।
धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः ॥८१
भवद्भिर्यदभिप्रेतं तदेतत्कथितं मया ।
अपृष्टेनापि धर्मज्ञाः किमन्यत्क्रियतां द्विजाः ॥८२

इस कलियुग में अपनी आत्मा के गुणरूपी जलों से समस्त किल्बिषों के धो डालने वाले मनुष्यों के द्वारा बहुत स्वल्प प्रयत्न के द्वारा धर्म सिद्ध हो जाया करता है ॥७८॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! द्विजों की सेवा में परायण रहने वाले शूद्रों के द्वारा और स्त्रियों के द्वारा अपने भर्त्ता की शुश्रूषा के द्वारा अनायास से ही धर्म की सिद्धि हो जाया करती है ॥७९॥ इसीलिये

उससे ये त्रितय अर्थात् तीनों कार्य मुझे परम धन्यतम प्रतीत होते हैं। कृतादि युगों में द्विजातियों के धर्मों की मराधना करने में महान् क्लेश होता है ॥८०॥ हे मुनियो ! इस युग में अत्यन्त अल्प धर्म से ही मानव सिद्धि को प्राप्त कर लेंगे। जो पुरुष धर्म का युगान्त में समाचरण करेंगे वे धन्य हैं ? आपका जो भी अभिप्रेत प्रश्न था उसका उत्तर एवं वर्णन मैंने भली-भाँति कर दिया है और जिसको आप लोगों ने जो मुझसे नहीं भी पूछा था वह भी मैंने बतला दिया है। हे धर्म के ज्ञाता द्विजो ! अब अन्य क्या करू ? ॥८१-८२॥

---:*:---

व्यासमुनिसंवाद में द्वापरयुगान्तकथन

आसन्नं विप्रकृष्टं वा यदि कालं न विद्महे।
ततो द्वापरविध्वंसं युगान्तं स्पृहयामहे ॥१
प्राप्ता वयं हि तत्कालमनया धर्मतृष्णया।
आदद्याम परं धर्मं सुखमल्पेन कर्मणा ॥२
सन्त्रासोद्वेगजननं युगान्तं समुपस्थितम्।
प्रनष्टधर्मं धर्मज्ञ निमित्तं वक्तुमर्हसि ॥३
अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः।
युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ॥४
अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ॥५
श्रोत्रियाः काण्डपृष्ठाश्च निष्कर्माणि हवींषि च।
एकपङ्क्त्यामशिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः ॥६
अशिष्टवन्तोऽर्थपरा नरा मद्यामिषप्रियाः।
मित्रभार्यां भजिष्यन्ति युगान्ते पुरुषाधमाः ॥७

मुनिगण ने कहा—यदि हम आसन्न या विप्रकृष्ट काल को नहीं जानते हैं। इसके अनन्तर हम लोग द्वापर के विध्वंस करने वाले युगान्त

की स्पृहा किया किया करते हैं ॥१॥ इस धर्म की तृष्णा से हम लोग उस काल को प्राप्त हो गये थे और अन्य काल में ही अत्यल्प कर्म से परम धर्म प्राप्त करते हैं ॥२॥ संत्रास और उद्वेग का उत्पन्न करने वाला वह युगान्त समुपस्थित हो गया था। हे धर्म के ज्ञाता ! धर्म के प्रनष्ट होने वाले उसको आप निमित्तों के द्वारा वर्णन करने के योग्य होते हैं ॥३॥ श्री व्यासदेव जी ने कहा—युगान्त में पार्थिव लोग प्रजाजनों की सुरक्षा करने वाले और वलिभाग के अपहरण करने वाले एवं अपने ही रक्षण करने में परायण हो जाँयगे ॥४॥ राजा लोग वे ही होंगे जो क्षत्रिय नहीं होंगे—विप्रगण शूद्रों से अपनी जीविका चलाने वाले हो जाँयगे। शूद्र लोग उस युग क्षय में ब्राह्मणों के समान समाचरण करने वाले हो जाँयगे ॥५॥ श्रोत्रिय लोग काण्डु पृष्ठ वाले होगे तथा सब हवियाँ निष्कर्म हो जांयगी। हे मुनिगणो ! युगान्त के समय में सभी लोग एक ही पंक्ति में वैठकर भोजन किया करेंगे ॥६॥ मनुष्य अशिष्टता में परायण-अर्थ में ही संलग्न रहने वाले मद्य तथा मांस से प्यार करने वाले होगे और अधम पुरुष युगान्त में अपने ही मित्रों की भार्याओं का सेवन किया करेंगे ॥७॥

राजवृत्तिस्थिताश्चौरा राजानश्चौरशोलिनः।
भृत्या ह्यनिर्दिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये ॥८
धनानि श्लाघनीयनि सतां वृत्तमपूजितम्।
अकुत्सना च पतिते भविष्यति युगक्षये ॥९
प्रनष्टनासाः पुरुषा मुक्तकेशा विरूपिणः।
ऊनषोडशवर्षाश्च प्रसोष्यन्ति तथा स्त्रियः ॥१०
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः।
प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥११
सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति द्विजा वाजसनेयिकाः।
शूद्राभा वादिनश्चैव ब्राह्मणाश्चान्त्यवासिनः ॥१२
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः।
शूद्रा धर्मं वदिष्यन्ति शाठ्यबुद्ध्योपजीविनः ॥१३

श्वापदप्रचुरत्वं च गवां चैव परिक्षयः ।
साधूनां परिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे ॥१४

चोरी करने के स्वभाव वाले पुरुष ही राजाओं की वृत्ति में स्थित होंगे और राजा भी चोरों जैसे शील स्वभाव के हो जायेंगे युग के क्षय में भृत्यगण जो होंगे वे भी निर्देश किये हुए पदार्थों के भोग करने वाले हो जायेंगे ॥८॥ युग के क्षय में सत्पुरुषों के धन ही श्लाघा करने के योग्य होते हैं और पतित में अपूजित वृत्त (चरित्र) तथा अकुत्सना होगी ॥९॥ प्रनष्ट नासिका वाले केशों के खुले हुए रखने हुए और विरूप धारी तथा षोडश वर्ष से भी कम उम्र वाले पुरुष स्त्रियों का प्रसोषण करेंगे ॥१०॥ युगक्षय में सब जनपद अट्टों के शूल वाले होंगे समस्त चतुष्पथ शिव के शूल वाले होंगे-प्रमदाएँ केशों के शूल वाली अर्थात् केशों के ही आभूषण वाली होंगी ॥११॥ हे द्विजो ! सतवाजसनेयिक लोग ब्रह्म का वाद करेंगे । जो शूद्र की आभा वाले हैं वे ही वाद करने वाले होंगे और ब्राह्मण अन्त्य वासी हो जायेंगे ॥१२॥ शुक्ल दांतों वाले-जिताक्ष-मुण्डित और काषाय वस्त्र धारण करने वाले शूद्र लोग धर्म का वाद किया करेंगे जो कि शाक्य से युक्त बुद्धि द्वारा उपजीवित रहा करते ॥१३॥ संसार में सर्वत्र श्वापदों की प्रचुरता होगी और गौओं का परिक्षय हो जायगा । अन्तगत युग के साधु गणों की एक दम परिवृत्ति हो जायगी । अर्थात् साधुओं में बहुत बड़ा परिवर्तनउन के कर्म धर्मों द्वारा हो जायगा ॥१४॥

अन्यथा मध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्तनिवासिनः ।
निर्ह्रीकाश्च प्रजाः सर्वा नष्टास्तत्र युगक्षये ॥१५
तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः ।
ऋतवो विपरीताश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥१६
तथा द्विहायना दम्याः कलौ लाङ्गलधारिणः ।
चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति ॥१७
सर्वे शूरकुले जाताः क्षमानाथा भवन्ति हि ।
यथा निम्ना प्रजाः सर्वा भविष्यन्ति युगक्षये ॥१८

पितृदेयानि दत्तानि भविष्यन्ति तथा सुताः ।
न च धर्मं चरिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे ॥१६

ऊषरा बहुला भूमिः पन्थानस्तस्करावृताः ।
सर्वे····वाणिकाश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये ॥२०
पितृदायाददत्तानि विभजन्ति तथा सुताः ।
हरणे यत्नवन्तोऽपि लोभादिभिर्विरोधिनः ॥२१

जो अन्त में होने वाले हैं वे मध्य में निवास करेंगे और जो मध्य हैं वे अन्त निवासी होंगे । उस युग के क्षय में सारी प्रजाएँ निर्लज्ज एवं नष्ट हो जांयगी ॥१५॥ श्रेष्ठ द्विज भी अपने तप और यज्ञों के फलों को वेच देने वाले होंगे । इस युगक्षय में सभी ऋतुएँ विपरीत धर्म वाली हो जाँयगी ॥१६॥ कलिकाल में लाङ्गल धारी दो हायन वाले दमन के योग्य होंगे और मेघ विचित्र ढंग से वर्षा करने वाला हो जायगा अर्थात् कहीं समय-असमय पर ज्यादा कम तथा बिल्कुल हीन वर्षा करने वाला होगा । यह सभी घटनाएँ युग के क्षय में होंगी । शूर के कुल में सब क्षमानाथ होते हैं इस युग क्षय में सभी प्रजा के जन निम्न श्रेणी में रहने वाले हो जाँयगे ॥१७-१८॥ जो पितृदेव हैं वे दत्त होंगे और सुत धर्म का आचरण नहीं करेंगे इस निर्गत युग में मानव बिल्कुल धर्म से हीन हो जाँयगे ॥१६॥ बहुधा भूमि ऊषर अर्थात् विना उपज वाली हो जायगी और प्रायः सभी मार्ग तस्करों के द्वारा घिरे हुए होंगे । इस युग क्षय में सब वणिक हो जाँयगे अर्थात् वाणिज्य वृत्ति का ही व्यवहार करने वाले हो जाँयगे ॥२०॥ पुत्रगण पितृ दायाद के दत्त का विभाजन किया करेंगे । लोभ आदि के द्वारा विरोध करने वाले और हरण करने में प्रयत्न शील हो जांयगे ॥२१॥

सौकुमार्ये तथा रूपे रत्ने चोपक्षयं गते ।
भविष्यन्ति युगस्यान्ते नार्यः केशैरलंकृताः २२
निर्वीर्यस्य रतिस्तत्र गृहस्थस्य भविष्यति ।
युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्यासमा रतिः ॥२३

कुशीलानार्यभूयिष्ठा वृथारूपसमन्विता. ।
पुरुषाल्प बहुस्त्रीक तद्युगान्तस्य लक्षणम् ॥२४
बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम् ।
राजचौराग्निदण्डादिक्षीणः क्षयमुपैष्यति ॥२५
अफलानि च सस्यानि तरुणा वृद्धशीलिनः ।
अशीला सुखिनो लोके भविष्यन्ति युगक्षये ॥२६
वर्षासु परुषा वाता नीचाः शर्करवर्षिणः ।
सदिग्ध. परलोकश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥२७
वैश्या इव च राजन्या धनधान्योपजीविन. ।
युगापक्रमणे पूर्व भविष्यन्ति न बान्धवाः ॥२८

इस युग के अन्त मे सौकुमार्य-रूप लावण्य और रत्न आदि सबका उपक्षय हो जाने पर नारियाँ केवल अपने केशो की बनावट करके अलकृत हुआ करेगी ॥२२॥ वीर्य हीन गृहस्थो की उनमे रति हो जायगी इस युगान्तर के समनुप्राप्त होने पर अन्य भार्या के समान रति नही है ॥२३॥ बुरे कुत्सित शील स्वभाव वाले-अधिक नारियां रखने वाले वृथा रूप से समन्वित मनुष्य होंगे पुरुष बहुत कम और स्त्रियो की अधिकता का होना यही युगान्त का लक्षण है ॥२४॥ बहुत अधिक याचना करने वाले लोग हो जायगे । वे परस्पर मे कोई भी किसी को कुछ नही दिया करेगा । राजा-चोर अग्नि आदि के दण्डो से क्षीण हुआ लोक एक दम क्षय को प्राप्त हो जायगा ॥२५॥ सस्य (फसल) फल से हीन होगी और तरुण पुरुषो वृद्धो जैसे शील स्वभाव वाले होंगे । इस युग में जो शील रहित पुरुष हैं वे सुखी होंगे ॥२६॥ वर्षा ऋतु मे कठोर-नीच और शर्करा (धूलि) के वर्षा करने वाली वायु चलेगी और युग क्षय मे परलोक सदिग्ध हो जायगा ॥२७॥ युग के अपक्रमण मे क्षत्रिय लोग वैश्यो के समान धन धान्यो से उपजीविका करने वाले वैश्यो के सदृश हो जायगे । और कोई भी किसी के बान्धव साथ देने वाले नही होंगे ॥२८॥

अप्रवृत्ता प्रपद्यन्ति समया. शपथास्तथा ।
ऋण सविनयभ्र शं युगे क्षीणे भविष्यति ॥२९

भविष्यत्यफलो हर्षः क्रोधश्च सफलो नृणाम् ।
अजाश्चापि निरोत्स्यन्ति पयसोऽर्थे युगक्षये ॥३०

अशास्त्रविहितो यज्ञ एवमेव भविष्यति ।
अप्रमाणं करिष्यन्ति नराः पण्डितमानिनः ॥३१
शास्त्रोक्तस्याप्रवक्तारो भविष्यन्ति न संशयः ।
सर्वः सर्वं विजानाति वृद्धाननुपसव्य वै ॥३२
न कश्चिदकविर्नाम युगान्ते समुपस्थिते ।
नक्षत्राणि वियोगानि न कर्मस्था द्विजातयः ॥३३

चौरप्रायाश्च राजानो युगान्ते समुपस्थिते ।
कुण्डीवृषा नैकृतिकाः सुरापा ब्रह्मवादिनः ॥३४
अश्वमेधेन यक्ष्यन्ते युगान्ते द्विजसत्तमाः ।
याजयिष्यन्त्ययाज्यांस्तु तथाऽभक्ष्यस्य भक्षिणः ॥३५

प्रतिज्ञाएँ-समझौते और शपथ जो भी होंगे वे सब प्रवृत्ति हीन होंगे अर्थात् इनका कोई भी पालन नहीं करेंगे और इन पर गम्भीरता से बिल्कुल भी विचार नहीं करेंगे । इस युग के क्षय के समय में ऋण विनय के साथ भ्रंश हो जायगा ॥२९॥ मनुष्यों का जो हर्ष होगा वह तो निष्फल हुआ करेगा । और जो क्रोध होगा वह सफल हुआ करेगा । युग क्षय में पय के अर्थ में बकरियां भी निरुद्ध हो जाँयगी ॥३०॥ यदि कोई यज्ञ भी करेगा तो वह शास्त्र में विहित पद्धति वाला नहीं होकर चाहे जैसा-तैसा इसी प्रकार से होगा । जो अपने आपको पण्डित होने का मान रखते है वे मनुष्य बिना ही शास्त्र के प्रमाण के करते हैं । ब्राह्मण युग क्षय में शास्त्र के प्रवक्ता नहीं होंगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । वृद्धों की सेवा न कर भी कलियुग में सब सभी कुछ जानने का दावा किया करते हैं ॥३१-३२॥ युगान्त के उपस्थित होने पर कोई भी अकवि अर्थात् कविता न करने वाला अविद्वान् नहीं हुआ करता है अर्थात् सभी कवि बनते हैं । नक्षत्र बिना योग वाले होंगे और द्विजाति वर्ग अपने कर्मों में स्थित नहीं होंगे ॥३३॥ युगान्त के आ जाने पर राजा लोग चौरप्राय

होंगे तथा कुण्डी वृष-नैट्टतिक-सुम्मान करने वाले और पूठ-मूठ ब्रह्म के वाद करने वाले हो जायगे ॥३४॥ युगान्त मे हे द्विजो ! श्रेष्ठ द्विज अश्वमेध यज्ञ का यजन करेंगे और जो यजन न करने वाले होंगे उनको भी यजन करायेंगे तथा अभक्ष्य पदार्थों के भी भक्षण करने वाले हो जायगे ॥ ३५॥

ब्राह्मणा धनतृष्णार्ता युगान्ते समुपस्थिते ।
भो शब्दमभिधास्यन्ति न च कश्चित्पठिष्यति ॥३६
एकशङ्खास्तथा नार्यो गवेधुकपिनद्धका (?) ।
नक्षत्राणि विवर्णानि विपरीता दिशो दश ॥३७
सन्ध्यारागो विदग्धाङ्गो भविष्यति युगक्षये ।
प्रेषयन्ति पितृन्पुत्रा वध्वः श्वश्रूः स्वकर्मसु ॥३८
युगष्वेव निवत्स्यन्ति प्रमदाश्च नरास्तथा ।
अकृत्वाऽग्राणि भोक्ष्यन्ति द्विजाश्चैवाहुताग्नय. ॥३९
भिक्षा बलिमदत्त्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषा. स्वयम् ।
वञ्चयित्वा पतीन्सुप्तान्गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यत. ॥४०
न व्याधितान्नाप्यरूपान्नायतान्नाप्यसूयकान् ।
कृते न प्रतिकर्ता च युगे क्षीणे भविष्यति ॥४१

युगान्त के उपस्थित होने पर ब्राह्मण धन की तृष्णा से आर्त होकर भो शब्द का कहा करेंगे और इनमे कोई भी पढ़ेगा नहीं प्राय विप्रो का समुदाय मूर्ख रहेगा ॥३६॥ तथा नारियाँ एक शङ्ख वाली और गवेधुक पिनद्धक हो जायगी । नक्षत्र निवर्ण होंगे और दशो दिशाएँ भी विपरीत हो जायगी ॥३७॥ युगक्षय के समय सन्ध्या राग भी विदग्ध अङ्ग वाला हो जायगा । पुत्र अपने कर्मों के करने के लिये अपने माता पिता को और बहुएँ अपनी सासो को प्रेषित किया करेंगे अर्थात् पुत्र पिता पर तथा वधू सास पर हुक्म चलायेंगे ॥३८॥ युगों मे इसी प्रकार से नर तथा प्रमदाएँ रहा करेंगे और अपने बड़ो को न खिलाकर स्वय ही पहिले खा लिया करेंगे और द्विजगण अग्नि मे आहुतियाँ नही देंगे ॥३९॥ पुरुष स्वय भिक्षा तथा बलि न देकर ही भोजन कर लिया करेंगे । स्त्रियाँ अपने पतियों को और सुता को वञ्चित करके अर्थात् धोखा देकर या

छोड़कर अन्यत्र चली जाया करेंगी ॥४०॥ युग के क्षीण होने पर रुग्ण-रूप रहित-उद्यत और असूया से रहित जनों के लिये भी प्रति कर्त्ता न होंगे। अर्थात् इनके प्रति भी कोई सहानुभूति की भावना नहीं रक्खा करेंगे ॥४१॥

एवं विलम्बिते धर्मे मानुषाः करपीडिताः ।
कुत्र देशे निवत्स्यन्ति किमाहारविहारिणः ॥४२
किंकर्माणः किमीहन्तः किंप्रमाणाः किमायुषः ।
कां च काष्ठां समासाद्य प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम् ॥४३
अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुणहीनाः प्रजास्तथा ।
शीलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ति ह्रासमायुषः ॥४४
आत्युर्हान्यावलग्नानिर्वलग्नान्या विवर्णता ।
वैवर्ण्याद्व्याधिसंपीडा निर्वेदो व्याधिपीडनात् ॥४५
निर्वेदादात्मसंबोधः संबोधाद्धर्मशीलता ।
एवं गत्वा परां काष्ठां प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम् ॥४६
उद्देशतो धर्मशीलाः केचिन्मध्यस्थतां गताः ।
किंधर्मशीलाः केचित्तु केचिदत्र कुतूहलाः ॥४७
प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणमिति निश्चिताः ।
अप्रमाणं करिष्यन्ति सर्वमित्यपरे जनाः ॥४८
नास्तिक्यपरताश्चापि केचिद्धर्मविलोपकाः ।
भविष्यन्ति नरा मूढा द्विजाः पण्डितमानिनः ॥४९

मुनिगण ने कहा—इस प्रकार से धर्म के विलम्बित हो जाने पर मनुष्य कर से पीड़ित होते हुए किस देश में निवास किया करेंगे और उनके फिर आहार-विहार क्या होंगे ? ॥४२॥ मनुष्यों के उस समय में कौन से कम होंगे ? क्या वे चाह रखने वाले होंगे ? उनके लम्बाई चौड़ाई का कितना प्रमाण होगा तथा उनकी आयु कितनी हुआ करेगी ? पुनः वे किस दिशा को प्राप्त करके कृतयुग को प्राप्त किया करेंगे ? ॥४३॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—इससे आगे धर्म-कर्म के सर्वथा च्युत हो जाने पर प्रजा गुणों से हीन हो जायगी तथा शील व्यसन को प्राप्त करके

मनुष्य असम आयु को प्राप्त किया करेंगे ॥४४॥ आयु की हानि के होने से अवनम्न और निर्बलता से वर्ण की हीनता हो जाया करेगी । फिर उस विवर्णता से व्याधियों के द्वारा पीडा प्राप्त हुआ करेगी तथा व्याधियों की अत्यधिक पीड़ा के होने पर लोगों को निर्वेद (वैराग्य) हो जायगा । सांसारिक समस्त विषय भोगों से विरक्तता की भावना उत्पन्न हो जायगी ॥४५॥ निर्वेद जब होगा तो उसके हो जाने पर फिर उन मनुष्यों को अपनी आत्मा का ज्ञान उत्पन्न हो जाया करेगा । जब भली भाँति बोध होगा तो उनमें धर्म के करने की स्वभाव शीलता समुत्पन्न हो जाया करेगी । इस रीति से जब वे पराकाष्ठा अर्थात् अन्तिम सीमा तक पहुँच कर ही पुन कृतयुग को प्राप्त किया करेंगे ॥४६॥ कुछ लोग उद्देश से धर्म के शील स्वभाव वाले होंगे और कुछ मध्य स्थिति में प्राप्त होने वाले होंगे । कुछ लोग ऐसे होंगे कि किस धर्म के शील वाले होवें तथा कुछ लोग इस धर्म के विषय में कुतूहल रखने वाले होंगे ॥४७॥ दो ही प्रमाण होते हैं-प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसा निश्चय वाले लोग भी सभी कुछ प्रमाण से रहित ही कर्म किया करेंगे । दूसरे लोग नास्तिकता में परायणता रखने वाले होंगे अर्थात् वे ईश्वर की सत्ता को ही नहीं मानेंगे तथा कुछ लोग धर्म के विलोप करने वाले हो जायेंगे । हे द्विजो ! सभी मनुष्य महान् मूढ और पण्डित मानी अर्थात् अपने आपको पण्डित मानने वाले हो जायेंगे ॥४८-४९॥

तदात्वमात्रश्रद्धेया शास्त्रज्ञानबहिष्कृता ।
दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति नरा ज्ञानविलोपिता. ॥५०

तथा विलुलिते धर्मे जना. श्रेष्ठपुरस्कृता. ।
शुभान्समाचरिष्यन्ति दानशीलपरायणा. ॥५१

सर्वभक्षा स्वयगुप्ता निर्घृणा निरपत्रपा ।
भविष्यन्ति तदा लोके तत्कषायस्य लक्षणम् ॥५२

कषायोपप्लवे काले ज्ञाननिष्ठाप्रणाशने ।
सिद्धिमल्पेन कालेन प्राप्स्यन्ति निरुपस्कृताः ॥५३

विप्राणां शाश्वतीं वृत्तिं यदा वर्णाविरे जनाः ।
संश्रयिष्यन्ति भो विप्रास्तत्कषायस्य लक्षणाम् ।।५४

महायुद्धं महावर्षं महावातं महातपः ।
भविष्यन्ति युगे क्षीणे तत्कषायस्य लक्षणम् ।।५५

विप्ररूपेण यक्षांसि राजानः कर्णवेदिनः ।
पृथिवीमुपभोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ।।५६

वर्त्तमान समय में होने वाले ही पदार्थों में श्रद्धा करने वाले और शास्त्रीय ज्ञान से बहिष्कृत हो जांयगे । ज्ञान से रहित होते हुए मनुष्य बहुत ही दम्भ करने वाले हो जाँयगे ।।५०।। उस तरह से धर्म के विप्लुत हो जाने पर जो मनुष्य श्रेष्ठजनों को आगे करके उनके ही अनुसरण करने वाले होंगे वे दान के शील स्वभाव में परायण होकर शुभ कर्मों का समाचरण किया करेंगे ।।५१।। उस युग के कषाय का लक्षण ही यह है कि मनुष्य सब कुछ भक्ष्याभक्ष्य के खाने वाले स्वयं अपनी रक्षा करने वाले-निर्घृण और निर्लज्ज उस समय में लोक में हो जाया करेंगे ।।५२।। वह काल समय की कषायता से उपप्लुत हो जायगा तो उस काल में ज्ञान की निष्ठा का एकदम विनाश ही हो जायगा । उस अवसर में निरुपष्कृत मनुष्य अल्प काल में ही सिद्धि की प्राप्ति कर लिया करेंगे ।।५३।। जिस समय में नीच मनुष्य विप्रों की शाश्वती वृत्ति का समाश्रय ग्रहण करेंगे तो हे विप्रो ! वही कषाय का लक्षण होता है ।।५४।। युग के क्षीण होने पर महान् युद्ध परस्पर में होंगे, बहुत अधिक वर्षा होगी, महान् वायु का संचार होगा और बहुत ही अधिक सूर्य का ताप होगा, यही युग की क्षीणता के कषाय का लक्षण होगा ।।५५।। युगान्त के उपस्थित होने पर यक्ष विप्रों के रूप वाले होंगे और राजा लोग कानों के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करने वाले हो जाँयगे तथा कानों के कच्चे नृप ही इस सम्पूर्ण पृथ्वी का भोग किया करेंगे ।।५६।।

निःस्वाध्यायवषट्काराः कुनेतारोऽभिमानिनः ।
क्रव्यादा ब्रह्मरूपेण सर्वभक्ष्या वृथाव्रताः ।।५७

मूर्खाश्चार्थपरा लुब्धाः क्षुद्रा क्षुद्रपरिच्छदा. ।
व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धर्माश्च [च] शाश्वतात् ॥५८
हर्तारः पररत्नाना परदारप्रधर्षका. ।
कामात्मानो दुरात्मान. सोपधाः प्रियसाहसा. ॥५९
तेषु प्रभवमाणेषु जनेष्वपि च सर्वश. ।
अभाविनो भविष्यन्ति मुनयो बहुरूपिणः ॥६०
कलौ युगे समुत्पन्ना. प्रधानपुरुषाश्च ये ।
कथयोगेन तान्सर्वान्पूजयिष्यन्ति मानवाः ॥६१
सस्यचोरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः ।
भोक्ष्यभोज्यहराश्चैव करण्डाना च हारिण. ॥६२
चोराश्चोरस्य हर्तारो हन्ता हन्तुर्भविष्यति ।
चौरैश्चोरक्षये चापि कृते क्षेम भविष्यति ॥६३

समस्त ब्राह्मणो का समुदाय राक्षसो जैसा हो जायगा यद्वा राक्षस ही ब्राह्मणो के रूप मे उत्पन्न हो जायगे जो कभी भी वेदो का स्वाध्याय नही करेंगे, वषट्कार से रहित होंगे, बुरे समाज के नायक महान् अभिमान रखने वाले, सभी कुछ का भक्षण करने वाले व्यर्थ व्रतो वाले हो जायगे ॥५७॥ ये लोग महान् मूर्ख-अर्थ ही मे अहर्निश तत्पर रहने वाले-महान् लोभी- क्षुद्र बहुत ही क्षुद्र परिच्छदो (वस्त्रो) वाले व्यवहार से उपकृत अर्थात् सुन्दर व्यवहार न करने वाले तथा परम शाश्वत धर्म मे च्युत हो जायगे ॥५८॥ युगक्षय के समय मे प्राय लोग पराये रत्नो के अपहरण करने वाले-पराई स्त्रियो को प्रधर्षित करने वाले स्वेच्छया कर्म करने वाले अर्थात् स्वेच्छाचारी, दुष्ट आत्मा वाले, अनेक उपधाओ को रखने वाले और अत्यधिक बुरे कर्मों के करने मे साहस वाले हो जायगे ॥५९॥ सभी ओर उन ऐसे जनो के समुत्पन्न होने पर बहुरूपी मुनिगण अभाव वाले हो जायगे ॥६०॥ इस कलियुग मे जो भी समुत्पन्न होगे और जो प्रधान पुरुष होंगे उन सबकी मानव कथा योग के द्वारा पूजा किया करेंगे ॥६१॥ मनुष्य सस्यो (फसलो) की चोरी करने वाले, वस्त्रों का अपहरण करने वाले-भक्ष्य और भोज्य अर्थात् खाने के पदार्थों का

हरण करने वाले-करण्डों को हरने वाले-चौर और चोरों के हर्त्ता-स्वयं हनन करने वाले और हन्ता के भी हनन करने वाले होंगे। चोरों के ही द्वारा चोरों का क्षय होने पर कृतयुग में क्षेम होगा ॥६२-६३॥

निःसारे क्षुभिते काले निष्क्रिये संव्यवस्थिते ।
नरा वनं श्रयिष्यन्ति करभारप्रपीडिताः ॥६४
यज्ञकर्मण्युपरते रक्षांसि श्वापदानि च ।
कीटमूषिकसमर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥६५
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सामग्र्यं चैव बन्धुषु ।
उद्देशेषु नराः श्रेष्ठा भविष्यन्ति युगक्षये ॥६६
स्वयंपालाः स्वयं चौराः प्लवसंभारसंभृताः ।
मण्डलैः संभविष्यन्ति देशे देशे पृथक्पृथक् ॥६७
स्वदेशेभ्यः परिभ्रष्टा निःसारा सह बन्धुभिः ।
नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात् ॥६८
ततः सर्वे समादाय कुमारान्प्रद्रुता भयात् ।
कौशिकीं संतरिष्यन्ति नराः क्षुद्भयपीडिताः ॥६९
अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गांश्च काश्मीरानथ कोशलान् ।
ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः संश्रयिष्यन्ति मानवाः ॥७०

निस्सार क्षुभित काल में निष्क्रिय के संव्यवस्थित होने पर करों के भार से प्रपीड़ित नर वन का संश्रय ग्रहण करेंगे ॥६४॥ यज्ञ कर्म के उपरत हो जाने पर राक्षस-श्वापद-कीट-मूषिक-सर्प मानवों का प्रधर्षित करेंगे ॥६५॥ युगक्षय में क्षेम-सुभिक्ष-आरोग्य और बन्धुओं में समग्रता रखने वाले नर उद्देशों में श्रेष्ठ होंगे ॥६६॥ नृपगण स्वयं ही पालक होंगे और स्वयं ही चोर होंगे तथा प्लव के भार से संभृत होंगे। देश-देश में पृथक् पृथक् मण्डलों के द्वारा संभूत हो जाँयगे। उस समय में काल के परिक्षय के होने से अपने देशों से परिभ्रष्ट होते हुए बन्धुओं के साथ निस्सार होने वाले सब नरा हो जाँयगे ॥६७-६८॥ इसके पश्चात् सब कुमारों को लेकर भय से भाग गये थे। नर भूख के डर से पीड़ित होकर कौशिकी

संतरण करेंगे ॥६६॥ मनुष्य अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्ग-काश्मीर-कोशल और ऋषिकान्त गिरि द्रोणी का समाश्रय लेंगे ॥७०॥

कृत्स्न च हिमवत्पार्श्वं कूल च लवणाम्भस ।
विविध जीर्णपत्र च वल्कलान्यजिनानि च ॥७१
स्वय कृत्वा निवत्स्यन्ति तस्मिन्भूते युगक्षये ।
अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा म्लेच्छगणै· सह ॥७२
नव शून्या नवारण्या भविष्यति वसुधरा ।
अगोप्तारश्च गोप्तारो भविष्यन्ति नराधिपा ॥७३
मृगमत्स्यैर्विहङ्गैश्च श्वापदै सर्पकीटकै ।
मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति मानवा ॥७४
शीर्णपर्णफलाहारा वल्कलान्यजिनानि च ।
स्वय कृत्वा निवत्स्यन्ति यथा मुनिजनस्तथा ॥७५
बीजानामकृतस्नेहा आहता काष्ठशङ्कुभि· ।
अजैडक खरोष्ट्र च पालयिष्यन्ति नित्यश ॥७६
नदीस्रोतांसि रोत्स्यन्ति तोयार्थं कूलमाश्रिता ।
पक्वान्नव्यवहारेण विपणन्त परस्परम् ॥७७

हिमवान् का पार्श्व और क्षार सागर का कूल का आश्रय लेंगे । वहाँ पर अनेक प्रकार के जीर्ण पत्र वल्कल (पेड़ो की छाल) और अजिनों को धारण करके उस भूतयुग क्षय मे निवास करेंगे । मनुष्यो के समुदाय जगलो मे म्लेच्छ गणो के साथ वास किया करेंगे ॥७१-७२॥ यह वसुन्धरा न तो शून्य अरण्यो वाली ही होगी और न सर्व सम्पन्न ही होगी । जो रक्षा के करने वाले नराधिप होंगे वे ही अरक्षक हो जायगे ॥७३॥ मृग-मत्स्य विहङ्ग-श्वापद-सर्प कीटक मधु शाक फल और मूल-इनसे ही मानव गण अपनी उदर पूर्ति किया करेंगे ॥७४॥ शीर्ण पर्ण और फलो के आहार करने वाले तथा वल्कल और अजिनो को धारण करने वाले मनुष्य जैसे मुनिजन हुआ करते हैं वैसे ही निवास करेंगे ॥७५॥ बीजों का स्नेह किये हुए काष्ठ और शङ्कुओ से आहत मनुष्य नित्य ही बकरी-एडका (मेढ़)-गधा और ऊँटो का पालन किया करेंगे ॥७६॥ सब पर

समाश्रित होकर जल के लिये नदियों के सोतों को रोकेंगे तथा पाकाश के व्यवहार के द्वारा परस्पर में विपणी करते हुए रहेंगे ॥७७॥

तनूरुहैर्यथाजातैः समलान्तरसंभृतैः ।
बह्वपत्याः प्रजाहीनाः कुलशीलविवर्जिताः ॥७८
एवं भविष्यन्ति तदा नराश्चाधर्मजीविनः ।
हीना हीनं तथा धर्मं प्रजा समनुवत्स्यति ॥७६
आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिंशद्भविष्यति ।
दुर्बला विषयग्लाना जराशोकैरभिप्लुताः ॥८०
भविष्यन्ति तदा तेषां रोगैरिन्द्रियसंक्षयः ।
आयुःप्रत्ययसंरोधाद्विषयादु[यैरु] परंस्यते ॥८१
शूश्रूषवो भविष्यन्ति साधूनां दर्शने रताः ।
सत्यं च प्रतिपत्स्यन्ति व्यवहारोपसंक्षयात् ॥८२
भविष्यन्ति च कामानामलाभाद्धर्मशीलिनः ।
करिष्यन्ति च संस्कारं स्वयं च क्षयपीडिताः ॥८३
एवं शुश्रूषवो दाने सत्ये प्राण्यभिरक्षणे ।
ततः पादप्रवृत्तो तु धर्मे श्रेयो निपत्स्यते ॥८४

समयान्तर से सभृत तनूरुहों (रोमों) के समान समुत्पन्नों से वहुत अपत्यों (सन्तानों) वाले होंगे किन्तु प्रजाहीन एवं कुल तथा शील से रहित ही हुआ करेंगे ॥७८॥ इसी रीति से उस समय में नर अधर्म जीवी और हीन होंगे एवं हीन ही धर्म को प्रजा ग्रहण कर निवास किया करेगी ॥७६॥ उस समय में मनुष्यों की परमाधिक से अधिक आयु तीस वर्ष ही हुआ करेगी । सभी मनुष्य वहुत ही दुर्बल-विषयों में म्लान और जरा (वार्धक्य) और शोक से अभिप्लुत (घिरे हुए) हो जाँयगे ॥८०॥ वह ऐसा समय होगा कि उनके भीषण रोगों से इन्द्रियों का एकदम संक्षय हो जायगा । आयु के विश्वास के संरोध होने से सभी लोग विषयों के दर्शन करने में रति रखने वाले होते हुए उनकी शुश्रूषा करने की अभिलाषा वाले हो जाँयगे । व्यवहारों के उपसंक्षय से सत्य को प्रतिपन्न

होंगे ॥८१-८२॥ अपनी कामनाओं के लाभ न होने से मानव धर्मशीलता वाले हो जाते ॥८३॥ इस प्रकार से इनके अनन्तर धर्म के पाद के प्रवृत्त होने पर दान में, सत्य में और प्राणियों के अभिरक्षण में शुश्रूषा करने की इच्छा वाले होंगे और फिर श्रेय को प्राप्त करेंगे ॥८४॥

तेषां लब्धानुमानानां गुणेषु परिवर्तताम् ।
स्वादु किमिति विज्ञाय धर्म एव च दृश्यते ॥८५
यथा हानिक्रमं प्राप्तास्तथा वृद्धिक्रमं गताः ।
प्रगृहीते ततो धर्मे प्रपश्यन्ति कृतं युगम् ॥८६
साधुवृत्तिः कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते ।
एक एव तु कालोऽयं हीनवर्णो यथा शशी ॥८७
छन्नश्च तमसा सोमो यथा कलियुगं तथा ।
मुक्तश्च तमसा सोम एव कृतयुगं च तत् ॥८८
अर्थवादः परं ब्रह्म वेदार्थ इति तं विदुः ।
अविविक्तमविज्ञातं दायाद्यमिह धार्यते ॥८९
इष्टवादस्तपो नाम तपो हि स्थविरीकृतः ।
गुणैः कर्माभिनिर्वृत्तिर्गुणाः शुध्यन्ति कर्मणा ॥९०
आशीस्तु पुरुषं दृष्ट्वा देशकालानुवर्तिनी ।
युगे युगे यथाकालमृषिभिः समुदाहृता ॥९१
धर्मार्थकाममोक्षाणां देवानां च प्रतिक्रिया ।
आशिषश्च शिवाः पुण्यास्तथैवाऽऽयुर्युगे युगे ॥९२
तथा युगानां परिवर्तनानि,
चिरप्रवृत्तानि विधिस्वभावात् ।
क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः,
क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः ॥९३

उन लब्ध अनुमान वाले और गुणों में परिवर्तित हुए मानवों को स्वादु क्या है—यह ज्ञान प्राप्त करके धर्म ही दिखलाई दिया करता है ॥८५॥ जिस प्रकार से वे धर्म-कर्म आदि की हानि को प्राप्त हुए थे उसी भाँति से वृद्धि के क्रम को प्राप्त हुए थे। इसके अनन्तर धर्म के प्रगृहीत

किये जाने पर कृतयुग को देखा करते हैं ॥८६॥ कृतयुग में मानवों की साधुवृत्ति हुआ करती है और कषाय में हानि कही जाया करती है। यह एक ही काल होता है जो शशी के समान ही हीन वर्णों वाला हुआ करता है ॥८७॥ तम अर्थात् अन्धकार से छन्न चन्द्रमा जिस प्रकार से वर्ण से हीन हो जाया करता है उसी प्रकार से कलियुग भी सबको छन्न करके अदृष्ट बना देता है। अन्धकार से मुक्त चन्द्रमा जैसे प्रकाशक होता है वैसे ही वह कृतयुग भी होता है ॥८८॥ अर्थवाद परम ब्रह्म ही है और उसको वेदार्थ है—यह जाना करते हैं। यहाँ पर उसको अविविक्त-अविज्ञात और दायाद्य धारण किया जाता है ॥८९॥ जो अपने इष्ट का वाद है वही तप नाम वाला होता है और वह तप स्थविर जैसा करा दिया गया है। स्थविर नाम वृद्ध पुरुष का होता है। गुणों से कर्मों की अभिनिवृत्ति हो जाती है और गुण कर्म के द्वारा ही शुद्ध हुआ करते हैं ॥९०॥ ऋषियों ने पुरुष को देखकर देश-काल के अनुवर्त्तन करने वाली आशीर्वादोक्ति युग-युग में यथासमय समुदाहृत की हैं ॥९१॥ धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की तथा देवों की जो प्रतिक्रिया और आशिष हैं वे शिव और पुण्य तथा आयु युग-युग में उसी प्रकार भी होती हैं ॥९२॥ उसी भाँति युगों के परिवर्त्तन जो कि विधि के स्वभाव से चिरकाल से प्रवृत्त हैं। क्षय और उदय से परिवर्त्तमान यह जीवलोक क्षणभर भी संस्थित नहीं होता है ॥९३॥

योगाभ्यासनिरूपण

इदानीं ब्रूहि योगं च दुःखसंयोगभेषजम् ।
यं विदित्वाऽव्ययं तत्र युञ्जामः पुरुषोत्तमम् ॥१
श्रुत्वा स वचनं तेषां कृष्णद्वैपायनस्तदा ।
अब्रवीत्परमप्रीतो योगी योगविदां वरः ॥२

योग वक्ष्यामि भो विप्रा. शृणुध्व भवनाशनम् ।
यमभ्यस्याऽऽप्नुयाद्योगी मोक्ष परमदुर्लभम् ॥३
श्रुत्वाऽऽदौ योगशास्त्राणि गुरुमाराध्य भक्तितः ।
इतिहास पुराण च वेदाश्चैव विचक्षण: ॥४
आहार योगदोषाश्च देशकाल च बुद्धिमान् ।
ज्ञात्वा समभ्यसद्योग निर्द्वंद्वो निष्परिग्रह. ॥५
भुञ्जन्सक्तु यवागू च तक्रमूलफल पय: ।
यावक कणपिण्याकमाहार योगसाधनम् ॥६
न मनोविकले ध्माते न श्रान्ते क्षुधिते तथा ।
न द्वद्वे न च शीते च न चोष्णे नानिलात्मके ॥७

मुनियो ने कहा—हे भगवन् ! इस समय मे अब आप दुख के स रोग की महौषध स्वरूप जो योग है उसी के विषय मे बतलाइए जिसका ज्ञान प्राप्त करके वहाँ पर अव्यय (अविनाशी) पुरुष को योजन करें ॥१॥ उस समय मे भगवान् कृष्ण द्वैपायन महामुनि ने उन मुनियो के वचन का श्रवण करके योग के ज्ञाताओ मे परम श्रेष्ठ व्यासजी परम प्रसन्न होकर बोले ॥२॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे विप्रो ! अब आप लोग इस ससार के विनाश करने वाले योग का श्रवण करिए योगी जिसका अभ्यास करके परमाधिक दुर्लभ मोक्ष का प्राप्त कर लिया करता है ॥३॥ विचक्षण पुरुष को चाहिए सबके आदि मे योग शास्त्रो का श्रवण करे और फिर भक्ति की भावना से अपने श्री गुरुदेव की समाराधना करे । इसके उपरान्त इतिहास पुराण और वेदो का अध्ययन करना चाहिए ॥४॥ आहार-योग के अभ्यास में उत्पन्न होने वाले दोष और देश तथा काल को बुद्धिमान् मानव अच्छी तरह से समझ कर ही निर्द्वन्द्व एव निष्परिग्रह होकर योग का अभ्यास करे ॥५॥ योगाभ्यास के समय मे सक्तू (सतुआ) यवागू, तक्र, (मट्ठा), फल, मूल, दूध, यावक और कण पिण्याक का ही आहार करना चाहिए । ऐसा ही हलका आहार योग का साधन हुआ करता है ॥६॥ योगाभ्यास मे बहुत सी बाधाएँ होती हैं और उसको उन ·

में नहीं किया जा सकता है अतएव मन की विकलता की अवस्था में-ध्यान होने पर-श्रान्त-क्षुधा से युक्त होने के समय में-द्वन्द्व में-शीत-उष्णता में और अनिलात्मक दशा में कभी भी योग का अभ्यास नहीं करना चाहिए ॥७॥

सशब्दे न जलाभ्यासे जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ।
सरीसृपे श्मशाने च न नद्यन्तेऽग्निसंनिधौ ॥८
न चैत्ये न च वल्मीके सभये कूपसंनिधौ ।
न शुष्कपर्णनिचये योगं युञ्जीत कर्हिचित् ॥९
देशानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति वै ।
प्रवक्ष्ये तस्य ये दोषा जायन्ते विघ्नकारका: ॥१०
बाधिर्यं जडता लोप: स्मृतेर्मूकत्वमन्धता: ।
ज्वरश्च जायते सद्यस्तद्वदज्ञानसंभव: ॥११
तस्मात्सर्वात्मना कार्या रक्षा योगविदा सदा ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यत: ॥१२
आश्रमे विजने गुह्ये नि:शब्दे निर्भये नगे ।
शून्यागारे शुचौ रम्ये चैकान्ते देवतालये ॥१३
रजन्या: पश्चिमे यामे पूर्वे च सुसमाहित: ।
पूर्वाह्णे मध्यमे चाह्नि युक्ताहारो जितेन्द्रिय: ॥१४

जहां बहुत शब्द होरहा हो उस स्थान में-जलाशय के समीप में-जीर्ण गोष्ठ में-चौराहे पर-सरीसृपों के निकट-श्मशान में-नदी के अन्त में-अग्नि की सन्निधि में-चैत्य में-वल्मीकों के समीप में-भययुक्त स्थल में-कूप की सन्निधि में-सूखे हुए पत्तों के ढेर के समीप में एक योग की साधना करने वाले पुरुष को कभी भी उसका अभ्यास नहीं करना चाहिए ॥८-९॥ इन उपर्युक्त देशों का अनादर करके जो मूढता से जो योगाभ्यास किया करता है उसमें होने वाले दोषों को मैं बतलाता हूं जो कि बहुत बड़ी हानि के करने वाले हुआ करते हैं तथा विघ्न उपस्थित कर दिया करते हैं ॥१०॥ बधिरता (बहरापन)-जड़ता-स्मृति का लय-अन्धापन और ज्वर भी बहुत ही शीघ्र हो जाया करता है जो कि उसी की भाँति अज्ञान से संभूत होते

है ॥११॥ इसीलिये सर्वात्म भाव से सदा ही योग में ज्ञाता के द्वारा अपनी पूर्ण रूप से रक्षा करनी चाहिए क्योंकि धर्म-अर्थ काम और मोक्ष का साधन करने वाला यह शरीर ही हुआ करता है। सत्पुरुष भी इसी दृष्टि कोण से अपने शरीर की सुरक्षा करना परमावश्यक समझते हैं। यह विनाश शील होते हुए भी नित्योत्तम पदार्थों का निश्चित् साधन स्वरूप होता है क्योंकि इस मानव देह से नित्य एवं स्थायी सुगति की प्राप्ति की जाया करती है ॥१२॥ अब यह बताया जाता है कि योग का अभ्यास कैसे स्थल में किया जाना चाहिए जो फलदायी हो सकता है। किसी भी आश्रम में जहाँ पर कोई भी जन न हो-गोपनीय स्थल में ध्वनि से रहित स्थान में-भय रहित में-नग (पर्वत) पर शून्य आगार में जो परम शुचि एवं सुरम्य हो एकान्त में किसी देवता के आयतन में-रात्रि के पश्चिम प्रहर के समय में और पूर्व में भी भली भाँति सावधान होकर करे-पूर्वाह्न में-मध्य दिन में युक्त आहार वाला होकर अपनी सब इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके ही योग का अभ्यास करना चाहिए ॥१३-१४॥

आसीन प्राङ्मुखो रम्य आसने सुखनिश्चले ।
नातिनीचे न चोच्छ्रित निस्पृह सत्यवाक्शुचि ॥१५
युक्तनिद्रो जितक्रोध सर्वभूतहिते रत ।
सवद्व द्वसहो धीर समकायाङ्घ्रिमस्तक. ॥१६
नाभौ निधाय हस्तौ द्वौ शान्त पद्मासने स्थितः ।
सस्थाप्य दृष्टि नासाग्रे प्राणानायम्य वाग्यत ॥१७
समाहृत्येन्द्रियग्राम मनसा हृदये मुनि. ।
प्रणव दीर्घ मुद्यम्य सवृतास्य सुनिश्चल. ॥१८
रजसा तमसो वृत्ति सत्त्वेन रजसस्तथा ।
सछाद्य निर्मले शान्ते स्थित सवृतलोचन ॥१९
हृत्पद्मकोटरे लीन सर्वव्यापि निरञ्जनम् ।
युञ्जीत सतत योगी मुक्तिद पुरुषोत्तमम् ॥२०
करणेन्द्रियभूतानि क्षेत्रज्ञे प्रथम न्यसेत् ।
क्षेत्रज्ञश्च परे योऽयस्ततो युञ्जति योगवित् ॥ १

परम सुरम्य एवं सुखद-सुनिश्चल आसन पर पूर्व की ओर मुख वाला होकर स्थित होवे। योगभ्यासी का आसन अत्यन्त नीचा और अधिक ऊँचा भी नहीं होना चाहिए। योगी सदा निःस्पृह-सत्यवाणी वाला और पवित्र रहे ॥१५॥ युक्त अर्थात् उचित निद्रा करने वाला अर्थात् न अति अधिक और न कम सोने वाला, क्रोध को जीत लेने वाला, सब प्राणियों पर उनके हित करने में निरत, सभी प्रकार के द्वन्द्वों को सहने वाला, धीर और समान शरीर, चरण और मस्तक को रखने वाला एक योगाभ्यासी को होना चाहिए ॥१६॥ अपनी नाभि की जगह पर दोनों हाथों को रखकर-परम शान्त होते हुए पद्मासन लगाकर बैठ जावे। अपनी नासिका के अग्रभाग में मौन होकर मुख बन्द करते हुए प्राणयाम करना चाहिए ॥१७॥ मुनि को मन के द्वारा समस्त इन्द्रियों के समुदाय का हृदय में संयमन करना चाहिए। प्रणव (ओङ्कार) का दीर्घता से उद्यम करके मुख बन्द करके एक दम सुनिश्चल हो जाना चाहिए ॥१८॥ रजोगुण के द्वारा तमोगुण की वृत्ति का और सत्त्व गुण से रजोगुण को संच्छन्न करके निर्मल एवं एक दम शान्त हृदय में स्थित होकर अपने नेत्रों को मूँद लेवे ॥१९॥ फिर ऐसा ध्यान करे कि मेरे हृदय में एक अष्ट दलों वाला कमल है उस पर सबका निरञ्जन प्रभु लीन (विराजमान) हैं। योगाभ्यासी सदा उसी परम पुरुषोत्तम प्रभु का जो मुक्ति का प्रदान करने वाले हैं निरन्तर ध्यान किया करे ॥२०॥ सबसे प्रथम करणेन्द्रियों को और भूतों को क्षेत्रज्ञ में विन्यस्त करना चाहिए और क्षेत्रज्ञ को फिर पर पुरुष में योजित करके ही योग के ज्ञाता को योगाभ्यास करना चाहिए और इसी तरह से योगी किया करते हैं ॥२१॥

मनो यस्यान्तमभ्येति परमात्मनि चञ्चलम् ।
संत्यज्य विषयांस्तस्य योगसिद्धिः प्रकाशिताः ॥२२
यदा निर्विषयं चित्तं परे ब्रह्मणि लीयते ।
समाधौ योगयुक्तस्य तदाऽभ्येति परं पदम् ॥२३
असंसक्तं यदा चित्तं योगिनः सर्वकर्मसु ।
भवत्यानन्दमासाद्य तदा निर्वाणमृच्छति ॥२४

शुद्ध धामत्रयातीत तुर्याख्य पुरुषोत्तमम् ।
प्राप्य योगबलाद्योगी मुच्यते नात्र सशय' ॥२५

नि स्पृह सर्वकामेभ्य. सर्वत्र प्रियदर्शन. ।
सर्वत्रानित्यबुद्धिस्तु योगी मुच्येत नान्यथा ॥२६

इन्द्रियाणि न सेवेत वैराग्येण च योगवित् ।
सदा चाभ्यासयोगेन मुच्यते नात्र सशयः ॥२७

जिस योगाभ्यासी का मन अन्त को प्राप्त हो जाता है उस चचल मन को परमात्मा मे भली-भाँति से त्याग कर और विषयो से मुक्त होकर अभ्यास करते रहने पर ही योग की सिद्धि प्रभाषित हुआ करती है ॥२२॥ जिस समय मे विषयो से रहित यह चित्त पर ब्रह्म मे लीन हो जाया करता है उसी समय मे योग से मुक्त की समाधि लग जाया करती है और समाधि मे स्थित योगी उस समय मे परम ब्रह्म मे लीन हो जाया करता है और वह परम पद को भी प्राप्त कर लेता है ॥२३॥ जिस समय मे योगी का चित्त सभी कर्मों मे ससक्त नही होता है तभी वह आनन्द की प्राप्ति करके निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥२४॥ योग के बल से योगी तीनो धाम से भी परे विशुद्ध-तुर्य नाम धारी पुरुषोत्तम प्रभु को प्राप्त करके छुटकारा अवश्य ही पा जाया करता है-इसमे कुछ भी सशय नही है ॥२५॥ जो योगी राज सभी इच्छाओं से रहित होता है और सर्वत्र देखने मे प्रिय लगा करता है तथा सभी मे उसकी अनित्यता रहने की बुद्धि होती है ऐसा ही योगी इस सम्पूर्ण सासारिक जन्म मरण जरा के पुन पुन आवागमन के महान् दु खद बन्धन से निश्चित रूप से मुक्त हो जाया करता है-इसमे लेश मात्र भी सशय नही है । अन्य किसी भी प्रकार से छुटकारा कभी भी नही हुआ करता है ॥२६॥ योग के वेत्ता को कभी भी मूल इन्द्रियो का सेवन नही करना चाहिए और युग के ज्ञाता को वैराग्य धारण करना ही उचित होता है । इस रीति से योगी को सदा ही अभ्यास का योग करते रहना चाहिए । इससे वह अवश्य ही मुक्त हो जाता है-इसमे कुछ भी सशय नही है ॥२७॥

न च पद्मासनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात् ।
मनसश्चेन्द्रियाणां च संयोगो योग उच्यते ॥२८

एवं मया मुनिश्रेष्ठा योगः प्रोक्तो विमुक्तिदः ।
संसारमोक्षहेतुश्च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥२६

श्रुत्वा ते वचनं तस्य साधु साध्विति चाब्रुवन् ।
व्यासं प्रशस्य संपूज्य पुनः प्रष्टुं समुद्यताः ॥३०

केवल कोई पद्मासन लगा लिया करे और अपनी नासिका के अग्रभाग का निरीक्षण करता रहे तो योग की पूर्णता कभी नहीं हुआ करती है । मन और इन्द्रियों का जो संयोग का न होना है वही वास्तव में योग कहा जाया करता है ॥२८॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! इस प्रकार से इस विमुक्ति के प्रदान करने वाले योग का वर्णन करके इसे बतला दिया है । इसके अतिरिक्त इस संसार से मुक्ति पाने का हेतु अन्य क्या श्रवण करना आप लोग चाहते हैं ॥२६॥ लोमहर्षण महा मुनीन्द्र ने कहा—उन मुनिगण ने उनके इस वचन का श्रवण करके 'साधु साधु'-ऐसा कहा था अर्थात् आपने कुछ भी बतलाया है और अब जो हम लोगों से पूछ रहे हैं कि आगे क्या सुनना चाहते हैं-यह बहुत ही अच्छा है । फिर उन्होंने श्रीव्यासदेव की प्रशंसा की थी और उनकी भली-भांति अर्चना करके उनसे वे पुनः पूछने के लिये समुद्यत हो गये थे ॥३०॥

—:※:—

सांख्ययोगनिरूपण

तव वक्त्राब्धिसंभूतममृतं वाङ्मयं मुने ।
पिबतां नो द्विजश्रेष्ठ न तृप्तिरिह दृश्यते ॥१

तस्माद्योगं मुने ब्रूहि विस्तरेण विमुक्तिदम् ।
सांख्यं च द्विपदां श्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२

प्रज्ञावाञ्छ्रोत्रियो यज्वा ख्यातः प्राज्ञोऽनसूयकः ।
सत्यधर्ममतिर्ब्रह्मन्कथं ब्रह्माधिगच्छति ॥३
तपसा ब्रह्मचर्येण सर्वत्यागेन मेधया ।
सांख्ये वा यदि वा योग एतत्पृष्टो वदस्व नः ॥४

।

॥५

नान्यत्र ज्ञानतपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।
नान्यत्र सर्वसंत्यागात्सिद्धिं विन्दति कश्चन ॥६
महाभूतानि सर्वाणि पूर्वसृष्टिः स्वयंभुवः ।
भूयिष्ठं प्राणभृद्ग्रामे निविष्टानि शरीरिषु ॥७

मुनिगण ने कहा—हे महा मुनीन्द्र ! आपके मुख रूपी सागर से समुद्भूत वाङ्मय अमृत का पान करने वाले हम लोगों को हे द्विजश्रेष्ठ ! अभी तक तृप्ति नहीं हो रही है ॥१॥ हे मुने ! इसलिये अब आप उस परमाधिक उत्तम योग को जो विमुक्ति प्रदान करने वाला है विस्तार के साथ वर्णन कीजिए । हे वक्ताओं में परम श्रेष्ठ ! हमको योग के साथ ही साथ सांख्य को भी बतलाइये । हम सब लोग उत्कृष्ट अभिलाषा के साथ यह श्रवण करना चाहते हैं ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! श्रोत्रिय प्रज्ञावाला यज्वा-असूया न करने वाला सत्य और धर्म में मति रखने वाला होता है वह किस प्रकार से ब्रह्म को जानकर उसे प्राप्त कर लिया करता है ॥३॥ तप से ब्रह्मचर्य से सभी कुछ का त्याग कर देने से मेधा से सांख्य में अथवा योग में जो सिद्धि एवं मुक्ति होती है वही आप हम लोगों को बतलाइए और यही आपसे पूछा गया है ॥४॥ जिस किसी भी उपाय से जिस प्रकार से मन और इन्द्रियों की एकाग्रता प्राप्त की जाया करती है और वह परात्पर पुरुष की उपलब्धि होती है उसकी व्याख्या आप करने के लिये बहुत ही सुयोग्य हैं ॥५॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—कोई भी ज्ञान और तप से अन्यत्र नहीं इन्द्रियों के निग्रह से अन्यत्र भी नहीं और सभी कुछ के भली भांति त्याग करने के अतिरिक्त अन्य किसी में भी सिद्धि को प्राप्त

नहीं किया करता है ॥६॥ स्वयम्भू भगवान् की पूर्ण सृष्टि सभी महाभूत होते हैं। जो अधिकता से शरीर धारियों में प्राणभृद् ग्राम में निविष्ट हुए हैं ॥७॥

भूमेदहो जलात्स्नेहो ज्योतिषश्चक्षुषी स्मृते ।
प्राणापानाश्रयो वायुः कोष्ठाकाशं शरीरिणाम् ॥८
क्रान्तौ विष्णुर्बले शक्रः कोष्ठेऽग्निर्भोक्तुमिच्छति ।
कर्णयोः प्रदिशःश्रोत्रे जिह्वायां वाक्सरस्वती ॥९
कर्णौ त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
दश तानीन्द्रियोक्तानि द्वाराण्याहारसिद्धये ॥१०
शब्दस्पर्शौ तथा रूपं रसं गन्धं च पञ्चमम् ।
इन्द्रियार्थान्पृथग्विद्यादिन्द्रियेभ्यस्तु नित्यदा ॥११
इन्द्रियाणि मनो युङ्क्ते अवश्या(शा)निव राजिनः(लः)
मनश्चापि सदा युङ्क्ते भूतात्मा हृदयाश्रितः ॥१२
इन्द्रियाणां तथैवैषां सर्वेषामीश्वरं मनः ।
नियमे च विसर्गे च भूतात्मा मनसस्तथा ॥१३
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतना मनः ।
प्राणापानौ च जीवश्च नित्यं देहेषु देहिनाम् ॥१४

भूमि से प्राणियों का देह-जल से स्नेह-ज्योति से दोनों नेत्र-प्राण और अपान का आश्रय वाला वायु और शरीर धारियों के कोष्ठ में आकाश है ॥८॥ क्रान्ति में भगवान् विष्णु-बल में इन्द्र-कोष्ठ में अग्नि कानों के श्रोत में प्रदिशाऐं तथा जिह्वा में वाक् सरस्वती भोग करने की इच्छा किया करते हैं ॥९॥ दोनों कर्णत्वक्-दोनों नेत्र-जिह्वा पाँचवीं नासिका ये दश इन्द्रियाँ बतलाई गयी हैं जो आहार की सिद्धि के लिये द्वार हुआ करती हैं ॥१०॥ इन इन्द्रियों के लिये नित्य ही शब्द-स्पर्श-रूप-रस और पाँचवां गन्ध ये इन्द्रियों के विषय हैं-इन सबको भी पृथक्-पृथक् जान लेना चाहिए ॥११॥ ये सब इन्द्रियाँ आवश्यक रूप से मन के साथ योग किया करती हैं और वह मन भी सदा हृदय में समाश्रित भूतात्मा के साथ योग किया करता है ॥१२॥ इन समस्त इन्द्रियों का ईश्वर एक मात्र मन ही हुआ

करता है उस मन के नियमन मे तथा विसर्ग मे भूतात्मा ईश्वर होता है ॥१३॥ इन देह धारियो के देहो मे नित्य ही इन्द्रियाणि-इन्द्रिया के अर्थ-स्वभाव चेतना मन प्राण अपान और जीव रहा करते हैं ॥१४॥

आश्रयो नास्ति सत्वस्य गुणशब्दो न चेतनाः ।
सत्त्व हि तेज सृजति न गुणान्वै कथचन ॥१५
एव सप्तदश देह वृत पोडशभिर्गुणः ।
मनीपी मनसा विप्रा. पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥१६
न ह्यय चक्षुपा दृश्यो न च सर्वैरपीन्द्रियै ।
मनसा तु प्रदीप्तेन महानात्मा प्रकाशते ॥१७
अशब्दस्पर्शरूप तच्च (च्चा) रसागन्धमव्ययम् ।
अशीर शरीरे स्वे निरीक्षेत निरिन्द्रियम् ॥१८
अव्यक्त सर्वदेहेषु मर्त्येषु परमार्चितम् ।
योऽनुपश्यति स प्रेत्य कल्पते ब्रह्मभूयत ॥१९
विद्याविनयसपन्नब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन. ॥२०
स हि सर्वेषु भूतेषु जङ्गमेषु ध्रुवेषु च ।
वसत्येको महानात्मा येन सर्वमिद ततम् ॥२१

सत्व का आश्रय न गुण शब्द है और न चेतना ही है । यह सत्व ही तेज का सृजन किया करता है और किसी भी प्रकार से गुणो का सृजन नही करता है ॥१५॥ इस रीति से यह सत्रहवाँ देह सोलह गुणो से वृत होता है । हे विप्रो ! जो मनीषी होता है जो मन से अपनी आत्मा मे ही आत्मा को देखा करता है ॥१६॥ यह आत्मा नेत्र से देखने के योग्य नही है और अन्य भी इन्द्रियो के द्वारा इसका ज्ञान प्राप्त नही किया जा सकता है कि इस आत्मा की रूप-रेखा कैसी है । केवल प्रदीप्त मन के ही द्वारा यह महान् आत्मा प्रकाशित हुआ करता है ॥१७॥ शब्द-स्पर्श रूपसे रहित तथा रस और गन्ध से विहीन-अव्यय शरीर से वर्जित और बिना इन्द्रियो वाला आत्मा अपने शरीर मे देखा करता है ॥१८॥ सब के देहों मे मनुष्यो मे अव्यक्त स्वरूप वाला और परम समर्चित इस आत्मा को

जो भी कोई देख लेता है वह मृत्युगत होकर ब्रह्म की ही समता को प्राप्त कर लिया करता है ॥१६॥ जो परम पण्डित अर्थात् सत्-असत् की विवेक बुद्धि के रखने वाले पुरुष होते हैं वे विद्या और विनय से समन्वित ब्राह्मण में-गौ में-हाथी में-कुत्ते में और श्वपच में एक ही समान आत्मा के दर्शन करने वाले हुआ करते हैं तथा सब में एक ही आत्मा को समझ करके वैसी ही सहानुभूति पूर्णता रखते हैं ॥२०॥ वही एक परमात्मा का अंश यह जीवात्मा समस्त प्राणियों में-चर और अचरों में महान् आत्मा निवास किया करता है जिस परमात्मा ने इस सम्पूर्ण विश्व का विस्तार किया है ॥२१॥

सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ।
यदा पश्यति भूतात्मा ब्रह्म सपद्यते तदा ॥२२
यात्रानात्मनि वेदाऽऽत्मा तावानात्मा परात्मनि ।
य एवं सतत वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥२३
सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतहितस्य च ।
देवापि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः ॥२४
शकुन्तानामिवाऽऽकाशे मत्स्यानामिव चोदके ।
यथा गतिर्न दृश्येत तथा ज्ञानविदां गतिः ॥२५
कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मनि ।
यस्मिस्तु पच्यते कालस्तन्न वेदेह कश्चन ॥२६
न तदूर्ध्वं न तिर्यक्च नाधो न च पुनः पुनः ।
न मध्य प्रतिगृह्णीते नैव किंचिन्न कश्चन ॥२७
सर्वे तत्स्था इमे लोका बाह्यमेषां न किंचन ।
यद्यप्यग्रे रामागच्छेद्यथा बाणो गुणच्युतः ॥२८

समस्त प्राणियों में जब वही एक परमात्मा विराजमान है और उस परमात्म तत्त्व की दृष्टि से कुछ भी अन्तर नहीं है तो समस्त प्राणियों में अपनी आत्मा को और सब प्राणियों की आत्मा को अपनी आत्मा में जब देखता है तो उस समय में ऐसा सच्चा दृष्टिकोण हो जाने पर वह स्वयं ही ब्रह्मवत् हो जाया करता है ॥२२॥ जितना ही आत्मा में आत्मा

को जानता है उतना ही पराई आत्मा में भी आत्मा को देखा करता है। जो इस प्रकार से निरन्तर समझता है वह अमृतत्व के लिये ही कल्पित हुआ करता है ॥२३॥ सब प्राणियों का आत्मभूत और सब प्राणियों का हित करने वाले के मार्ग में जो अपद है भी पद की अभिलाषा रखने वाला है देवगण भी मोह को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥२४॥ जिस तरह से अन्तरिक्ष में पक्षियों की और जल में मत्स्यों की गति हुआ करती है उसी भाँति से ज्ञान के वेताओं की गति भी दिखलाई नहीं दिया करती है ॥२५॥ आत्मा के द्वारा आत्मा में समस्त प्राणियों को यह काल पाचन किया करता है। यह काल जिसमें पचन किया करता है उसको कोई भी नहीं जानता है और इस लोक में काल के विषय में सभी अनभिज्ञ रहा करते हैं कि कैसे यह प्राणियों का पाचन किया करता है ॥२७॥ ये सभी लोक उसी में स्थित रहा करते हैं और उसके बाहर इनमें से कुछ भी बाहिर नहीं है। यद्यपि यह उसी भाँति आगे की ओर जाया करता है जैसे धनुष की डोरी से च्युत हुआ बाण जाया करता है ॥२८॥

नैवान्त कारणस्येयाद्यद्यपि स्यान्मनोजव.।
तस्मात्सूक्ष्मतर नास्ति नास्ति स्थूलतर तथा ॥२९
सर्वत:पाणिपाद तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥३०
तदेवाणोरणुतर तन्महद्भ्यो महत्तरम्।
तदन्त सर्वभूताना ध्रुव तिष्ठन्न दृश्यते ॥३१
अक्षर च क्षर चैव द्वेधा भावोऽयमात्मन.।
क्षर सर्वेषु भूतेषु दिव्य त्वमृतमक्षरम् ॥३२
नवद्वार पुर कृत्वा हसो हि नियतो वशी।
ईदृश. सर्वभूतस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥३३
हानेनाभिविकल्पाना नराणा सचयेन च।
शरीराणामजस्याऽऽहुर्हसत्व पारदर्शिन: ॥३४
हसोक्त च क्षर चैव कूटस्थ यत्तदक्षरम्।
तद्विद्वानक्षर प्राप्य जहाति प्राणजन्मनी ॥३५

यद्यपि इसका मन के समान ही वेग होता है तो भी यह कारण के अन्त तक प्राप्त नहीं हो पाता है क्योंकि उससे कुछ भी अधिक सूक्ष्म नहीं है तथा वह स्थूल भी इतना है कि उससे अधिक कोई भी स्थूल नहीं है ॥२६॥ उस परम पिता परमात्मा के हाथ-पैर सभी ओर होते हैं। उसके नेत्र-मुख और शिर भी सभी ओर हैं—लोक में वह श्रुति वाला है और सभी को समावृत करके स्थित है ॥३०॥ वही अणु से भी अधिक अणु है और वह महान् से भी अधिक महान् है। वह समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में निश्चित् रूप से स्थित हुआ भी नहीं दिखलाई दिया करता है ॥३१॥ इस आत्मा का क्षर और अक्षर दो प्रकार का भाव होता है। समस्त प्राणियों में क्षर विद्यमान रहा करता है और जो अक्षर होता है वह परम दिव्य और अमृत है ॥३२॥ नौ द्वारों वाले इस शरीर रूपी पुर को बनाकर वह हंस नियत और वशी उसमें निवास किया करता है। चाहे कोई स्थावर हो या चर हो सभी प्राणी का इसी प्रकार का हुआ करता है ॥३३॥ मनुष्यों के जो अभिविकल्प स्वरूप होते हैं हानि होने से और संचय होने से शरीरों के पारदर्शी अज को हंसत्व कहा करते हैं अर्थात् हंस इस नाम से कहा था वह समझा जाया करता है ॥३४॥ वह हंस नाम से कहा गया क्षर और जो कूटस्थ है वह अक्षर है। विद्वान् पुरुष उस अक्षर की प्राप्ति करके प्राणों का जन्म तथा मरण का त्याग कर दिया करता है ॥३५॥

भवतां पृच्छतां विप्रा यथावदिह तत्त्वतः।
सांख्यं ज्ञानेन संयुक्तं तदेतत्कीर्तितं मया ॥३६

योगकृत्यं तु भो विप्राः कीर्तयिष्याम्यतः परम्।
एकत्वं बुद्धिमनसोरिन्द्रियाणां च सर्वशः ॥३७

आत्मनो व्यापिनो ज्ञानं ज्ञानमेतदनुत्तमम्।
तदेतदुपशान्तेन दान्तेनाध्यात्मशीलिना ॥३८

आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा।
योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च यान्कवयो विदुः ॥३९

कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम् ।
क्रोधं शमेन जयति कामं सङ्कल्पवर्जनात् ॥४०

सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति ।
धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ॥४१

चक्षुः श्रोत्रं च मनसा मनो वाचं च कर्मणा ।
अप्रमादाद्भयं जह्याद्दम्भं प्राज्ञोपसेवनात् ॥४२

श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे विप्रगणो ! आप लोगों ने जो पूछा था वह सारा ज्ञान से संयुक्त यथावत् रीति से मैंने कीर्तित तात्त्विक रूप में इस समय में कर दिया है ॥३६॥ हे विप्रो ! इससे आगे मैं योग के कृत्य को कीर्तित करूँगा । सभी ओर से बुद्धि और मन की एकता तथा इन्हीं के साथ में सब इन्द्रियों की एकता होनी चाहिए ॥३७॥ आत्मा सर्वत्र व्यापक है-ऐसा उस व्यापी आत्मा का ज्ञान बहुत ही उत्तम ज्ञान है । यह ज्ञान परम शुचि कर्म्म वाले-बुद्ध और आत्माराम के द्वारा तथा उपशान्त ध्यानशील और आत्मज्ञान के शील स्वभाव के द्वारा जानना चाहिए । योग के जो दोष हैं उनका समूलोच्छेदन करके जिनको कि कविगण पाँच बतलाया करते हैं आत्मज्ञान कुछ किया जा सकता है ॥३८-३९॥ वे पाँच दोष-काम, क्रोध, लोभ, भय और पञ्चम स्वप्न हैं । योगी क्रोध को शम के द्वारा जीतता है-काम को हृदय में होने वाले सङ्कल्पों को एक दम वर्जित करने से निर्जित किया करता है-सदासत्त्व के भली भाँति सेवन करने से धीर पुरुष निद्रा का उच्छेद कर दिया करता है । धृति (धैर्य) से शिश्न और उदर की सुरक्षा करनी चाहिए एवं चक्षु से हाथों और पैरों की रक्षा करे-श्रोत्र तथा चक्षु को मन के द्वारा तथा मन और वाणी को कर्म्म के द्वारा सुरक्षा करे । प्रमाद नहीं करके ही भय का त्याग करे तथा दम्भ का परित्याग प्राज्ञ पुरुषों की सेवा करने से करना चाहिए ॥४०-४२॥

एवमेतान्योगदोषाञ्जयेन्नित्यमतन्द्रितः ।
अग्नींश्च ब्राह्मणांश्चाथ देवताः प्रणमेत्सदा ॥४३

वर्जयेदुद्धतां वाचं हिंसायुक्तां मनोनुगाम् ।
ब्रह्मतेजोमयं शुक्रं यस्य सर्वमिदं जगत् ॥४४

एतस्य भूतभूतस्थ दृष्टं स्थावरजङ्गमम् ।
ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जव क्षमा ॥४५

शौचं चैवाऽऽत्मनः शुद्धिरिन्द्रियाणां च निग्रहः ।
एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानं चापकर्षति ॥४६
समः सर्वेषु भूतेषु लभ्यालभ्येन वर्तयन् ।
धूतपाप्मा तु तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥४७

कामक्रोधौ वशे कृत्वा निषेवेद्ब्रह्मणः पदम् ।
मनसश्चेन्द्रियाणां च कृत्वैकाग्र्यं समाहितः ॥४८
पूर्वरात्रे परार्धे च धारयेन्मन आत्मनः ।
जन्तोः पञ्चेन्द्रियस्यास्य यद्येकं क्लिन्नमिन्द्रियम् ॥४९

इस प्रकार से इन उपर्युक्त योग में होने वाले जो दोष हैं उनको नित्य ही अतन्द्रित होकर जीत लेना चाहिए। अग्नियों को, ब्राह्मणों को और देवगणों को सदा ही प्रणाम करना चाहिए ॥४३॥ अत्यन्त उद्धत-हिंसा से युक्त अर्थात् दूसरों के हृदय को आघात पहुंचाने वाली तथा अपने ही मन की अनुगामिनी अर्थात् जैसी भी मन में आ गयी वैसी वाणी का त्याग कर देना चाहिए। ब्रह्म एक तेज से परिपूर्ण शुक्र है जिसका कि यह सम्पूर्ण जगत् है ॥४४॥ इसी भूत भूत का यह स्थावर और जङ्गम जगत् देखा गया है। ध्यान-अध्ययन-दान-सत्य-लज्जा-आर्जव (सरलता)-क्षमा शौच-आत्मा की शुद्धि और समस्त इन्द्रियों का निग्रह इनसे तेज की विशेष वृद्धि होती है और पापों का अपकर्षण होता है ॥४५-४६॥ समस्त प्राणियों में समान व्यवहार करने वाला-जो लभ्य हो या जो अलभ्य हो अर्थात् जैसा भी जो कुछ प्राप्त हो उसी से उदर पूर्ति करता हुआ-पापों को धूत करने वाला-तेजस्वी बहुत कम आहार करने वाला-जितेन्द्रिय योगाभ्यासी पुरुष काम और क्रोध इन दोनों महान् प्रबल शत्रुस्वरूप दोषों पर विजय प्राप्त करके और इनको वश

मे रख कर ब्रह्म के पद का सेवन करे। परम समाहित होकर मन और इन्द्रियो की एकाग्रता करके पूर्व रात्रि म और परार्ध मे मन को धारण करना चाहिए। इस पाच इन्द्रिया वाले जन्तु की यदि इन पांचो इन्द्रिय मे से कोई भी एक इन्द्रिय भी क्लिन्न होजाती है अर्थात् वश से बाहर निकल जाती है तो बुद्धि भ्रष्ट होजाया करती है ॥४७-४९॥

ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा गिरे पादादिवोदकम् ।
मनस पूर्वमादद्यात्कूर्माणामिव मत्स्यहा ॥५०
तत श्रोत्र ततश्चक्षुर्जिह्वा घ्राण च योगवित् ।
तत एतानि सयम्य मनसि स्थापयेद्यदि ॥५१
तथैवापोह्य सकल्पान्मनो ह्यात्मनि धारयेत् ।
पञ्चेन्द्रियाणि मनसि हृदि सस्थापयेद्यदि ॥५२
यदैतान्यवतिष्ठन्ते मन षष्ठानि चाऽऽत्मनि ।
प्रसीदन्ति च सस्थाया तदा ब्रह्म प्रकाशते ॥५३
विधूम इव दीप्तार्चिरादित्य इव दीप्तिमान् ।
वैद्युतोऽग्निरिवाऽऽकाशे पश्यन्त्यात्मानमात्मनि ॥५४
सर्व तत्र तु सर्वत्र व्यापकत्वाच्च दृश्यते ।
त पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिण ॥५५
धृतिमन्तो महाप्राज्ञा सर्वभूतहिते रता ।
एव परिमित कालमाचरन्सशितव्रत ॥५६

इस तरह से इन्द्रियो के काबू से बाहिर हो जाने पर चाहे कोई सी भी इन्द्रिय पांचो मे से क्यों न हो। फिर तो इस पुरुष की प्रज्ञा का स्रवण हो जाया करता है जैसे किसी पर्वत की चोटी से जल नीचे आकर पतित हो जाता है। मत्स्यो का हनन करने वाले को सब से प्रथम कर्मो की तरह मन को ही वश मे लाना चाहिए ॥५०॥ इसके अनन्तर श्रोत्र को फिर चक्षु को इसके पश्चात् जिह्वा को और फिर घ्राणेन्द्रिय को वश म योग के वेत्ता को करना चाहिए। इसके उपरान्त इन सबका सयम करके मन म ही स्थापित करना चाहिए ॥५१॥ उसी प्रकार से अपोह करके सकल्प से मन को अपनी आत्मा में धारण

करे। यदि पाँचों इन्द्रियों को मन में एवं हृदय में संस्थापित यदि कर ले ॥५२॥ जिस समय में पाँचों इन्द्रियाँ और छटवाँ मन आत्मा में अवस्थित हो जाते हैं तो उस संस्थिति में इन में एक प्रकार का प्रसाद होता है तथा सभी परम प्रसन्नता का अनुभव किया करती हैं और उस समय में ब्रह्म का प्रकाश हुआ करता है ॥५३॥ धूम से रहित अग्नि की भाँति दीप्तिमान् मानों स्वयं आकर आकाश में विद्युत की अग्नि के समान ही उस आत्मा को अपनी आत्मा के अन्दर देख लिया करते हैं ॥५४॥ उसके सब में व्यापक होने के कारण से वहां सभी कुछ दिखलायी दिया करता है। जो ब्राह्मण परमाधिक मनीषी और महान् आत्मा वाले हुआ करते हैं वेही उसको देखते हैं ॥५५॥ जो परम धृति वाले-महा प्राज्ञ और सब भूतों के हित में रति रखने वाले होते हैं वे ही उसका दर्शन किया करते हैं ॥५६॥

आसीनो हि रहस्येको गच्छेदक्षरसाम्यताम् ।
प्रमोहो भ्रम आवर्तो घ्राणं श्रवणदर्शने ॥५७
अद्‌भुतानि रसः स्पर्शः शीतोष्णमारुताकृतिः ।
प्रतिभानुपसर्गाश्च प्रतिसंगृह्य योगतः ॥५८
तांस्तत्त्वविदनादृत्य साम्येनैव निवर्तयेत् ।
कुर्यात्परिचयं योगे त्रैलोक्ये नियतो मुनिः ॥५९
गिरिश्रृङ्गे तथा चैत्ये वृक्षमूलेषु योजयेत् ।
संनियम्येन्द्रियग्रामं कोष्ठे भाण्डमना इव ॥६०
एकाग्रं चिन्तयेन्नित्यं योगान्नोद्विजते मनः ।
येनोपायेन शक्येत नियन्तुं चञ्चलं मनः ॥६१
तत्र युक्तो निषेवेत न चैव विचलेत्ततः ।
शून्यागाराणि चैकाग्रो निवासार्थमुपक्रमेत् ॥६२
नातिव्रजेत्परं वाचा कर्मणा मनसाऽपि वा ।
उपेक्षको यताहारो लब्धालब्धसमो भवेत् ॥६३

इस तरह से परिमित काल पर्यन्त से शितव्रत वाला होकर आचरण करता हुआ अकेला एकान्त में समासीन होकर अक्षर की साम्यता

को प्राप्त करना चाहिए। प्रमोद-भ्रम आवर्त्त-घ्राण श्रवण-दर्शन मे अद्भुत है। रस-स्पर्श शीत उष्ण मारुताकृति-प्रतिमा और अनुपसर्ग इनका योग के प्रभाव मे प्रति सग्रह करके तत्त्ववेत्ता को उनका अनादर करके साम्य भाव स हा निवृत्त कर देना चाहिए। नियत् मुनि को इस त्रिलोकी मे योग मे अवश्य ही परिचय कर लेना चाहिए ॥५७-५८॥ गिरि की चोटी पर तथा चैत्य मे एव वृक्ष के मूल मे योजित करना चाहिए। भाण्ड मना की तरह कोष मे इन्द्रियो के समुदाय का सयम करना चाहिए ॥५९-६०॥ नित्य प्रति एकाग्र मन वाला होकर चिन्तन करे और योग से मन को उद्विग्न नही करना चाहिए। जिस भी किसी उपाय से इस चञ्चल मन को नियन्त्रित किया जासके वैसा ही करना चाहिए। उसमे युक्त होकर निपवण करना चाहिए और वहाँ से मन को विचलित नही करे। अपने निवास करने के लिये एकाग्र मन वाला होकर शून्य आगारो का उपक्रम करना चाहिए ॥६१-६२॥ वचन कर्म और मन के द्वारा पर का कभी अति वर्जन नही करे। जो उपेक्षक और यत आहार वाला लब्ध तथा अलब्ध के सम होजाया करता है ॥६३॥

यश्चैनमभिनन्देत यश्चैनमभिवादयेत् ।
समस्तयोश्चाप्युभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम् ॥६४
न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत् ।
सम सर्वेषु भूतेषु सधर्मा मातरिश्वन. ॥६५

एव स्वस्यात्मन साधोः सर्वत्र समदर्शिन. ।
षण्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्माभिवर्तते ॥६६
वेदनार्तान्परान्दृष्ट्वा समलोष्टाश्मकाञ्चन. ।
एव तु निरतो मार्गं विरमेत विमोहित ॥६७

अपि वर्णावकृष्टस्तु नारी वा धर्मकाङ्क्षिणी ।
तावप्येतेन मार्गेण गच्छेता परमा गतिम् ॥६८

अज पुराणमजर सनातन,
                यमिन्द्रियातिगमगोचर द्विजा ।

अवेक्ष्य चेमां मरमेष्ठिसाम्यतां,
प्रयान्त्यनृत्तिगतिं मनीषिणः ॥६९

जो कोई इसका अभिनन्दन किया करता है और जो इसका अभिवादन करता है। समस्तों का और दोनों का शुभा शुभ का अभिध्यान नहीं करना चाहिए। जब कभी लाभ हों तो उन पर प्रहर्ष नहीं करे अधिक फूल न जावे और कभी अलाभ हों अर्थात् हानि होजावे तो अधिक चिन्ता में मग्न नहीं होजाना चाहिए। आयु की भाँति समस्त प्राणियों के साथ समान समान व्यवहार वाला होना चाहिए ॥६४,६५॥ इस तरह से स्वस्थ आत्मा वाले और सर्वत्र समदर्शी साधु पुरुष जो छै मास तक नित्य ही नियम से योगाभ्यास में युक्त होना है उसको शब्द ब्रह्म अभिवर्त्तित हो जाता है ॥६६॥ वेदना से आर्त्त दूसरों को देखकर लोष्ठ (मिट्टी का ढेला) और सुवर्ण दोनों का समान भावना से समझने वाला रहे। इस प्रकार से निरत रहता हुआ विमोहित होकर मार्ग से कभी भी विराम ग्रहण न करे ॥६७॥ चाहे कोई वर्ण से अवकृष्ट हो अथवा धर्म की आकाङ्क्षा रखने वाली नारी हो वे दोनों भी इसी मार्ग के द्वारा परम गति को गमन किया करते हैं ॥६८॥ हे द्विजो ! मनीषी गण अज- पुराण-अजर-सनातन-इन्द्रियों के अतिगमन करने वाला-अगोचर जिसको देखकर इस अनावृत्ति गति वाली अर्थात् पुनः इस संसार में जन्म ग्रहण कर न आने वाली परमेष्ठी की साम्यता को गमन किया करते हैं ॥६९॥

--:※:--
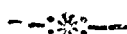
ज्ञानिनांमोक्षप्राप्तिनिरूपण

यद्येवं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च ।
कां दिशं विद्यया यान्ति कां च गच्छन्ति कर्मणा ॥१

एतद्वै श्रोतुमिच्छामस्तद्भवान्प्रब्रवीतु नः ।
एतदन्योन्यवैरूप्यं वर्तते प्रतिकूलतः ॥२
शृणुध्वं मुनिशार्दूला यत्पृच्छध्वं समासतः ।
कर्मविद्यामयौ चोभौ व्याख्यास्यामि क्षराक्षरौ ॥३
यां दिशं विद्यया यान्ति यां गच्छन्ति च कर्मणा ।
शृणुध्वं सांप्रतं विप्रा गहनं ह्येतदुत्तरम् ॥४
अस्ति धर्म इति युक्तं नास्ति तत्रैव यो वदेत् ।
यक्षस्य सादृश्यमिदं यक्षस्येदं भवेदथ ॥५
द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तो वा विभाषितः ॥६
कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ॥७

मुनिगण ने कहा—अमुक कर्म को करो और अमुक कर्म का त्याग कर दो—यदि ऐसा वेदों का वचन आज्ञा के रूप में मानवों के लिये है तो हे भगवन् ! अब आप हमको कृपा करके यह बतला दीजिए कि मानव विद्या से तो किस दिशा को गमन किया करते हैं और कर्म्म के द्वारा किस दिशा को जाया करते है ? ॥१॥ हम लोग इस समय में यही श्रवण करने की अभिलाषा रखते हैं । आप हम लोगों को यह स्पष्ट रूप से बतला दीजिए ये दोनों ही बातें प्रतिकूलता से परस्पर में विरूपता रखती हैं ॥२॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! आप जो मुझ से पूछ रहे है उस विषय में संक्षेप में सुनिये । मैं कर्म और विद्या में परिपूर्ण ये दोनों क्षर और अक्षर हैं । इनकी मैं व्याख्या कर दूँगा ॥ ॥ इस लोक में मनुष्य विद्या के द्वारा जिस दिशा को गमन किया करते हैं और कर्म्मों के करने के द्वारा जिस दिशा को जाते हैं । हे विप्रो ! आप अब इस विषय में श्रवण करिए । यह उत्तर अत्यन्त ही गहन है ॥४॥ धर्म है यह कथन करना और ऐसा ही मानना बहुत युक्त है । वहीं पर जो ऐसा कहता है कि धर्म नाम का कुछ भी नहीं है अर्थात् धर्म के नाम एक निरर्थक आडम्बर मात्र है तथा

धर्म एक बिडम्बना ही है। ऐसा कथन करना एक यक्ष के ही समान है और यक्ष का ही होता है ।।५।। इसके अनन्तर ये ही मार्ग है जिसमें धर्म प्रतिष्ठित रहा करते हैं। जो प्रवृत्ति वाला अर्थात् प्रवृत्ति ही जिसका लक्षण होता है वह तो धर्म होता है और दूसरा निवृत्ति कराने वाला होता है ऐसा कहा गया है कर्म से यह जन्तु बद्ध हो जाता है और विद्या के द्वारा वह मुक्त होजाया करता है अर्थात् बन्धन से प्रवृत्ति लक्षण धर्म से होता है उससे छुटकारा पा जाता है। इसी कारण से पार-दर्शी यति लोग कर्मों का त्याग कर उन्हें सर्वथा नहीं किया करते हैं यद्यपि वे कर्म्म भी धर्म्मानुकूल ही होते हैं और धर्म से विपरीतता नहीं होती है ।।६-७।।

कर्मणा जायते प्रेत्य मूर्तिमान्षोडशात्मकः ।
विद्यया जायते नित्यमव्यक्तं ह्यक्षरात्मकम् ।।८

कर्म त्वेके प्रशसन्ति स्वल्पबुद्धिरता नराः ।
तेन ते देहजालेन रमयन्त उपासते ।।९

ये तु बुद्धिं परां प्राप्ता धर्मनैपुण्यदर्शिनः ।
न ते कर्म प्रशंसन्ति कूपं नद्यां पिबन्निव ।।१०

कर्मणां फलमाप्नोति सुखदुःखे भवाभवौ ।
विद्यया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ।।११

म म्रियते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न जायते ।
न जीर्यते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न वर्धते ।।१२

यत्र तद्ब्रह्म परमव्यक्तमचलं ध्रुवम् ।
अव्याकृतमनायाममृतं चाधियोगवित् ।।१३

द्वंद्वैर्न यत्र बाध्यन्ते मानसेन च कर्मणा ।
समाः सर्वत्र मैत्राश्च सर्वभूतहिते रताः ।।१४

कर्म से यह मानव मृत्युगत होकर पुनः मूर्त्तिमान् सोलह वर्ष का होकर समुत्पन्न होता है और विद्या से नित्य-अव्यक्त अक्षरात्मक हुआ करता है ।।८।। जो नर स्वल्प बुद्धि में रति रखने वाले कुछ लोग हैं व

कर्म की ही विशेष प्रशंसा किया करते हैं इसी कारण से वे लोग देहों को धारण करते रहने के जाल से रमण करते हुए उपासना किया करते हैं ॥६॥ और लोग परा बुद्धि को प्राप्त करने वाले हैं तथा धर्म की निपुणता को देख लेने वाले होते हैं वे नदी मे या कूप मे पीते हुए की भाँति ही कभी भी कर्म की प्रशंसा नही करते हैं ॥१०॥ कर्म करने वाले अवश्य कृत कर्मों का शुभाशुभ फल प्राप्त किया करते हैं वे फल सुख और दुःख के रूप मे होते हैं। शुभ कर्म का फल सुख और बुरे कर्मों का फल दुःख होता है। कर्म से ससार मे जन्म तथा मृत्यु से मरण भी प्राप्त हुआ करते हैं। विद्या से तो ऐसा फल मिला करता है जहाँ पर पहुँच कर पुनः संसार मे निवृत्त होकर जन्म नहीं लेते हैं। विद्या से जो पद मिलता है वह ऐसा है जहा पहुँच कर न जरा ही होती है और न कोई वृद्धि ही हुआ करती है ॥११-१२॥ वह तो वैसा स्थल है जहा पर वह ब्रह्म है जो परम-अव्यक्त-अचल-ध्रुव-अव्याकृत आयास शून्य और अमृत है। और आधियोग के वेत्ता मानस कर्म के द्वारा जहा पर द्वन्द्वो से बध्य नहीं होते हैं। सभी वहा पर समान-सर्वत्र मित्र भाव रखने वाले और समस्त प्राणियो के हित मे निरत रहते हैं ॥१३-१४॥

विद्यामयोऽन्य पुरुषो द्विजाः कर्ममयोऽपरः।
विप्राश्चन्द्रसमस्पर्श सूक्ष्मया कलया स्थितः ॥१५
तदेतदृषिणा प्रोक्तं विस्तरेणानुगीयते।
न वक्तुं शक्यते द्रष्टुं चक्रतन्तुमिवाम्बरे ॥१६
एकादशविकारात्मा कलासभारसभृतः।
मूर्तिमानिति त विद्याद्विप्राः कर्मगुणात्मकम् ॥१७
देवो यः सश्रितस्तस्मिन्बुद्धीन्दुरिव पुष्करे।
क्षेत्रज्ञ त विजानीयान्नित्य योगजितात्मकम् ॥१८
तमो रजश्च सत्त्व च ज्ञेय जीवगुणात्मकम्।
जीवमात्मगुण विद्यादात्मान परमात्मनः ॥१९
सचेतन जीवगुण वदन्ति,
स चेष्टते जीवगुणं च सर्वम्।

ततः परं क्षेत्रविदो वदन्ति,
प्रकल्पयन्तो भुवनानि सप्त ॥२०

प्रकृत्यास्तु विकारा ये क्षेत्रज्ञास्ते परिश्रुताः ।
ते चैनं न प्रजानन्ति न जानाति स तानपि ॥२१

जो विद्या से परिपूर्ण पुरुष होता है वह हे द्विजों ! अन्य होता है और दूसरा कर्ममय हुआ करता है । हे विप्रो ! सूक्ष्म कला से युक्त होकर स्थित होने वाला चन्द्रमा के ही समान सुखद स्पर्श वाला विद्या से युक्त हुआ करता है ॥१५॥ वही यह ऋषि ने कहा है और विस्तार के साथ गान किया जाया करता है । वह वस्त्रों में चक्र के तन्तु के ही समान देखा जा सकता है किन्तु बतलाया नहीं जा सकता है ॥१६॥ हे विप्रो ! वह एकादश विकारों के स्वरूप वाला और कला के संभार से संभृत हुआ करता है तथा मूर्त्तिमान् होता है–ऐसा ही उसे कर्म गुणात्मक जान लेना चाहिए ॥१७॥ जो कोई देव पुष्कर बुद्धीन्दु के ही समान संश्रित किया जाता है । उसको नित्य ही योग से जित आत्मा वाले उसको क्षेत्रज्ञ ही जान लेना चाहिए ॥१८॥ इस जीव को तमोगुण-रजोगुण और सत्त्वगुण के स्वरूप वाला जानना चाहिए । उस परमात्मा के आत्मा को जीवात्मा के गुणों वाला जान लेना चाहिए ॥१९॥ चेतना से युक्त जीव का गुण कहते हैं और वह सर्वत्र समस्त जीव के गुण की चेष्टा किया करता है । इससे पर सात भुवनों की प्रकल्पना करते हुए क्षेत्र वेत्ता कहते हैं ॥२०॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—प्रकृति के जो विकार होते हैं । वे क्षेत्रज्ञ परिश्रुत होते हैं और वे तो इसको नहीं जानते हैं और वह उनको भी नहीं जाना करता है ॥२१॥

तैश्चैव कुरुते कार्यं मनः षष्ठैरिहेन्द्रियैः ।
सुदान्तैरिव संयन्ता दृढः परमवाजिभिः ॥२२

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥२३

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्परतोऽमृतम् ।
अमृतान्न परं किंचित्सा काष्ठा परमा गतिः ॥२४

एव सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि ॥२५
अन्तरात्मनि सलीय मन षष्ठानि मेधया ।
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थांश्च बहुचित्तमचिन्तयन् ॥२६
ध्यानेऽपि परम कृत्वा विद्यासपादित मन. ।
अनीश्वर प्रशान्तात्मा ततो गच्छेत्पर पदम् ॥२७
इन्द्रियाणा तु सर्वेषा वश्यात्मा चलितस्मृति ।
आत्मन सप्रदानेन मर्त्यो मृत्युमुपाश्नुते ॥२८

जिस तरह स सुन्दरता स दमनशील बहुत ही उत्तम श्रेणी के अश्वो के द्वारा रथ दृढ सुयन्ता होता है उसी भाँति छटवें मन वाली इन्द्रियों के द्वारा उन्ही म वह कार्य किया करता है ॥२२॥ इन इन्द्रियों से पर तो अर्थ हुआ करते हैं और इन अर्थों से भी परम मन होता है। इस मन से परा बुद्धि है तथा बुद्धि स पर महान् आत्मा है ॥२३॥ महत् से पर अव्यक्त और उस अव्यक्त से भी पर अमृत है। उस अमृत से पर कुछ भी नही होता है। वही परमकाष्ठा (सीमा) गति हुआ करती है अर्थात् उस अमृतत्व पद को प्राप्त कर लेना ही परमाधिक गति को प्राप्त करना है ॥२४॥ इस प्रकार स समस्त भूतो म गूढ स्वरूप वाला वह प्रकाश नही किया करता है। सूक्ष्म दर्शन करने वाले मानवो के द्वारा वह परम सूक्ष्म उत्तम श्रेणी की बुद्धि से ही दिखाई दिया करता है ॥२५॥ वह अन्तरात्मा म सलीन होकर पाँच इन्द्रियाँ और छटवाँ मन और मेधा के द्वारा इन्द्रिया क अर्थों को बहुचितता पूर्वक सोचा करते हैं ॥२६॥ ध्यान म भी विद्या स सम्पादित मन को परम बनाकर प्रशान्त आत्मा वाला अनीश्वर वह पर परम पद को प्राप्त किया करता है ॥२७॥ सब इन्द्रियो के वश मे रहने वाला चलित आत्मा एव चलित स्मृति वाला आत्मा के सम्प्रदान स मानव मृत्यु को प्राप्त किया करता है ॥२८॥

विहृत्य सर्वसकल्पान्सत्त्वे चित्त निवेशयेत् ।
सत्त्वे चित्त समावश्य तत कालजरो भवेत् ॥२९

चित्तप्रसादेन यतिर्जहातीह शुभाशुभम् ।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमत्यन्तमश्नुते ।।३०
लक्षणं तु प्रसादस्य यथा स्वप्ने सुखं भवेत् ।
निर्वाते वा यथा दीपो दीप्यमानो न कम्पते ।।३१
एवं पूर्वापरे रात्रे युञ्जन्नात्मानमात्मना ।
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ।।३२
रहस्यं सर्ववेदानामनैतिह्यमनागमम् ।
आत्मप्रत्यायकं शास्त्रमिदं पुत्रनुशासनम् ।।३३
धर्माख्यानेषु सर्वेषु सत्याख्यानेषु यद्वसु ।
दशवर्षसहस्राणि निर्मथ्यामृतमुद्धृतम् ।।३४
नवनीतं यथा दध्नः काष्ठादग्निर्यथैव च ।
तथैव विदुषां ज्ञानं मुक्तिहेतो समुद्धृतम् ।।३५

अतएव मनुष्य का परम कर्त्तव्य यही होना चाहिए कि समस्त सङ्कल्पों का परित्याग करके केवल सत्त्व में ही चित्त को निवेशित करना चाहिए । सत्त्व में अपने चित्त को समाविष्ट करके इसके अनन्तर वह कालंजर हो जाता है ।।२९।। चित्त के प्रसाद से यति इस संसार में शुभ और अशुभ को त्याग दिया करता है । प्रसन्नात्मा आत्मा में ही से संस्थिति बनाकर फिर अत्यन्ताधिक सुख को प्राप्त कर आनन्द का लाभ लिया करता है ।।३०।। प्रसाद का लक्षण भी वैसा ही होता है जैसा कि स्वप्न में सुख हुआ करता है । जिस प्रकार से बिना वायु वाले स्थल में दीपक दीप्यमान होता हुआ भी कम्पित नहीं हुआ करता है ।।३१।। इसी प्रकार पूर्वापर रात्रि में आत्मा के द्वारा आत्मा को योगाभ्यास में युक्त हुआ रहता है। बहुत हल्का भोजन करने वाला—विशुद्ध आत्मा वाला अपनी ही आत्मा में उस परमात्मा का दर्शन किया करता है ।।३२।। हे पुत्र ! समस्त वेदों का रहस्य—अनैतिह्य-अनागम यह आत्मा का प्रत्यायन (विश्वास कराने वाला) अनुशासन ही शास्त्र है ।।३३।। समस्त धर्माख्यानों में और सत्याख्यानों में जो वसु है द सहस्र वर्ष तक निर्मन्थन करके अमृत का उद्धरण किया है ।।३४।। दही से जिस तरह से नवनीत (मक्खन)

और काष्ठ से जैसे अग्नि उद्भूत होता है उसी भाँति मुक्ति के लिये विद्वान् पुरुषों का ज्ञान समुद्धृत हुआ है ॥२५॥

स्नातकानामिदं शास्त्रं वाच्यं पुत्रानुशासनम् ।
तदिदं नाप्रशान्ताय नादान्ताय तपस्विने ॥३६
नावेदविदुषे वाच्यं तथा नानुगताय च ।
नासूयकायानृजवे न चानिर्दिष्टकारिणे ॥३७
न तर्कशास्त्रदग्धाय तथैव पिशुनाय च ।
श्लाघिने श्लाघनीयाय प्रशान्ताय तपस्विने ॥३८
इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय तु ।
रहस्यधर्मं वक्तव्यं नान्यस्मै तु कथचन ॥३९
यद्यप्यस्य महीं दद्याद्रत्नापूर्णामिमां नरः ।
इदमेव ततः श्रेय इति मन्येत तत्त्ववित् ॥४०
अतो गुह्यतरार्थं तदध्यात्ममतिमानुषम् ।
यत्तन्महर्षिभिर्दृष्टं वेदान्तेषु च गीयते ॥४१
तद्युष्मभ्यं प्रयच्छामि यन्मां पृच्छत सत्तमाः ।
यन्मे मनसि वर्तेत यस्तु वो हृदि संशयः ।
श्रुतं भवद्भिस्तत्सर्वं किमन्यत्कथयामि वः ॥४२

हे पुत्र ! स्नातकों का यह शास्त्र अनुशासन ही कहना चाहिए। सो, इसको अप्रशान्त और दमनशीलता से रहित तपस्वी को नहीं देना चाहिए ॥३ ॥ जो वेदों का विद्वान् न हो अनुगत रहने वाला न हो-असूया (निन्दा) करने वाला हो सरल स्वभाव का न हो और मानदिष्ट कार्मों का करने वाला हो ऐसे पुरुष को भी नहीं बताना चाहिए ॥३७॥ उसी तरह से जो तर्क शास्त्र से दग्ध हो पिशुनता करने वाला हो उसको भी इस शास्त्र की बातें नहीं बतानी चाहिए। जो श्लाघी हो-श्लाघा करने के योग्य हो परम प्रशान्त स्वभाव वाला हो तथा तपस्वी हो उसको ही बतलाना चाहिए ॥३८॥ इस परम गोपनीय शास्त्रानुशासन को जो अपना प्रिय पुत्र या शिष्य हो तथा सदा अनुगत रहने वाला हो उसी के लिये यह परम रहस्य धर्म बोलना चाहिए। तथा अन्य किसी को भी

किसी भी प्रकार से नहीं कहना चाहिए ।।३९।। मनुष्य भले ही रत्नों से परिपूर्ण इस भूमि को इनको दे देवे किन्तु यह ही उससे भी श्रेय है ऐसा तत्त्व वेत्ता को मानना चाहिए ।।४०।। इससे अधिक गुह्य वह अतिमानुप अध्यात्म है जिसको महर्षियों ने देखा है और वेदान्तों में भी गाया जाता है ।।४१।। हे सत्तमो ! वह हम आपको देते हैं जिसको कि आप लोग मुझसे पूछ रहे हो । जो आपके हृदय में संशय है वह मैं मन में जानता हूँ । आप लोगों ने वह सब सुन ही लिया है । अब मुझे यह बतलाओ कि आगे और मैं आपको क्या लतलाऊँ ।।४२।।

अध्यात्मं विस्तरेणेह पुनरेव वदन्त्व नः ।
यदध्यात्मं यथा विद्मो भगवन्नृषिसत्तम ।।४३
अध्यात्मं यदिदं विप्राः पुरुषस्येह पठ्यते ।
युष्मभ्यं कथयिष्यामि तस्य व्याख्याऽवधार्यताम् ।।४४
भूमिरापस्तथा ज्योतिर्वायुराकाशमेव च ।
महाभूतानि यश्चैव सर्वभूतेषु भूतकृत् ।।४५
आकारं तु भवेद्यस्य यस्मिन्देहं न पश्यति ।
आकाशाद्यं शरीरेषु कथं तदुपवर्णयेत् ।।
इन्द्रियाणां गुणाः केचित्कथं तानुपलक्षयेत् ।।४६
एतद्वो वर्णयिष्यामि यथावदनुदर्शनम् ।
शृणुध्वं तदिहैकाग्र्या यथातत्त्वं यथा च तत् ।।४७
शब्दः श्रोत्रं तथा खानि त्रयमाकाशलक्षणम् ।
प्राणश्चेष्टा तथा स्पर्श एते वायुगुणास्त्रयः ।।४८
रूपं चक्षुर्विपाकश्च त्रिधा ज्योतिर्विधीयते ।
रसोऽथ रसनं स्वेदो गुणास्त्वेते त्रयोऽम्भसाम् ।।४९

मुनियों ने कहा—हे भगवन् ! आप तो ऋषियों में परम श्रेष्ठ हैं । आप हमारे सामने यहां पर उस अध्यात्म को पुनः बतलाइये । जिससे कि हम लोग उस अध्यात्म को भली भाँति जान लेवें ।।४३।। श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे विप्रो ! यहां पर जो पुरुष का अध्यात्म पढ़ा जाया करता है मैं आप लोगों को उसकी व्याख्या कहूँगा । और लोग उसका

अवधारण कीजिए ॥४४॥ भूमि, जल, ज्योति, वायु, आकाश ये ही महाभूत होते हैं और जो समस्त भूतों में भूतकृत होता है ॥४५॥ मुनिगण ने कहा—जिसका आकार तो होता ही होगा किन्तु जिसमें देह को नही देखता है वह आकाश आदि शरीरो मे कैसे विद्यमान रहते हैं-इसका उप वर्णन कीजिए। कुछ इन्द्रियों के गुण होते हैं वे कैसे होते हैं उन्हें भी बतलाइये ॥४६॥ श्री व्यास जी ने कहा—यह मैं दर्शन के अनुसार ही यथावत् रीति से आपको वर्णन करके बतलाऊँगा। उसे यहाँ पर आप लोग एकाग्रचित्त वाले होकर तत्त्व के अनुसार जैसा भी वह है उसका श्रवण कीजिए ॥४७॥ शब्द अर्थात् ध्वनि का उत्पन्न होना-श्रोत्र उस ध्वनि को सुनने वाली इन्द्रिय और आकाश अर्थात् पोल का होना-यह ही तीन आकाश के लक्षण हैं। प्राण-चेष्टा-और स्पर्श ये ही तीन गुण वायु के होते हैं ॥४८॥ रूप-चक्षु इन्द्रिय और विपाक यह तीन प्रकार की ज्योति (तेज) होती है। रस-रसन और स्वेद ये तीन गुण जल के हुआ करते हैं ॥४९॥

घ्रेय घ्राण शरीर च भूमेरेते गुणास्त्रय ।
एतवानिन्द्रियग्रामो व्याख्यातः पाञ्चभौतिकः ॥५०
वायोः स्पर्शो रसोऽद्भ्यश्च ज्योतिषो रूपमुच्यते ।
आकाशप्रभव शब्दो गन्धो भूमिगुणः स्मृतः ॥५१
मनो बुद्धि. स्वभावश्च गुणा एते स्वयोनिजाः ।
ते गुणानतिवर्तन्ते गुणेभ्य. परमा मता. ॥५२
यथा कूर्म इवाङ्गानि प्रसार्य सनियच्छति ।
एवमेवेन्द्रियग्राम बुद्धिश्रेष्ठो नियच्छति ॥५३
यदूर्ध्व पादतलयोरर्वाकोर्द्ध्वं च(गधश्च) पश्यति ।
एतस्मिन्नेव कृत्ये सा वर्तते बुद्धिरुत्तमा ॥५४
गुणैस्तु नीयते बुद्धिर्बुद्धिरेवेन्द्रियाण्यपि ।
मन षष्ठानि सर्वाणि बुद्ध्या भावात्कुतो गुणाः ॥५५
इन्द्रियाणि नरैः पञ्च षष्ठं तन्मन उच्यते ।
सप्तमी बुद्धिमेवाऽऽहु. क्षेत्रज्ञं विद्धि चाष्टमम् ॥५६

सूंघने के योग्य पदार्थ—घ्राण इन्द्रिय और शरीर ये तीन गुण भूमिके होते हैं ? इतना इन्द्रियों का ही समुदाय है जो कि पाञ्च भौतिक अर्थात् पाँचों महाभूतों से सम्पन्न बतलाया गया है ।।५०।। वायु का स्पर्श—जल से रस और ज्योति से रूप कहा जाता है । आकाश से उत्पन्न होने वाला शब्द और गन्ध भूमि का गुण कहा गया है ।।५१।। मन-बुद्धि और स्वभाव ये गुण स्वयोनि से समुत्पन्न होने वाले हैं । वे गुणों का अतिवर्तन कर देते हैं तो गुणों से भी परम माने गये हैं ।।५२।। जिस प्रकार से एक कूर्म (कछुआ) अपने अङ्गों को फैलाकर पुनः उनको अपने ही अन्दर सिकोड़ कर छुपा लेता है । इसी रीति से बुद्धि में श्रेष्ठ पुरुष भी अपनी इन्द्रियों के समुदाय को अपने ही अन्दर अन्तर्मुखी वृत्ति वाली कर लिया करता है ।।५३।। जो पाद तलों के ऊपर जो भाग है और नीचे जो भाग है इन दोनों को जो देखता है । इसी कृत्य में ही वह उत्तम बुद्धि वर्त्तमान होती है ।।५४।। गुणों से बुद्धि प्राप्त की जाया करती है और बुद्धि के द्वारा ही इन्द्रियां भी होती हैं । छटवाँ जिनमें मन होता है ऐसी सब इन्द्रियाँ बुद्धि ही से होती हैं गुणों के भाव से क्या कहा जावे ।।५५।। नरों के द्वारा पाँच इन्द्रियाँ और छटवाँ मन ही कहा जाता है । सातवीं बुद्धि को कहते हैं तथा क्षेत्रज्ञ आठवाँ कहा जाता है ऐसा ही समझ लो ।।५६।।

चक्षुरालोकनायैव संशयं कुरुते मनः ।
बुद्धिरध्यवसानाय साक्षी क्षेत्रज्ञ उच्यते ।।५७
रजस्तमश्च सत्त्वं च त्रय एते स्वयोनिजः ।
समाः सर्वेषु भूतेषु तान्गुणानुपलक्षयेत् ।।५८

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत् ।
प्रशान्तमिव संयुक्तं सत्त्वं तदुपधारयेत् ।।५९

यत्तु संतापसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ।
प्रवृत्तं रज इत्येवं तत्र चाप्युपलक्षयेत् ।।६०

यत्तु संमोहसंयुक्तमव्यक्तं विषमं भवेत् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ।।६१

प्रहर्षः प्रीतिरानन्द स्वाम्यं स्वस्थात्मचित्तता ।
अकस्माद्यदि वा कस्माद्वदन्ति सात्त्विकान्गुणान् ॥६२
अभिमानो मृषावादो लोभो मोहस्तथा क्षमा ।
लिङ्गानि रजसस्तानि वर्त्तन्ते हेतुतत्त्वतः ॥६३

चक्षु इन्द्रिय केवल देखने ही के लिये होती है- मन संशय किया करता है। बुद्धि अध्यवसान के लिये होती है और जो क्षेत्रज्ञ होता है वही साक्षी कहा जाता है ॥५७॥ रजोगुण तमोगुण और सत्त्वगुण ये तीन स्व-योनिज होते हैं। ये गुण समस्त भूतों में सम होते हैं उन गुणों को उप-लक्षित करना चाहिए ॥५८॥ वहां पर जो प्रीति से संयुक्त कुछ होता है उसे आत्मा में लक्षित करना चाहिए। प्रशान्त की ही तरह संयुक्त उस सत्त्व को उपधारित करे ॥५९॥ जो संताप से संयुक्त है वह शरीर अथवा मन में होता है। प्रवृत्त रज है इसी प्रकार से वहां पर भी उपलक्षित करना चाहिए ॥६०॥ जो संमोह से संयुक्त अव्यक्त है वह विषम होता है। वह अप्रतर्क्य और अविज्ञेय है तम उसको उपधारित करे। प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, स्वाम्य, स्वस्थात्म चित्तता अकस्मात् अथवा यदि किसी से सात्त्विक गुणों को कहते हैं। अभिमान, मृषा (मिथ्या) वाद, लोभ, मोह, क्षमा, ये सब रजोगुण के चिह्न हैं और हेतु तत्त्व से होते हैं ॥६१-६२॥

तथा मोह प्रमादश्च तन्द्री निन्द्राऽप्रबोधिता ।
कथंचिदभिवर्तन्ते विज्ञेयास्तामसा गुणाः ॥६४
मनः प्रसृजते भावं बुद्धिरध्यवसायिनी ।
हृदयं प्रियमेवेह त्रिविधा कर्मचोदना ॥६५
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परः स्मृतः ॥६६
बुद्धिरात्मा मनुष्यस्य बुद्धिरेवाऽऽत्मनायिका ।
यदा विकुरुते भावं तदा भवति सा मनः ॥६७
इन्द्रियाणां पृथग्भावाद्बुद्धिर्विकुरुते ह्यनु ।
शृण्वती भवति श्रोत्रं स्पृशती स्पर्श उच्यते ॥६८

पश्यन्ति च भवेद्दृष्टी रसन्ती रसना भवेत् ।
जिघ्रन्ती भवति घ्राणं बुद्धिर्विकुरुते पृथक् ॥६९
इन्द्रियाणि तु तान्याहुस्तेषां वृत्त्या वितिष्ठति ।
तिष्टति पुरुषे बुद्धिर्बुद्धिभावव्यवस्थिता ॥७०

उसी भांति से मोह, प्रमाद, तन्द्री, निद्रा, अप्रबोधिता अर्थात् ज्ञान का सर्वथा अभाव ये किसी तरह से अभिवर्त्तित होते हैं और तामस अर्थात् तमोगुण के ही गुण होते हैं ॥६४॥ यह मन तो भाव का प्रसृजन किया करता है और बुद्धि अध्यवसाय करने वाली होती है और यहां पर हृदय प्रिय होता है इस रीति से कर्मों की प्रेरणा तीन प्रकार की हुआ करती है ॥६५॥ इन्द्रियों से पर तो अर्थ होते हैं और अर्थों से पर मन होता है । मन से भी परा बुद्धि होती है और बुद्धि से पर आत्मा कहा गया है ॥६६॥ मनुष्य की आत्मा बुद्धि ही है और यह बुद्धि ही आत्मा की नायिका है । जिस समय में वह भाव को विशेष या विकृत करती है तभी वह मन हो जाती है ॥६७॥ इन्द्रियों के पृथक् भाव से पीछे बुद्धि विकृत होती है । जब वह श्रवण करने वाली होती है तो श्रोत्र हो जाती है—स्पर्श करती हुई स्पर्श कही जाती है ॥६८॥ हंसती हुई दृष्टि होती है—रसास्वादन करने वाली रसनेन्द्रिय—घ्राण करती हुई नासिकेन्द्रिय ऐसा पृथक् बुद्धि ही विकार किया करती है ॥६९॥ उनको ही इन्द्रियां कहते हैं क्यों कि यह बुद्धि ही उनकी वृत्ति से विशेष रूप से स्थित हुआ करती है । पुरुष में बुद्धि बुद्धि के भाव में व्यवस्थित होती हुई स्थित रहा करती है ॥७०॥

कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदपि शोचति ।
न सुखेन न दुःखेन कदाचिदिह मुह्यते ॥७१
स्वयं भावात्मिका भावांस्त्रीनेतानविवर्तते ।
सरितां सागरो भर्ता महावेलामिवोर्मिमान् ॥७२
यदा प्रार्थयते किंचित्तदा भवति सा मनः ।
अधिष्ठाने च वै बुद्ध्या पृथगेतानि संस्मरेत् ॥७३

इन्द्रियाणि च मेध्यानि विचेतव्यानि कृत्स्नशः ।
सर्वाण्येवानुपूर्वेण यद्यदा च विधीयते ॥७४
अविभागमना बुद्धिर्भावो मनसि वर्तते ।
प्रवर्तमानस्तु रज. सत्त्वमप्यतिवर्तते ॥७५
ये वै भावेन वर्तन्ते सर्वेष्वेतेषु ते त्रिषु ।
अन्वर्थान्सम्प्रवर्तन्ते रथनेमिमरा इव ॥७६
प्रदीपार्थं मन. कुर्यादिन्द्रियैर्बुद्धिसत्तमैः ।
निश्चरद्भिर्यथायोगमुदासीनैर्यदृच्छया ॥७७

किसी समय मे यह प्रीति को प्राप्त किया करती है और किसी समय मे शोक किया करती है । यहा पर यह न तो सुख से और न दुःख से मोह को प्राप्त हुआ करती है ॥७१॥ यह स्वय भावात्मिका अर्थात् भावो के स्वरूप वाली होती हुई इन तीन भावो का अतिवर्तन किया करती है । ऊर्मियो (लहरो) वाला सागर जो सरिताओं का भर्ता है जिस तरह स महा वेला को अति वर्तन किया करता है ॥७२॥ जिस अवसर पर यह कुछ प्रार्थना किया करती है उस समय पर वही बुद्धि मन हो जाया करती है । और अधिष्ठान मे बुद्धि से इनको पृथक् इनका स्मरण किया करती है ॥७३॥ मेध्य इन्द्रियो को पूर्णतया विशेष रूप से चेत वाली करना चाहिए । ये सभी आनुपूर्वी से जो भी जब किया जाता है ॥७४॥ अविभाग मन वाली बुद्धि है और भाव मन मे रहता है । प्रवृत्त-मान रजोगुण सत्वगुण का भी अतिवर्तन कर दिया करता है ॥७५॥ वे सब इन तीनो मे (सत्त्व-रज-तम) जो भाव के द्वारा वर्त्तमान रहा करते हैं रथ की नेमि को अरो के ही समान अन्वर्थों को सम्प्रवृत्त हुआ करते हैं ॥७६॥ यथायोग निश्चरण करने वाली और यदृच्छा मे उदासीन बुद्धि सत्व इन्द्रियो से मन को प्रदीप के लिये करना चाहिए ॥७७॥

एव स्वभावमेवेदमिति बुद्ध्वा न मुह्यति ।
अशोचन्सम्प्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सर ॥७८
न ह्यात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियै. कामगोचरैः ।
प्रवर्तमानैरनेकैर्दुर्धरैरकृतात्मभिः ॥७९

तेषां तु मनसा रश्मीन्यदा सम्यङ्नियच्छति ।
तदा प्रकाशतेऽस्याऽऽत्मा दीपदीप्ता यथाऽऽकृतिः ॥८०
सर्वेषामेव भूतानां तमस्युपगते यथा ।
प्रकाशं भवते सर्वं तथैवमुपधार्यताम् ॥८१
यथा वारिचरः पक्षी न लिप्यति जले चरन् ।
विमुक्तात्मा तथा योगी गुणदोषैर्न लिप्यते ॥८२
एवमेव कृतप्रज्ञो न दोषैर्विषयांश्चरन् ।
असज्जमानः सर्वेषु न कथंचित्प्रलिप्यते ॥८३
त्यक्त्वा पूर्वकृतं कर्म रतिर्यस्य सदाऽऽत्मनि ।
सर्वभूतात्मभूतस्य गुणसङ्गेन सज्जतः ॥८४

इस प्रकार से यह एक स्वभाव ही होता है—यही समझकर मोह को प्राप्त नहीं हुआ करता है। शोच न करते हुए और भली भांति प्रसन्न होते हुए तथा नित्य मत्सरता से रहित होने वाला यह आत्मा कामगोचर अर्थात् स्वेच्छा से विचरण करने वाली—अनेक रूप में प्रवर्त्तमान—दुर्धर और अकृतात्मा रूप वाली इन्द्रियों के द्वारा यह आत्मा देखा नहीं जा सकता है ॥७८-७९॥ मन के द्वारा उनकी वाग्डोरों को जिस समय में भली भाँति नियन्त्रित करता है उसी अवसर पर दीपक के द्वारा दीप्त जैसे आकृति होती है उसी तरह से इसका आत्मा प्रकाशित हुआ करता है ॥८०॥ जिस प्रकार से सभी भूतों को तम के उपगत हो जाने पर सब प्रकाश को प्राप्त होते हैं उसी तरह से अवधारण कर लीजिए ॥८१॥ जिस रीति से जल में चरण करने वाला पक्षी जल में सञ्चरण करता हुआ भी लिप्त नहीं होता है वैसे ही विमुक्त आत्मा वाला योगी भी गुणों के दोशों से कभी लिप्त नहीं हुआ करता है ॥८२॥ इसी प्रकार से प्रज्ञा को रखने वाला दोषों से विषयों में चरणन करते हुए सब में असज्जमान होता हुआ किसी भी प्रकार से प्रलिप्त नहीं हुआ करता है ॥८३॥ पूर्व में किये हुए कर्म को त्याग करके जिसकी रति सदा ही आत्मा में होती है जो कि सब भूतों का आत्म भूत है और गुणों के सङ्ग से सज्जित रहता है ॥८४॥

स्वयमात्मा प्रसवति गुणेष्वपि कदाचन ।
न गुणा विदुरात्मान गुणान्वेद स सर्वदा ॥८५

परिदध्याद्गुणानां स द्रष्टा चैव यथातथम् ।
सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं लक्षयेन्नरः ॥८६

सृजते तु गुणानेक एको न सृजते गुणान् ।
पृथग्भूतौ प्रकृत्यैतौ सम्प्रयुक्तौ च सर्वदा ॥८७

यथाऽश्मना हिरण्यस्य सम्प्रयुक्तौ तथैव तौ ।
मशकोदुम्बरौ वाऽपि सम्प्रयुक्तौ यथा सह ॥८८

इषिका वा यथा मुञ्जे पृथक्च सह चैव ह ।
तथैव सहितावेतौ अन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ ॥८९

गुणों में भी कभी भी स्वयं आत्मा प्रसव किया करता है किन्तु गुण आत्मा को नहीं जानते हैं और वह सर्वदा गुणों का ज्ञान रखता है ॥८५॥ द्रष्टावह गुणों का यथातथ (ठीक २) परिध्यान करे । मनुष्य को सत्त्व और क्षेत्रज्ञ मे इसी प्रकार से अन्तर लक्षित करना चाहिए ॥८६॥ एक गुणों का सृजन करता है और एक गुणों को नहीं सृजता है । प्रकृति से ये दोनों पृथक् भूत हैं और सर्वदा से प्रयुक्त ही रहते हैं ॥८७॥ जिस तरह से मशक और उदुम्बर सर्वदा साथ ही में प्रयुक्त रहा करते हैं । जैसे अश्म (पाषाण) के साथ हिरण्य होता है वैसे ही वे दोनों भी सम्प्रयुक्त हुआ करते हैं । जिस तरह से मशक औदुम्बर साथ मे सम्प्रयुक्त है ॥८८॥ जिस तरह से मूँग में इषिका पृथक् भी है और साथ में भी है ठीक उसी भाति ये दोनो परस्पर एक दूसरे में प्रतिष्ठित सहित रहा करते हैं ॥८९॥

—⁂—

गुणसर्जनकथन

सृजते तु गुणान्सत्त्वं क्षेत्रज्ञस्त्वधितिष्ठति ।
गुणान्विक्रियतः सर्वानुदासीनवदीश्वरः ॥१

स्वभावयुक्तं तत्सर्वं यदिमान्सृजते गुणान् ।
ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं सृजते तद्गुणांस्तथा ॥२

प्रवृत्ता न निवर्तन्ते प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते ।
एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिमिति चापरे ॥३

उभयं संप्रधार्यैतदध्यवस्येद्यथामति ।
अनेनैव विधानेन भवेद्वै संशयो महान् ॥४

अनादिनिधनो ह्यात्मा तं बुद्ध्वा विहरेन्नरः ।
अक्रुध्यन्नप्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः ॥५

इत्येवं हृदये सर्वो बुद्धिचिन्तामयं दृढम् ।
अनित्यं सुखमासीनमशोच्यं छिन्नसंशयः ॥६

तरयेत्प्रच्युतां पृथ्वीं यथा पूर्णां नदीं नराः ।
अवगाह्य च विद्वांसो विप्रा लोलमिमं तथा ॥७

श्रीव्यासदेवजी ने कहा—इन गुणों का सृजन तो सत्त्व किया करता है और क्षेत्रज्ञ इन पर अधिष्ठित होता है। सब गुणों की विक्रिया करता हुआ ईश्वर उदासीन की ही भाँति होता है ॥१॥ वह सभी कुछ स्वभाव से ही युक्त होता है कि इन गुणों का सृजन करता है। जिस प्रकार से ऊर्णनाभि सूत्र का तथा उसके गुणों का सृजन किया करते हैं ॥२॥ जो प्रवृत्त हो जाते हैं वे निवृत्त नहीं हुआ करते हैं। और प्रवृत्ति उपलब्ध नहीं हुआ करती है। इसी प्रकार से कुछ लोग व्यवसित होते हैं और दूसरे लोग निवृत्ति की ओर जाते हैं ॥३॥ दोनों को इस प्रकार से भली भाँति विचार करके अपनी बुद्धि के अनुसार ही अध्यवसाय करना चाहिए। इसी विधान से महान् संशय होता है ॥४॥ यह आत्मा अनादि निधन वाला है अर्थात् यह ऐसा है जिसका आदि और अन्त

नहीं हुआ करता है। तात्पर्य यही है कि आत्मा नित्य और अविनाशी है। उस आत्मा का इसी तरह से ज्ञान प्राप्त करके नर को विहार करना चाहिए। कभी भी क्रोध न करते रहना चाहिये ॥५॥ इसी प्रकार से हृदय में सब बुद्धि चिन्ता भय—हृष्ट—अनित्य-अशोच्य सुख परममासीन होता हुआ छिन्न संशय वाला होवे ॥६॥ जिस प्रकार से नर परिपूर्ण नदी को तैर जाया करता है उसी भाँति प्रच्युत पृथ्वी को अवगाहन करके हे विप्रो ! विद्वान् लोग इस अति चञ्चल को भी तैर जाया करते हैं ॥७॥

न तु तप्यति वै विद्वान्स्थले चरति तत्त्ववित् ।
एवं विचिन्त्य चाऽऽत्मानं केवलं ज्ञानमात्मनः ॥८
ता[त] तु बुद्ध्वा नरः सर्गं भूतानामागतिं प्रतिम् ।
समचेष्टश्च वै सम्यग्लभते शममुत्तमम् ॥९
एतद्द्विजन्मसामग्र्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
आत्मज्ञानसमस्नेहपर्याप्तं तत्परायणम् ॥१०
तत्त्वं बुद्ध्वा भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम् ।
विज्ञायैतद्विमुच्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः ॥११
न भवति विदुषां महद्भयं,
यदविदुषां सुमहद्भयं परत्र ।
न हि गतिरधिकाऽस्ति कस्यचि-
द्भवति हि या विदुषः सनातनी ॥१२
लोके मातरमसूयते नर-
स्तत्र देवमनिरीक्ष्य शोचते ।
तत्र चेत्कुशलो न शोचते,
ये विदुस्तदुभयं कृताकृतम् ॥१३
यत्करोत्यनभिसंधिपूर्वकं,
तच्च निन्दयति यत्पुरा कृतम् ।
यत्प्रियं तदुभयं न वाऽप्रियं,
तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः ॥१४

विद्वान् कभी तप्त नहीं हुआ करता है और तत्वों का वेत्ता स्थल में चरण किया करता है इसी रीति से आत्मा का विशेष चिन्तन करे और उसको केवल आत्मा का ज्ञान समझ कर नर भूतों की आगति तथा जाति को जानकर समान चेष्टा वाला सम्यक् उत्तमशम् का लाभ किया करता है ॥८-९॥ यह समस्त द्विजन्माओं की सामग्री है और उनमें भी ब्राह्मण की विशेष रूप से होती है। आत्मज्ञान के समान स्नेह से पर्याप्त होकर उसी में तत्पर रहना चाहिये ॥१०॥ तत्व का ज्ञान प्राप्त करके ही बुद्ध होता है इसके अतिरिक्त अन्य बुद्ध का क्या लक्षण है—यही जान करके मनीषीगण कृत कृत्य होते हुये विमुक्ति प्राप्त किया करते हैं ॥११॥ जो विद्वान् पुरुष होते हैं उनको महान् भय नहीं हुआ करता है और विद्वत्ता-हीन होते हैं उनको ही परलोक में महान् भय हुआ करता है किसी की भी अधिक गति नहीं होती है जो कि विद्वान् पुरुषों की सनातनी गति हुआ करती है ॥१२॥ लोक में नर माता की असूया किया करता है और वहां पर देव का दर्शन न प्राप्त कर सोच करता है। और उस विषय में यदि कुशल होता है तो नहीं सोच करता है। जो लोग कृत और अकृत दोनों को जाना करते हैं ॥१३॥ जो कुछ भी अभिसन्धि (अभिप्राय एवं ज्ञान) से रहित होकर किया करता है और जो कुछ भी पहिले जन्म में किया है उसकी बुराई करता है। जो प्रिय हो या अप्रिय हो यह दोनों ही प्रियाप्रिय करते हुये उसको यहाँ पर समुत्पन्न किया करता है ॥१४॥

यस्माद्धर्मात्परो धर्मो विद्यते नेह कश्चन।
यो विशिष्टश्च भूतेभ्यस्तद्भवान्प्रब्रवीतु नः ॥१५
धर्मं च संप्रवक्ष्यामि पुराणमृषिभिः स्तुतम्।
विशिष्टं सर्वधर्मेभ्यः शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥१६
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि बुद्ध्या संयम्य तत्त्वतः।
सर्वतः प्रसृतानीह पिता बालानिवाऽऽत्मजान् ॥१
मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तपः।
विज्ञेयः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते ॥१८

तानि सर्वाणि सधाय मन षष्ठानि मेधया ।
आत्मतृप्त. स एवाऽऽसीद्बहुचिन्त्यमचिन्तयन् ॥१९॥
गोचरेभ्यो निवृत्तानि यदा स्थास्यन्ति वेश्मनि ।
तदा चैवाऽऽत्मनाऽऽत्मान पर द्रक्ष्यथ शाश्वतम् ॥२०॥
सर्वात्मान महात्मान विधूममिव पावकम् ।
प्रपश्यन्ति महात्मान ब्राह्मणा ये मनीषिणः ॥२१॥

मुनियों ने कहा—इस लोक में जिस धर्म से पर अन्य कोई भी धर्म नहीं है और प्राणियो के लिये कोई विशिष्ट धर्म हो उसी को इस समय मे आप हम लोगों को बतलाइए ॥१५॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं अब पारमार्थिक पुराण धर्म की व्याख्या करूँगा जिसकी बडे २ महर्षियो ने प्रशसा की है। यह धर्म सभी धर्मो से विशेषता रखने वाला है। आप लोग समाहित होते हुए इसको सुनिए ॥१६॥ ये इन्द्रियाँ जो होती है वे बहुत ही प्रमथी हुआ करती है अर्थात् मनुष्य के सम्पूर्ण ज्ञान का मथन कर दिया करती हैं। अतएव इनको तात्त्विक दृष्टि से सयमित करे। ये इन्द्रियाँ अपने अपने विषयो की ओर सभी तरफ फैली हुई रहा करती हैं। इनका सयम उसी भाति करे जिस तरह से पिता सर्वत्र स्वेच्छया सञ्चरणशील अपने पुत्रो को देख भाल करते हुए सयत रक्खा करता है ॥१७॥ मन की ओर इन्द्रियो की एकाग्रता का रखना ही सबसे परमोत्कृष्ट तप होता है। समस्त धर्मों म पर उसी को धर्म जानना चाहिए और यहीं पर धर्म कहा जाता है ॥१८॥ उन समस्त इन्द्रियो को जिन पाँचो इन्द्रियो म छटवाँ मन भी होता है भली भाँति मेधा से धारण करके अर्थात् सयमित बनाकर रहने वाला वह पुरुष ही बहुत सी चिन्तन करने के योग्य पदार्थों का चिन्तन कभी भी न करता हुआ ही आत्म तृप्त अर्थात् अपने आत्म ज्ञान के द्वारा ही तृप्ति प्राप्त करने वाला था ॥१९॥ जिस समय मे इन्द्रियो के द्वारा प्रत्यक्ष म दिखलाई देने वाले विषयो से निवृत्त हुई इन्द्रियाँ अपने ही घर मे अन्तर्मुखी वृत्ति वाली होकर स्थित रहा करती है उसी समय मे अपनी आत्मा मे आत्मा को जो परम शाश्वत है देखोगे ॥२०॥ जो ब्राह्मण परमार्थिक मनीषी होते हैं वे ही धूम से रहित

अग्नि की ही भाँति सबकी आत्मा महान् आत्मा वाली उस आत्मा को देख लिया करते हैं अर्थात् आत्मा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ॥२१॥

यथा पुष्पफलोपेतो बहुशाखो महाद्रुमः ।
आत्मनो नाभिजानीते क्व मे पुष्पं क्व मे फलम् ॥२२
एवमात्मा न जानीते क्व गमिष्ये कुतोऽन्वहम् ।
अन्योह्यस्यान्तरात्माऽस्ति यः सर्वमनुपश्यति ॥२३
ज्ञानदीपेन दीप्तेन पश्यत्यात्मानमात्मना ।
दृष्ट्वाऽऽत्मानं तथा यूयं विरागा भवत द्विजाः ॥२४
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मुक्तत्वच इवोरगाः ।
परां बुद्धिमवाप्येहाप्यचिन्ता विगतज्वराः ॥२५
सर्वतःस्रोतसं घोरां नदीं लोकप्रवाहिणीम् ।
पञ्चेन्द्रियग्राहवतीं मनःसंकल्परोधसम् ॥२६
लोभमोहतृणच्छन्नां कामक्रोधसरीसृपाम् ।
सत्यतीर्थानृतक्षोभां क्रोधपङ्कां सरिद्वराम् ॥२७
अव्यक्तप्रभवां शीघ्रां कामक्रोधसमाकुलाम् ।
प्रतरध्वं नदीं बुद्ध्या दुस्तरामकृतात्मभिः ॥२८

जिस प्रकार से पुष्पों तथा फलों से समन्वित बहुत-सी शाखाओं वाला महान् द्रुम अपने विषय में कुछ भी ज्ञान नही रखता है कि कितने और कहां किस प्रकार के फल तथा पुष्प वर्त्तमान हें ॥२२॥ उसी भांति जो एकात्मा है वह नहीं जानता है कि मैं कहां से आया हूँ और कहां जाऊँगा । इसके अन्दर रहने वाला अन्य ही अन्तरात्मा है जो सभी कुछ को देखा तथा जाना करता है ॥२३॥ परम प्रदीप्त ज्ञान रूपी दीपक के द्वारा आत्मा से ही आत्मा को देखता है । हे द्विजो ! आप लोग भी उसी प्रकार से आत्मा का दर्शन करके राग से रहित हो जाओ ॥२४॥ आप लोग समस्त पापों से विमुक्त होते हुए उरगों के समान ही मुक्त त्वचा वाले होकर परमाधिक बुद्धि को प्राप्त करके इस लोक में भी चिन्ता से

रहित तथा विगत सन्ताप वाले हो जाओ ॥२५॥ सभी ओर स्रोत वाली-घोर लोकों में प्रवाह करने वाली-पाँचों इन्द्रियों के ग्राहों वाली-मन के सङ्कल्पों के तटों वाली-लोभ, मोह रूप वाले सरीसृपों से युक्त-सत्यरूपी तीर्थ वाली-अनृत (मिथ्या) से क्षोभ सहित-क्रोध रूपी कीच से समन्वित अव्यक्त उत्पत्ति वाली शीघ्र गामिनी-काम और क्रोध से समाकुल और जो अकृत आत्मा वाले पुरुष हैं उनके द्वारा परम दुस्तर यह श्रेष्ठ सरिता है। इसको बुद्धि के द्वारा तैर कर पार कीजिए ॥२६-२८॥

संसारसागरगमां योनिपातालदुस्तराम् ।
आत्मजन्मोद्भवां तां तु जिह्वावर्तदुरासदाम् ॥२९
यां तरन्ति कृतप्रज्ञा धृतिमन्तो मनीषिणः ।
तां तीर्णः सर्वतो मुक्तो विधूतात्माऽऽत्मवाञ्शुचिः ॥३०
उत्तमां बुद्धिमास्थाय ब्रह्मभूयाय कल्पते ।
उत्तीर्णः सर्वसंक्लेशान्प्रसन्नात्मा विकल्मषः ॥३१
भूयिष्ठानीव भूतानि सर्वस्थानान्निरीक्ष्य च ।
अक्रुध्यन्नप्रसीदंश्च नृशंसमतिस्तथा ॥३२
ततो द्रक्ष्यथ सर्वेषां भूतानां प्रभवोप्ययम् ।
एतद्धि सर्वधर्मेभ्यो विशिष्टं मेनिरे बुधाः ॥३३
धर्मं धर्मभृतां श्रेष्ठा मुनयः सत्यदर्शिनः ।
आत्मानो व्यापिनो विप्रा इति पुत्रानुशासनम् ॥३४
प्रयताय प्रवक्तव्यं हितायानुगताय च ।
आत्मज्ञानमिदं गुह्यं सर्वगुह्यतमं महत् ॥३५

यह ऐसी नदी है जो इस संसार रूपी सागर की ओर गमन किया करती है। इसमें जो विविध योनियाँ है वही पाताल है उससे यह नदी परम दुस्तर भी है। यह अपने जन्म के उद्भवों वाली है और जिसमे जिह्वा इन्द्रिय के द्वारा अनेक रसों का आस्वादन करने की ललक ही इस में बड़ा भारी भँवर है इससे यह परम दुरासद है ॥२९॥ ऐसी उसी घोर नदी को प्रज्ञाधारी धीरज वाले मनीषी लोग ही तैर कर पार किया करते हैं। जो इस नदी को तीर्ण कर लेता है वह सबसे मुक्त हो जाया करता

है। वह विधूत आत्मा वाला-आत्मवान् और पवित्र भी हो जाता है ॥३०॥ अत्युत्तम बुद्धि में समास्थित होकर वह ब्रह्म के सदृश हो जाया करता है। फिर तो वह सभी क्लेशों से पार होकर प्रसन्न आत्मा वाला और कल्मषों से रहित हो जाया करता है ॥३१॥ बहुत अधिक भूतों को जो सभी जगहों पर स्थित हैं देखकर क्रोध न करते हुए नृशंस मति वाला पुरुष प्रसन्न होकर फिर सभी प्राणियों के इस प्रभव को भी देखेगा। बुध गण इसी को समस्त धर्मों से विशिष्ट धर्म मानते थे ॥३२-३३॥ धर्म के धारण करने में परम श्रेष्ठ-सत्य को ही देखने वाले मुनिगण धर्म को ही उत्तम मानते हैं। हे विप्रो ! वे आत्माओं को व्यापी मानते हैं। हे पुत्र ! यही अनुशासन है ॥३४॥ यह आत्मज्ञान का विषय परम गोपनीय है और यह ऐसा महान् भी है जो जितनी भी गोपनीय बातें हैं उन सबसे अधिक गोपनीय है। इस आत्म ज्ञान के विषय को उसी के आगे बताना चाहिए जो प्रयत-हित और अपने अनुगत होवे ॥३५॥

अब्रवं यदहं विप्रा आत्मसाक्षिकमञ्जसा ।
नैव स्त्री न पुमानेवं न चैवेदं नपुंसकम् ॥३६

अदुःखमसुख ब्रह्म भूतभव्यभवात्मकम् ।
नैतज्ज्ञात्वा पुमान्स्त्री वा पुनर्भवमवाप्नुयात् ॥३७

यथा मतानि सर्वाणि तथैतानि यथा तथा ।
कथितानि मया विप्रा भवन्ति न भवन्ति च ॥३८

तत्प्रीतियुक्तेन गुणान्वितेन,
पुत्रेण सत्पुत्रदयान्वितेन ।
दृष्ट्वा हितं प्रीतमना यदर्थं,
ब्रूयात्सुतस्येह यदुक्तमेतत् ॥३९

मोक्षः पितामहेनोक्त उपायान्नानुपायतः ।
तमुपायं यथान्यायं श्रोतुमिच्छामहे मुने ॥४०

अस्मासु तन्महाप्राज्ञा युक्तं निपुणदर्शनम् ।
यदुपायेन सर्वार्थान्मृगयध्वं सदाऽनघाः ॥४१

घटोपकरणे बुद्धिर्घटोत्पत्तौ न सा मता ।
एवं धर्माद्युपायार्थे नान्यधर्मेषु कारणम् ॥४२

हे विप्रो ! जो मैंने यह वाक्य सांशिक तुरन्त ही तुम लोगों को बोल कर समझा दिया है। यह न तो स्त्री ही है-न पुमान् है और न यह नपुंसक ही है। यह ब्रह्म न दुःख स्वरूप है और न सुख रूप ही है तथा यह भूत भव्य भवात्मक है। इसका ज्ञान प्राप्त करके चाहे कोई पुरुष हो या स्त्री हो वह फिर संसार में जन्म ग्रहण कर सांसारिक बन्धन को नहीं प्राप्त किया करता है ॥३६-३७॥ जिस प्रकार स सबके माने हुए मत हैं उन सभी को जैसे-तैसे करके मैंने कह दिये हैं वे चाहे होते हों और न भी होते हैं ॥३८॥ सो उसकी प्रीति से युक्त-गुणों से समन्वित और सत्पुत्र पर दया से संयुत पुत्र के द्वारा हित देखकर प्रसन्न मन वाले को जिसके लिये इसको बोल देना चाहिए। यहाँ पर सुत का यह मुक्त ही धर्म होता है ॥३९॥ मुनिगण ने कहा—परमेष्ठी पितामह के द्वारा मोक्ष के विषय में तो खूब अच्छी तरह से बता दिया गया है और अनुपाय से उसके उपायों को नहीं बताया है। हे मुनीन्द्रवर ! हम इस समय में उस उपाय को न्यायानुसार श्रवण करने की उत्कृष्ट अभिलाषा रखते हैं। श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे महाप्राज्ञो ! वह परम निपुण दर्शन है और युक्त है। हे अनघो ! जिसके उपाय से सदा सर्वार्थों की खोज करो ॥४०-४१॥ घटों के उपकरण में जो बुद्धि होती है वह घट की उत्पत्ति में नहीं मानी गयी है। इसी प्रकार से धर्मादिक उपायों के अर्थ में अन्य धर्मों में कारण नहीं होता है ॥४२॥

पूर्वे समुद्रे यः पन्था न स गच्छति पश्चिमम् ।
एकः पन्था हि मोक्षस्य तच्छृणुध्वं ममानघाः ॥४३

क्षमया क्रोधमुच्छिन्द्यात्कामं संकल्पवर्जनात् ।
सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति ॥४४

अप्रमादाद्भयं रक्षेद्रक्षेत्क्षेत्रं च संविदम् ।
इच्छां द्वेषं च कामं च धैर्येण विनिवर्तयेत् ॥४५

बिद्रां च प्रतिभां चैव ज्ञानाभ्यासेन तत्त्ववित् ।
उपद्रवांस्तथा योगी हितजीर्णमिताशनात् ॥४६
लोभ मोहं च संतोषाद्विषयांस्तत्त्वदर्शनात् ।
अनुक्रोशादधर्मं च जयेद्धर्ममुपेक्षया ॥४७
आयत्या च जयेदाशां सामर्थ्यं सङ्गवर्जनात् ।
अनित्यत्वेन च स्नेहं क्षुधां योगेन पण्डितः ॥४८
कारुण्येनाऽऽत्मनाऽऽत्मानं तृष्णां च परितोषतः ।
उत्थानेन जयेत्तन्द्रां वितर्कं निश्चयाज्जयेत् ॥४९

पूर्व सागर में जो मार्ग होता है अर्थात् पूर्व दिशा में स्थित समुद्र का जो पथ होता है वह पूर्व ही दिशा वाला है कभी भी पश्चिम दिशा की ओर जाने वाला नहीं होता है। मोक्ष का अर्थात् संसार में स्वकृत कर्मानुसार बारम्वार जन्ममरण जिसके बन्धन से छुटकारा पाने का एक ही मार्ग होता हैं। हे निष्पापो! उसको अब आप लोग मुझसे भलीभाँति श्रवण कर लो ॥४३॥ यह क्रोध मनुष्य के हृदय में रहने वाला एक महान् शत्रु है जिसके वश में वड़े वड़े महामुनि भी आ जाया करते हैं और उसका त्याग करना वहुत ही कठिन है। क्रोध को क्षमा के ही द्वारा उच्छिन्न करना चाहिए। क्रोध के ही समान दूसरा मानसिक शत्रु काम होता है उस काम वासना को मन में उठने वाले सङ्कल्पों के त्याग से जीतना चाहिए। यह काम वासनाभी अच्छे अच्छे तपस्वियों को सन्मार्ग से च्युत कर दिया करती है। यदि मन में सभी काम की वासना का थोड़ा सा भी सङ्कल्प समुत्थित हो तभी उसको वर्जित कर देना चाहिए तभी काम को निर्जित किया जा सकता है। धीर पुरुष का महान् कर्त्तव्य है कि वह सत्त्व का ही सेवन किया करे और इसी के द्वारा वह निद्रा का उच्छेद करने के योग्य होता है। स्वास्थ्य की परमावश्यकता से अधिक निद्रा लेना भी उचित नहीं है ॥४४॥ भय प्रमाद से ही हुआ करता है अतएव प्रमाद का त्याग करके ही भय से अपनी सुरक्षा करनी चाहिए तथा संविद क्षेत्र की रक्षा करे। इच्छा, द्वेष और काम को धैर्य्य से शनैः २ विनिर्वतित करना चाहिए ॥४५॥ तत्त्व के ज्ञाता पुरुष

को चाहिए कि निद्रा तथा प्रतिभा को ज्ञान के अभ्यास से ही दूर करे। तथा योग के अभ्यास करने वाले पुरुष को सभी उपद्रवों को जो अभीष्ट मार्ग के बाधक हुआ करते हैं परम हितकर शीघ्र ही जीर्ण होने वाले और परिमित भोजन करके ही दूर कर देना चाहिए ॥४६॥ यह लोभ और मोह भी बहुत बड़े शत्रु हैं और मुक्ति मार्ग के परम बाधक होते हैं। बड़े बड़े ज्ञानियों के हृदय में भी लालच तथा मोह थोड़ी बहुत मात्रा में अवश्य ही अपना घर बनाये रखते हैं। इससे निवृत्ति सन्तोष से ही हुआ करती है। जो भी जितना और जैसा प्राप्त है उसी में सन्तुष्ट रह कर इन पर विजय की जा सकती है। संसार के अन्य सभी विषयों के ऊपर तत्त्व दर्शन से विजय प्राप्त करनी चाहिए सभी विषय क्षणिक आनन्द देने वाले विनाशील होते हैं और सन्मार्ग से बहुत दूर पटक देते हैं अतः ये तनिक दृष्टि से विचार करके छोड़े जा सकते हैं। अनुक्रोश से अर्थात् बुरा कर्म समझ कर अधर्म को तथा उपेक्षा भाव से धर्म को जीते ॥४७॥ आयति से आशा को जीते और सामर्थ्य को सङ्ग के वर्जन करके जीतना चाहिए क्योंकि मानवों के सङ्ग के होने पर ही सामर्थ्य का प्रदर्शन किया जाता है। सभी पदार्थ और सांसारिक सम्बन्ध जो मानवों के साथ होते हैं वे सभी अनित्य हैं और चाहे जब भी इनसे वियोग हो जाया करता है तथा ये कभी भी किसी के स्थायी नहीं रहा करते हैं अतएव इनके साथ जो स्नेह होता है उसे अनित्यता समझकर उसका त्याग करना चाहिए। तथा पण्डित पुरुष को योग के द्वारा क्षुधा पर विजय हासिल करना चाहिये क्योंकि क्षुधा भी एक बड़ा ही भयानक रोग होता है जिसके हो जाने पर मनुष्य को कुछ भी भला-बुरा नहीं सूझता है ॥४८॥ करुणा की भावना से आत्मा के ही द्वारा अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त करे अर्थात् स्वयं ही अपने ऊपर दया करके अपनी आत्मा का उद्धार करना चाहिये। पूर्णतया परितोष करके तृष्णा पर विजय प्राप्त करे। तन्द्रा को उत्थान के द्वारा जीते और जो वितर्क मन में उठें उनको निश्चय करके ही जीत लेना चाहिये। जब निश्चय हो जायगा तो कोई भी वितर्क कभी उठेगा ही नहीं ॥४९॥

मौनेन बहुभाषां च शौर्येण च भयं जयेत् ।
यच्छेद्वाङ्मनसी बुद्धया तां यच्छेज्ज्ञानचक्षुषा ।।५०

ज्ञानमात्मा महान्यच्छेत्तं यच्छेच्छान्तिरात्मनः ।
तदेतदुपशान्तेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा ।।५१
योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च यान्कवयो विदुः ।
कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम् ।।५२

परित्यज्य निषेवेत यथावद्योगसाधनात् ।
ध्यानमध्ययनं दानं सत्यंह्रीरार्जवं क्षमा ।।५३
शौचमाचारतः शुद्धिरिन्द्रियाणां च संयमः ।
एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानमुपहन्ति च ।।५४

सिध्यन्ति चास्य संकल्पा विज्ञानं च प्रवर्तते ।
धूतपापः स तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।।५५
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निर्विशेद्ब्रह्मणः पदम् ।
अमूढत्वमसङ्गित्वं कामक्रोधविवर्जनम् ।।५६
अदैन्यमनुदीर्णत्वमनुद्वगो ह्यवस्थितिः ।
एष मार्गो हि मोक्षस्य प्रसन्नो विमलः शुचिः ।।
तथा वाक्कायमनसां नियमाः कामतोऽव्ययाः ।।५७

उपर्युक्त नियमों एवं साधनों के अभ्यास से अनेक जटिल दोषों से छुटकारा पाया जा सकता है और इसीलिये स्पष्ट रूप से बतला दिये गये हैं। बहुत प्रकार की अनर्गल बात चीत की भाषा पर मौन व्रत धारण करके विजय प्राप्त करे। यदि बिल्कुल मौन न भी निभे तो बहुत ही कम और अत्यावश्यक बात बोलनी चाहिए। मौन रहने से बहुत से दोषों से बचा जा सकता है अतएव मौन धर्म का महत्त्व बहुत अधिक होता है। शूरता से जीतना चाहिए। बुद्धि के द्वारा वाणी और मन को देवे और उस बुद्धि को ज्ञान के नेत्र से देना चाहिए ।।५०।। ज्ञान की आत्मा है उसे महान् को देवे और उस महान् को आत्मा की शान्ति को देवे। इस प्रकार से परम उपशान्त होकर शुचि कर्म के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए

॥५१॥ फिर योग के दोषों का समुच्छादन करे कि जिनको कि विद्वान् लोग संख्या में पाँच बतलाया करते हैं । वे पाँच ये हैं—काम, क्रोध, लोभ, भय और इनमें पाँचवाँ स्वप्न होता है ॥५२॥ इन सब दोषों का परित्याग करके यथावत् योग के साधनों से निषेवण करे । ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, आर्जव (सरलता), क्षमा, शौच, आचार से शुद्धि और समस्त इन्द्रियों का संयम । इन सबका सेवन करे । इनके सेवन से तेज की विशेष वृद्धि होती है और मनुष्य पाप का उपहनन कर दिया करता है ॥५३-५४॥ इस प्रकार से उपर्युक्त सद्गुणों के सेवन करने से मनुष्य के सभी सङ्कल्प सिद्ध हो जाया करते हैं तथा विज्ञान प्रवृत्त हो जाया करता है । पापों को धूत (क्षालित) कर देने वाला वह तेजस्वी हो जाता है तथा लघु आहार करने वाला और इन्द्रियों को जीत लेने वाला होता है ॥५५॥ काम और क्रोध इन दोनों महान् दोषों को वश में करके ब्रह्म के परमपद में प्रवेश करना चाहिए । मूढ़ता का अभाव, असङ्गित्व अर्थात् किसी के भी सङ्ग का न करना, काम वासना और क्रोध का विशेष रूप से वर्जन करना, अदीनता, अनुद्धोणत्व, उद्वेग का अभाव वाली अवस्थिति, यह ही मोक्ष का मार्ग है जो प्रसन्न, विमल और शुचि है । तथा ये वाणी, काया और मन के नियम हैं और काम से अव्यय हैं ॥५६-५७॥

—:×:—

योगविधिनिरूपण

सांख्य योगस्य नो विप्र विशेषं वक्तुमर्हसि ।
तव धर्मज्ञ सर्वं हि विदितं मुनिसत्तम ॥१
सांख्याः सांख्यं प्रशसन्ति योगान्योगविदुत्तमाः ।
वदन्ति कारणैः श्रेष्ठैः स्वपक्षोद्भवनाय वै ॥२

अनीश्वरः कथं मुच्येदित्येवं मुनिसत्तमाः।
वदन्ति कारणैः श्रेष्ठं योगं सम्यङ्मनीषिणः ॥३
वदन्ति कारणं वेदं सांख्यं सम्यग्द्विजातयः।
विज्ञायेह गतीः सर्वा विरक्तो विषयेषु यः ॥४
उर्ध्वं स देहात्सुव्यक्तं विमुच्येदिति नान्यथा।
एतदाहुर्महाप्राज्ञाः सांख्यं वै मोक्षदर्शनम् ॥५
स्वपक्षे कारणं ग्राह्यं समर्थं वचनं हितम्।
शिष्टानां हि मतं ग्राह्यं भवद्भिः शिष्टसंमतैः ॥६
प्रत्यक्षं हेतवो योगाः सांख्याः शास्त्रविनिश्चयाः।
उभे चैते मते तत्त्वे समवेते द्विजोत्तमाः ॥७

मुनियों ने कहा—हे विप्र ! सांख्य और योग की जो विशेषता है उसे हम लोगों को आप बतलाने के योग्य हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! आप तो धर्म के पूर्ण ज्ञाता हैं और आपको सभी कुछ विदित है ॥१॥ श्रीव्यास-देवजी ने कहा—जो सांख्य के मानम वाले हैं वे सदा सांख्य शास्त्र के ही मार्ग की प्रशंसा किया करते हैं कि सर्वोत्तम सांख्य का ही मार्ग है और जो उत्तम योग के वेत्ता महापुरुष योगी होते हैं योग की प्रशंसा करते हैं। सभी अपने-अपने पक्ष की उद्भावना के लिये परम श्रेष्ठ कारण उप-स्थित करके ही उनके द्वारा कहा करते है ॥२॥ सांख्य शास्त्र अनीश्वर वादी आस्तिक दर्शन कहा जाता है क्योकि वहाँ पर प्रकृति पुरुष के सिवाय ईश्वर की चर्चा ही नहीं है। मनीषीगण अनेक कारणों के द्वारा योग को ही अच्छा और श्रेष्ठ बताया करते हैं। द्विजातिगण वेद को कारण कह-कर सांख्य को ही उत्तम कहा करते हैं। यहां पर सब गतियों को समझ कर के ही जो पुरुष विषयों में विरक्त हो जाया करता है ॥३-४॥ वह देह त्याग के पश्चात् विमुक्त हो जाया करता है यह सुव्यक्त ही है और इसमें अन्यथा कुछ भी नहीं है। महान् प्राज्ञ लोग इस सांख्य को मोक्ष का दर्शन कहा करते हैं ॥५॥ अपने पक्ष में जो कारण हो उसे ग्रहण करना चाहिए क्योंकि जो समर्थन करने वाला वचन होता है वह हित प्रद हुआ करता है। आप लोग सब शिष्टों के सम्मत पुरुष हैं आपके द्वारा किए

पुरुषों का मत ग्राह्य होता है। योगी प्रत्यक्ष हेतु वाले होते हैं और साख्य के मानने वाले पुरुष शास्त्र के द्वारा विशेष निश्चय वाले हुआ करते हैं। हे द्विजोत्तमो ! ये दोनों ही मत तत्व मे समवेत हुआ करते हैं ॥६-७॥

उभे चैते मते ज्ञाते मुनीन्द्राः शिष्टसमते ।
अनुष्ठिते यथाशास्त्रं नयेता परमा गतिम् ॥८
तुल्य शौचं तयोर्युक्त दया भूतेषु चानघा ।
व्रताना धारण तुल्यं दर्शन त्वसम तयो ॥९
यदि तुल्य व्रत शौच दया चात्र महामुने ।
तुल्य तद्दर्शन कस्मात्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम ॥१०
राग मोह तथा स्नेह काम क्रोधं च केवलम् ।
योगास्थिरोदितान्दोषान्पञ्च तान्प्राप्नुवन्ति तान् ॥११
यथा वाऽनिमिषा. स्थूल जाल छित्वा पुनर्जलम् ।
प्राप्नुवन्ति तथा योगात्तत्पद वीतकल्मषा. ॥१२
तथैव वागुरा छित्वा वलवन्तो यथा मृगा. ।
प्राप्नुयुर्विमल मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः ॥१३
लोभजानि तथा विप्रा बन्धनानि बलान्वित. ।
छित्वा योगात्पर मार्गं गच्छन्ति विमल शुभम् ॥१४

हे मुनीन्द्र गणो ! शिष्ट पुरुषों के द्वारा सम्मत इन दोनों मतों का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर तथा शास्त्र के अनुसार इनको अनुष्ठित करने पर अर्थात् जिस प्रकार से शास्त्र की आज्ञा है उसी तरह से इन मतों का पूर्णतया पालन करने पर परम गति को प्राप्त किया करते हैं ॥८॥ हे अनघो ! उन दोनों ही मतो मे शौच समान ही है और प्राणियों पर दया का भाव रखना भी तुल्य ही है। समस्त व्रतो का धारण करना भी एक सा ही दोनों के सिद्धान्तो के अनुसार है। उन दोनों मतो का दर्शन तुल्य ही होता है ॥९॥ मुनियो ने कहा—हे महामुने ! यदि व्रतो का परिपालन-शौच और दया तुल्य ही है तो हे द्विजोत्तमो ! वह फिर पृथक् दर्शन किस कारण से माना जाता है—अब आप यही हम लोगो को बतलाने की कृपा कीजिये ॥१०॥ श्रीव्यासदेवजी ने कहा—मनुष्य राग,

मोह, स्नेह, काम, और केवल क्रोध योग की अस्थिर कहे हुए उन इन पाँच दोषों को प्राप्त किया करते हैं ॥११॥ अथवा जिस तरह से अनिमिष स्थूल जन का छेदन करके पुनः जल को ही प्राप्त कर लिया करते हैं उसी भाँति योग से वीत कल्मष अर्थात् पाप रहित होते हुए योग के पद का पा लेते हैं ॥१२॥ ठीक उसी भाँति से ही जैसे बलवान् मृग वागुरा को छेदन कर सभी बन्धनों से मुक्त होते हुए विमल मार्ग को प्राप्त करते हैं ॥१३॥ हे विप्रो ! बल से समन्वित पुरुष लोभ से समुत्पन्न बन्धनों का छेदन करके योग के प्रभाव से शुभ-विमल मार्ग को जाया करते हैं ॥१४॥

अचलास्त्वाविला विप्रा वागुरासु तथाऽऽपरे ।
विनश्यन्ति न संदेहस्तद्वद्योगबलादृते ॥१५
बलहीनाश्च विप्रेन्द्रा यथा जालं गता द्विजाः ।
बन्धं न गच्छन्त्यनघा योगास्ते तु सुदुर्लभाः ॥१६
यथा च शकुनाः सूक्ष्मं प्राप्य जालमरिन्दमाः ।
तत्राशक्ता विपद्यन्ते मुच्यन्ते तु बलान्विताः ॥१७
कर्मजैर्बन्धनैर्बद्धास्तद्वद्योगपरा द्विजाः ।
अबला न विमुच्यन्ते मुच्यन्ते च बलान्विताः ॥१८
अल्पकश्च यथा विप्रा वह्निः शाम्यति दुर्बलः ।
आक्रान्त इन्धनैः स्थूलैस्तद्वद्योगबलः स्मृतः ॥१६
स एव च तदा विप्रा वह्निर्जातबलः पुनः ।
समीरणगतः कृत्स्नां दहेत्क्षिप्रं महीमिमाम् ॥२०
तत्त्वज्ञानबलो योगी दीप्ततेजा महाबलः ।
अन्तकाल इवाऽऽदित्यः कृत्स्नं संशोषयेज्जगत् ॥२१

अचल-आविल तथा दूसरे वागुराओं में बद्ध सब हे विप्रो ! विनष्ट हो जाया करते हैं—इसमें सन्देह नहीं है उसी भाँति योग बल के बिना बल से हीन द्विज है विप्रेन्द्र ! जैसे जाल में अति हो अनघ बन्धन को प्राप्त नहीं होते हैं वे योग तो बहुत ही सुदुर्लभ हैं ॥१५-१६॥ हे अरिन्दमो !

जिस तरह पक्षी सूक्ष्म जाल को प्राप्त करके वहां पर जो क्लान्त होते हैं वे तो विपन्न हुआ करते हैं और जो बल से समन्वित हुआ करते हैं वे मुक्त हो जाया करते हैं ॥१७॥ कर्मज बन्धनों के द्वारा बन्धन में बँधे हुए हो उसी भाँति योग में तत्पर होते हैं तथा जो बल से हीन हुआ करते हैं वे विमुक्त नहीं होते हैं तथा जो बल से युक्त होते हैं वे छुटकारा पा जाया करते हैं तात्पर्य यह है कि मुक्त होने के लिये सबलता पूर्णतया अपेक्षित होती है ॥१८॥ हे द्विजो ! जिस रीति से बहुत थोड़ी सी अग्नि तो बहुत ही शीघ्र दुर्बल होने के कारण शमित हो जाती है अर्थात् बुझ जाया करती है। जो स्थूल ईंधनों से आक्रान्त होती है वही योग बल कहा गया है ॥१९॥ हे विप्रो ! वही वह्नि उस समय में पुनः प्राप्त बल वाली हो जाया करती है और यदि वही अग्नि वायु के द्वारा प्रज्वलित हो जावे तो फिर क्या कहना है फिर तो इस समस्त भूमि को ही बहुत शीघ्र दग्ध कर दिया करती है ॥२०॥ तत्त्वों के ज्ञान के बल वाला योगी दीप्त तेज वाला तथा महान् बल से संयुत होता है जिस प्रकार से अन्त काल में सूर्य के समान ही सम्पूर्ण जगत् संशोधित कर दिया करता है ॥२१॥

दुर्बलश्च यथा विप्राः स्रोतसा ह्रियते नरः ।
बलहीनस्तथा योगी विषयैर्ह्रियते च सः ॥२२
तदेव तु यथा स्रोतो विष्कम्भयति वारण. ।
तद्वद्योगबलं लब्ध्वा न भवेद्विषयैर्हृतः ॥२३
विशान्ति वा वशाद्वाऽथ योगाद्योगबलान्विताः ।
प्रजापतीन्मनून्सर्वान्महाभूतानि चेश्वरा. ॥२४
न यमो नान्तकः क्रुद्धो न मृत्युर्भीमविक्रम. ।
विशन्ते तद्द्विजाः सर्वे योगस्यामिततेजसः ॥२५
आत्मनां च सहस्राणि बहूनि द्विजसत्तमाः ।
योगः कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत् ॥२६
प्राप्नुयाद्विषयान्कश्चित्पुनश्चोग्रं तपश्चरेत् ।
संक्षिप्येच्च पुनर्विप्रा. सूर्यस्तेजोगुणानिव ॥२७

बलस्थस्य हि योगस्य बलार्थं मुनिसत्तमाः ।
विमोक्षप्रभवं विष्णुमुपपन्नमसंशयम् ॥२८

बलानि योगप्रोक्तानि मयैतानि द्विजोत्तमाः ।
निदर्शनार्थं सूक्ष्माणि वक्ष्यामि च पुनर्द्विजाः ॥२९

हे विप्रगण ! जैसे दुर्बल मनुष्य जल के सोते के द्वारा हरण किया जाया करता है उसी भाँति जो योग के बल से हीन योगी होता है अर्थात् जिसमें पूरी योग की शक्ति नहीं हुआ करती है ऐसा योगाभ्यासी विषयों के द्वारा हरण किया जाया करता है॥२२॥ जिस तरह से वारण (हाथी) उसी जल के सोते को विष्कम्पित करा दिया करता है उसी तरह से योगी योग के विशाल को प्राप्त करके फिर विषयों के द्वारा अपहृत नहीं हुआ करता है ॥२३॥ जो योग के विशाल बल से युक्त होते हैं वे योग के बल समर्थ प्रजापति— मनुगण सब और महा भतों में प्रवेश कर जाया करते हैं ॥२४॥ जहाँ पर न यमराज-न क्रुद्ध मृत्यु जो भयानक विक्रम वाला होता है प्रवेश किया करते हैं वहाँ पर वे सब योग के अपरिमित तेज वाले हे द्विजो ! प्रवेश किया करते हैं ॥२५॥ हे द्विजसत्तमो ? बहुत सहस्र आत्माएं योग के बल से युक्त है । अतएव योग का अभ्यास अवश्य ही करना चाहिए तथा उसके द्वारा बल की प्राप्ति भी करे । फिर उन सबके द्वारा इस सम्पूर्ण भूमि पर सञ्चरण करे ॥२६॥ यदि कोई उनमें से विषयों की प्राप्ति भी कर लेवे तो उसको फिर अत्यन्त उस तप का समाचरण करना चाहिए जिससे कि चित्त विषयों के बन्धनों से विमुक्त हो जावे । हे विप्रो ! पुनः संक्षिप्त करना चाहिये जैसे सूर्य तेज के गुणों को संक्षिप्त किया करता है ॥२७॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! बल में स्थित बल के लिये विमोक्ष प्रभव भगवान् विष्णु को उपपन्न हो जाता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२८॥ हे द्विजों में परम श्रेष्ठो ! ये बल मैंने आपको बतला दिये हैं ? हे द्विजो ! ये तो केवल निदर्शन के ही लिये मैंने आप लोगों को सूक्ष्म बताये हैं। उन्हे मैं कहूंगा ॥२९॥

कणाना भक्षणे युक्तः पिण्याकस्य च भो द्विजाः ।
स्नेहाना वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात् ॥३०
भुञ्जानो यावक रूक्ष दीर्घकाल द्विजोत्तमाः ।
एकाहारो विशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥३१
पक्षान्मासानृतू श्चित्रान्सचरश्च गुहास्तथा ।
अप. पीत्वा पयोमिश्रा योगी बलमवाप्नुयात् ॥३२
अखण्डमपि वा मास सतत मुनिसत्तमा. ।
उपोष्य सम्यक्शुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥३३
काम जित्वा तथा क्रोध शीतोष्ण वर्षमेव च ।
भय शोक तथा स्वाप पौरुषान्विषयास्तथा ॥३४
अरति दुर्जया चैव घोरा हत्वा च भो द्विजा' ।
स्पर्श निद्रा तथा तन्द्रा दुर्जया मुनिसत्तमा' ॥३५
दीपयन्ति महात्मान सूक्ष्ममात्मानमात्मना ।
वीतरागा महाप्राज्ञा ध्यानाध्ययनसपदा ॥३६

श्री व्यासदेवजी, ने कहा—हे द्विजो ! कणो के और पिण्याक के भक्षण मे योगी को युक्त होना चाहिये । जो स्नेह चाहे किसी भी प्रकार के हो सबको वर्जित कर देवे ऐसा ही युक्त योगी बल को प्राप्त कर लेता है ॥३०॥ हे द्विजोत्तमो ! बहुत लम्बे समय तक रूखे यावक को खाने वाला—एक ही समय मे आहार को ग्रहण करने वाला विशुद्ध आत्मा से युक्त योगी बल की प्राप्ति किया करता है ॥३१॥ पक्ष मास और अद्भुत ऋतु मे सञ्चरण करते हुए,तथा गुफाओ मे समय को व्यतीत करता है तथा पयोमिश्र जलो का पान कर लेता है ॥३२॥ पूरे मास पर्यन्त निरन्तर हे मुनिगणो ! अच्छी तरह से उपवास करके शुद्ध आत्मा वाला योगी बल को प्राप्त कर लेता है ॥३३॥ काम-क्रोध-शीत-उष्ण-मेघ वर्षा इनको जीत कर भय-शोक-निद्रा तथा पुरुषो से सम्बन्धित विषयो को जीत लेना चाहिए ॥३४॥ परम घोर और कठिनाई से जय प्राप्त किये जाने वाली

अरति को देखकर हे द्विजो ! स्पर्श श्रेष्ठ दुर्जय निद्रा तथा तन्द्रा पर विजय पाकर योगी अभ्यास किया करते हैं। राग से रहित महान् प्राज्ञ लोग ध्यान और अध्ययन की सम्पत्ति के द्वारा अपनी आत्मा से सूक्ष्म आत्मा को जोकि महान् आत्मा है दीप्त किया करते है ॥३५-३६॥

दुर्गस्त्वेष मतः पन्था ब्राह्मणानां विपश्चिताम्
यः कश्चिद्व्रजति क्षिप्रं क्षेमेण मुनिपुंगवाः ॥३७

यथा कश्चिद्वनं घोरं बहुसर्पसरीसृपम् ।
श्वभ्रवत्तोयहीनं च दुर्गमं बहुकण्टकम् ॥३८
अभक्तमटवीप्रायं दावदग्धमहीरुहम् ।
पन्थानं तस्कराकीर्णं क्षेमेणाभिपतेत्तथा ॥३९

योगमार्गं समासाद्य यः कश्चिद्व्रजते द्विजः ।
क्षेमेणोपरमेन्मार्गाद्बहुदोषोऽपि संमतः ॥४०
आस्थेयं क्षुरधारासु निशितासु द्विजोत्तमाः ।
धारणा सा तु योगस्य दुर्गेयमकृतात्मभिः ॥४१

विषमा धारणा विप्रा यान्ति वै न शुभां गतिम् ।
नेतृहीना यथा नावः पुरुषाणां तु वै द्विजाः ॥४२
यस्तु तिष्ठति योगाधौ धारणासु यथाविधि ।
मरणं जन्मदुःखित्वं सुखित्वं स विशिष्यते ॥४३

विद्वान् ब्राह्मणों का यह मार्ग दुर्गम माना गया है। हे मुनिश्रेष्ठो ! जो कोई भी क्षेम पूर्वक शीघ्र ही इस पथ पर गमन किया करता है। जिस तरह से कोई पुरुष अत्यन्त घोर—वहुत से सर्पों और सरीसृपों से युक्त-श्वभ्रवत्-जल से रहित-अधिक कण्टकों से समन्वित-दुर्गम-अभक्त-प्रायः वर्मों से घिरे हुए—दावाग्नि के द्वारा दग्ध हुए वृक्षों से संयुत-तस्करों से संयुत ऐसे पथ को वहुत ही क्षेम के साथ पार कर जाता है ॥३७-३९॥ जो कोई द्विज योग मार्ग को प्राप्त करके उसके द्वारा गमन किया करता है वहुत दोषों वाला भी संमत यह यद्यपि है तो भी उसको क्षेम पूर्वक

पार कर जाता है॥४०॥ हे द्विजोत्तमो ! यह अत्यन्त पैनी छुरी की धार के ही समान अकृत आत्मा वालों के द्वारा दुर्ज्ञेय (न जानने के योग्य) योग की धारणा होती है ॥४१॥ हे विप्रो ! यह धारणा बहुत ही विषम होती है और मनुष्य शुभ जाति को प्राप्त नहीं हुआ करते हैं। जिस तरह से पुरुषों में जो नेत्रों से हीन अर्थात् अन्धे होते हैं वे नाग को प्राप्त नहीं किया करते हैं॥४२॥ जो पुरुष योगादि में और विधि पूर्वक धारणाओं में स्थित होता है वह मरण और जन्म ग्रहण कर दुःखित को मुक्तित्व में विशिष्ट कर दिया करता है ॥४३॥

पुराण के श्रवणपठन का फल प्राप्ति कथन

एवं पुरा मुनीन्व्यासः पुराणं श्लक्ष्णया गिरा ।
दशाष्टदोषरहितैर्वाक्यैः सारतरैर्द्विजाः ॥१

पूर्णमस्तमलं शुद्धं नानाशास्त्रसमुच्चयैः ।
जातिशुद्धसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम् ॥२

पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ।
श्रावयित्वा यथान्यायं विरराम महामतिः ॥३

तेऽपि श्रुत्वा मुनिश्रेष्ठा पुराणं वेदसम्मितम् ।
आद्यं ब्रह्माभिधानं च सर्ववान्छाफलप्रदम् ॥४

हृष्टा बभूवुः सुप्रीता विस्मिताश्च पुनः पुनः ।
प्रशशंसुस्तदा व्यासं कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥५

अहो त्वया मुनिश्रेष्ठ पुराणं श्रुतिसम्मितम् ।
सर्वाभिप्रेतफलदं सर्वपापहरं परम् ॥६

प्रोक्तं श्रुतं तथाऽस्माभिर्विचित्रपदमक्षरम् ।
न तेऽस्त्यविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु वै प्रभो ।।७

श्री लोमहर्षण मुनीन्द्र ने कहा—हे द्विजगणो ! इसी रीति पुरातन काल में भगवान् श्री व्यासदेवजी ने मुनिगणों के आगे परमाधिक श्लक्षण वाणी के द्वारा अट्ठारह प्रकार के दोषों से रहित सार वाले वाक्यों से कहा था। उनके वे वाक्य पूर्णरूप से मल रहित थे—परम शुद्ध थे और अनेक शास्त्रों के ज्ञान के समुदाय से समन्वित थे। वह ज्ञान भी जातियों की शुद्धि से समायुक्त और साधु शब्दों के द्वारा उपशोभित था। वह ज्ञान पूर्व पक्ष की उक्तियों के सिद्धान्तों की परिनिष्ठा से समन्वित था। ऐसे परमोत्तम ज्ञान का न्यायपूर्वक श्रवण करा कर महामुनि श्री व्यासदेव विरत हो गये थे अर्थात् मौन का अवलम्बन उन्होंने लेलिया था ।।१-३।। उन परम श्रेष्ठ मुनियों ने भी उस वेदों से सम्मत पुराण का श्रवण करके जोकि सबसे आद्य है—'ब्राह्म'—इस नाम वाला है और सभी वाञ्छाओं के प्रदान करने वाला है ।।४।। समस्त मुनिगण परम हर्षित हुए—अत्यन्त प्रसन्नता वाले हो गये और अत्यधिक विस्मय से भर गये थे। और फिर उन सबने श्री कृष्ण द्वैपायन मुनिवर व्यासदेवजी की प्रशंसा की थी ।।५।। मुनियों ने कहा—अहो ! हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! आपने इस महापुराण को वर्णित किया है जो कि श्रुति (वेद) के ही समान है— समस्त मन के मनोरथों का पूर्ण-फल प्रदान करने वाला है तथा प्राणियों के कृत सभी प्रकार के महान् पापों का विनाश कर देने वाला है। हमने ऐसे आपके मुखारविन्द से कथित महापुराण का श्रवण कर लिया है जिनमें अति अद्भुत पदावली और विचित्र अक्षर थे। हे प्रभो ! आप तो महान् ज्ञानी महापुरुष हैं आपके लिये तो इस त्रिभुवन में कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपको विदित न हो। अर्थात् त्रैलोक्य का सम्पूर्ण ज्ञान आप में भरा हुआ है ।।६ ७।।

सर्वज्ञस्त्वं महाभाग देवेष्विव बृहस्पतिः ।
नमस्यामो महाप्राज्ञं ब्रह्मिष्ठं त्वां महामुनिम् ।।८

येन त्वया तु वेदार्था भारते प्रकटीकृता ।
क शक्नोति गुणान्वक्तुं तव सर्वान्महामुने ॥६
अधीत्य चतुरो वेदान्साङ्गान्व्याकरणानि च ।
कृतवान्भारत शास्त्र तस्मै ज्ञानात्मने नम ॥१०
नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे,
फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्ण,
प्रज्वालितो ज्ञानमय. प्रदीप ॥११
अज्ञानतिमिरान्धाना भ्रामिताना कुदृष्टिभि ।
ज्ञानाञ्जनशलाकेन त्वया चोन्मीलिता दृश ॥१२
एवमुक्त्वा समभ्यर्च्य व्यास चैव पूजिता ।
जग्मुर्यथागत सर्वे कृतकृत्या स्वमाश्रमम् ॥१३
तथा मया मुनिश्रेष्ठा कथित हि सनातनम् ।
पुराण सुमहापुण्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४

हे महाभाग ! आप तो देवगणो मे देवगुरु बृहस्पति के ही तुल्य सभी कुछ के परम ज्ञाता है । हम सभी लोग महान् प्राज्ञ ब्रह्म मे स्थित और महामुनीन्द्र आपकी सेवा मे अपना नमस्कार समर्पित करते है ॥८॥ जिन आपने महाभारत महान् ग्रन्थ की रचना करके उसमे समस्त वेदो के ही अर्थों को प्रकट करके दिखला दिया है । हे महामुने ! आपके गुण-गण इतने अधिक एव महान् से भी महान् है कि उन आपके गुणो का वर्णन कौन कर सकता है ? अर्थात् किसी मे भी ऐसी शक्ति विद्यमान नही है जो आपके गुणो को बतला सके ॥६॥ जिन आपने अङ्ग शास्त्रो के सहित चारो वेदो का भली भाँति अध्ययन करके और व्याकरण आदि का भी ज्ञान प्राप्त कर इस भारत शास्त्र की रचना की है उन्ही परम ज्ञान के स्वरूप वाले प्रभु आपकी सेवा मे हम सब मुनिगण का प्रणाम समर्पित है ॥१०॥ हे विशाल बुद्धि के वैभव वाले ! हे व्यासदेवजी ! आपको हम सबका नमस्कार है । हे विकसित नेत्र कमलो के दल वाले ! आपकी सेवा मे हमारा बारम्बार प्रणाम है जिन आपने महाभारत ग्रन्थ-

रूपी तैल से परिपूर्ण ज्ञान से भरा हुआ दीपक को प्रज्वलित कर दिया है। तात्पर्य यही है कि महाभारत एक ऐसा ग्रन्थ आपने निर्मित कर दिया है जो साद्यन्त ज्ञान से परिपूर्ण है ॥११॥ जो अपनी दूषित दृष्टियों के द्वारा अज्ञान रूपी अन्धकार में अन्धे होते हुए भ्रमित हो रहे हैं अर्थात् अज्ञान के होने के कारण से ही नाना योनियों में बारम्बार अन्धों के समान टक्करें खाते रहा करते हैं उनके नेत्रों को आपने ज्ञान की शलाका के द्वारा खोल दिय अर्थात् अज्ञानियों के हृदय में ज्ञान की उत्पत्ति कर दी है ॥१२॥ इ . इस प्रकार से कहकर उन सबने भगवान् श्री व्यासदेवजी का अभ्यर्चन किया था और वे भी पूजित हुए थे। इसके अनन्तर वे सब अपने अपने आश्रमों में यथा स्थान कृतकृत्य (सफल) होकर चले गये थे। जिस तरह से या मार्ग से वे आये थे उसी से वापिस चले गये ॥१३॥ हे मुनियों में श्रेष्ठो ! मैंने भी उसी रीति से सुमहान् पुण्यों वाला सब पापों का विनाश कर देने वाला सनातन पुण्य को कह दिया है ॥१४॥

यथा भवद्भिः पृष्टोऽहं संप्रश्नं द्विजसत्तमाः ।
व्यासप्रसादात्तत्सर्वं मया संपरिकीर्तितम् ॥१५
इदं गृहस्थैः श्रोतव्यं यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ।
धनसौख्यप्रदं नृणां पवित्रं पापनाशनम् ॥१६
तथा ब्रह्मपरैर्विप्रैर्ब्राह्मणाद्यैः सुसंयतैः ।
श्रोतव्यं सुप्रयत्नेन सम्यक्श्रेयोभिकाङ्क्षिभिः ॥१७
प्राप्नोति ब्राह्मणो विद्यां क्षत्रियो विजयं रणे ।
वैश्यस्तु धनमक्षय्यं शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥१८
यं यं काममभिध्यायञ्श्रृणोति पुरुषः शुचिः ।
तं तं काममवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः ॥१९
पुराणं वैष्णवं त्वेतत्सर्वकिल्बिषनाशनम् ।
विशिष्टं सर्वशास्त्रेभ्यः पुरुषार्थोपपादकम् ॥२०
एतद्वो यन्मयाऽऽख्यातं पुराणं वेदसंमितम् ।
श्रुतेऽस्मिन्सर्वदोषोत्थः पापराशिः प्रणश्यति ॥२१

हे द्विजसत्तमो ! जिस प्रकार से आप लोगों ने मुझसे यह प्रश्न पूछा है भगवान् व्यासदेवजी के प्रसाद से वह मैंने सब भली भाँति कीर्तित कर के सुना दिया है ॥१५॥ इस महापुराण को सदा गृहस्थों को श्रवण करना चाहिए तथा यति लोग और ब्रह्मचारियों को यह सुनना चाहिए। यह इस पुराण का श्रवण करना मनुष्यों के लिये धन और सौख्य के प्रदान करने वाला तथा परम पवित्र एवं पापों का विनाश करने वाला है ॥१६॥ इसी भाँति जो श्रेय प्राप्त करने की अभिलाङ्क्षा रखने वाले पुरुष हैं जैसे ब्रह्म म तत्पर विप्र और सुसंयत ब्राह्मण आदि उन सभी के द्वारा भली भाँति सुन्दर प्रयत्न के साथ इसका श्रवण करना चाहिए ॥१७॥ इसके श्रवण करने से ब्राह्मण विद्या की प्राप्ति किया करता है। क्षत्रिय जो उसको सुनता है वह रण क्षेत्र में विजय प्राप्त किया करता है। वैश्य वर्ण वाला यदि यह महापुराण को सुनता है तो उसको कभी भी क्षय न होने वाला धन प्राप्त होता है और शूद्र यदि इसको सुनता है तो उसे बड़ा भारी सुख मिलता है ॥१८॥ जो कोई भी पुरुष पवित्र होकर जिस जिस कामना को हृदय मे रखकर इसको सुनता है मनुष्य उसी-उसी मनोरथ को पूर्णतया प्राप्त कर लेता है—इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥१९॥ यह वैष्णव पुराण है और सभी किल्बिषों का विनाश कर देने वाला है। यह महापुराण अन्य सभी शास्त्रों से भी अधिक विशेषता रखने वाला है और सब पुरुषार्थों का उपपादक है ॥२०॥ यह पुराण जिसको मैंने आपको बतला दिया है वह वेदों के ही सम्मत है। यह महापुराण के श्रवण कर लेने पर सब दोषों से उठी हुई पापों की राशि अर्थात् बहुत बड़ा पापों का समुदाय विनष्ट हो जाया करता है ॥२१॥

प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रे तथाऽर्बुदे ।
उपोष्य यदवाप्नोति तदस्य श्रवणान्नरः ॥२२
यदग्निहोत्रे सुहुते वर्षे नाऽऽप्नोति वै फलम् ।
महापुण्यमय विप्रास्तदस्य श्रवणात्सकृत् ॥२३
यज्ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले ।
मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति पुरुषः फलम् ॥२४

तदाप्नोति भलं सम्यक्समाधानेन कीर्तनात् ।
पुराणेऽस्य हितो [?] विप्राः केशवार्पितमानसः ॥२५

यत्फलं कि(श्रि)यमलोक्य पुरुषोऽथ लभेन्नरः ।
यत्फलं समवाप्नोति यः पठेच्छृणुयादपि ॥२६

इदं यः श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसंमितम् ।
यः पठेच्छृणुयान्मर्त्यः स याति भुवनं हरेः ॥२७

श्रावयेद्ब्राह्मणो यस्तु सदा पर्वसु संयतः ।
एकादश्यां द्वादश्यां च विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८

तीर्थराज प्रयाग में-पुष्कर में-कुरुक्षेत्र में तथा अर्बुद गिरि में निवास कर उपवास करते हुए पुरुष जो भी कुछ पुण्य-फल प्राप्त किया करता है वह सम्पूर्ण पुण्य-फल इस महापुराण के केवल श्रवण करके ही प्राप्त कर लिया करते हैं ॥२२॥ जो भली भाँति से अग्नि होत्र के एक वर्ष पर्यन्त सुहुत करने पर भी जो पुण्य-फल नहीं प्राप्त हो पाता है । हे विप्रो ! वह फल महान् पुण्यमय इस महापुराण के एक बार श्रवण करने से प्राप्त हो जाया करता है ॥२३॥ जो ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन में यमुना के जल में स्नान करके अथवा मथुरा में श्रीहरि भगवान् के दर्शन करके जो फल नर प्राप्त किया करता है वही पुण्य-फल साम्यक् प्रकार से समाधान के द्वारा कीर्त्तन करने से प्राप्त कर लिया करता है । हे विप्रो ! इस पुराण में भगवान् केशव में अर्पित मन वाला पुरुष हितप्रद हुआ करता है ॥२४-२५॥ जिस पुण्य-फल को भगवती साक्षात् श्रीदेवी का दर्शन प्राप्त करके मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है वही फल मनुष्य इस महापुराण का पाठ या श्रवण करके पा लिया करता है ॥२६॥ जो पुरुप बड़ी श्रद्धा से नित्य ही इस वेद संमित महापुराण का पाठ किया करता है या श्रवण करता है ॥२७॥ जो ब्राह्मण पर्वों में सदा संयत होकर इस महापुराण का श्रवण कराया करता है । वह श्रवण एकादशी या द्वादशी तिथि में कराता है वह मनुष्य विष्णु लोक को सीघ्र चला जायाकरता है ॥२८॥

इदं यशस्यमायुष्यं सुखदं कीर्तिवर्धनम् ।
बलपुष्टिप्रदं नृणां धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् ॥२९
त्रिसन्ध्यं यः पठेद्विद्वान्श्रद्धया सुसमाहितः ।
इदं वरिष्ठमाख्यानं स सर्वमीप्सितं लभेत् ॥३०
रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
भयाद्विमुच्यते भीत आपदापन्न आपदः ॥३१
जातिस्मरत्वं विद्यां च पुत्रान्मेधां पशून्धृतिम् ।
धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं तु लभते नरः ॥३२
यान्यान्कामानभिप्रेत्य पठन्प्रयतमानसः ।
तांस्तान्सर्वानवाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः ॥३३
यश्चेदं सततं शृणोति मनुजः स्वर्गापवर्गप्रदं ।
विष्णुं लोकगुरुं प्रणम्य वरदं भक्त्यैकचित्तः शुचिः ।
भुक्त्वा चात्र सुखं विमुक्तकलुषः स्वर्गे च दिव्यं सुखं ।
पश्चाद्याति हरेः पदं सुविमलं मुक्तो गुणैः प्राकृतैः ॥३४
तस्माद्विप्रवरैः स्वधर्मनिरतैर्मुक्त्येकमार्गेप्सुभि-
स्तद्वत्क्षत्रियपुंगवैस्तु नियतैः श्रेयोर्थिभिः सर्वदा ।
वैश्यैश्चानुदिनं विशुद्धकुलजैः शूद्रैस्तथा धार्मिकैः ।
श्रोतव्यं त्विदमुत्तमं बहुफलं धर्मार्थमोक्षप्रदम् ॥३५

यह महापुराण यश देने वाला—आयु के देने वाला अर्थात् बड़ी आयु कर देने वाला—सुख प्रदान करने वाला—कीर्ति की वृद्धि करने वाला—बल और पुष्टि के प्रदान करने वाला और मनुष्यों के लिये परम धन्य एवं दुःस्वप्नों का विनाश करने वाला है ॥२९॥ जो कोई पुरुष विद्वान् महती श्रद्धा से सुसमाहित होकर तीनों सन्ध्याओं में इस महापुराण को पढ़ता है और वरिष्ठ आख्यान का श्रवण किया करता है वह सभी अभीप्सितों को प्राप्त कर लिया करता है ॥३०॥ जो कोई रोगमें आर्त्त हो वह रोग से मुक्त हो जाया करता है जो किसी बन्धन में बद्ध होता है वह इसके पठन से बन्धन से मुक्त हो जाया करता है। जो भीत हो वह भय से छुटकारा पा जाता है और जो आपदाओं से आपन्न होता है वह आपदा से मुक्त हो

जाता है ॥३१॥ इस पुराण के पठन की बहुत बड़ी महिमा है—जाति में स्मरत्व, विद्या, पुत्र, मेधा, पशु, धृति, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥३२॥ जिन-जिन कामनाओं का अभिप्रायः लेकर प्रयत मन वाला होता हुआ इसको पढ़ता है उन-उन सभी को पुरुष प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३३॥ जो मनुज निरन्तर इसका श्रवण किया करता है जो कि स्वर्ग और अपवर्ग दोनों का देने वाला है। लोक गुरु-वरद भगवान् विष्णु को प्रणाम करके भक्ति से एक चित्त होकर एवं शुचि होकर इसको सुनता है वह सब कलुषों से विमुक्त होकर स्वर्ग में दिव्य सुख प्राप्त करता है। इसके अनन्तर प्राकृत गुणों से मुक्त होकर सुविमल भगवान् श्रीहरि के पद को प्राप्त किया करता है ॥३४॥ इसका मुक्ति के ही एक मार्ग में इच्छा रखने वाले अपने धर्म में निरत विप्रों को तथा क्षत्रियों में श्रेष्ठों को और सर्वदा नियत श्रेय के चाहने वालों को-विशुद्ध कुल में समुत्पन्न वैश्यों को तथा धार्मिक शूद्रों को अनुदिन इस बहुत फल को देने वाले धर्मार्थ काम और मोक्ष के दाता उत्तम पुराण का श्रवण करना ही चाहिए ॥३५॥

धर्मे मतिर्भवतु वः पुरुषोत्तमानां,
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः ।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना,
नैव प्रभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम् ॥३६

धर्मेण राज्यं लभते मनुष्यः,
स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति ।
आयुश्च कीर्तिं च तपश्च धर्मं,
धर्मेण मोक्षं लभते मनुष्यः ॥३७

धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य,
धर्मः सखा चात्र परे च लोके ।
त्राता च धर्मस्त्विह मोक्षदश्च,
धर्मादृते नास्ति तु किंचिदेव ॥३८

इदं रहस्यं श्रेष्ठं च पुराणं वेदसम्मितम् ।
न देयं दुष्टमतये नास्तिकाय विशेषतः ॥३९

इदं मयोक्तं प्रवरं पुराणं,
पापापहं धर्मविवर्धनं च ।
श्रुतं भवद्भिः परमं रहस्य-
माज्ञापयध्वं मुनयो व्रजामि ॥४०

पुरुषों में उत्तमो की आपकी धर्म में मति होवे । वह ही एक परलोक में गये हुए पुरुष का बन्धु होता है। स्त्रियों-इनका निपुणों के द्वारा सेवन भी किया जावे तो इनका कुछ भी परलोक में प्रभाव नहीं होता है और इनकी स्थिरता भी कुछ नहीं है ॥३६॥ धर्म के द्वारा मनुष्य राज्यासन प्राप्त करता है और मे नर स्वर्ग लोक को भी गमन किया करता है । मनुष्य धर्म से ही आयु-कीर्ति-तप धर्म और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥३७॥ इस लोक में धर्म नर के माता पिता हैं । धर्म यहाँ पर और परलोक में भी मनुष्य का सखा होता है। यहा पर धर्म ही त्राण करने वाला है और मोक्ष के प्रदान करने वाला है । धर्म के बिना और कुछ भी नहीं है ॥३८॥ यह परम श्रेष्ठ रहस्यमय वेद सम्मित पुराण है । दुष्ट मति वाले के लिये इसको नहीं बताना चाहिए और विशेष रूप से नास्तिक को भी न देवें ॥३९॥ मैंने श्रेष्ठ पुराण बतला दिया है जो समस्त पापों का अपहरण करने वाला है । आप सब लोगों ने इस परम रहस्य का श्रवण किया है । अब हे मुनिवरो ! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए । मैं अब जाता हूं ॥४०॥

॥ समाप्त ॥